* ॥ अथ ब्रह्माण्डमहापुराणं प्रारभ्यते ॥ *

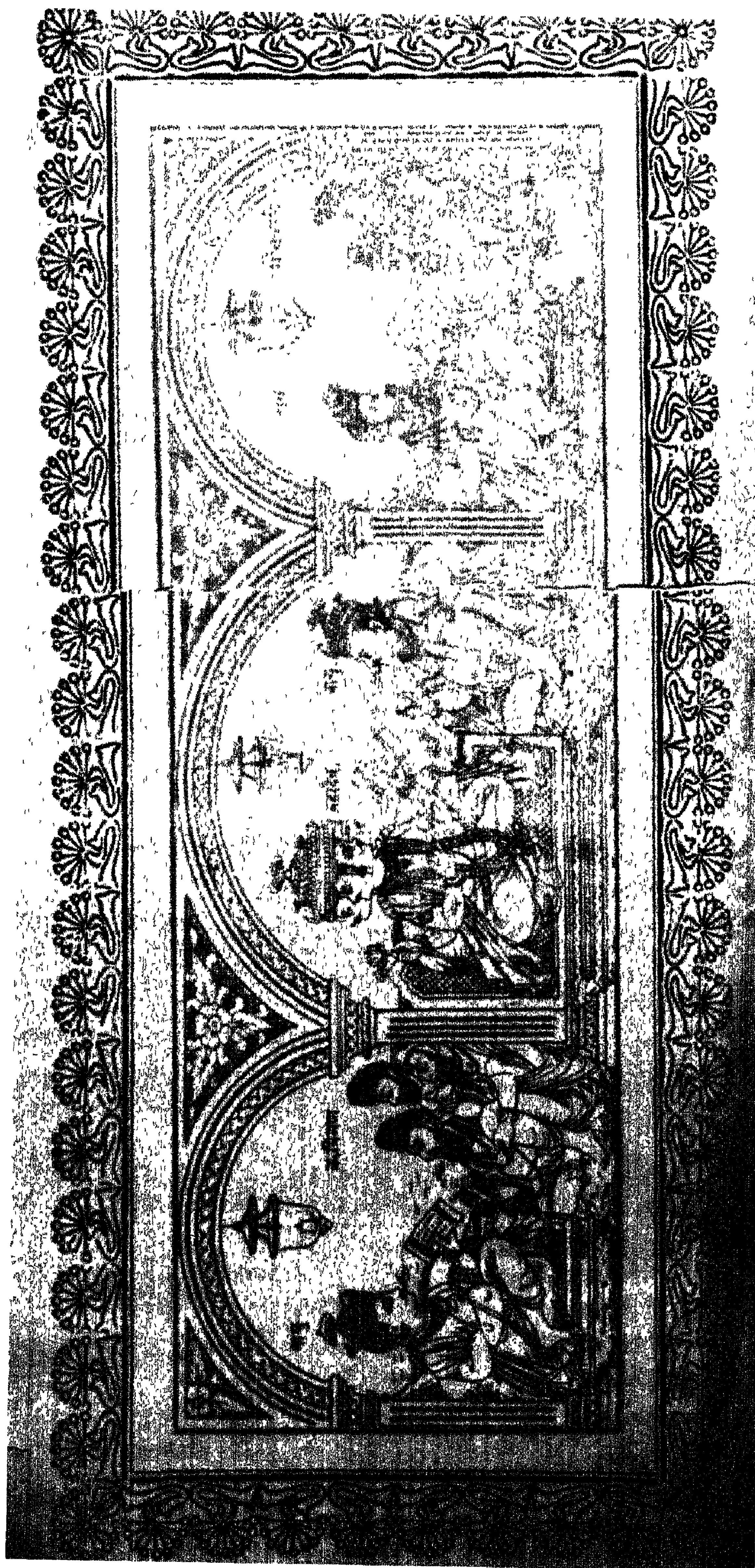

महीनेपर्यंतक तीन सहस्र जपकरै ॥ ८२ ॥ वो ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है यह कौशिक विश्वामित्रने कहा है जो जलमें निमग्न हो बारह दिनमें बारह सहस्र जप करै ॥ ८३ ॥ उसके सब पाप और महापातक नष्ट होजाते हैं, जो प्राणायामकर वाणी रोक महीनेमें तीन सहस्र जपकरै ॥ ८४ ॥ वह महापातक तथा महाभयसे छूट जाता है, सहस्र प्राणायामसे ब्रह्महत्याराभी शुद्ध होजाता है ॥ ८५ ॥ जो सावधान हो प्राण अपानको छः वार ऊपरको कर अभ्यास करता है तो यह प्राणायाम सब पापका नाशक हो जाता है ॥ ८६ ॥ जो महीनेतक

मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः ॥ त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ८४ ॥ महापातक युक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति ॥ ८५ ॥ षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ॥ प्राणायामो भवेदेष सर्वपापप्रणाशनः ॥ ८६ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ॥ द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ॥८७॥ अगम्यगमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे ॥ दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयद्द्विज ॥ ८८ ॥ प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ सर्वेषामेव पापानां संकटे सति शुद्धये ॥ ८९ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्य जापी वने वसन् ॥ उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रतदित्यृचम् ॥९०॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता ॥ चतुष्षष्टि सहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ॥९१॥

सहस्रवार अभ्यास करै वह राजा शुद्ध हो जाता है, गोहत्या लगनेमें बारह दिनतक तीन सहस्र जप करै ॥ ८७ ॥ अगम्यागमन करनेसे चोरी, अभक्ष्य भक्षणमें दशसहस्र गायत्री जप ब्राह्मणको शुद्ध करता है ॥ ८८ ॥ सौ प्राणायाम करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है सब पापोंकी संकरताकी शुद्धिमें ॥ ८९ ॥ वनमें निवासकर सहस्र नित्य जपकर महीना व्यतीत करै, तीन सहस्र गायत्रीजप उपवासके समान है ॥ ९० ॥ चौबीस सहस्र जप कृच्छ्र व्रतके समान है, चौंसठ सहस्र जप चान्द्रायण व्रतके समान है ॥ ९१ ॥

दोनों सन्ध्याओंमें प्राणायामकर सौ सौ वार अभ्यास करै तो सब पाप क्षय हो जाते हैं ॥ ९२ ॥ जो जलमें निमज्जन कर सौवार गायत्री जपकर सूर्यरूपा देवीका ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९३ ॥ यह आपसे शान्ति शुद्धि आदिकी कल्पना भली प्रकारसे कही यह रहस्यसे भी रहस्य है इसको आप सदा गुप्त रखना ॥ ९४ ॥ यह संक्षेपसे सदाचारकी कल्पना कही इसके विधिपूर्वक आचरणसे माया दुर्गा प्रसन्न होती है ॥ ९५ ॥ नैमित्तिक और नित्य यथाविधि काम्य कर्म, आचरण करनेसे मनुष्य भुक्ति मुक्तिके

शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः ॥ तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥ ९२ ॥ निमज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम् ॥ ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ इति ते सम्यगाख्याताः शांतिशुद्ध्यादिकल्पनाः ॥ रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा ॥ ९४ ॥ इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः ॥ विधिनाचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति ॥ ९५ ॥ नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि ॥ आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक् ॥९६॥ आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ॥ इत्युक्तसर्वशास्त्रेषु सदाचारफलम्महत् ॥९७॥ आचारवान्सदा पूता सदैवाचार वान्सुखी ॥ आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥ ९८ ॥ देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम् ॥ यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक् ॥ ९९ ॥

फलको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ आचारही प्रथम धर्म है धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती है, इस प्रकार सब शास्त्रोंमें आचारका बडा फल कहा है ॥ ९७ ॥ आचारवान् सदा पवित्र और आचारवान् सदा सुखी है आचारवान् सदा धन्य है, हे नारद ! यह सत्य २ है ॥ ९८ ॥ यह सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नता करनेवाला है जो मनुष्य इसको सुने वह महासम्पत्ति तथा सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥

सदाचारसे ही इस लोक और परलोकका सुख सिद्ध होता है सो यह आपसे वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०० ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सदाचारेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम् ॥ तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥ ११ ॥
सार्धैरामाब्धिनेत्रेंदु (१२४३॥) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यैकादशः स्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

एक सहस्र दो सौ तैतालीस श्लोकोंमें एकादशस्कन्ध पूर्ण हुआ ।

दोहा--शिवाभवानी मायके, चरणकमल मन लाय । भाषा रुद्रस्कन्धकी, बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं करि प्रेम जों, पावहिं मोद महान् । श्रीदेवी तिनके करहिं; नित नूतन कल्यान ॥ २ ॥
बसत रामगंगानिकट, नगरमुरादाबाद । गुण गावत जगदम्बके, जनज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
गायत्रीसम द्विजनको, नहिं कोउ और उपास । तासे गायत्री जपहु, दोनों लोक विकास ॥ ४ ॥
गायत्री ही भगवती, देवी रूप लखाय । कही भागवत मध्यमें, ऋषि द्वैपायन गाय ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

एकादश स्कन्ध समाप्त ।

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते एकादशस्कंधः समाप्तः ॥

दो वर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी होजाती है जो कहे सो होजाय ॥ ७३ ॥ इसी प्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी होजाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान् सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे काम रूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दश वर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥७६॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसीप्रकार बारह वर्षतक जपै तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥७७॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है. कोई शाक, कोई मूल, कोई फल, कोई पय

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्रैकालदर्शनम्॥आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत्॥७४॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् ॥ एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥७५॥ सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥७६॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥ ७७ ॥ एतेनैव जिता लोका स्तपसा नारदादिभिः ॥ शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥७८॥ घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः ॥ ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥७९॥ हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परंतपः ॥ अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः ॥८०॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ॥ जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥ मासं जपेत्रिसाहस्रं शुचिः स्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥ ८२ ॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् ॥ द्वादशाहं निमज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ८३ ॥

॥ ७८ ॥ कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकवार ॥७९॥ हविष्य अन्नखाते हुए परम तपकरते हैं, रहस्य पापोंकी शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जपकरै ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकर शुद्ध होजाता है महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटीबनाया वनमें रहकर

॥इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासंमते एकादशस्कंधः समाप्तः॥

दो वर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी होजाती है जो कहे सो होजाय ॥ ७३ ॥ इसी प्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी होजाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान् सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे काम रूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दश वर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥७६॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसीप्रकार बारह वर्षतक जपै तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥७७॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है. कोई शाक, कोई मूल, कोई फल, कोई पय

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्रैकालदर्शनम्॥आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत्॥७४॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् ॥ एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥७५॥ सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥७६॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥ ७७ ॥ एतेनैव जिता लोका स्तपसा नारदादिभिः ॥ शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥७८॥ घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः ॥ ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥७९॥ हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परंतपः ॥ अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः ॥८०॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ॥ जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥ मासं जपेत्रिसाहस्रं शुचिः स्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥ ८२ ॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् ॥ द्वादशाहं निमज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ८३ ॥

॥ ७८ ॥ कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकवार ॥७९॥ हविष्य अन्नखाते हुए परम तपकरते हैं, रहस्य पापोंकी शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जपकरै ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकर शुद्ध होजाता है महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटीबनाया वनमें रहकर

स्थानमें आयुकी कामनासे जपे तो उसको आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ आयु आरोग्यकी कामनासे ब्राह्मण दोमहीने जपे तो आयु आरोग्य होती है, लक्ष्मी तीन महीने जप करनेसे मिलती है ॥ ६५ ॥ चारमहीने जपसे आयु लक्ष्मी पुत्र स्त्री यश प्राप्त होता है, पांच महीने जपसे पुत्र दारा आयु आरोग्य श्री विद्या प्राप्त होती है ॥६६॥ इसीप्रकार उत्तरोत्तर जप करनेसे अधिकतर कामनाओंकी प्राप्ति होती है, एक चरणसे ऊर्ध्व भुजाकर निराश्रय ॥ ६७ ॥ तीन महीने जप करनेसे सब कामनाओंको प्राप्त होता है, इस प्रकार मासे सहस्रतक जप करनेसे सब मनोरथ मिलते हैं ॥६८॥ जो प्राण अपानको रोक कर प्रतिदिन तीन सौ एकमहीने तक जपता है वह यथेच्छ फल पाता है और सहस्र

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः ॥ भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥ ६५ ॥ आयुःश्रीपुत्रदाराद्यैश्च तुर्भिश्च यशो जपात् ॥ पुत्रदारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥६६॥ एवमेवोत्तरान्कामान मासैरेवोत्तरैर्भजेत ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥ ६७ ॥ मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥६८॥ रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् ॥ यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥ ॥ ६९ ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहु रुद्ध्वाऽनिलं वशः ॥ मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ॥ ७० ॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नुयात्॥७१॥एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहु रुद्ध्वा निराश्रयः ॥ ७२ ॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात् ॥ गौरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥७३॥

हवनसे परम उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ एक चरणसे स्थित हो ऊपरको भुजा उठाये प्राण रोककर सौवार महीनेभरतक जप करनेसे यथेच्छ फल पाता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार तीन शत वा सहस्र जपसे सब कामना प्राप्त होती हैं. जलमें स्थित हो मास पर्यन्त सौवार जपनेसे इष्टको प्राप्त होता है ॥७१॥ इस प्रकार प्राणका अपान रोक कर प्रतिदिन तीनशत गायत्री जपनेसे सब कुछ प्राप्त होता है विश्वामित्रनेकहा है एक चरणसे स्थित ऊपरको भुजा उठाये निराश्रय हो प्राण रोक॥७२॥ केवल रात्रिमें हविष्य अन्नखाता हुआ वर्षदिनमें ऋषिताको प्राप्त होता है

भक्त हैं और शरणागत हैं, आप हमारे आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला-अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ हैं तो सही, पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है? सो मैं जानना चाहता हूँ ॥ २९ ॥ हे अरविन्दलोचन ! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होती है, वैसे ही सर्व सुहृद् और प्रियआत्मा आपके चरणोंकी उपासना व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त हैं तो भी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दया प्रकाश करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराया ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकारसे कहा तब जगत्पालक मत्स्यरूपी भगवान् प्रलयके समुद्रमें

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥ न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिंदम ॥ निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥३२॥ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य महतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लव ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥

विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी भगवान् बोले कि हे अरिन्दम ! आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूब जायगी ॥३२॥ हे राजन् ! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी तब उस समय हमारी भेजी हुई एक बड़ी नाव तुम्हारे निकट आवेगी ॥ ३३ ॥ तुम उसको देखते ही सब प्रकारकी औषधियें और छोटे बड़े समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥३४॥ उस नावपर अतिशीघ्रताके साथ चढ़ जाना। उस नावमें चढ़कर विना खेदके तुम सब जगह घूम सकोगे। हे राजन् ! जब सब जल ही जल हो जायगा तब

उजेला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होगे ॥ ३५ ॥ फिर प्रलयपवनके लगनेमें जब वह नाव कम्पाय-मान होने लगेगी, तब हम भी तुम्हारे समीप आ जायँगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारे सींगमें नावको बांध देना ॥ ३६ ॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी जबतक हम उस नावको ऋषि लोगोंके सहित प्रलय समुद्रमें खींचते फिरेंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह उसी समय तुम्हारे प्रश्नकरनेपर कहेंगे। तुम हमारी प्रसन्नतासे उस महिमाको अपने हृदयमें जान सकोगे ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् इस प्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थलमें अन्तर्धान हो गये। इसके उपरान्त यह राजर्षि सावधान हो भगवान्‌के आज्ञा दियेहुए

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन् विचरिष्यामि यावद् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥ आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ॥ तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥

कालकी राह देखने लगे ॥ ३९ ॥ अर्थात्सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भगवानके चरित्रका स्मरण करता हुआ पूर्वकी ओरको हैं अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाकर पूर्व उत्तरकी ओरको मुख करके बैठ गया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखायी दिया कि समुद्रका नीर तीरको तोड़ सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ने लगा और भयंकर मेघ अनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ राजा सत्यव्रतने भगवान्‌की आज्ञाका विचार करते करते देखा कि एक नाव निकट आ पहुँची। मत्स्यमूर्ति भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी औषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके साथ उस नावपर आरूढ़ हो गया ॥ ४२ ॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि

नौकापर चढ़े तब मुनि लोग बोले कि राजन् ! भगवान् केशवका ध्यान करो, वे ही हम लोगोंको इस संकटसे बचाकर मंगल करेंगे ॥४३॥ हे राजन् ! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रकट हुए। इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाई एक लाख योजनकी थी ॥ ४४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत भगवान्‌की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यके शृंगमें नौका बांध प्रसन्नचित हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥४५॥ राजर्षि सत्यव्रतने कहा कि हे भगवन् ! जिन पुरुषोंका अन्तःकरण अनादि अविद्यासे ढका हुआ है इस कारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं वे लोग भी इस संसारमें जिसके अनु

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबद्ध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यदाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

ग्रहके लिये आश्रित हो जिसको प्राप्त होते हैं आप वही पुरुष हैं, हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परमगुरु हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसे ही इसका बन्धन हुआ है, यह सुखकी इच्छासे भी दुःखरूपी कर्म करनेकी चेष्टा करता फिरता है, परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छूट जाती है वे हमारे हृदयकी गांठको खोल दें, वे ही भगवान् हमारे परमगुरु हैं ॥४७॥ अहो ! चांदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलिनताको छोड़ अपने रूपको प्राप्त हो जाती है, ऐसे ही जिन आपकी सेवासे मनुष्य अज्ञानको छोड़ अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है वे ही अव्यय ईश हमारे गुरु हों, क्योंकि वे ही गुरुके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ अहो ! देवता गुरु व सब श्रेष्ठ जन एकत्र होकर भी जिसके प्रसादके दश हजार भागके एक हिस्सेको भी प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं

हो सकते, हे भगवन् ! आप [illegible] हैं, हम [illegible] शरण हैं ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! [illegible] करके चले, [illegible] अविद्वान् पुरुष अज्ञोंको [illegible] होते हैं [illegible] गुरु [illegible] हैं आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाश [illegible] केवल अनर्थके हेतु हैं, वे पुरुषको कामादिककी [illegible] प्राप्त हो जाता है, सो आप इस प्रकारके नहीं हैं, आप यथार्थमें [illegible] अर्थात् [illegible] कोई आपके पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ हे देव ! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद् [illegible] ईश्वर, आत्मा, गुरु ज्ञान और अभिलषितस्वरूप हैं, तो भी अनेक

अचक्षुरन्धस्य यथाऽग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः । त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीप्सितार्थः ॥ तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपुरुषः ॥ मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥

दूसरी बुद्धि और कामके वश होकर अपने हृदयमें स्थित हुए आपको नहीं जान सकते ॥ ५२ ॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आये हैं, आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरणीय और ईश्वर हैं । हे भगवन् ! आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्न हुई अहंकारादिकी गांठ खोलिये और आत्मस्वरूपप्रकाश करनेकी कृपा करो ॥ ५३ ॥ शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकारसे स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदिपुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते करते उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥ ५४ ॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्य पुराणसंहिता अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्म

सरोवरमें डाल दिया परंतु डालते ही वह मछली अपने शरीरसे उस सरोवरमें बड़ी मछलीके समान बढ़ गयी और फिर राजर्षि सत्यव्रतसे निवेदन करने लगी कि हे महाराज ! मैं जलवासी हूँ सो मुझको नहीं जान पड़ता कि सरोवरका जल मेरे मंगलार्थ होगा ॥ २१ ॥ महा ह्रदको पानेके प्रथम विना जलके जिससे मेरा नाश न हो जाय ऐसा उपाय करके तुम मुझको किसी ह्रदमें स्थापित करो, क्योंकि ह्रद स्वभावसे ही गम्भीर नीरवाले होते हैं, उनका जल शीघ्र नहीं घटता ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब उस मत्स्यने इस प्रकारसे कहा तब राजर्षि सत्यव्रतने उसको लेकर जिसका जल कभी क्षीण न हो ऐसे अगाध जलाशयमें डाल दिया, परन्तु एक दिनमें ही वह मछली इतनी बढ़ी कि वह जलाशय भर गया, राजा सत्यव्रतने जब देखा कि इस मछलीका शरीर जलाशयमें भी नहीं समाता तो

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशयेऽसंमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥ नैववीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ॥ यो भवान् योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥ नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥

उसको समुद्रमें डालनेके लिये चला ॥२३॥ तब उस मीनने दीन भावसे राजर्षिके प्रति कहा कि हे राजन् ! यहांपर अति बलवान् मकरादि जन्तु हैं, सो वे हमको भक्षण कर लेंगे इसलिये आप हमको इस स्थानमें न छोड़िये ॥ २४॥ जब उस मत्स्यके ऐसे वचन सुनकर राजर्षि सत्यव्रत अतिशय मोहित हो तब मत्स्यसे बोले, "आप कौन हैं ?" और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करते हैं ? ॥ २५ ॥ हमने कभी इस प्रकारका जलचर न देखा, न सुना, आपने एक दिनमें अपना शरीर बढ़ाकर शत योजनके विस्तारवाले सरोवरको ढक दिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि आप नारायण अथवा हरि हैं, प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जलचररूप धारण किया है ॥ २७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है। आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं। हे प्रभो ! हम आपके

करुणाकर देखकर वह मछली करुणाके वचन कहने लगी कि हे महाराज ! आप दीनवत्सल हैं और मैं दीन, हीन क्षीण मीन हूँ, नदीके जलमें जातिका घात करनेवाले अनेक जन्तु हैं, सो उनके हाथमें हमको आप किस प्रकार छोड़ते हैं? हे महाराज ! हम मीन हैं शरण आयी हैं आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत यद्यपि यह नहीं जानते थे कि हमारे ही ऊपर अनुग्रह करनेको स्वयं भगवानने यह सत्यस्वरूप धारण किया है, तो भी प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन स्थिर कर लिया ॥ १५ ॥ दीन वचन सुनते ही राजर्षिके मनमें दया उत्पन्न हो गयी और वह जलपूर्ण कलशमें रखकर मछलीको अपने आश्रममें ले आये ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित ! कलशमें रहनेपर एक ही रातके बीच वह मछली इतनी बढ़ी, कि वह फिर उसमें न समा सकी, इसलिये अपने सुभीतेके लिये उन राजर्षिसे कहने

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ॥ अलब्ध्वाऽऽत्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदायन्यधादौदञ्चनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥१९॥ न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ॥ तदावृत्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥

लगी ॥१७॥ कि हे राजन् ! इस गगरीमें मेरा शरीर नहीं समाता, इसमें कष्टके मारे मैं वास नहीं कर सकती, सो आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये कि जहाँ मैं सुखसे रह सकूं ॥ १८ ॥ यह सुनकर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको जलसे निकाल एक बड़े भारी कमण्डलुमें डाल दिया । हे राजन् ! उस कमण्डलुमें गिरते ही एक क्षणके बीचमें वह मछली तीन हाथ बढ़ गयी ॥ १९ ॥ तब वह मछली कहने लगी कि इस कमण्डलुके बीच भी मैं सुखसे नहीं रह सकती, अनुग्रह करके मुझको आप किसी बड़े भारी स्थानमें रख दें, क्योंकि मैं आपकी शरण आयी हूँ, इसलिये सब प्रकार आपको मेरी रक्षा करनी उचित है ॥ २० ॥ तब राजर्षिने इस मछलीको कमण्डलुसे उठाकर एक

वान् अवतार लिया करते हैं ॥५॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे नीचे प्राणियोंमें पवनके समानआदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं, परंतु निर्गुण होनेके कारण ऊँच नीचको नहीं भजते ! और मत्स्यावतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो॥६॥ अतीत कल्पके अंतमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुआ, तब भूरादि सब लोग समुद्रके जलमें डूब गये ॥ ७ ॥ तब समयकेवश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले, कि जिनको दानवेंद्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना; तब वे इस दैत्यको दमन करनेके लिये शफरीरूप (मत्स्यरूप)धारण करते हुए ॥ ९ ॥ उसी समय कोई

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥ छालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निस्सृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरी रूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ॥ नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिला शनः ॥ १० ॥ योऽसावमस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥११॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ तस्याञ्जल्युदके काचित् शफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोऽञ्जलि गतां सह तोयेन भारत ॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥१३॥ तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम्॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथंविसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥ १४ ॥

सत्यव्रत नामक नारायणपरायण राजर्षि केवल जलका आहार कर तप करते थे ॥१०॥ वही राजर्षि इस महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र हो श्राद्धदेवके नामसे विख्यात और भगवान् हरिकरके मन्वन्तरके पदपर अभिषिक्त हुए ॥ ११ ॥ एक दिन यह राजर्षि सत्यव्रत कृत माला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे, कि इतनेमें ही उनकी अञ्जलीके जलमें एक मछली दिखायी दी ॥१२॥ हे भारत ! यह देखकर दयावान् द्रविड़राज सत्यव्रत अंजलिके जलसहित इस मछलीको नदीके जलमें डालनेको प्रस्तुत हुए ॥ १३ ॥ राजर्षि सत्यव्रतको मह्

हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित्! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिक कर्म करनेके समय जिस जिस कार्यमें इस चरित्रका गान होगा, वे समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पंडितगण भलेप्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका वामनावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—कथा मत्स्य अवतारकी, चौबिसवें अध्याय। सत्य व्रत रक्षा करी, सो कहिहौं समुझाय॥ राजा परिक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भगवन्! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनायी वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अब कृपापूर्वक मुझे प्रथमावतारकी कथा सुनाइये कि जिसमें अद्भुत कर्मकारी भगवान्ने अपनी मायाके द्वारामत्स्य रूप धारण किया था, मैं उसके श्रवण

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ २१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे वामनावतारिचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥ यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥२॥ एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कृतम्॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥

करनेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ क्योंकि मत्स्यरूप लोकमें निंदित है और तमोगुणी स्वभाववाला होनेके कारण सहनेके अयोग्य है, सो ईश्वरने कर्मग्रस्तके समान होकर इस रूपको किस कारण धारण कियाथा ? ॥२॥ यह सब वृत्तांत आप मुझसे यथार्थरूपसे कहिये। हे योगिन्! भगवान् उत्तमश्लोकके चरित्र सबको ही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की, तब व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहने लगे, जो कि विष्णुभगवान्ने मत्स्यरूप धारणकरके की थी ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे कि हे कुरुवंशावतंस परीक्षित्‌गो, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, धर्म और अर्थकी रक्षा करनेको समय समयपर विष्णु भग

परमभक्तिके साथ पतिके निकट गयीं ॥ २१ ॥ महर्षि कश्यपजीकी अव्यर्थ दृष्टि थी, अतः उन्होंने भी योगकी समाधिमें देख लिया कि भगवान् हरिका अंश इसमें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तो भी जैसे 'सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगड़से वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है, वैसे ही अदितिजीके गर्भमें दैत्योंका क्षय करनेवाला बहुत कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया * ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान सनातन विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भे भगवन्तं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥ ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपि विष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥

जानते ही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो । हे उरुक्रम ! आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको वारंवार नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था, आप उनके गर्भमें भी अर्भक होकर जन्मे थे, सो आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, सो आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल यह तीनों

* शङ्का—भगवान्के जन्म होनेके लिये कश्यपजीने अदितिके शरीरमें वीर्य स्थापन किया, यह बड़ी भारी शङ्का है कि विना वीर्य स्थापन किये क्या भगवान्का जन्म नहीं हो सकता ? क्योंकि वीर्यसे जन्म तो चौरासी लक्ष योनिका होता है और भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, उनके जन्म होनेके लिये वीर्यस्थापनका क्या काम था ?

उत्तर—भगवान् अनेक प्रकारका दुःख सहकर अपनी बनायी मर्यादाकी रक्षा करते हैं, यह बात शास्त्रमें और लोकमें सबको प्रकट है, कि विना वीर्य संसारकी उत्पत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती इसलिये वीर्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये वीर्यसे आप प्रगट होते हैं. जो वीर्यकी मर्यादा तथा अपनी बनायी लोककी मर्यादा न रक्खे तो परमेश्वर सब वस्तुमें विराजमान है फिर जन्म लेनेकी क्या आवश्यकता थी ? परमेश्वरको सब बातका अधिकार है वैकुण्ठमें बैठे बैठे जो चाहें सो करें, इसलिये कश्यपजीमें वीर्य स्थापन किया।

लोक आपकी नाभिमें वर्त्तमान हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हुए हैं, सो हे सर्वव्यापी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि, अन्त और मध्य हो, आप ही अनन्तशक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह जलमें गिरे हुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसे ही कालरूपी जो आप हैं सो प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षित किया करते हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आप स्थावर जंगम सब प्रजा और प्रजापति अर्थात् लोगोंके उत्पन्न करनेवाले हैं। आपके जन्मादि नहीं हैं । हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसे ही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परम आश्रय हैं, इसलिये निःसंदेह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है, सो आप

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथाऽन्तः पतितं गभीरम् ॥२७॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः॥दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धेऽदितिगर्भे भगवदंशप्रवेशोनाम सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिञ्चिस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शङ्खगदाब्ज चक्रः पिशङ्गवासानलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ॥ श्रीवत्स वक्षा वलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषा टीकायां अदितिवरदानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अष्टादश अध्यायमें, बलिके यज्ञमँझार । श्रीवामनजी जिमि गये, सो संवाद उदार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्मरहित वह भगवान् अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए । उनके नेत्र कमलदलके समान बड़े बड़े थे, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुध देदीप्यमान हो रहे थे और कमरमें पीताम्बर पड़ा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गौर वर्ण था, मकराकार कुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविंदको प्रकाशमान कर रही थी, वक्षस्थलमें श्रीवत्सचिह्न विराजमान था और वलय व अंगद (बाजू) सहित उनके किरीट

और काञ्ची व मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान हो रहे थे ॥२॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि बहुतसे भ्रमरगणोंकी गुञ्जारसे शब्दायमान हो रही थी उससे श्रीनारायण विराजमान हो अपने शरीरसे प्रजापतिजी (कश्यपजी) के गृहके अन्धकारको दूर कर रहे थे, और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पड़ी हुई थी ॥ ३ ॥ जैसे ही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुए कि वैसे ही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया, प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने अपने गुणसे (फलपुष्पादिसे) शोभाय मान हुई। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा होने लगी। देव, द्विज, गायें, इन सबके ही मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान् किस समयमें उत्पन्न हुए सो तुम सुनो। भादों महीनेकी शुक्ला द्वादशी जो कि श्रवण द्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालाया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥५॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप ॥ विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन् गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥

प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्त्तमें श्रीभगवान्ने जन्म लिया, उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर उनका जन्म उदार किया था, अर्थात् उनके जन्म कालमें ग्रह नक्षत्रादि सब ही शुभ पड़े थे ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिस द्वादशीमें भगवान् वामनजीने जन्म लिया सो प्राचीन कवि लोग कहते हैं कि उस द्वादशीके दिवाभागमें ही श्रीनारायणका जन्म हुआ उस समय सूर्य भगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भलीभांति दुपहर हो गया था, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवान्ने जन्म लिया, उस समय शंख, नगाड़े, भेरी, ढोल, आनक, तुरही व और अनेक बाजोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गंधर्व लोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर

देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्निमें ॥ ८ ॥ सिद्ध,विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण देवता लोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच नाचकर गुण गाने लगे ॥९॥ और प्रशंसा करकर फूल वर्षा वर्षाकर कश्यपजीके आश्रमको छा लिया ॥१०॥ हे राजन् ! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकरअदितिको विस्मय और हर्ष एकसाथ हुआ । प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुए उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ! हे राजन् ! भगवान् हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि जिससेचित्त अव्यक्त था, अपनी द्युति, भूषण व आयुध सहित उस शरीरमें

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ॥ आदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भाति वि भूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः॥बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥१४॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥ कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥

नटकी नाई दर्शनकारी मातापिताके सामने ही वामन वटुकरूप हो गये, उनकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥११॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोगआनन्द प्रकाश करते करते कश्यपजीके स्थानपर गये ॥ १२ ॥ और उनको आगे कर नारायणका जातकर्म संस्कार कराने लगे ॥ १३ ॥ उसके उपरान्त जब इन वामनजीकायज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्य नारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखायी, बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहनायी ॥१४॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगत्पतिको स्वर्गने छत्रदान किया ॥ १५ ॥ अधिक करके वेदगर्भ ब्रह्माजीने

कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ हो गया तब कुबेरने उनको भिक्षापात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥ १७ ॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार आदर सत्कार पा, अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाको भी अतिक्रमण करके शोभायमान होने लगे ॥ १८ ॥ अग्निके परिसमूहके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त वामनजीने सुना कि भृगुवंशियोंके प्रवर्तित किये हुए अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजा बलि यज्ञ कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग पगपर पृथ्वीमण्डलको

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती ॥ १७ ॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ १८ ॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद् द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितै स्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन् पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायस्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजास्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥ ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान् स वामनः ॥ छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥

कम्पायमान करते हुए राजा बलिके यज्ञस्थानमें वामनजीने गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विज जो यज्ञको करा रहे थे; उन्होंने अपने उदय हुए सूर्यनारायणके समान इन वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विज सभासदगण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजा बलि यह सब तेजरहित हो गये:और यह कहकर परस्पर तर्क वितर्क करने लगे कि "क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूर्य भगवान् आ रहे हैं ? वा अग्नि है वा सनकादिक ऋषियोंका आगमन हुआ ?" ॥२२॥ शिष्योंके सहित भृगुगणकरके इस प्रकार विविध भांतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी छत्र, दण्ड, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा

बलिके अश्वमेधमण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मुञ्जकी मेखला पहिने हुए मृगके चर्मका उत्तरीय जो जनेऊके समान बायें कन्धेपर पड़ा था, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी वामन उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालामें प्रवेश करते हुए देखकर उनके तेजसे व्याकुल हो शिष्योंके सहित भृगुलोग उठ खड़े हुए और उनका आदर सम्मान करने लगे ॥२५॥ दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अङ्गयुक्त श्रीवामनजी महाराजको देखकर प्रसन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया और कहा कि "भले आये महाराज! विराजिये" यह कह कोमल तथा अमल चरणकमलको धोकर उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करने लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन्! भगवान्के मंगलकारी चरणोदकको,

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयव तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्याचयामास मुक्तसङ्गं मनोरमम् ॥२७॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद् मूर्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम् ॥ यद् देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ताः अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥

जो कि कलिमलका नाश करनेवाला है, राजाबलिने अपने मस्तकपर चढ़ाया। हे महाराज! आप इस बातको कुछ विचित्र न समझो, क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिरीश भूतेश्वर महादेवजी भी परम भक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढ़ाया करते हैं ॥२८॥ तब राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके मारे कहने लगा कि हे ब्रह्मन्! आपका आगमन बड़ाही सुखदायक हुआ, मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मैं आपका कौनसा कार्य करूं सो आज्ञा कीजिये। हे श्रेष्ठ! हमको जान पड़ता है कि आप ब्रह्मर्षिलोगोंके मूर्तिमान तप हैं, अतः आज मैं कृतार्थ होगया ॥ २९ ॥ आज जो मेरे स्थानपर आकर सुशोभित हुए इस कारण हमारे पितृगण तृप्त होगये, आज मेरा

कुल पवित्र हो गया और आज मेरा यह यज्ञ भलीभांतिसे पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥ आज हमारा अग्नियोंमें भलीभांति होम करना सफल हुआ, हे ब्राह्मणकुमार ! आपके चरणोदकसे हमारा सब पाप धुल गया और आपके छोटे छोटे चरणोंके पड़नेसे यह भूमि पवित्र हो गयी ॥३१॥ हे विप्रनन्दन ! हम अनुमान करते हैं कि आप कुछ मांगनेके लिये आये हैं, सो जो इच्छा हो वही आप मुझसे लीजिये ! हे पूज्यतम ! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह, मीठा तथा उज्ज्वल अन्न और पान, कन्या, ऋद्धि सिद्धिसे भरे हुए ग्राम, अश्व, हाथी व रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो सो मुझसे मांग लो, मैं देनेको प्रस्तुत हूँ * ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिवामन

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥ यद्यद् बटो वाञ्छसि तत् प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्॥ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागव० म०अष्टम० बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ॥ निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥

संवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा—ऊनविंशमें तीन पग, धरणी मांगी ईश । कियो शुक्रने मने जिमि, कहौं सुमिरि जगदीश ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सम्मान करके राजा बलिसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचन अत्यन्त सुन्दर, धर्मयुक्त, यशके देनेवाले और कुलके योग्य

---

* शङ्का—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें ब्राह्मण राजाओंसे दान मांगते थे तब राजालोग गुरुसे अनेक बार पूछकर अर्थात् सुपात्र कुपात्र विचारके दान देते थे, जब ऐसे विचारके दान देते तब वामन भगवान्ने तो बलिसे दान मांगा नहीं, बिना मांगे दान देनेको बलि क्यों उपस्थित हुआ ?

उत्तर—धर्मशास्त्रका यह मत है कि, यदि गृहस्थ ब्राह्मण दान मांगे तब राजा दान दे, पर विरक्त ब्राह्मण दान न मांगे तो भी राजाको उचित है कि दान दे । ऐसे धर्मशास्त्रके मतको जानकर राजा बलि वामन विरक्त थे इससे उनके कुछ न मांगनेपर भी दान देनेको उपस्थित हुआ ॥

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निस्सत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृप ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥४॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥५॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम्॥नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥ तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ॥ चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥

हैं, तुम ऐसा क्यों न हो, भृगुगण और कुलके बढ़ानेवाले प्रशान्त अपने दादा प्रह्लादजीको तुमने पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पाया है ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निःसत्त्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ, कि जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो ॥३॥ हे नृप ! दानके अवसरमें वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमनस्वी (अधीर) श्रीपुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं हैं। इसका प्रमाण देखो आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान होते हैं वैसे ही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युक्त होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान हैं ॥ ४ ॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशमें महावीर हिरण्याक्षने जन्मग्रहण किया, जो कि गदा धारण किये दिग्विजय करनेको अकेले ही समस्त पृथ्वीमें घूमे, परन्तु उन्हें कहीं भी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला ॥ ५ ॥ श्रीभगवान विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय यह महावीर हिरण्याक्ष वहां आया था, परंतु अति कठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराकर उसके पुरुषार्थको दमन कर भगवानने अपने आपको विजयी नहीं माना ॥ ६ ॥ और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उस (हिरण्याक्ष) के वधका वृत्तांत सुना, तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राण संहार करनेको क्रोध कर भगवान विष्णुके स्थानपर गया ॥ ७ ॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व कालको पहँचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालके समान आता हुआ देखकर भगवान विष्णुने यह चिन्ता की ॥ ८ ॥ कि जहां जहां पर हम जाते हैं, वहीं वहींपर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम

इस दानवको अपने साथ ही देखते हैं, इसकी दृष्टि बहिर्भागमें ही है, इससे मैं इसके हृदयमें प्रवेश करता हूं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! भगवान वासुदेव इस प्रकारसे विचार करके दौड़ने हुए उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुसगये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित हो रहा था ॥१०॥ हे राजा बलि ! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्को न देखा, तब उनके सूने स्थानघूम घामकर सिंहनाद करने लगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर, समुद्र सबमें उसमें खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमें ही पैठ गये थे, इससे कहीं नहीं दीख पड़े ॥ ११ ॥ विष्णुको न देखकर हिरण्यकशिपुने यह कहा कि मैंने सब संसारको ढूंढा, परंतु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पड़ता है कि हमारा भ्रातृघाती उस स्थानमें

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ॥ श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥१२॥ वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥

चला गया है, कि जहांसे पुरुष फिर नहीं लौटता ॥ १२ ॥ हे राजन् ! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढ़ा हुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करता है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है । बस, अज्ञानकी निवृत्ति होनेके पहले पौरुषका छोड़ना केवल मूर्खता है, इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोड़ी ॥ १३ ॥ हे असुरराज ! तुम्हारे पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे, कि अपना वैरी जान लेनेपर भी मांगनेपर द्विजवेषधारी देवता लोगोंको उन्होंने अपनी परमायु दे दी थी ॥ १४ ॥ तुमने भी गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यमयुक्त यशस्वान महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥१५॥

इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा मांगते हैं। हे दैत्येन्द्र! हम इस अपने चरणके परिमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं * ॥१६॥ हे राजन! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगतके सत्य सत्य ईश्वर भी हो, परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं मांगते, क्योंकि विद्वान पुरुष उतना ही लेते हैं, जितनेका उनको प्रयोजन होता है और उतनेके ग्रहण करनेमें किसी प्रकारका पाप भी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर अति विस्मित होकर बोले कि बड़ा आश्चर्य है, अजी विप्रकुमार! तुम्हारी

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥ नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥ १७ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेक मीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥

यह बातें वृद्धलोगोंकी बातोंके समान हैं, तुम बालक हो और तुम्हारी बुद्धि अजानके समान है, अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते "राजा बलिकी इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम बालकके समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थको ही समझते हो, क्योंकि स्वयं परिपूर्ण हो, भक्तका अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है" ॥ १८ ॥ कैसे खेदकी बात है! हम सब लोकोंके ईश्वर हैं, एक द्वीपको भी दान कर

---

* बामनजी भगवान् होकर और ब्रह्मचारी होकर थोड़ेसे कामके लिये इतना झूंठ क्यो बोले! क्या बलिको दण्ड देनेका कोई दूसरा उपाय नही था?

उत्तर–धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, दुष्टके संग जो दुष्टता करते हैं उनको किसी प्रकारका दोष नही होता, राजा बलि कैसा दुष्ट था कि यह अपने मनमे जानता था कि इन्द्रका पुण्य अभी है हम किसी प्रभावसे राज्य ले लेंगे तब भगवान्‌को दुःख भोगना पडेगा ऐसा जानता था तो भी शुक्राचार्यका पूजन करके इन्द्रका राज्य ले लिया, तब राज्यसे भ्रष्ट इन्द्र भगवान्‌से कहने लगा कि, महाराज मैंने १०० सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब आपने मुझको इन्द्र बनाया है, कुछ ले देकर इन्द्र नही बना दिया है. १०० यज्ञमे मैंने राज्य किया सो तो भोग लिया अब जो मेरा शेष पुण्य हो उस पुण्यसे मेरा राज्य दो और राज्य न तो मेरा पुण्य दो, इन्द्रके वचन सुन भगवान् लज्जित हुए और दुःखको प्राप्त होकर विचार किया कि विना छल किये हुए बलिसे इन्द्र का राज्य नहीं मिलेगा ऐसा विचारकर झूंठ बोलकर भगवान्‌ने इन्द्रको इन्द्रासन दिया॥

सकते हैं, बहुत वचनोंसे आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानीके समान केवल तीन पग भूमिका दान मांगते हो ? ॥ १९ ॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसीको दूसरेका याचक नहीं बनना चाहिये, इसलिये आप हमसे बहुतसी भूमि ले लीजिये। राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभगवान् वामनजी कहने लगे कि ॥ २० ॥ जो पुरुष अजितेन्द्रिय है, जिसने अपनी तृष्णाको नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछ भी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वे सब भी तृप्त नहीं कर सकतीं हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है, उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपर भी नहीं छूटेगी, जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिल जायगा तब वह सात द्वीपोंके पानेका अभिलाषा करेगा ॥ २२ ॥ और ऐसा सुना भी है कि राजा वेन और गयादि नृपगणने सप्त द्वीपोंके अधिपति होकर भी अर्थ और कामके द्वारा

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥ त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्द्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥

तृष्णाका अन्त नहीं पाया ॥ २३ ॥ यदृच्छा करके मिले हुए द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं, वे ही सुखी हैं, असन्तुष्ट और जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है, वह तीनों लोक पाकर भी सुखी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ इसलिये कविलोगोंने कहा है कि अर्थ और कामके लिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और दैवेच्छानुसार पाये हुएसे सन्तोष करना ही मुक्तिका हेतु है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! दैवेच्छानुसार वस्तुको पाकर सन्तोष कर लेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ़ जाता है, नहीं तो जिस प्रकार जलके पड़नेसे अग्नि बुझ जाती है वैसे ही असन्तोषी ब्राह्मणका तेज शांत हो कर नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन

चरण भूमिकी ही प्रार्थना करते हैं और इससे ही हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्त ही सुखका देनेवाला है; शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन। जब वामनजीने इस प्रकार कहा तब राजा बलि हँसकर बोला कि–"तब जो आपकी इच्छा है सो ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमिदान करनेके लिये राजा बलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि इतनेमें ही दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी विष्णुके कपटको जान गये, इस कारण उनको भूमिदान करनेके लिये उद्यत देख अपने शिष्य राजा बलिपर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य बोले कि हे विरोचननन्दन!

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना त्वसुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥

यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीकी स्त्री अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए औरस पुत्र हैं और यह अवश्य ही देवता लोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३० ॥ यह तुमने क्या किया? कि विना अर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली। हम जान गये कि अब मंगल नहीं है, दैत्यलोगोंके लिये बड़ा अनर्थ आ पहुँचा ॥ ३१ ॥ हे राजन्! यह तुम्हारा स्थान, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको दे देंगे क्योंकि ये मनुष्य नहीं हैं, किन्तु ये भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥ ३२ ॥ तुमने वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु यह तीन चरणोंमें ही सब लोगोंको नाप लेंगे, क्योंकि ये विश्वमूर्ति

हैं। फिर क्रोध करके कहने लगे कि अरे मूढ! विष्णु को सर्वस्व देकर फिर तू कहां रहेगा? ॥ ३३ ॥ यह एक पैर (चरण) से सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरणसे स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाशमण्डलमें व्याप्त हो जायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहांसे होगी, सो तो बता? ॥ ३४ ॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा तब हमको जान पड़ता है कि तेरा नरकमें वास होगा, क्योंकि तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे, वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहां ही यज्ञ, दान, तप और पुत्रादि कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म, यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग कर देता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखी होता है ॥ ३७ ॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥३६॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥३७॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम॥सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥३८॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥

अरे! अब तू इस विचारको छोड़ दे कि "वचन देकर अब किस प्रकारसे मिथ्या बोलूँ?" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बह्वृच श्रुतिमें जो कहा है, उसको तू हमसे सुन—"हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है, उसका नाम सत्य है और "न" जो वचन है सो मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देहरूप वृक्षका पुष्प फल है, क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसा ही कहा है, परन्तु जब यह देहरूप वृक्ष ही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस, अनृतसे ही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जड़के उखड़नेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिर जाता है, वैसे ही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्र ही

नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असम्भव है, इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो ॥ "हां" अक्षर जो है, यह सम्पत्तिको दूर ले जाता है और पुरुषको धनशून्य कर देता है, अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अन्त नहीं है, क्योंकि किसीने कहा भी है कि-" याचक कहा न मांगहीं, दाता कहा न देहिं " इसलिये वह पूर्ण नहीं हो सकती । बस, याचकसे-" हां " कह स्वीकार कर लेना अच्छा नहीं । देनेसे पुरुष धनमें न्यून हो जाता है अधिक करके जो पुरुष याचकसे " सब दूंगा " अंगीकार कर उसको दे भी देता है उस दाताका अपना कार्य भी सिद्ध नहीं होता अर्थात् उसको अपने भोगका भी उपाय नष्ट हो जाता है, परन्तु " न " यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्ण सुखस्वरूप है और

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥ ४१ ॥ भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ॥४२॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः॥४३॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महा० अष्टम० वामनावतारे बलियाचनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अपनी ओरको दूसरेका खींचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खींच सकता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे दैत्यराज ! हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि अमृतके समान सदा ही अनृत सेवन करनेके योग्य है, क्योंकि जो सब ही समय " न " कहकर झूंठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहते भी मृतकके समान रहता है ॥ ४३ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें, विवाहके समय, वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें इन अवसरोंमें और गौ, ब्राह्मणके हितार्थ, एवं किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूंठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा—बलिसे जिमि संकल्प ले, बड़े भये भगवान। कथा विंशअध्यायकी, सो वरणौं सुखदान॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि हे श्रेष्ठ! दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकारसे कहनेपर गृहपति राजा बलि कुछ देरतक चुपचाप रहे और फिर सावधान होकर अपने गुरुजीसे यह वचन कहने लगे * ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि हे गुरो! आपने जो कुछ भी आज्ञा की वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥२॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता होकर "दूंगा". यह वचन

श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेव गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥२॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

कहकर फिर साधारण बनियेके समान धनके लोभसे ब्राह्मणसे किस प्रकार कहूँ कि "अब मैं नहीं दूंगा" ॥ ३ ॥ असत्यके समान बड़ा अधर्म और कोई नहीं है, क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि झूठ कहनेके सिवाय और सबका भार मैं अपने ऊपर सम्हाल सकती हूँ ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूँ, उतना नरकसे, दुःखके समुद्रसे, दरिद्रसे, स्थानके भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसे भी नहीं डरता ॥५॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें दिखायी देती हैं, ये सब मृत पुरुषको अवश्यही त्याग करेंगी, फिर जीते ही

* शङ्का—राजा बलिको श्रीशुकदेवजीने घरका पति करके वर्णन किया है सो घर किसका नाम है? राजा बलि इन्द्रकी गद्दीपर बैठकर त्रिलोकीका राजा बनकर घरका पति कहाय ऐसा उत्तम घर क्या पदार्थ है?

उत्तर—जो प्राणी भगवान्‌का नाम अत्यन्त आदर सत्कार और प्रेम प्रीतिसे जपते हैं. जप करनेका ग्रहण करना भी नाम है उन प्राणियोंका गृह नाम है, उनका पति बलि है, क्योंकि रात दिन राजा बलिके समान भगवान्‌का भजन करनेवाला संसारमें कोई भी नहीं है इसलिये श्रीशुकदेवजीने राजा बलिको गृहपति कहा। वास्तवमें गृहपति शब्दका अर्थ गृहस्थ है।

क्यों न दान किया जाय यदि कहो कि सर्वस्व दान करनेमे जीविकाके विषयमें संकट होगा; तब जीविकाका संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि जो आधेमें उस दानसे ब्राह्मणको सन्तोष न हो तो फिर उस दानके देनेका फल ही क्या हुआ बस, इसी कारणसे जितना मांगा है उससे थोड़ा देनेपर इन ब्राह्मणकुमारको सन्तोष न होगा, जिससे हमारा दान व्यर्थ हो जायगा इसलिये जो कुछ भी इन्होंने मांगा है, हम वह सब देंगे ॥६॥ हे गुरो ! दधीचि, शिवि आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधारण लोगोंका उपकार किया है, फिरभला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय ? ॥ ७ ॥ युद्धमें विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, सो कराल कालने इनका इस लोक व परलोकदोनोंमें संहार किया, परन्तु जो कुछ यश वे इस

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिविप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥ यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नाय विधानकोविदाः ॥ स एष विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥

पृथ्वीपर इकट्ठा कर गये हैं, उसको काल भीनहीं संहार कर सका, इसलिये यशका इकट्ठा करना ही उचित है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! देहत्याग करनेकी अपेक्षा धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सकता है, क्योंकि युद्धमें जिस प्रकार देहत्यागी अनेक पुरुष साधारण ही देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोड़ेदेखनेमें आते हैं, कि जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धासहित धन दे दें ॥ ९ ॥ हे महाराज साधारण याचककी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो दरिद्रता आ जाय तो मनस्वी दयावान् पुरुषको इससे भी कल्याण होता है और आपके समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो हमेंदरिद्रता आ जाय तो यह दरिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी ? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने मांगा है वह हम अवश्य इनको दान देंगे ॥ १० ॥ हे मुने! आप लोग वेदविद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योग यज्ञद्वारा जिनकी

पूजा किया करते हैं, ये ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रु ही क्यों न हों, परन्तु हम इनकी मांगी हुई भूमि अवश्य इनको दान करेंगे ॥ ॥११॥ हम निरपराध हैं, जो यह अधर्म करके हमको बांध भी लेंगे तो भी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥१२॥ जो यह उत्तमश्लोक विष्णु भगवान् हैं और अपने यशकी त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाश कर इस सब भूमिको ले लेंगे अथवा हम करके मारे जायँगे तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित! अपने शिष्य राजा बलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देख कर भाग्यके भेजे हुएके समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञ,

यद्यप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाऽप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनं रिपुम् ॥१२॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं सप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥ विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानस्स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥

इस असुरश्रेष्ठ राजा बलिको यह शाप दिया ॥ १४ ॥ श्रीशुक्राचार्य बोले कि अरे अज्ञानी! तू अपनेको पंडित मानता है, हमारी उपेक्षा करके तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया, इसलिये तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा ॥१५॥ हे महाराज! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकर भी अपने सत्यसे विचलित नहीं हुआ, उसने वामनजीका पूजन कर कुशको लेकर पृथ्वी दान करने लगा ॥ १६ ॥ तब राजा बलिकी रानी विंध्यावली वे मोती जड़े हुए आभूषण पहन और मालायें धारण कर जलसे भरा हुआ एक कलश लाकर अपने स्वामीके निकट स्थापित किया ॥१७॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं उस जलसे परम हर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे, फिर

संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उस समय स्वर्गमें देवता लोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चरणादि सब ही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसा कर परमहर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे और बारंबार हजारों नगाड़े बजने लगे ॥१९॥ और गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुषगण यह कहकर गाने लगे कि राजा बलिने अति दुष्कर कर्म किया कि सब जान बूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवनका दान कर दिया । हे परीक्षित ! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो सो ग्रहण कीजिये" यह जो कहा था, इसीसे भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढ़ा । उस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वीपर आकाश दिक, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी,

तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः॥पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापती ञ्जघने आत्ममुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ॥ श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥

देव और सम्पूर्ण ऋषि उसमें अवस्थित थे ॥२०॥२१॥ ऋत्विक् आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत, सब इंद्रिय, गन्धादि आशय, चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखने लगे ॥ २२ ॥ अर्थात् इन्द्रकी सेना ही जिसकी सेना थी, उस राजा बलिने इस विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके नीचे रसातल, दोनों चरणोंमें धरणी, दोनों जंघाओंमें पर्वत, घुटुओंमें सब पक्षी और दोनों ऊरुमें मरुद्गणोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें संध्या, गुह्यमें प्रजापति, जंघाओंमें आप जिनके पति हैं ऐसे बहुतेरे असुर, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला बिराजमान देखी ॥ २४ ॥ और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने

उन मुरारीके हृदयमें धर्म, दोनों स्तनोंमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षस्थलमें कमलका फूल हाथमें लिये कमला लक्ष्मी), कण्ठमें साम वेद और समस्त वेद ॥ २५ ॥ चारों भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग कानोंमें सब दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य, शरीरमें अग्नि ॥ २६ ॥ वाणीमें चारों वेद, रसनामें वरुण, दोनों भौहोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंकी पलकोंमें दिन और रात्रि, माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ ॥ २७ ॥ स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरण धरनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलियोंमें ओषधियें ॥ २८ ॥ सब नाडियोंमें नदियें, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, सब इंद्रियोंमें देवता और ऋषिगण, और गातमें स्थावर,

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥ केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥ वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्चरात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्यु हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ॥ ३१ ॥ स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ ३२ ॥

जंगम सब प्राणी राजा बलिने देखे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकार त्रिभुवनको देखकर सारे असुरलोग विस्मयको प्राप्त हुए, परन्तु असह्य तेजवाला सुदर्शनचक्र मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त शार्ङ्ग धनुष ॥ ३० ॥ बादलके समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्रयुक्त असि, उत्तम दो तरकस कि जिनमें अक्षयसायक थे ॥ ३१ ॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बड़े बड़े पार्षदगण लोकपालोंके सहित इस विराट् रूपकी स्तुति करने लगे और श्रीभगवान् किरीट, बाजू व मक

गकार कुंडलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स, मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो भ्रमरगण जिसमें गुंजार कररहे हैं ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुए । ॥२२॥ इसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि, शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंको माप लिया ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हेराजन् ! इन वामनरूपी भगवान्ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोड़ासा स्थान हुआ, परंतु उस तीसरेचरणके लिये कुछभी शेष न बचा, इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ महर्लोक, जनलोक, तपोलोकके ऊपर सत्यलोकमें जा पहुँचा ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां भूमिदाने विश्वरूपदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज । सो इक्किस अध्यायमें, कहों

क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभश्शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते म० अष्टम० विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥१॥ वेदोपवेदा नियमा यमान्विता स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥ ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥ अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

सुमिरि यदुराज ॥ अनन्तर योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे–हे नरदेव ! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें पहुँचा हुआ देख पद्मयोनिब्रह्माजी व मरीच प्रभृति व्रतधारी बड़ेबड़े ऋषि और सनन्दनादि योगिगण उस चरणके निकट गये । हे राजन् ! उनके नखरूप निशाचरकी किरणसे ब्रह्माजीकी द्युति भी क्षीण हो गयी और वे उस तेजसे ढक गये ॥१॥ इसके उपरान्त वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क इतिहास, शिक्षादि वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये और जिनकी योगरूपी पवनसे ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म हो गयेथे, वे भी वहां आये ॥ २ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यह सब भगवान्के चरणारविन्दोंका स्मरण करनेकेलिये ब्रह्माजीके स्थान

पर आये थे, इसलिये सब ही इस चरणकमलकी वंदना करने लगे। यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है समस्त कर्मोंके द्वाराभी प्राप्त नहीं होता॥३॥ इसके उपरान्त पद्मयोनि ब्रह्माजी, जो कि स्वयं नारायणकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे जन्मे थे; उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्तिपूर्वक पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई, वह नदी अब तक भगवान्‌की अमलकीर्तिस्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ इसके पीछे ब्रह्माजीसे आदि लेकर समस्त लोकपाल अपने अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णु भगवान्‌के लिये, जिन्होंने अपने विस्तारको सिकोड़ वामनरूप धारण किया था, भेंट देने लगे ॥ ५ ॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगन्धित

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥ तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगंधानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिस्स्वनैः ॥ ७ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥

चंदन व उबटन, सुवासिक धूप, दीप, खीलें अक्षत, फल अंकुर इनसे भगवान्‌की पूजा करने लगे ॥ ६ ॥ और भगवान्‌के पुरुषार्थकी महिमा, जय ध्वनि, अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख दुन्दुभीका शब्द इन सबसे वे देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ हे राजन्! फिर ऋक्षराज जाम्बवान भेरी वजाकर सब दिशाओंमें इस विजय महोत्सवको पुकारने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन्! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि मांगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी समस्त पृथ्वी हरी हुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि अरे! यह ब्रह्मबन्धु नहीं है, यह तो बड़ी भारी मायाका जाननेवाला विष्णु है, यह दुष्ट ब्राह्मणरूपसे हम लोगोंको ठग देवताओंका कार्य करनेको

आया है ॥ १० ॥ बटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हमलोगोंका सर्वस्व हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं, विशेष करके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुए हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं, ब्राह्मणहितैषी हैं, दयावान् हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सकते हैं ॥ १२ ॥ इसको हम लोग यदि मार डालें तो ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी सेवा भी हो जायगी, इस प्रकारसे कह राजा बलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ १३ ॥ ये लोग शूल पट्टिश आदि हाथमें लेकर श्री भगवान् वामनजीको मार डालनेके लिये क्रोधसे दौड़े, परंतु राजा बलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी ॥ १४ ॥ हे महाराज ! इन दानव सेनापतियोंको आता हुआ देखकर विष्णु

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भवितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥ नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥ १६ ॥ जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

भगवान्के सेवक हँसे और अपने अपने शस्त्र उठाकर उन लोगोंको रोकने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड़ ॥ १६ ॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्त्वत यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक एकका बल दश दश हजार हाथियोंके समान था, यह लोग अतिवेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे ॥ १७ ॥ राजा बलिने देखा कि इन महापुरुषके सेवक हमारी सब सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरण कर अपने सब सेनापतियोंको रोका ॥१८॥ और यह कहा

हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! ! हे निमि ! ! ! हमारी बात सुनो और इस समय युद्ध मत करो, क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं हैं ॥ १९ ॥ हे दैत्यगण ! जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं, उनका पौरुषसे अतिक्रमण करनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंका अमंगल करते थे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल हो गये हैं ॥२१॥ और सुनो ! मंत्री, सेना, बुद्धि, दुर्ग मंत्र, औषधादि और शमादि उपायोंसे किसी तरह कोई कालका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥२२॥ इन हरिके सेवक देवता लोगोंको तुमने बार बार रसभूमिमें पराजित किया है परंतु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् हो

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥

गये हैं, इसलिये हमको युद्धमें जीतकर गर्ज रहे हैं ॥ २३ ॥ हम लोगोंके ऊपर काल फिर प्रसन्न होगा तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितावेगा, अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥२४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य दानव लोग विष्णुजीके सेवकोंसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुए ॥२५॥ इसके पीछे पक्षिराज गरुड़जी श्रीभगवान्‌के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फाँसीसे राजा बलिको बाँधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार

वरुण पाशमें बँधनसे जब राजा बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महायशस्वी उस महात्मा राजा बलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि ॥२८॥ हे असुरश्रेष्ठ ! तूने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है सो हमारे दो ही चरणोंमें सब पृथ्वी माप गयी, अब तीसरे चरणकी भूमि कहाँ है ? सो शीघ्र बता ॥२९॥ हे राजन् ! सूर्यनारायणकी किरणे जहांतक पड़ती हैं, जहांतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चाँदनी फैलाते हैं और जहांतक मेघ जल वर्षाते हैं वहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥३०॥ हमने एक चरणसे समस्त भूलोक

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥ ३३ ॥

को माप लिया, मेरे शरीरसे आकाश और सब दिशायें व्याप्त हो गयीं । देखता नहीं कि तेरे सामने ही दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको माप लिया, इस प्रकारसे हमने तेरा सर्वस्व मापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसे भी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई, इसलिये तुझको नरकमें वास करना चाहिये। अब तू अपने गुरु शुक्राचार्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेश कर❋ ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूँगा" और फिर नहीं देता, उस याचकके संग ठगाईकरता है, उसका मनोरथ वृथा हो जाता है और उसको स्वर्ग अतिदूर है, अर्थात् वह

❋ शङ्का-वामन भगवान्ने प्रथम तो बलिसे कहा था कि तू महापापी है इससे नरकमें वास कर, फिर पीछे सुतल लोक, बलिको दिया, नरकको क्यों न भेजा ? पामर जीवके समान यह कौतुक किया, जैसे कोई क्रोधी मनुष्य क्रोध आने पर जो चाहे सो मुखसे बक दे।

उत्तर-वामन भगवान्ने जो लोक बलिको देनेके लिये कहा था वही लोक उसको दिया, क्योंकि निरयका अर्थ नरक नहीं है, किन्तु जो लोक अयस जो लोहा उस करके 'निर्' कहिये रहित हो, अर्थात् जिस लोकमें लोहा न हो उस लोकको भी मुनि लोग निरय कहते हैं, भगवान्ने भी निरयका अर्थ ऐसा करके बलिसे कहा कि निरयमें वास करोगे, इसलिये निरय जो सुतल है वहाँ बलिको भेज दिया, क्योंकि सुतल लोकमें मणियोंके सिवाय दूसरी धातु कोई नहीं है। निरयका ऐसा अर्थ विचारके वामनजीने कहा था, नरकमें जानेको बलिको नहीं कहा ॥

भा० अ० ६४ ॥

नीचे गिरता है ॥ ३३ ॥ तूने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये झूठका फल यही है कि आप कुछ दिन नरकका भोग कीजिये ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा–सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान । सो बाइस अध्यायकी, कथा सकल जग जान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अंगीकार किये हुए राजा बलिको इस तरह भगवान्ने चलायमान भी किया तथापि अविचलित चित्तसे वह राजा बलि वक्ष्यमाण अविक्लव वचन बोला ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि हे उत्तमश्लोक भगवन् ! मेरी कही हुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपने ही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनकर मुझसे भिक्षामांगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया । अच्छा, जो इस प्रकारसे भी आप मेरी

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाऽहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥ इति श्रीभागवते महा० अष्टम० बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचोऽव्यलीकं सुर वर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्य तम मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥

(प्रतिज्ञा) बातको झूठ माने, तो भी मैं अपना वचन पूर्ण करता हूँ । हमारा वचन ठगाईका नहीं हो सकता, आपने दो चरण तो माप ही लिये, तीसरे चरणका स्थान नहीं पाया, सो मैंअपना मस्तक झुकाता हूँ, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोगोंका राजा हूँ, तब क्या मेरा शरीर एक चरणकी बराबर भी न होगा ? ॥ २ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरता हूँ वैसा नरकसे, वरुणकी फांसीसे, अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धनके कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसे भी मैं वैसा नहीं डरता ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है, क्योंकि माननीय पुरुषजो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय है, क्योंकि

माता अथवा पिता वा भ्राता किंवा सुहृद्लोग ऐसा दण्ड नहीं दे सकते, इस कारण आप हमारे हितैषी हैं, सो दण्ड जो दिया इसमे तो मैं बड़ाईके ही योग्य हुआ ॥ ४ ॥ हे भगवन्! आप वास्तवमें शत्रुके रूपसे प्रगटे हैं, परन्तु यथार्थमें आप शत्रु नहीं हैं, नहीं तो हम असुरलोगोंके भी आप ही परमगुरु हैं, क्योंकि हम लोग महामदसे अंधे हो रहे थे, सो आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञानके नेत्र खोल दिये ॥५॥ अहो! जिनसे वैर बांधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त हो गये और जिनको केवल एकान्तयोगी लोग ही प्राप्त होते हैं ॥६॥ अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरुकरके हमको दंड मिला और वरुणकी फांसीमें बंधे तो फिर इसमें हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सकता है? बस, इस बंधनसे न मैं दुःखी हूँ न लज्जित हूँ ॥ ७ ॥ हे भगवन्! मेरेऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्य परमो गुरुः ॥ यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

सो मैं इसका अधिकारी नहीं था, आपने अपने भक्तका पोता (नाती) जानकर मुझपर यह अनुग्रह किया, हमारे पितामह प्रह्लादजी आपके परमप्रीतिपात्र हैं उनके साधुपनको सब ही जानते हैं, आप उनके पराश्रय थे। यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता हिरण्यकशिपु करके अद्भुत पीडाको प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ तो भी यह विचार करके कि आयुके शेषमें आत्मीय नामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं, वे जो देहको छोड़कर चले जायँगे, सो इस देहसे क्या फल? और स्त्री संसारकी हेतुभूत है, इससे भी कुछफल नहीं और घरसे भी क्या प्रयोजन है? क्योंकि इससे केवल आयुका क्षय होता है, फल कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे सत्तम! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे, तथापि स्वजनसेभीत होते हुए जहांपर किसी ओरसे भयकी

सम्भावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरणकमलकी शरणको प्राप्त हुए थे ॥ १० ॥ हे भगवन् ! इस समय दैव करके मैं भी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूँ, यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्याग कराया है,जिस सम्पत्ति मे पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकट आनेपरभी इस जीवनको अनित्य नहीं समझता है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजा बलि इस प्रकार कह रहा था कि इतनेमें ही भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चंद्रमाके समान आकाशमे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ श्रीप्रह्लादजीके दोनों नेत्र कमलदलके समान बड़े बड़े थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं, वे अति ऊंचे थे, रंग श्याम था, अपनी कांतिसे विराजमान होरहे थे, इस प्रकारसे पितामह महात्मा प्रह्लाद

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः॥१२॥तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम्॥प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥ १४ ॥ स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥

जीको राजा बलिने देखा ॥ १३ ॥ परन्तु वरुण-जीकी फाँसीमें बँधनेके कारण पहिलेके समान भेंट देकर राजा बलि उनकी पूजा नहीं कर सका, आंखोंमें आंसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा। हे राजन् ! उस समय ऐसा जान पड़ा कि राजा बलिको अपने किये हुए अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि जिससे वह लाजके मारे चुपचाप मस्तक नवाकर रह गया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि इसके ऊपर निःसंदेह भगवान्‌का अनुग्रह हुआ है, इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्ण हो मस्तक झुकाकर वारंवार नमस्कार करते करते भगवान्‌के

निकट गये और निकट जाकर शिर झुकाके प्रणाम कर बैठ गये ॥१५॥श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे भगवन् ! आपने ही बलिको इन्द्रपदवी दी और आपने ही ले ली सो आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया, वरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, सो यह अच्छा नहीं हुआ। मैं अनुमान करता हूँ कि इसपर आपका बड़ा ही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली है, सो यह इससे छूट गया ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्त्ता क्या कहूँ ? इससे विद्यावान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं, इस लिये सम्पत्ति रहनेपर कोई पुरुष भलीभाँति आत्मतत्त्वको नहीं देख सकता, सो आपने बलि की सम्पत्ति लेकर इसपर बड़ा ही अनुग्रह प्रकाश किया। आप महा करुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, सो मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ। श्रीशुक

प्रह्लाद उवाच ॥ त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ॥ मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ॥ कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

देवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इसके पीछे हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हाथ जोड़कर खड़े हुए, उन प्रह्लादजीके सामने ही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे ॥१७॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवान्से कुछ कहनेके लिये आयी, इस कारण ब्रह्माजी उसका सम्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे। बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधा हुआ देखकर भयके मारे व्याकुल हो गयी, फिर हाथ जोड़ नीचेको मुख कर यह वचन कहने लगी ॥ १९ ॥ विंध्यावली बोली कि हे ईश ! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह त्रिजगत् बनाया है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं। हे भगवन् ! आप त्रिजगतकी सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, सो कोई दूसरा आपको इस जगतमें क्या देगा ? जो लोग कहते हैं, " कि हमने आपको समर्पण

किया " उनको लज्जा नहीं है, " हम स्वतंत्र हैं " इनमें केवल यही वाद आपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि हमने आपको तीनों लोक अर्पण कर दिये हैं और तीसरे चरणके पूर्ण करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा उससे निर्लज्जता ही प्रकाशित होती है, क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं, इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस राजाको आप कृपा करके छोड़ दीजिये यद्यपि भगवान् प्रह्लाद और रानी विन्ध्यावलीके दीन वचनोंसे प्रसन्न हो गये, तथापि ब्रह्माजीने लोभ दिखानेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि हे भूत भावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! आपने राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, अब इसको दण्ड न देकर छोड़ दीजिये

ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोका कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४ ॥

॥२१॥ ॥२२॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठबुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान कर दिया है, जिसने अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सकता । हे भगवन् ! लोकोंमें शठताईको छोड़ जो आपके चरणामृतको पान करता है वह दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तम गतिको पाता है, फिर यह राजा बलि, कि जिसने क्लेशरहित होकर आपको त्रिलोकी दान कर दिया फिर भी क्या यह दण्ड पानेके योग्य हो सकता है ? ॥ २३ ॥ श्री भगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं, क्योंकि धनसे ममता उत्पन्न होती है, इससे पुरुष नम्रतारहित हो सब लोकोंको और मुझको भी कुछ नहीं समझता, इस कारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करना ही

अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मों करके कृमिकीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषी गतिको प्राप्त होता है अर्थात् पुरुष होकर जन्मता है ॥ २५ ॥ जो उस पुरुषजन्ममें जन्म, कर्म, वयस, रूप, विद्या ऐश्वर्य और धनादिमें उसको स्तंभ (गर्व) न हुआ तो मेरा बड़ा ही अनुग्रह है ॥२६॥ हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दान की है, उसमें एक कारण है, जो हमारे भक्त हैं वे अनभ्रनादिके लिये भूत और सर्व प्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपर भी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तकी इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदामें मोहित हो जाता है, इसलिये उसपर अनुग्रह हम सब सम्पदा हरण करके करते हैं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दानव (बलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका बढ़ानेवाला है, इसने दुर्जय मायाको जीत लिया है, इसलिये यह दुःखको

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ॥ सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मयाधर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥३०॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥

प्राप्त होकर भी मोहित नहीं होता है ॥ २८ ॥ यह निर्धन हो गया, स्थानसे भ्रष्ट हो गया, शत्रुसे बांधा गया, झिड़का गया और इसके जातिवालोंने इसको छोड़ दिया व इसने अनेक प्रकारकी यातना भी पायी; अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीने भी इसको बहुत धमकाया, शाप भी दिया, तो भी इसने अपने सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ २९ ॥ मैंने छल करके जो धर्म इसको बताया उसको भी यह नहीं छोड़ता, इससे यह पुरुष अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥ ३० ॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंने भी इसको ऐसा स्थान दिया है कि जो देवता लोगोंको भी नहीं मिल सकता, अब हमने इस बलिका आश्रय लिया, यह बलि सावर्णि-मन्वन्तरमें इन्द्र

होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह सावर्णि-मन्वन्तर न आवे, तब तक यह विश्वकर्माजीके बनायेसुतललोकमें जाकरवास करे । यह स्थान साधारण नहीं है,जो लोग वहांपर वास करते हैं,हमारी दृष्टिके पड़नेसे उनको आधि, व्याधि और थकावट कभी नहीं होती है ॥ ३२ ॥ हे राजन्! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिर करुणापरायण होकर राजाबलिसे बोले कि हे इन्द्रसेन! हे महाराज! तुम्हारा मंगल हो, तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चले जाओ कि जिसे स्वर्गके रहनेवाले भी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें लोकपालगण भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेंगे, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? जो दैत्यलोग तुम्हारी आज्ञाको न

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेन महाराज याहिभो भद्रमस्तुते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे हो जायगा॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे वीर क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहां नहीं जानेकी इच्छा करते ? हम सत्य ही सत्य कहते हैं कि हमको तुम सदा उस स्थानमें देखोगे॥३५॥ वहां दैत्यदानवोंके संग रहनेसे हुआ जो तुम्हारा असुरभाव वह मेरे प्रभावको देखकर, उसी समय नष्ट हो जायगा * ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

* शङ्का-ऐसा कौन लोक है कि, जिसमें देवता भी बड़े क्लेशसे जा सकते हैं? और उसी लोकको एक क्षणमें राजा बलि चला गया जो कभी स्वर्गलोकको बलि गया तो स्वर्गलोक देवताओंका है और जो सुतल लोकको गया तो सुतल लोक नागोंका है?

उत्तर-वामन भगवान्ने जिस समय राजा बलिसे दान लिया तो उसी समय बलि जीता था तो भी संसारसे मुक्त कर दिया था, चाहे तो संसारमें रहे चाहे योगियोंके लोकको जाय, ऐसे लोकको देवता लोग बड़े दुःखसे भी नहीं जा सके. इसलिये शुकदेवजीने कहा कि जिस लोकको बलि गया वह लोकदेवताओंको भी प्राप्त नहीं होता ॥

दोहा—सुतललोकको बलि गये, इन्द्र मिल्यो सुरलोक। सो तेइस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुरातनपुरुष भगवानने जब इस प्रकारसे कहा, तब समस्त साधुसम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आंसुओंकी कलाओंसे आकुल हो गये। वह भक्तिसे उत्कंठित हो हाथ जोड़कर गद्गद स्वरसे श्रीभगवानसे कहने लगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि अहो ! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है ! इसके लिये उद्यम करते ही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध हो जाते हैं, आपको नमस्कार करनेसे उद्यमने इस अधम असुरको भी उस अनुग्रहका दान किया, कि जो लोकपालोंको भी नहीं मिल सकता। हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं मैं अति अवस्तु हूँ, सो मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूंगा ? वरन् मैंने तो आपको भलीभांति

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥ बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युत्कलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥

प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है सो इतने ही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि करोड़ों तप और दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता, वह मुझको मिल गया। हे महाराज ! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अति आश्चर्यमय है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इस प्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया। इसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लितचित्त हो असुरसमूहके साथ सुतल लोकको चला गया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समर्पण कर अदितिकी कामनाको साध स्वयं इंद्र बन सब जगत्का

पालन किया था ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करते हुए देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह वचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि हे भगवन् जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वह समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी ! वन्दना करते हैं । आप " सर्व प्रकारसे रक्षा करेंगे " यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल हुए आपका यह प्रसाद अति दुर्लभ है । ब्रह्मा महेश्वर और लक्ष्मी कोई भी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६ ॥ हे आश्रय प्रद ! आपके पदारविन्दमकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंका भोग करते हैं, सो हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते॥ यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥६॥ यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनः समदृशो विषमस्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥९॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥

कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त हों ? ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बात ही नहीं है, आप अचिन्त्य योगमायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभावसे देखते हैं, आपका ऐसा विषमस्वभाव नहीं है परन्तु भक्तके ऊपर स्नेहवश हो आपका ऐसा कल्पतरुस्वभाव हुआ है ॥ ८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम भी सुतललोकमें चले जाओ और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जाति वालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहांपर गदा हाथमें लिये खड़े रहेंगे और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पाओगे और

श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥ तथाऽपि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥१७॥

तुम्हारा ज्ञानभी नष्ट नहीं होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! निर्मल मतिवाला प्रह्लाद अपने पौते राजा बलिके साथ "यही करता हूं" कह भगवान्‌की आज्ञाको स्वीकार करता हुआ । फिर सब असुर और सेनापति हाथ जोड़कर महात्मा आदिपुरुषकी परिक्रमा दे प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले उसी समय सुतललोकको चले गये, कि जो बड़ा भारी पाताल था ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके पीछे भगवान वामनजी संनिकट बैठे हुए ब्रह्मवादियोंकी सभामें ऋत्विक लोगोंके बीच आसीन महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें जो कुछ त्रुटि रह गयी है, उसको आपस्वयं पूर्ण कीजिये । यदि तुम कहो कि यजमानके विना यज्ञ किस प्रकार पूरा हो सकता है ? सो बात नहीं, क्योंकि ब्राह्मण करके देखे जाते ही सब कर्मोंकी विषमता समताको प्राप्त होती है, सो आपके करनेसे इस यज्ञके पूर्ण हो जानेमें क्या सन्देह है ? ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् वामनजीने ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि हे भगवन् ! आप कर्मके प्रवर्तक, यज्ञ फलदाता और यज्ञपुरुष हैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए फिर उसके कर्मोंकी विषमता कहां रही ? ॥१५॥ मन्त्रसे स्वरादिभ्रंश द्वारा, तन्त्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और देश, काल, पात्र,वस्तुसे दक्षिणादि द्वारा जो जो न्यूनता होती है, आपका नाम लेते ही उनसब छिद्रोंको दूर करता है ॥ १६ ॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करते हैं, उसको मैं अवश्य

पालन करूंगा, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही पुरुषोंका कल्याण होना है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्‌की आज्ञापर हर्ष प्रकट कर सब ब्राह्मणोंसहित राजा बलिके छिद्रको अच्छिद्र किया अर्थात यज्ञ पूरा कर दिया ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतार ले इस प्रकार राजा बलिके सम्मुख भूमि की भिक्षा मांग दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको दे दिया ॥१९॥ उसके उपरान्त कश्यप अदितिजीको प्रसन्न करनेके लिये और सब प्राणियोंके

श्रीशुक उवाच ॥ अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १८ ॥ एवं बले र्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥१९॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृ भूमिपैः ॥ दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥ वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥

हितार्थ देव, ऋषि, पितृगण, मनुवर्ग, दक्ष, भृगु, अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ शिवके साथ प्रजापति ब्रह्माजीने उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया * ॥ २० ॥ २१ ॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पति हैं तो भी समस्त वेद, सर्व देव, धर्म, यश और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वे वामनजी सर्व प्राणियोंका ऐश्वर्य बढ़ानेको इन्द्रके सहायक उपेंद्र बनाये गये,

* शंका-जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले, जगत्‌के स्वामी, जगत्‌को पालन करनेवाले जो भगवान् हैं उन भगवान्‌को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माजीने राज्य दिया, अधीश तो इन्द्र भगवान्‌को ब्रह्माने किया, यह बड़ी शंका है ?

उत्तर-भगवान्‌की आज्ञा मानकर ब्रह्माने बहुत प्रकारसे विचार किया और इन्द्रको त्रास देनेके लिये भगवान्‌को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने अधीश्वर किया, क्योंकि लोकमें भी अपने बराबर पुत्रको भाईको देखकर लोग कुकर्म नहीं करते । इस प्रकारसे-भगवान् इन्द्रके छोटे भाई हैं, अतः वामन भगवानके सम्मुख इन्द्र खोटा कर्म नहीं करेगा, इसलिये त्रिलोकीके नाथको इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने स्वामी किया ॥

इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥२२॥२३॥ इसके पीछे इन्द्र विमानपर चढ़ाके आगे कर उन वामनजीको स्वर्गमें ले गये। यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानन्द हुआ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार इंद्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेंद्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परम श्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुख संभोगमें निमग्न हुआ ॥ २५ ॥ इस और ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, भृगुआदि मुनि, पितृलोग और सर्व प्राणी, सिद्ध व वैमानिक सब ही भगवानके इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते करते अपने अपने स्थानोंको चले गये और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन परीक्षित ! श्रीभगवान्‌के ये पवित्र चरित्र श्रोता लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, सो हमने आपके संमुख सब वर्णन किये ॥ २८ ॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम्॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥२४॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥ सुमहत् कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७ ॥ सर्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कुलनन्दन ॥ उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणा मघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥२९॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारानु चरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥ ३० ॥

जिस पुरुषने बलसे अनेक भांतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देख लिया है, वह पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या भी कर सकता है, अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं हो सकती, वैसे ही भगवानके चरित्रोंको गाते गाते कोई पार नहीं पा सकता। इसलिये मंत्र और मन्त्रदर्शी पुरुष लोगोंने स्पष्ट कहा है कि उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें कोई पुरुष पूर्णस्वरूप पुरुषकी महिमाको प्राप्त हुआ है! अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा ॥२९॥ हे राजन् ! अद्भुतकर्मकारी देव देव भगवान वासुदेवके वामनावतारविषयक चरित्र जो मनुष्य गावेंगे वा सुनेंगे अथवा सुनावेंगे व लिखेंगे उनको परम श्रेष्ठ गति प्राप्त

भा०टी० अ० ॥ ७० ॥

पुष्प तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करे, उसको माथेपर धर आदर पूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे मिलावे ॥ ४७ ॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य है इसपर कहते हैं कि जिसकी जहां श्रद्धा हो वहां पूजा करे, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप मैं ही स्थित हूँ और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥ ४८॥ इस प्रकार क्रियायोगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिक प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ़ मंदिर बनावे पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावे, जहां मेरी यात्राका उत्सव होता है ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बड़े पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगा दे तो मेरे समान

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्समतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥

ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करे तो सब पृथ्वीका राजा हो, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पाता है, पूजा आदि यह सब कृत्य करे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त हो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पूजाका फल मुक्तिलाभ कहा, अब जो निष्काम हैं उनकी भक्तिका फल कहते हैं:—निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझे ही पावे वह भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं कि भक्ति तब हो, जब इस भांति मेरी पूजा करे ॥५३॥ दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है उसका निंदित कर्म कहते हैं कि जो अपनी दी तथा परायी दी हुई ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण कर लेता है वह अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥

जो फल कर्ताको होता है, वही सहाय करनेवालेको भी होता है। प्रेरक, अनुमोदनकर्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है कि यह सब कर्मके विभागी हैं, जिसने जितना अधिक किया उसे उतना ही अधिक फल मिलता है, यदि सहाय आदि बहुत कर्म किया हो तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पूजाविधिनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा-अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञानयोग विस्तार। अब वरणौं संक्षेपसो, सज्जन लेहु विचार ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहे सो यह ज्ञान निष्ठा करे, पराये स्वभाव एवं कर्मोंकी स्तुति और निंदा न करे, संपूर्ण विश्वको

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रतिमापूजानि० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

प्रकृति पुरुष करके जाने, मुझसे भिन्न न जाने ॥ १ ॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करता है अथवा सराहना करता है सो मिथ्याभूत प्रपंचदृष्टि होकर शीघ्र ही ज्ञानसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ जब इंद्रियगण निद्रासे व्याप्त होता है तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है मायारूप स्वप्न है पीछे मन भी लीन हो जाता है तब चेतना नष्ट हो जाती है, तब मनुष्य मृतकसमान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है वह विक्षेप लयको प्राप्त होता है व स्वप्नमें जो होता है वही भ्रमरूप यह है॥३॥ और जो वस्तु

* शंका-श्रीकृष्णने कहा कि कोई सुन्दर कर्म करे तो उसकी बड़ाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करे तो उसकी निन्दा भी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होता है वह वैसा ही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा, गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करे कि विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करे, यह बात बताओ?

उत्तर-यह वचन भगवान्‌ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई संन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है, संन्यासियोंमें जो कोई परमहंस हो जाते हैं उनके लिये तो निश्चय ही कहा है। तात्पर्य यह है कि सब साधु महात्माओंको किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करनी चाहिये, यह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं है।

ही नहीं केवल भ्रम है उसमें, यह भला हुआ, यह बुरा हुआ, इतना भला, इतना बुरा, इसका क्या कहना? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनमें ध्यान करते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं सो सब मिथ्या है,यहां भला बुरा कहे तो सब अपना ही अज्ञान भ्रम है ॥४॥ जैसे प्रतिबिम्बकी छांहि, सीपीमें रूपेकी बुद्धि मिथ्या है, कार्यको करते हुए उसी प्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देते हैं ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कही है सो आपही ब्रह्मविश्वरूप होकर प्रकट होते हैं, आप ही उत्पन्न हो आप ही सृजते हैं और आप ही रक्षा करते हैं, आप ही संहार करते हैं और जिसका संहार करते हैं वह आत्मा ही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण किया है, उससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है. यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है, सब माया रचित होनेसे निर्मूल है। यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें

छाया प्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥५॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥

मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वे किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भांति समान होकर लोकोंमें विचरण करते हैं ॥८॥ यह कैसे हो ! सो प्रकार कहते हैं- जो वस्तु आदि अन्तयुक्त है वह मिथ्या है, यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट हुए जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि जो यह दीखता है सो सब मिथ्या है. यह ज्ञान जब दृढ हो जाय तब निःसंग होकर विचरण करे ॥९॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! आत्मा स्वयं प्रकाश है ज्ञानरूप है, देह जो जड है तो यह संसार किसको लगता है? हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है ? इसका आत्मा ही द्रष्टा है वही देखता है. देह तो जड है आत्मा जड

नहीं परन्तु देखनेवाला है ॥ १० ॥ आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयं ज्योति है, आवरणरहित है और देह तो जड़ है परन्तु आत्मा संयोग काष्ठ और अग्निसे है, जैसे अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं है, इसी प्रकार आत्मा भी एकता है, इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तो भी अग्नि प्रकाशक है, काष्ठ प्रकाश्य है ॥ ११ ॥ यद्यपि सत्य है परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि जहांतक देह, इंद्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बन्ध है, वहांतक मिथ्या भी संसार भासता है, यद्यपि आत्माका और इंद्रियोंका सम्बंध नहीं परन्तु तो भी अविवेकमें मान लेते हैं ॥१२॥ उद्धवजी बोले कि देह तो असत्य है, इसको संसार क्या भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि यद्यपि विषय भोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि

आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥११॥ श्रीभगवानुवाच यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥१३॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोऽभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥

इसका ध्यान विषयोंमें रहता है, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥ १३ ॥ अब तर्क करते हैं कि ध्यानसे जो विषयकी स्फूर्ति है वह तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती तो मुक्ति किसीको हो ही नहीं सकती ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है वही जो जागता रहे तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते ऐसे ही जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं कर सकती ॥१४॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह काम, जन्म और मृत्यु वह सब अहंकारसे हैं; आत्माको यह कुछ नहीं लगते ॥१५॥ देह इंद्रियों, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्मा ही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुण कर्ममय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे

पुरुष बँध रहा है, इसी कारण ईश्वरके अधीन होकर सब संसारमें दौड़ते फिरते हैं, सूत्र और महत्तत्त्वआदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है ॥ १६ ॥ इस प्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँध रहा है तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं कि वचन मन प्राणोंमें अहंकार निर्मूल हैं, अज्ञानमें बहुत रूप प्रकाशते हैं,इसलिये गुरुकी सेवा कर तीक्ष्ण ज्ञानरूपखड्ग हाथमें ले इस अहंकार बंधनको काट सङ्ग छोड़ पृथ्वीमें फिरे, इसका यही उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जिसका साधन करनेवाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करे तब विवेक उत्पन्न हो। जब स्वधर्म, अपना अनुभव, उपदेश, तर्क इतने साधनसे जो उत्पन्न हो तो उस ज्ञानका फल कहते हैं कि योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अंत मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नाना भेदके व्यवहार भी ब्रह्ममें ही होते हैं सो कहते हैं:-जैसे सुवर्णके अनेक आभू-

अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेनच्छित्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ ॥ १७ ॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥१८॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरह मस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत् त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

षण बनते हैं और उसकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछे भी सुवर्ण ही है,अनेक भांति होनेके उपरांत भी सुवर्ण ही रहता है. क्योंकि सुवर्णमें और कोई वस्तु तो नहीं, इसी प्रकार यह विश्व अनेक रूपसे दीखता है सो भी मैं ही हूँ, ऐसा जानना चाहिये॥१९॥इस प्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इंद्रियोंमें जिससे प्रकाश होता है उसका तद्रूप कहते हैं:-इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण तमोगुण यह गुण हैं, जो सब कार्यकारण कर्त्ता रूप है, अध्यात्म कारण, कार्य अधिभूत, कर्त्ता अधिदैव इस प्रकार त्रिगुणरूप जगत है, इस प्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाश करता है वह चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं वे ही सत्य हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार ज्योतियोंमें भी और भांति न हो सो सत्य है यह कहा, अब जो और प्रकार होता है वह असत्य है इसपर कहते

है कि जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी नहीं, मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्र ही कहनेको है, जिसमें प्रकट हुई और प्रकाशी गई वही है ऐसी मेरी बुद्धि है॥२१॥ प्रपञ्चका ब्रह्मसे अभेद कहते हैं कि यद्यपि प्रथम मैं ही हूँ यह जो गुणसे उत्पन्न हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है परंतु तो भी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है, ब्रह्म स्वयंज्योति है, इसमें इंद्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पञ्चभूत यह सब नाना ब्रह्मरूप होकर भासते हैं,यह विचित्रता ब्रह्मका ही कार्य है ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुमें और देहादिकमें आत्मबुद्धि त्यागकर गुरुद्वारा अपना सन्देह काटकर सब कामनाओंसे निवृत्त हो आत्माके आनन्दमें सन्तुष्ट होकर रहे ॥ २३ ॥ जो छोड़ने चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं यह देह आत्मा नहीं पृथ्वीका विकार है,इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह कोई आत्मा नहीं हैं, क्योंकि अन्नमात्रके आश्र

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसन्देहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किन्नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

यसे रहता है, इससे विकारयुक्त हैं और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकृति ये भी आत्मा नहीं, क्योंकि जड़ हैं ॥२४॥ इस प्रकारके विवेकवत ज्ञानी मुक्त पुरुषका इंद्रियोंका किया हुआ गुण दोष नहीं होता, सो कहते हैं कि जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इंद्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो, उन्हें न तो गुण है न दोष है, जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता और मेघ जानेके उपरांत कुछ गुण भी नहीं लगता ॥ २५ ॥ जो निःसंग हैं और ब्रह्मरूप होरहे हैं, उनको किसीसे गुणदोष नहीं लगता, जैसे आकाश भूमिमें आने जाते ऋतुके गुण, शीत, उष्णादिक और

वायु, अग्नि, जलसे बन्द नहीं होते इसी प्रकार अक्षय ब्रह्म सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणमें नहीं मिलता उनसे भिन्न भिन्न है ॥ २६ ॥ तथापि वहांतक मायाके गुणोंका संगम करे, जहांतक मेरे दृढभक्तियोग करके मनकी विषयाशक्ति दूर न हो जाय ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न किया हो तो वारंवार वह रोग उत्पन्न होकर दुःख देता है, उसी प्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मन भी योगी पुरुषको फिर बाधा करता है ॥२८॥ और जो योगसे भ्रष्ट हो गया हो तो उसका क्या उपाय ? तो कहते हैं कि योगीको देवताओंके प्रेरे जो बन्धुरूप भ्रष्ट करते हैं, योगके भ्रष्ट होनेमें फिर पूर्व अभ्यासबलसे

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ ॥ २७ ॥ यथाऽऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत् किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

योग करें परंतु कर्ममार्गके धर्म न करें, केवल धर्म की ही साधना करें ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरित हो तो मरने तक कर्मोंसे सुख दुःख पाता है, परंतु जो विवेकी हो तो देहमें स्थित आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होता ॥ ३० ॥ जिसकी मति आत्मामें स्थित है वह खडे होते, चलते, सोते, मूत्र करते भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक कर्म करके देहको नहीं जानता ॥ ३१ ॥ जो इंद्रियवाले हैं वे विना देखे क्यों रहेंगे ? इसपर कहते हैं कि जो विवेकयुक्त हैं वे यद्यपि इन इंद्रियोंके विषयोंको देखते हैं परंतु तो भी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वे स्वप्नकी भांति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके

विषय सब आप ही अंतर्धान हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि वृद्धावस्थामें गुण और कर्मोसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिले हुए माने गये हैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं किया जाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होता है, इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होना ही मोक्ष है। बंध मोक्ष आत्माका स्पर्श नहीं करते, इस कारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥ जैसे प्रथमसे ही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्म विद्या मनुष्योंके मनके अन्धकारको दूर करती है, परंतु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयंप्रकाश

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥३५॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥३७॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥

जन्मरहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता। महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढता है न घटता है, किंतु सदा एक रूप रहता है और सर्वोका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित है, एवं जिसमें वचनकी गति नहीं है। श्रुति भी कहती है कि जब आगे गम्य नहीं, वहांसे मन समेत वाणी फिर आती है, जिसके प्रेरे. वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेदरहित आत्मा है, उसमें भेद देखना इतना ही भ्रम मनका है, अपने आत्माके विना इस भेदका आश्रय है ही नहीं ॥ ३६ ॥ और जो भेद मानते हैं, उनका मन दुःखित है, क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, वह पञ्चभूत रूप है। देह, इंद्रिय दूसरा पदार्थ है यह मत पंडित लोगोंका वाद है। तत्त्व जाननेवालोंके मतमें वस्तु विचारकर देखो तो सब मिथ्या है ॥ ३७ ॥ जो कच्चा योगी योग साधता है, उसे उसके देहसे उठे रागादिक उप

द्रव करके योगभ्रष्ट कर देते हैं उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है॥ ३८॥ कि योगकी धारणामें चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते, आसनसे प्राणवायु और धारणवायुसे वात रोग जीते। तप, ग्रह, ओषधीसे पापग्रहकृत सब अशुभ दूर करे॥ ३९॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करे, मेरे नाम कीर्त्तन आदिसे काम क्रोधादिकोंको दूर करे और कितने ही योगीश्वरोंकी सेवा करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूर करे॥ ४०॥ कितने ही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकाया-प्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते॥ ४१॥ और जो कुशलज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते क्योंकि देह अनित्य है, इस कारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं॥ ४२॥ यद्यपि योग

योगधारणया काँश्चिदासनैर्धारणान्वितैः॥ तपोमन्त्रौषधैः काँश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत्॥ ३९॥ काँश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः॥ ४०॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम्॥ विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये॥ ४१॥ नहि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः॥ अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः॥ ४२॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात्॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः॥ ४३॥ योगचर्यामिमां योगी विचरन्मदपाश्रयः॥ नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः॥ ४४॥ इति श्रीभा० म० एका० ज्ञानयोगनि० नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥ उद्धव उवाच॥ सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः॥ यथाञ्जसा पुमान्सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाऽच्युत॥ १॥

सिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिक प्रभावसे शरीरमें हो ही जाता है, परंतु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागकर इस शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं॥ ४३॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि मेरे आश्रयसे यह योग करे तो विघ्न नहीं होता। जब निस्पृह होनेपर आत्माका अनुभव प्राप्त हो और मेरे आश्रयमें सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनन्दमें परिपूर्ण होता है॥ ४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे ज्ञानयोगनिरूपणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥ दोहा-उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार। प्रथम निरूपण कर चुके, अब संक्षेप विचार॥ उद्धवजी बोले कि

हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अतिकठिन लगती है, क्योंकि वे अज्ञानी हैं इस लिये जिससे शीघ्र सिद्धि हो और सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥१॥ हे कमलनेत्र ! बहुधा जो योग करते हैं वे मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, तो भी मनका निग्रह नहीं होता तो थकित हो विषादयुक्त होते हैं ॥२॥ योगमें अति क्लेश है, जो परमहंस हैं वे सार असारको जानते हैं । हे कमलदललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं तो यह चरणारविंद ही उनके आनंदको पूर्ण करते हैं । हे भगवन् ! आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो योगीश्वर तुम्हारी मायामें मोहित योग कर्म करके अभिमानको धारण करते हैं वे सिद्ध नहीं होते ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबके बन्धु ! जो अनन्यशरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम वश हो इसमें आश्चर्य नहीं जैसे नन्द

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः ॥ विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर वन्दरोंसे मित्रता की, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त-मुकुटोंके अग्रभागने तुम्हारे चरणारविन्दका सिंहासन पीडित किया है ऐसे तुम हो॥४॥ तुम भक्तोंकी सेवा जानते हो, सबके आत्मा हो, इसी कारण अतिप्रिय हो ईश्वर हो, जो पुरुष केवल तुम्हारे ही आश्रय रहते हैं उनको सब अर्थ देते हो, प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड़ सकता है ? यदि कहो कि क्या फूलके लिये मेरा सेवन करे? तो कहते हैं नहीं नहीं,और देवता अथवा धर्मज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्य अथवा मोक्षके अर्थ नहीं हैं इसलिये कौन भजे ? कहते हैं कि साधन विना मोक्षादिका फल कैसे हो ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुके सेवन करनेवालेको क्या फल नहीं होता ? अर्थात् जो चाहते हैं वही मिलता है ॥५॥ अब कहते हैं कि और भजनकी बात तो दूर है, तुम्हारे किये

उपकारका तुम्हारे विषे आत्मनिवेदन करे तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता सो कहते हैं:--आनन्दवद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं हो सकते। उपकारको कहते हैं कि जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अन्तर्यामीरूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करनेको अपना आनन्दरूप प्रकट करते हो हम इसका प्रत्युपकार क्या करें?॥ ६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इस प्रकार पूछा तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि जो भगवान् सत्त्व, रज, तम, इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत जिनका खिलौना है॥ ७॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव! मैं सुमंगल अपने धर्म तुमसे कहूँगा जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् ॥ याञ्छ्रद्धयाऽऽचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥९॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

दुर्जय मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ८ ॥ मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करे, पर सब कर्म मेरे लिये करे अर्थात् मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पित करे तथा धर्ममें ही आत्माकी और मनकी प्रीति रक्खे ॥ ९ ॥ जहां मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्यदर्शनोंमें जाकर वास करे और देव असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करे ॥ १० ॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करे, अथवा अलग आपही सब यात्रा उत्सव करे; नृत्य गीत सब करावे, महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावे ॥११॥ निर्मलचित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनेमें तथा बाहर भीतर मुझे ही देखे, मैं आकाशकी नाईं असंग होनेके कारण सबमें

स्थिर श्री आवरणरहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हूँ ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें स्थित हो सब प्राणिमात्रको मेरा ही भाव जानकर पूजे, वही पंडित है ॥१३॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूर हो वा न हो इनमें जो समदृष्टि हो वही पंडित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रक्खे तो शीघ्र ही पुरुषके ईर्षा, निन्दा तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चय नष्ट हो जावें ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करे हँसी करने अपने मित्रोंको छोड़ और अपनी उंच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत करे। कूकर, चांडाल, बैल, खर, ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करे ॥१६॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव न उत्पन्न हो तबतक पुरु

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥ सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥

षको चाहिये कि वाणी, मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूप ही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्म ही देखते सब सन्देह दूर हो जाते हैं और आप सबसे विरक्त हो जाता है ॥ १८ ॥ यह सब पक्षोंमें निश्चय किया हुआ मेरा उत्तम पक्ष है कि देह, प्राण, मनसे सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते करते कुछ भूल चूक होजाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम ! धर्म, निर्गुणपनके लिये मैंने निश्चय किया है ॥२०॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो व्यर्थ भी

लौकिक परिश्रम करते हैं उसे भी जो मुझे समर्पण करे, फल वांछा विना मेरे लिये करे, जैसे भय शोकादिम दौड़ना रोना एवं अन्य क्लेश व्यर्थ हैं तो भी मुझे समर्पण कर देनेसे धर्म ही जाते हैं ॥२१॥ वही बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरता है जो असत्त्वरूप इस मनुष्य देहसे सत्यरूप मुझे उस जन्ममें प्राप्त हो॥२२॥ हे उद्धव! यह ब्राह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुमसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभ था ॥२३॥ वारंवार मैंने तुझसे प्रकट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष सन्देहरहित और मुक्त हो जाता है॥२४॥ जो इसका स्मरण रखे, कहे, सुने अथवा पढे तो भी इसका फल होना है हे

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्ट युक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् ॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥२६॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

उद्धव! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दिया इसे जो कोई चित्तमें धारण करे वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होगा ॥२५॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपना आत्मातक दे देता हूँ, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥२६॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावे सो दिन प्रतिदिन शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धासहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥२८॥ हे उद्धव! हे मित्र! तूने यह ज्ञान अच्छे प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये तेरे मनका मोह शोक गया ॥ २९ ॥ बुद्धिमान्को चाहिये कि यह ज्ञान दंभी नास्तिक धूर्त इत्यादि और जिससे

सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावे ॥ ३० ॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्य हो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्ध हो उससे यह ज्ञान कहना चाहिये, जो भक्त हो तो श्री शूद्रसे भी कहे ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरांत फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वादु अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥ ३२ ॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये क्योंकि भक्तोंका तो सब मैं ही हूँ, ज्ञानसे मोह होता है विहित कर्म करनेसे धर्म होता है, योग करे, अणिमादिसिद्धि हो सहजके कर्म करनेसे काम हो, खेती करे अर्थ हो, दण्डनीति करे ऐश्वर्य हो, और इन साधनोंसे चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। हे उद्धव ! सब पुरुषार्थरूप तुमको मैं हूँ, इसलिये

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदुत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥

तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोड़कर मुझे आत्म निवेदन करे तब मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चय मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य हो जाता है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया तब उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर हाथ जोड़ प्रीतिपूर्वक गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंसे अश्रुपात करते गला रुक जानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोल सके ॥ ३५ ॥ फिर अतिस्नेहसे विह्वल चित्तको धैर्यसे थामकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे। इसके उपरांत हाथ जोड़ माथेसे

[illegible] श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्पर्श कर उद्धवजी बोले ॥ ३६ ॥ कि हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अन्धकारका [illegible] किया था सो तुम्हारे समीप जाता रहा, जैसे सूर्यके अन्धकार, शीत भय नष्ट हो जाते हैं * ॥ ३७ ॥ तुमने अति दया [illegible] मुझ अपने सेवकको विज्ञानदीपक दिया इस कारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोड़कर और मैं [illegible]की शरण जाऊँ ? ॥३८॥ उद्धवजी बोले कि हे प्रभो ! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायामें मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि,

उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धक सात्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नम नुशाधि माम् ॥ यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

अन्धक और सात्वतोंमें बढ़ाया था सो आत्मज्ञानरूप शस्त्रसे तुमने ही काटकर दूर कर दिया ॥३९॥ हे महायोगिन् ! तुमको प्रणाम है, मैं आपकी शरण हूँ मुझे इतनी शिक्षा दो कि मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मूढ़ प्रीति हो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि हे उद्धव ! मेरी यह आज्ञा है कि तुम बद्रिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहां मेरे चरणतीर्थ

* शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोड़कर भाग गया, मोहसे अब मैं छूट गया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त [illegible] तो क्यों मोहग्रस्त हो गये ? श्रीकृष्णका वृत्तान्त भी पूरा नहीं कह सके, हाल भी कुछ देर पीछे कहा, जो कोई कहे कि ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेर लिया होगा तो सत्य है, जो बहुत [illegible] हो गये होते तो आश्चर्य नहीं था, परन्तु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीन ही दिन बीते थे जब विदुरजीका समागम हुआ था यह शंका है।

[illegible] उद्धवजीका मोह नाश हो गया था परंतु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरण कर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह [illegible] लिये किया कि श्रीकृष्ण ही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ, कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ।

[illegible] स्नान आचमन करके शुद्ध होंगे ॥४१॥ हे उद्धव ! अलकनन्दाके दर्शनसे सफल हो पाप दूर कर वल्कल वस्त्र पहन वनके फल [illegible] सबसे निःस्पृह होओ ॥ ४२ ॥ वहां इंद्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण सहकर सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो जो सीखा है, तथा अच्छी भांति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे [illegible] धर्ममें तत्पर हो, इन तीनों गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके आगे मुझे प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा कर माथा भगवानके चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवानके चरणोंको अभिषेक

ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक् सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ॥ शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्युपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥

करने लगे । यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तो भी चलनेके कारण स्नेहसे कोमलबुद्धि हो गये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अति अधीर हो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोड़नेको समर्थ न हुए और इसके उपरांत अति कष्ट पाकर फिर असन [illegible] पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले, इस प्रकार वारम्वार प्रणाम करके चले ॥४६॥ इसके उपरान्त अपने अन्तःकरणमें श्रीकृष्णको धारण कर परम भागवत उद्धव बद्रिकाश्रमको चले गये और जगद्बन्धु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भांति उपदेश पाकर उसी भांति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

भा० ए०
॥५४१॥

जैसे यह ज्ञानरूप अमृतआनन्द समुद्र परमभागवत उद्धवजीसे कहा। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं, वे संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जिन वेदकर्ता भगवान्ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भांति उद्धार किया ? एक अमृत तो समुद्रसे निकाला था सो तो देवताओंको पिलाया, अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां उद्धवबदरीप्रवेशो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ दोहा–तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार। मुशलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्! परमभागवत उद्धवजीके वन चले जानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया? ॥ १ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भक्तियोगसंग्रहो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः॥ ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वाऽऽसीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥

अपने कुलको ब्रह्मलोकख्यात देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड़ दिया ? ॥ २ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं, जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधुपुरुषोंके मनमें तो छिखासा रहता है, जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पंडितोंकी वाणीमें प्रीति उत्पन्न होती है। अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मेरे युद्ध विषे जो योद्धा थे, वे सारूप्यमुक्तिको प्राप्त हुए ॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मंडल आदिभूमिमें कम्पादि अन्तरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठने लगे, बड़े बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं इसलिये अब हमको दो घड़ी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं ॥ ५॥ इस कारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारतीर्थोंको जाओ और हम भी प्रभासक्षेत्रको जायँगे जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती है ॥ ६ ॥ वहां स्नानसे पवित्र हो उपवासकर भलीभांति सावधानतासे स्नानकर चन्दन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥ बड़े भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण वस्त्र और हाथी घोड़े रथोंसे पूजेंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशक है और उत्तम मंगलका आश्रय है, क्योंकि प्राणियोंमें देवता ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याणका हेतु है ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥९॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥१०॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥

यादवोंमें सब वृद्ध इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन "ऐसे ही है" इस भांति स्तुति कर नावों द्वारा समुद्र उतरकर सब प्रभास क्षेत्रको चले गये ॥ १० ॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मङ्गलों सहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुर मदिराका महापान किया; जिस मदिराके रससे बुद्धि दुष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्वयुक्त चित्तवाले यादवोंका अति बड़ा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त

अत्यन्त क्रोधित हो नाशको उद्यत यादव समुद्र तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और ऋषियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारने लगे, जैसे वनमें हाथी दांतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्राम जित अतिदारुण होकर गद श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ ये अति क्रूरस्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित्, भानु आदि यादव जो भगवान्की इच्छासे

प्रचलत्पताकैरथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदान्यहञ्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥१५॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसङ्ग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः॥१६॥अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः॥अन्योऽन्यमासाद्य मन्दान्धकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम्॥१७॥दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदामाथुरशूरसेनाः॥विसर्जनाः कुकुराःकुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः॥१९॥शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु॥शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥२०॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्ते कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥२१॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

मोहित हो गये थे, वे वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध कर करके लड़ने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुन्ति देशके स्नेहको तोड़ परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करने लगे, मूर्ख जाति जाति योंको ही मारने लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरांत धनुषके टूटनेसे शस्त्रोंके छिन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करने लगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेते ही वज्र के समान कुठार खड़े हो गये उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥ २१ ॥ और हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें रोका तब वे

श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मानकरमारनेकी बुद्धिसे यादव मोहित हो शस्त्र ले सम्मुख आये ॥२२॥ हे कुरुनन्दन! इसके उपरांत दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते हुए मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्धासेउत्पन्न हुए क्रोधने क्षय करदिया, जैसे बांसका अग्नि वनका क्षय कर डालता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार अपना सब कुल नाश हो जानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही केवल अवशेष रह गये, तब श्रीकृष्णने जाना कि अब भूमिका भार उतर गया ॥२५॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परम पुरुषके ध्यानरूप योगमें आपको आपमें युक्त कर मनुष्यलोक छोड दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरांत

अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्द्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥२४॥ एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः॥२८॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ॥ पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठ गये ॥२७॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अंधकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखायी देने लगे ॥ २८ ॥ अब चतुर्भुज उनका वर्णन करते हैं श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम, सुवर्णके समान कांतिवाले, पीतांबर पहने, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुख नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर, नेत्र, देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार

हे भगवन् ! जैसे इन्हें तुम्हारी आज्ञासे विना परिश्रम त्याग सकूं, उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥१६॥ हे ईश ! तुम समानरूप हो, स्वप्रकाशहो, आत्मा हो इसलिये मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं दीख पड़ता, क्योंकि ये ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥१७॥ कोई दुष्टबुद्धि हैं और कोई ऐसे हैं जो सेवा करनेपर भी फल देनेके समय नष्ट हो जाते हैं, कोई अज्ञानी हैं, कोई रक्षा करने में असमर्थ हैं, कोई स्थानभ्रष्ट हैं इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं । मैं अति विरक्तचित्त हूं, इस कारण तुम्हारी शरण आया हूं, क्योंकि तुम तो निन्दारहित हो, तुम्हारा कालसे अन्त और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठ स्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रय हो, जीवके सखा हो ॥१८॥ श्रीभगवान् बोले कि लोग तत्त्व को

सत्यस्य त स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद् भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥ पुरुषत्वे च मां धीराः साङ्ख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

अतिश्रेष्ठ जानते हैं वे मनुष्य बहुधा गुरु विना ही अपने आत्माको संसारसे उद्धार करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपने गुरु आप ही हैं, क्योंकि विशेषकर पुरुष जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे विचारे तो [illegible] सुख पावे और [illegible] कल्याणकी प्राप्ति हो पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरु है, आपसे ही अपने हितमें प्रवृत्त [illegible] आप ही गुरु [illegible] यहां प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि जब जीव पुरुष जन्म प्राप्त करता है तब [illegible] हो जाता है ॥ २० ॥ मनुष्यमें [illegible] आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्ययोगमें चतुरबुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥२१॥ [illegible] मुझे [illegible] है, मेरे

उत्पन्न किये बहुत रूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण हैं कोई अर्द्धचरण हैं कोई नीचे चरण हैं कोई चारचरण हैं कोई बहुतचरण हैं, कोई चरणरहित हैं, परन्तु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है सो मुझे अतिप्रिय है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान हैं वे अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूंढ लेते हैं बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्मा विना प्रकाश नहीं हो सकता, ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढते हैं ॥ २३ ॥ इस विषयमें एक बड़े तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवादरूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महा पंडित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी, जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे। उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूछा ॥२५॥ कि हे ब्रह्मन्! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुण मति कहांसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पंडित तुम बालकके समान

अत्रमां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥२४॥ अवधूतं द्विजं कञ्चिच्चरन्तमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः प्रपच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥

इस लोकमें विचरते हो? ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य अर्थ धर्म कामनाविषे और आत्माके विचारविषे आयु, कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो, न कोई कर्म करते हो और जड़ उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो अतिप्रवीण हो, सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुरवाणी है ॥२८॥ मनुष्य काम लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खड़ा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥२९॥ हे ब्रह्मन्! तुम विषयभोगरहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनन्दरूप हो इसलिये हम आपसे पूछते हैं कि तुम्हारे आनन्दका कारण क्या है? सो हमसे कहो ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! इस प्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने विनयपूर्वक पूजा कर पूछा तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! अपनी बुद्धिकरके मेरे बहुत गुरु हैं. जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूँ और इस लोकमें फिरता हूं उनको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर सिन्धु, पतंग मधुकृत गज॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग मीन, पिंगला, कुररपक्षी, बालक कुमारी कंडेडी (बाणका बनानेवाला), सर्प, मकरी और मृगी ॥ ३४ ॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणोंसे मैंने शिक्षा ग्रहण कर ली है ॥ ३५ ॥ हे ययाति पुत्र ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जाते हुए जहां जो शिक्षा

श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सन्ति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥ ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत् तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नग शिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥

जैसे ग्रहण की है सो उसी प्रकार कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ ३६ ॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है सो कहते हैं कि पृथ्वीको सब प्राणी खूंदते हैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसी प्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दें तो भी उनके दैवाधीन पनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ पृथ्वी दो प्रकारकी है—एक तो पर्वतरूपा, एक वृक्ष रूपा । यहांसे जो सीखा है सो कहते हैं कि पर्वतकी जो वस्तु है वृक्ष, तृण, झरना, फूल, ये सदा पराये अर्थ हैं और पर्वतका जन्म भी केवल पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसी प्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये,

यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि इनको कोई काटे, उखाड़े तो वह सह लेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसी प्रकार साधु पुरुष भी जो अपने संग भलाई बुराई करे सो उसे सहन कर लें (१) ॥ २८ ॥ वायु भी दो प्रकारका है, एक तो प्राणरूप है, दूसरा बाहर फिरता है। सो प्राण जैसे आहारमात्रसे सन्तुष्ट रहते हैं और इंद्रियोंके भोग नहीं चाहते, इसी प्रकार मुनीश्वर भी रहें अर्थात् आहार जो न मिले तो मन वचनसे विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्धि न हो इसलिये एक आहारमात्रसे ही सन्तोष मान ले, इससे अधिककी चाहना न करे, यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ २९ ॥ जैसे पवन सब जगह चलता है, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसी प्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नाना धर्मवाले विषय भोग करते भी आसक्त नहीं होते, सबमें गुणदोषरहित मन हो, यह विद्या बाहरकी वायुसे सीखी है ॥३०॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है सो कहते हैं कि यद्यपि वायु सुगन्ध मिली भी चलती है और ऐसा ही जाना

प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

जाता है, परन्तु तो भी वायु गन्धसे मिला नहीं हैं, गन्ध कुछ वायुका नहीं है किन्तु पृथ्वीका गुण है,इसी प्रकार आत्मा पृथ्वीका विकार देहमें प्रविष्ट है, देहके धर्मका आश्रय है पर मिला नहीं है देहोंसे अलग है इस प्रकार समझे और स्थानमें आत्माको ही देखे यह विद्या भी पवनसे ही सीखी, इसलिये वायु गुरु हुआ (२) ॥ ४१ ॥अब आकाशसे जो विद्या सीखी है सो कहते हैं- जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बड़ा है परन्तु घटमें छोटा दिखायी देता है सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है, ऐसे ही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इस कारण इतना ही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे. क्योंकि जो आत्मा देहमें है वही सर्वत्र है. जैसे आकाश सब ठौर है, वैसे ही स्थावर जंगम विषे ब्रह्म व्यापक है. यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥ ४२ ॥ द्वितीय वायु कहते हैं- जैसे

पवनके प्रेरे तेज जल पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होते हैं पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता वह निर्लेप है, वैसे ही यह पुरुष कालसे बनाये हुए पञ्चभूतरूप इस देहसे संयुक्त है, उनका जिनके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्म भी आकाशसे ही सीखा (३) ॥४३॥ जैसे स्वभावसे ही जल अतिनिर्मल है, ऐसे ही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करें, मीठा बोलें, जल भी मधुर है, जैसे जल तीर्थ स्थान है और मनुष्योंको पापसे छुड़ाता है उसी प्रकार मुनीश्वर भी दर्शन स्पर्श कीर्तनसे सबको पवित्र करें, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब जो अग्निसे सीखा सो कहते हैं--जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदर ही पात्र है, क्योंकि जो होम करते हैं, वह अग्निके उदरमें ही डालते हैं इससे वही पात्र है, जो सम्पूर्ण वस्तुको भक्षण करता है पर तो भी पवित्र करनेवाला है, ऐसे ही मुनीश्वर भी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है, जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं उनको सेव्य है, दाताकी

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥

इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेता है, उनके भूत, भविष्य, वर्तमान पाप सब दूर करता है इसी प्रकार मुनि रहे ॥४६॥ और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनमें बहुत भांति बड़ा दिखायी देता है और जब ईंधन थोड़ा रहता है तो छोटा दीख पड़ता है, ऐसे ही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है न बड़ा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊँचनीच भेद संयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखायी देता है (५) ॥४७॥ चन्द्रमासे जो सीखा है, सो कहते हैं:--जन्मसे मरणपर्यन्त धर्म देहके ही है, आत्माके नहीं। इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे चन्द्रमाका मंडल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है वह कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पड़ता है इतना ही दीखता है और ज्यों ज्यों मण्डलके नीचे दबता है त्यों त्यों घटता है इसी प्रकार आत्मा एकरूप है, अप्रकट गति कालसे जन्म मरण

दिकभाव देहको होते हैं आत्माको नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्निगुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है परन्तु दीखता नहीं वैसे ही काल नदीके वेगसे जन्म मरण इस देहको ही है आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥ ४९ ॥ अब सूर्यसे जो सीखा है सो कहते हैं:--जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखता है और फिर वर्षाके समय वही जल छोड़ देता है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं है, इसी प्रकार योगीजन इन्द्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करे और कोई याचना करे तो तत्काल दे दे, ममता न रक्खे ॥ ५० ॥ जिस प्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एक ही है परंतु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे अनेकरूप दीखता है उसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥

है, देहादिकोंमें व्याप्त होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेक रूपसे प्रतीत होता है (७) ॥ ५१ ॥ अब कपोतसे जो सीखा है सो कहते हैं:--कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करे, किसीमें आसक्त न हो, क्योंकि जो संग करे तो सन्तापको प्राप्त होता है और दीन मति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥५२॥ कपोतकी कथा कहते हैं:--एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाकर अपनी स्त्रीसे मिलकर कितनेक वर्षतक दोनोंने वास किया ॥५३॥ वे दोनों स्त्री पुरुष (कपोत कपोतिनी) परमस्नेहसे बँधे हुए दृष्टि दृष्टिसे बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि बुद्धिसे बँधी ॥ ५४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीड़ा, भोजन सब काम एक ही स्थानपर बैठकर करें, अलग

...के वचोंका नहीं है उनका काशीपुरी आधार है ॥ ...जिसे पतित, तपस्या व दान से हीन हैं व जिनका कहींभी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी ... जीवं- व क्षण क्षण में जिनका बन्धुजनोंके बीचमें अपमान है उनका आनन्ददायक एक शिवका आनन्दवन (काशी) हीहै ॥ ८१ ॥ व विश्वनाथ ने दया किया ... ऐसे वहां बसते हुये जिन सन्तोंकी दक्षिणी काशीमें होवे उनको आनन्द का उदयहोता है ॥ ८२ ॥ जहां अग्निरूप विश्वनाथ जी अज्ञानको जलाते हैं इससे - स्मशान वह (काशी) अगतियों की उत्तम गतिहै ॥ ८३ ॥ यों विचारकर हरिकेश काशीपुरी को गया जिस अविमुक्त क्षेत्रमें पांचभौतिक देहको तजते हुये जन्तु

गतिः ॥ ७९ ॥ येचयोगपरिभ्रष्टास्तपोदानविवर्जिताः ॥ येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥ ८० ॥ मध्येबन्धुजनेयेषामपमानंपदेपदे ॥ तेषामानन्ददंचैकंशम्भोरानन्दकाननम् ॥ ८१ ॥ आनन्दकाननेयेषांरुचिरैवमतांसताम् ॥ विश्वेशानुगृहीतानान्तेषामानन्दजोदयः ॥ ८२ ॥ भर्ज्यन्तेकर्मबीजानियत्रविश्वेशवह्निना ॥ अतोमहाश्मशानंतदगतीनांपरागतिः ॥ ८३ ॥ हरिकेशोविचार्येतियातोवाराणसींपुरीम् ॥ यत्राविमुक्तेजन्तूनान्त्यजतांपार्थिवींतनुम् ॥ ८४ ॥ पुनर्नोतनुसम्बन्धस्तनुदेहेपिप्रसादतः ॥ आनन्दवनमासाद्यसतपःशरणंगतः ॥ ८५ ॥ अथकालान्तरेशम्भुःप्रविश्यानन्दकाननम् ॥ पार्वत्यैदर्शयामासनिजमाक्रीडकाननम् ॥ ८६ ॥ अमन्दामोदमन्दारंकोविदारपरिष्कृतम् ॥ चारुचम्पकचूताढ्यंप्रोत्फुल्लनवमल्लिकम् ॥ ८७ ॥ विकसन्मालतीजालंकरवीरविराजितम् ॥ प्रस्फुटत्केतकिवनंप्रोद्यत्कुरवकोर्जितम् ॥ ८८ ॥ जृम्भद्विचकिलामोदंलसत्कङ्केलिपल्लवम् ॥ नवमल्लीपरिमलाकृष्टषट्पदनादितम् ॥ ८९ ॥ पुष्प्यत्पुन्ना

का ॥ ८४ ॥ शिवकी प्रसन्नता से फिर देह सम्बन्ध नहीं होताहै उस आनन्दवनमें जाकर वह हरिकेश तपके शरण गया ॥ ८५ ॥ अनन्तर कुछ कालके बाद आनन्द-वनमें पैठकर शङ्करने पार्वती को अपना विहारवन दिखाया ॥ ८६ ॥ जोकि अधिक सुगन्धदार मन्दारवान्, कचनार वृक्षों से भूषित, सुन्दर चंपा और आमोंसे पूर्ण व फूली नई बेलावालाहै ॥ ८७ ॥ व फूली मालती समूह से शोभित कनैरोंसे विराजित व फूलाहै केतकीका वन जिसमें व जो विकसी लाली कटसैरैयासे बढ़ाहै ॥ ८८ ॥ व विकसित विचकिल या मैनफलके वृक्षोंसे सुगन्धित, अशोक पल्लवोंसे शोभित व नई चमेली के सुगन्धसे खींचे भौंरोंसे नादितहै ॥ ८९ ॥ व फूलने योग्य पुन्नाग याने

ससेसरा के वृक्ष समूहवाला और मौनसिरी सुगन्धों से सुगन्धित है व मेदाभरे पाटलके सुगन्ध से सदा सुगन्धित हैं दिशाओं के मुख जिसमें ॥ ९० ॥ व जोकि बहुत शाखाविटपों में लटके भौंराकी भीरसे मालावाला पृथिवीतलहै जिसमें डोलती हुई चन्दन शाखाओंके आगे रमतेहुये कोकिलोंसे व्याप्तहै ॥ ९१ ॥ व काले अगर से मतवाले उत्तम जातिवाले पक्षियों से संयुत, नागकेशर की शाखाओं में टिकीहुई देवसुन्दरी पुत्तलियों से विलासयुक्त है ॥ ९२ ॥ व सुमेरु से ऊँचे रुद्राक्ष वृक्षोंकी छाया में क्रीडा करते किन्नरों से भरा व स्थान स्थान में किन्नर स्त्री जोड़ाओंका गीत और बोलते हुये शुक समेत पलाश वृक्ष हैं जहां ॥ ९३ ॥ व जहां कदम्बसमूहों

गनिकरंबकुलामोदमोदितम् ॥ मेदस्विपाटलामोदसदामोदितदिङ्मुखम् ॥ ९० ॥ बहुशोलम्बिरोलम्बमालामालितभूतलम् ॥ चलचन्दनशाखाग्ररममाणपिकाकुलम् ॥ ९१ ॥ गुरुणाऽगुरुणामत्तभद्रजातिविहङ्गमम् ॥ नागकेसरशाखास्थशालभञ्जिविनोदितम् ॥ ९२ ॥ मेरुतुङ्गनमेरुस्थच्छायाक्रीडितकिन्नरम् ॥ किन्नरीमिथुनोद्गीतंगानवच्छुकर्किंशुकम् ॥ ९३ ॥ कदम्बानांकदम्बेषुगुञ्जद्रोलम्बयुग्मकम् ॥ जितसौवर्णवर्णोच्चकर्णिकारविराजितम् ॥ ९४ ॥ लसत्समदच्छदामोदंखर्जूरराजिराजितम् ॥ नारिकेलतरुच्छन्नंनारङ्गीरागरञ्जितम् ॥ ९५ ॥ फलिजम्बीरनिकरंमधूकमधुपाकुलम् ॥ शाल्मलीशीतलच्छायंपिचुमन्दमहावनम् ॥ ९६ ॥ मधुरामोददमनच्छन्नंमरुवनोदितम् ॥ लवलीलोललीलाभृन्मन्दमारुतलोलितम् ॥ ९७ ॥ भिल्लीहल्लीसकप्रीतिभिल्लीरावविराविणम् ॥ क्वचित्सरःपरिसरक्रीडत्क्रोडकदम्बकम् ॥ ९८ ॥

में भौंराके जोटा गूंजते हैं व जो सोने के रंगको जीते ऊंचे नैनिया फूलों से विराजितहै ॥ ९४ ॥ व छतिवन सुगन्ध से शोभित, खजूरि पंक्तिसे विराजित, नारियरके से व्याप्त और नारंगी के रस रंग से रंजित है ॥ ९५ ॥ व फले जँभीरीवृक्ष समूहवाला है व महुवा के वृक्षों में जे भौंर हैं उन से पूर्ण है व सेमरकी शीतल छाया नींबीका बड़ा वन है जहां ॥ ९६ ॥ व जो [illegible] सुगन्धदार दौनाके वृक्षों से छाया, मरुवाके वृक्षों से युक्त व हरफारेवरी की चंचल लीलाधारी मंद मारुतसे गया है ॥ ९७ ॥ व भिल्लियोंके नाचमें [illegible] ॥ ९८ ॥ व अपु[illegible] बनी झिल्लियोंके शब्दसे पूरित है व जिसमें कहीं तड़ागों की पर्यन्त भूमियों में शूकरोंका समूह है

व हंसिनी गलनालियों में टिके कमल तारोंमें उजले पंखके हंस आसक्तहैं व जोकि शोच चकवा चकईकी बोली से मनोहरहै ॥ ९९ ॥ व जहां बगुले के बच्चोंका
चलना व सारस सारसीमें आसक्तहैं व जोकि मत्तमयूरोंकी बोलीवाला व गरगैयाकुलसे है ॥ १०० ॥ बोलते हुये कराकुल या टिभुकी पक्षियोंसे व्याप्त व जीवं-
जीवनामक पक्षियोंसे शोभते हैं प्राणी जिसमें व बावली के जलमें पसरते शीतल वायुसेवितहै ॥ १ ॥ व धीरे धीरे डोलते हुये कह्लारके फूलोंकी धूरि से पीले
हैं व जिसमें सोहते हुये कमलके फूल मुख काले कमलनेत्र ॥ २ ॥ कनकोहरवृक्ष समूह विलसते हुये अनार के बीज दन्तपंक्ति भौंर भीर भौंहें सुवा नासि-

मरालीगलनालीस्थबिसासक्तसितच्छदम् ॥ विशोककोकमिथुनडाकेङ्कारसुन्दरम् ॥ ९९ ॥ बकशावकसञ्चारंल
क्ष्मणासक्तसारसम् ॥ मत्तबर्हिणसंघुष्टंकपिञ्जलकुलाकुलम् ॥ १ ॥ जीवञ्जीवलसज्जीवंकणत्कारण्डवोत्कटम् ॥
दीर्घिकावारिसञ्चारिशीतमारुतवीजितम् ॥ १ ॥ मन्दान्दोलितकह्लारपरागपरिपिञ्जलम् ॥ उल्लसत्पङ्कजमुखंनीलेन्दी
वरलोचनम् ॥ २ ॥ तमालकबरीभारंविलसद्दाडिमीरदम् ॥ भ्रमरालसद्भ्रूकंशुकनासाविराजितम् ॥ ३ ॥ महान्धुश्रव
णन्दूर्वाश्मश्रुभिःपरिशोभितम् ॥ कमलामोदनिःश्वासंबिम्बीफलच्छदम् ॥ ४ ॥ सुपद्मपत्रवसनङ्कर्णिकारविभूष
णम् ॥ कम्रकम्बुलसत्कण्ठंशाखास्कन्धबन्धुरम् ॥ ५ ॥ गन्धारसमासक्ताहीनदोर्दण्डमण्डितम् ॥ अशोक
पल्लवाङ्गुष्ठकेतकीनखरोज्ज्वलम् ॥ ६ ॥ लसत्कण्ठीरवोरस्कङ्गशैलपृथूदरम् ॥ जलावर्तलसन्नाभितरुजङ्घायुगा
न्वितम् ॥ ७ ॥ स्थलभाक्पद्मचरणंमत्तमातङ्गगामिनम् ॥ लसत्कदलकेदारदलचीनांशुकावृतम् ॥ ८ ॥ नानाकुसुम

का ॥ ३ ॥ और महाकूप कान है जोकि दूबवाली से शोभित है व जिसके कमलसुगन्ध निश्वास कुँदुरूके फल ओठ ॥ ४ ॥ व पुंरनिपात कपड़े कठचम्पा गहने
कमनीय कंकुराने कण्ठ ऊँबरी या पथरचटा भेष ऊंचे नीचे के कांध ॥ ५ ॥ व चन्दन वृक्षमें लिपटे सर्प श्रेष्ठ भुजदण्ड अशोक पल्लव अँगुठा केतकी उजले नख ॥ ६ ॥
व शोभित सिंह उर पर्वतसे पड़ा पत्थर विस्तीर्ण उदर पानी के भौंर नाभि दो वृक्ष जंघामें ॥ ७ ॥ व स्थल कमल पद मतवाले हाथीमें चाल व सोहते केला खेतोंके

मावे भी पुण्य पाप काशीमाहात्म्य से प्रभुता नहीं करसक्ते हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! उस कारण बहुत भतेके सैकड़ों उपद्रवों से बाधित भी हुये मोक्षचाही जनको काशी न छोड़नाचाहिये ॥ २९ ॥ हे देवि ! जो मनुष्य क्षेत्रसंन्यासकर यहां बसते हैं वे जीवन्मुक्तहैं मैं उनका विघ्नहर्त्ताहूं ॥ ३० ॥ योगियों के हृदय आकाशमें नहीं व कैलासमें नहीं और मंदर पर्वतपरभी वैसे मेरे बसनेकी प्रीति नहीं है जैसे काशीमें मेरा स्नेहहै ॥ ३१ ॥ हे देवि ! काशीवासी जन मेरेगर्भमें सदा बसताहै इससे उसको अन्तमें संसार से छुड़ाताहूं जिससे यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तमोगुणी स्वभाव को पहुँचकर कालरूपहुँमैं लीलासे स्थावर जंगम जगत्को नाशताहूं किन्तु काशीको नहीं

तार्जिते ॥ २८ ॥ अविमुक्तंनमोक्तव्यन्तस्माद्देविमुमुक्षुणा ॥ हन्यमानेबहुधाह्युपसर्गशतैरपि ॥ २९ ॥ विधायक्षेत्रसं न्यासंयेवसन्तीहमानवाः ॥ जीवन्मुक्तास्तुतेदेवितेषांविघ्नंहराम्यहम् ३० ॥ नयोगिनांहृदाकाशेनकैलासेनमन्दरे ॥ तथावासरतिर्मेऽस्तियथाकाश्यांरतिर्मम ॥ ३१ ॥ काशीवासिजनोदेममगर्भेवसेत्सदा ॥ अतस्तंमोचयाम्यन्तेप्रति ज्ञेयंयतोमम ॥ ३२ ॥ तामसींप्रकृतिंप्राप्यकालोभूत्वाचराचरम् ॥ शमिलीलयादेविकाशींरक्षामियत्नतः ॥ ३३ ॥ प्रेमपात्रद्वयंदेविनितरांनितरांमम ॥ त्वंवातपोधनेगौरिकाशीवानन्दभूमिका ॥ ३४ ॥ विनाकाशींनमेस्थानंविनाका शींनमेरतिः ॥ विनाकाशींननिर्वाणंसत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मण्डगोलकेयद्वन्मुक्तिःकाश्यांव्यवस्थिता ॥ अष्टा ङ्गयोगयुक्त्यावानतथाहेलयाऽन्यतः ॥ ३६ ॥ इतिब्रुवाणोदेवेशोहरिशमवैक्षत ॥ मध्येवनंतपस्यन्तमशोकतरुमूल गम् ॥ ३७ ॥ शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयंनिश्चलाकृतिम् ॥ वल्मीकटकाकोटिशोषितासृगसृग्धरम् ॥ ३८ ॥ निर्मां

बचाताहूं ॥ ३३ ॥ हे तपोधने, देवि, गौरि ! तुम व आनन्द की भूमिका काशी ये दो भाजन अधिकारी हैं अन्य नहीं ॥ ३४ ॥ काशी विना मेरा स्थान नहीं काशी विना मेरी प्रीति या भक्ति नहीं और काशी विना विदेह कैवल्य नहीं है मैं सत्य सत्य कहताहूं ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्ड के बीच काशी में अनायास जैसी मुक्ति बसीहै वैसी अन्यत्र अष्टांग योग जोड़ने से भी नहीं है ॥ ३६ ॥ यों कहतेहुये महादेवने हरिकेशको देखा वनके बीचमें तप करताहुआ अशोक वृक्षके तरे बैठाहै ॥ ३७ ॥ व सूखी नसोंसे ढँपी हाड़की राशिवाला अचल देह व विबौर के करोड़ों कीड़ोंने पियाहै रक्त जिनका ऐसीहैं जिसकी ॥ ३८ ॥ व जोकि विना मांसके हाड़समूहवाला उजले

पहाड़ से अडोल व शंख कुन्द फूल चन्द्रमा बरफ और रुती के समान सोहती शोभावान् है ॥ ३९ ॥ व अन्तःकरण में टिके हैं प्राण जिसके ऐसा वह जीवन शेष रहने से रक्षित व नीची ऊंची भीतर बाहरकी श्वास बयारसे जीवित जाना जाताहै ॥ ४० ॥ व पलक ढांपने और उघाड़ने से दोष लगानेवाले कियेगये हैं वनके जन्तु जिसकरके अर्थात् मृगादिक उसको व्याघ्रकर मानते हैं व जो पीले तारेवाली जगमगाति ज्योति आंखोंसे दिशाओं के मुखको प्रकाशता है ॥ ४१ ॥ उग्र प्रसिद्ध तपस्या अग्नि की ज्वालारूप दावानल से लगा मलिन वनहै जिससे व उस सुदृष्टि अमृत वर्षासे सींचा सम्पूर्ण वृक्षोंको जिसने ॥ ४२ ॥ व जो अकाम अकथनीय किसी भक्तिको कर प्रत्यक्ष

सकीकसचयंस्फटिकोपलनिश्चलम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥ ३९ ॥ सत्त्वावलम्बितप्राणमायुः शेषेणरक्षितम् ॥ निःश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ ४० ॥ निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् ॥ पिङ्गतारस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम् ॥ ४१ ॥ तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ॥ तत्सौम्यदृक्सुधावर्षसंसिक्ताऽखिलभूरुहम् ॥ ४२ ॥ साक्षात्तपस्यन्तमिवतपोधृत्वानराकृतिम् ॥ निराकृतिंनिराकाङ्क्षंकृत्वाभक्तिञ्चकाञ्चन ॥ ४३ ॥ कुरङ्गशावैर्गणशोभ्रमद्भिःपरिवारितम् ॥ नितान्तभीषणास्यैश्चपञ्चास्यैःपरिरक्षितम् ॥ ४४ ॥ तन्तथाभूतमालोक्यदेवीदेवंव्यजिज्ञपत ॥ वरेणच्छन्दयेशामुंनिजभक्तंतपस्विनम् ॥ ४५ ॥ त्वदेकचित्तंत्वदधीनजीवितंत्वदेककर्माणममुंत्वदाश्रयम् ॥ तीव्रैस्तपोभिःपरिशुष्कविग्रहंकुरुष्वयक्षस्यवरैरनुग्रहम् ॥ ४६ ॥ देवोवृषेन्द्रादवरुह्यदेव्याशैलादिनादत्तकरावलम्बः ॥ समाधिसंकोचितनेत्रपत्रंपस्पर्शहस्तेनदयार्द्रचेताः ॥ ४७ ॥ ततःसयक्षोविनिमील्यचक्षुषीत्र्य

पुरुष शरीरधारी तपके समान तपस्या करता है ॥ ४३ ॥ व यूथके यूथ विचरते हुये मृग बच्चोंसे घिराहुआ व अत्यन्त भयानकमुख सिंहों से सब ओर रक्षित है ॥ ४४ ॥ व ऐसे हुये उसको देखकर देवीजीने महादेवजी को जनाया कि हे ईश ! इस अपने भक्तका वरसे मनोरथ पूरो ॥ ४५ ॥ आपमें मन लगाये आपके अधीन जीवते व आपके कर्म करते हुये व आपके आधार व तीव्र तपस्या से दुबले इस यक्षपर वरसे दयाकरो ॥ ४६ ॥ तब देवीके साथ नंदीश्वरका हाथ पकड़े बैलसे उतरकर दयासे भीगे मन महादेवने समाधि से पलक ढांपेहुये बैठे उसको हाथसे छुवा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वह यक्ष आंखें खोलकर अपने आगे प्रत्यक्ष त्रिनयनको निहारकर जोकि उगतेहुये

हजारों सूर्योंके समान तेजस्वीहैं उनसे गद्गद अक्षर बोला कि ॥ ४८॥ हे ईश,शम्भो, पार्वतीपते, शंकर, त्रिशूलहस्त,चन्द्रखण्डभाल, दयालो ! जयहो यानें उत्कर्ष प्रकट करो आपके परसतेहुये हाथ कमलको पाकर मैं मरणहीन देहलतावाला हुआहूं ॥ ४९ ॥ हे बड़ी तपस्याके निधान अगस्त्य ! तब धीरजधारी उस भक्तकीकही व दाखकी समताको पहुँचीहुई मीठी कोमल बोली सुनकर ईश्वर ने आनन्द से वरसमूह दिया ॥ ५० ॥ कि हे यक्ष ! अबहीं तुम मेरे वरसे इस मेरे प्यारे काशीक्षेत्रके दण्ड-नायक होवो आजसे लगाकर अचल मेरे प्यारे व दुष्टों के दण्डदायक पुण्यवानों के सहायक होवो ॥ ५१ ॥ तुम इस समय दण्डपाणि नाम होवो मेरी आज्ञा से सब

चं पुरो वीक्ष्य समच्चमात्मनः ॥ उद्यत्सहस्रांशुमहस्वतेजसं जगाद हर्षाकुलगद्गदाक्षरम् ॥ ४८ ॥ जयेश शम्भो गिरिजेश शङ्कर त्रिशूलपाणे शशिखण्डशेखर ॥ स्पर्शात्कृपालो तव पाणिपङ्कजं प्राप्यामृतीभूततनूलतोऽभवम् ॥ ४९ ॥ श्रुत्वोदितां तस्य महेश्वरो गिरं मृद्वीकया साम्यमुपेयुषीं मृदु ॥ भक्तस्य धीरस्य महातपोनिधे ददौ वराणां निकरं तदा मुदा ॥ ५० ॥ क्षेत्रस्य यक्षास्य मम प्रियस्य मे भवाधुना दण्डधरो वरान्मम ॥ स्थिरस्त्वमद्यादिदुरात्मदण्डकः सुपालकः पुण्यकृतां च मत्प्रियः ॥ ५१ ॥ त्वं दण्डपाणिर्भव नामतोऽधुना सर्वान्गणांश्चाधि ममाज्ञया तकटान् ॥ गणाविमौ त्वामनुयायिनौ मदा नाम्ना यथार्थौ नृषु संभ्रमोद्भ्रमौ ॥ ५२ ॥ त्वमन्त्यभूषां कुरु काशिवासिनां गलेसुनीलाम्भुजगेन्द्रकङ्कणाम् ॥ भालेसुनेत्रां करिकृत्तिवाससं वामेक्षणालक्षितवामभागाम् ॥ ५३ ॥ मौलौलसत्पिङ्गकपर्दभारिणीं विभूतिसंक्षालितपुण्यविग्रहाम् ॥ अहो हिमांशोः कलया लसच्छ्रियं वृषेन्द्रलीलागतिमन्दगामिनीम् ॥ ५४ ॥ त्वमन्नदः काशिनिवासिनां सदा त्वं प्राणदो ज्ञानद

उद्भटगणों को नियमित करो व मनुष्यों में सत्यार्थ नामवाले सम्भ्रम और उद्भ्रम ये दोनों गण सदा तुम्हारे अनुगामी होवेंगे व ॥ ५२ ॥ तुम काशीवासी लोगोंको अन्त समयवाला अलंकार करो कि गले में श्यामता सर्पराज कंकण माथ में नेत्र हाथी का चर्मवस्त्र स्त्रीसे लक्षित वामभाग ॥ ५३ ॥ व मस्तक में सोहतेहुये पीले जटाजूटों का भार व विभूति से पवित्र पुण्यदेह व चन्द्रमाकी कला से सोहतीहुई शोभावाली और वृषेन्द्रकी लीला गति से मन्द चलनेका शीलहै जिसका ऐसी अलंकृति को करो ॥ ५४ ॥ और तुम काशीवासी जनों के सदा अन्नदाता व तुम प्राणदाता व तुम ज्ञानदाता होवो व तुम मेरे मुखसे निकले अच्छे तारक मन्त्र के उपदेश से

मुख्य मोक्षदाताभी होकर यहां अचल वास करोगे ॥ ५५ ॥ हे तपस्या से पीले ! तुम पापियों को विघ्नसमूहों से पीड़ा देकर उद्वेग उपजाकर पुरीके बाहर निकालोगे और भक्तों को दूर से क्षणमें आनकर उत्तम मोक्ष दिलानेवाले होगे ॥ ५६ ॥ हे यक्षराज ! जब क्षेत्रश्रेष्ठ तुम्हारे अधीन कियागया तब कौन तुमको न पूजकर मुक्तिका पात्र होगा इससे हमाराभक्त पहले तुम्हारी पूजाकरे उसके बाद हमारीपूजा करे ॥ ५७ ॥ तुमहीं इस मेरी पुरीमें ग्रामवासदायक व भारी अधिकारी दण्डनायक होवो व तुम काशीनिंदक दुष्टोंको निकालो औरसदा आनन्दितहो काशीपुरी को पालो ॥ ५८ ॥ हे पूर्णभद्र के पुत्र दण्डनायक त्रिनेत्र यक्ष हरिकेश पीतरंग अंगवाले काशीवासी

एकएवहि ॥ त्वंमोक्षदोमन्मुखसूपदेशास्त्वंनिश्चलांसद्वसतिंविधास्यसि ॥ ५५ ॥ त्वंविघ्नपूगैःपरिपीड्यपापिनःसंभ्रान्तिमुत्पाद्यविनेष्यसेबहिः ॥ आनीयभक्तान्क्षणतोपिदूरतोमुक्तिंपरांदापयितासिपिङ्गल ॥ ५६ ॥ त्वत्सात्कृतेक्षेत्रवरेहियनराटकस्त्वामनाराध्यविमुक्तिभाजनम् ॥ सभाजनंपूर्वंतएवतेचरेत्ततःसमर्चांममभक्तआचरेत् ॥ ५७ ॥ त्वंग्रामवासप्रदएवमेपुरेऽध्यक्षस्त्वमेधीहचदण्डनायकः ॥ दुष्टान्समुच्चाटयकाशिवैरिणःकाशींपुरींरक्षसदामुदान्वितः ॥ ५८ ॥ पूर्णभद्रसुतदण्डनायकत्र्यक्षयक्षहरिकेशपिङ्गल ॥ काशिवासवसतांसदान्नदज्ञानमोक्षदगणाग्रणीर्भव ॥ ५९ ॥ मद्भक्तियुक्तोपिविनात्वदीयांभक्तिंनकाशीवसतिंलभेत ॥ गणेषुदेवेषुहिमानवेषुतदग्रमान्योभवदण्डपाणे ॥ ६० ॥ ज्ञानोदतीर्थेनिहितोदकक्रियोयस्त्वांसमाराधयितागणेशम् ॥ सएवलोकेकृतकृत्यतामगान्ममातुलानुग्रहतोऽत्रपुण्यवान् ॥ ६१ ॥ त्वंदक्षिणस्यांदिशिदण्डपाणेसदैवमेनेत्रसमक्षमत्र ॥ त्वंदण्डयन्प्राणभृतांदुरीहानिहास्वनॄन्स्वानभयंदिश

जनोंके अन्नदायक ज्ञानमोक्षद ! तुम सदा गणोंके स्वामी अग्रगामी होवो ॥ ५९ ॥ हे दण्डहस्त ! मेरा भक्तभी तेरी भक्ति विना काशीवास न पावे उसकारण तुम गण-देव और मनुष्यों में भी आगे पूजनीय होवो ॥ ६० ॥ जो पुण्यवान् ज्ञानोद तीर्थ में स्नान तर्पणादि कर्ता होकर तुम गणनायक को पूजेगा वही इस लोक में मेरी अ-तोल दयासे कृतार्थताको पहुंचेगा ॥ ६१ ॥ हे दण्डपाणे ! इस मेरे क्षेत्रमें दुष्टजनों को दण्ड करते और अपने भक्त मनुष्यों को अभय देतेहुये भी तुम मेरी पुरी के दक्षिण

त्रियामें मेरे नेत्रों के प्रत्यक्ष यहां सदा बसो ॥ ६२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे ब्राह्मण ! शिवजी यों दण्डपाणि को वरदेकर वृषेन्द्र पर चढ़ आनन्दवनमें पैठे ॥ ६३ ॥ हे अगस्त्य ! तब से लगाकर वे यक्षराज हरिकेश दण्डनायक आज्ञासे काशीपुरी को भलीभांति सिखलाते हैं ॥ ६४ ॥ उनकी असूया याने गुणों में दोषलगाने से मैंने यहां वासकिया है जिससे काशीमें बसते हुये मुझ करके वह न मानेगये थे ॥ ६५ ॥ हे मुने ! ऐसे जितेन्द्रिय तुमने जो काशीक्षेत्रको त्यागा है तो इसमें भी मैं साक्षात् उन दण्डपाणि कीही प्रतिकूलताकी शंका करताहूं ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मण ! हरिकेश जो कुछ निषिद्ध कर्म्म देखें तो काशी में वास कहां कहां व मुख कहां

न्ते ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इतिदत्त्वावरान्विप्रगिरीशोदण्डपाणये ॥ वृषेन्द्रमधिरुह्याथविवेशानन्दकाननम् ॥ ६३ ॥ कुम्भोद्भवतदारभ्ययत्तराड्दण्डनायकः ॥ पुरींवाराणसींसम्यगनुशास्तिनिदेशतः ॥ ६४ ॥ अहमप्यत्रवसतिंचक्रेतद नुसूयया ॥ वसन्नपिमयाकाश्यांयतःसंभावितोनसः ॥ ६५ ॥ मुनेक्षेत्रंयदत्याक्षीस्त्वमप्येवंविधोवशी ॥ शङ्केतत्राहमेत्रा द्वाकामंतस्यैवविक्रियाम् ॥ ६६ ॥ मनाग्विरुद्धाचरणंयदिद्विजविलक्षयेत् ॥ हरिकेशस्तदाकाश्यांकस्थितिःक्वचनि र्वृतिः ॥ ६७ ॥ दण्डपाणिमनाराध्यकःकाश्यांसुखमाप्नुयात् ॥ प्रविविक्षुरहंकाशींदूरगोपिभजामितम् ॥ ६८ ॥ रत्नभ द्राङ्गजोद्भूतपूर्णभद्रसुतोत्तम ॥ निर्विघ्नंकुरुमेयक्षकाशीवासंशिवाप्तये ॥ ६९ ॥ धन्योयक्षःपूर्णभद्रोधन्याकाञ्चनकुण्ड ला ॥ ययोर्जठरपीठेभूर्दण्डपाणेमहामते ॥ ७० ॥ जययक्षपतेधीरजयपिङ्गललोचना ॥ जयपिङ्गजटाभारजयदण्डम हायुध ॥ ७१ ॥ अविमुक्तमहाक्षेत्रसूत्रधारोग्रतापस ॥ दण्डनायकभीमास्यजयविश्वेश्वरप्रिय ॥ ७२ ॥ सौम्यानांसौ

है ॥ ६७ ॥ और कौनजन काशी में दण्डपाणि को न पूजकर सुखपावे इससे काशी में पैठा चाहता हुवा दूरदेशवासी भी मैं उनको भजताहूं ॥ ६८ ॥ हे रत्नभद्र के अंगमें उत्पन्न हुये पूर्णभद्र के पुत्र उत्तम हरिकेशयक्ष ! मोक्ष मिलने के लिये विनाविघ्न मेरा काशी में बसेरा करो ॥ ६९ ॥ हे महामते दण्डपाणे ! आप जिनके पेटपीढ़ा में हुयेहो वह पूर्णभद्र यक्ष धन्यहै और कनककुण्डला यक्षिणी भी धन्य है ॥ ७० ॥ हे यक्षपते धीर पिंगलनेत्र पीलिजटीले दण्डआयुध वाले ! आपका जयजयकारहो ॥ ७१ ॥ हे काशी क्षेत्र के सूत्रधार तीव्रतापस दण्डनायक भयंकर मुख विश्वेश्वर के प्यारे ! आपका ज० ॥ ७२ ॥ हे सन्तों को सुमुख दुष्टोंको भयानक क्षेत्र में पाप

बुद्धियों के काल महाकालके परमप्यारे ! आपकाज० ॥७३॥ हे प्राणदायक यक्षनायक काशीकावास अन्न और मोक्ष देनेवाले बड़े रत्नों की जगमगाती ज्योति समूह से चर्चितदेह ! आपकाज० ॥ ७४ ॥ हे अभक्तोंको महा सम्भ्रम उपजायक महाउद्भ्रमदायक भक्तोंकी सम्भ्रान्ति और उद्भ्रान्तिके घायक ! आपकाज० ॥७५॥ हे अन्तसमे अलंकार करने में चतुर ! हे ज्ञाननिधानद पार्वतीपदकमलके और मोक्षज्ञान के जाननेहार ! आपकाज० ॥७६॥ हे अगस्त्य काशी मिलनेका कारण जो यह पुण्य यक्षराजाष्टक है उसको मैं नित त्रिकाल जपता हूं ॥ ७७ ॥ श्रद्धासे यक्षराजाष्टक को पढ़ताहुवा कभी विघ्नों से नहारे और काशीवास का फलपावे ॥ ७८ ॥ दण्डपाणिका प्रकट

स्यवदनभीषणानांभयानक ॥ चेत्रपापधियांकालमहाकालमहाप्रिय ॥ ७३ ॥ जयप्राणदयक्षेन्द्रकाशीवासान्नमोक्ष
द ॥ महारत्नस्फुरद्रश्मिचयचर्चितविग्रह ॥ ७४ ॥ महासम्भ्रान्तिजनकमहोद्भ्रान्तिप्रदायक ॥ अभक्तानांचभक्तानां
सम्भ्रान्त्युद्भ्रान्तिनाशक ॥७५॥ प्रान्तनेपथ्यचतुरजयज्ञाननिधिप्रद ॥ जयगौरीपदाब्जालेमोक्षेक्षणविचक्षण ॥ ७६ ॥
यक्षराजाष्टकंपुण्यमिदंनित्यंत्रिकालतः ॥ जपामिमैत्रावरुणेवाराणस्याप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥ दण्डपाण्यष्टकंधीमान्
जपन्विघ्नैर्नजातुचित ॥ श्रद्धयापरिभूयेतकाशीवासफलंलभेत ॥ ७८ ॥ प्रादुर्भावंदण्डपाणेःशृण्वन्स्तोत्रमिदंशृण
न् ॥ विपत्तिमन्यतःप्राप्यकाशींजन्मान्तरेलभेत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंदण्डपाणिसमुद्भवम् ॥ पठित्वापाठ
यित्वापिनविघ्नैरभिभूयते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदण्डपाणिप्रादुर्भावोनामद्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ स्कन्दज्ञानोदतीर्थस्यमाहात्म्यंवदसाम्प्रतम् ॥ ज्ञानवापींप्रशंसन्तियतःस्वर्गौकसोप्यलम् ॥ १ ॥

होना व इस स्तोत्र को सुनता व पढ़ता हुवा अन्यत्रभी मरणको पहुंचकर दूसरे जन्ममें काशीपुरी को पावे ॥ ७९ ॥ व दण्डपाणिकी भलीभांति से उत्पत्ति वाले इस पुण्यरूप अध्याय को सुन पढ़ व पढ़ाकर भी विघ्नों से नहीं हारता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्धपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदण्डपाणिप्रादुर्भावोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० तैंतिसयें अध्याय में ज्ञान वापिका नाम । तीरथकी उत्पत्ति तिमि तासुमहात्म्य तमाम ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे कार्तिकेय ! इस समय ज्ञानोद तीर्थ का माहात्म्य

कहो कि जिससे स्वर्ग वासीभी ज्ञानवापीको बहुतही प्रशंसते हैं ॥ १ ॥ कार्त्तिकेयजीबोले किहे महाप्राज्ञ अगस्त्यजी ! इस समय पापनाशिनी मेरीकही ज्ञानवापी की उत्पत्ति सुनो ॥ २ ॥ हे मुने ! संसारके अनादिकालसे सिद्धहोने पै आगे सतयुगमें ऐसी वैसी अपनी इच्छासे विचरते हुये ईशान " जोकि उत्तर और पूर्व के बीच कोणके स्वामी हैं" वे कहीं से आये ॥ ३ ॥ व जब मेघ न वर्षतेथे व नदी न बहतीथीं व स्नान व पीने आदि कर्म्ममें जब पानी का अभिलाष नथा ॥ ४ ॥ व जब खारी मीठे दोनों समुद्रों के जलका दर्शन न था तब पृथिवी में कहीं कहीं मनुष्यों का संचार वर्त्तमान होतेही ॥ ५ ॥ जोकि मोक्ष लक्ष्मी का क्षेत्र श्रीयुत आनन्दवन महाश्मशान जोकि

स्कन्दउवाच ॥ घटोद्भवमहाप्राज्ञश्शृणुपापप्रणोदिनीम् ॥ ज्ञानवाप्याःसमुत्पत्तिंकथ्यमानांमयाधुना ॥ २ ॥ अनादिसिद्धेसंसारेपुरादेवयुगेमुने ॥ प्राप्तःकुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः ॥ ३ ॥ नवर्षन्तियदाभ्राणिनप्रावर्तन्तनिम्नगाः ॥ जलाभिलाषोनयदास्नानपानादिकर्मणि ॥ ४ ॥ क्षारस्वादूदयोरेवयदासीज्जलदर्शनम् ॥ पृथिव्यांनरसंचारेवर्तमानेक्वचित्क्वचित् ॥ ५ ॥ निर्वाणकमलाक्षेत्रंश्रीमदानन्दकाननम् ॥ महाश्मशानंसर्वेषांबीजानांपरमूषरम् ॥ ६ ॥ महाशयनसुप्तानांजन्तूनांप्रतिबोधकम् ॥ संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम् ॥ ७ ॥ यातायातातिसंखिन्नजन्तुविश्राममण्डपम् ॥ अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम् ॥ ८ ॥ सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्मरसायनम् ॥ सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम् ॥ ९ ॥ प्रविश्यक्षेत्रमेतत्सईशानोजटिलस्तदा ॥ लसत्त्रिशूलविमलरश्मिजालसमाकुलः ॥ १० ॥ आलुलोकेमहालिङ्गंवैकुण्ठपरमेष्ठिनोः ॥ महाहमहमिकायांप्रादुरासयदादितः ॥ ११ ॥ ज्योतिर्मयीभिर्मालाभिःपरि

महाभूतों के लयका स्थान व सब बीजोंका श्रेष्ठ ऊसर अर्थात् कर्मबीज न जामनेका कारणहै ॥ ६ ॥ व अज्ञानी जंतुओं का ज्ञानदाता संसारसागर के राग द्वेषादि भौरों में पड़े पुरुषों का किनारा या महा नौका रूपहै ॥ ७ ॥ व जाते आते संसारमें भ्रमते बड़े खिन्न जनोंका कैवल्यघर व अनेक जन्मोंसे गुहे कर्मसूत काटने का छूरा है ॥ ८ ॥ व सच्चिदानन्द विश्वनाथका मंदिर परब्रह्म रसको पहुंचाता व सुखसंतान को उपजाता हुवा मुक्ति के उपायों का सिद्धिदाता है ॥ ९ ॥ उस इस क्षेत्रमें पैठकर तब सोहतेहुये त्रिशूल की निर्मल किरणियों के समूहसे व्याप्त उन जटीले ईशानने ॥ १० ॥ उस महा लिङ्गको देखा जो कि विष्णु और ब्रह्माकी बड़ी अहंकार

किया में पहले प्रकटहुआ है ॥ ११ ॥ व ज्योतिकी पंक्तियों से सब ओर घिरा व निरन्तर देव ऋषि गणों के समूह ॥ १२ ॥ सिद्ध और योगीयूथों से पूजित व गन्धर्वों से गाया गया चारणोंसे प्रशंसितभयाहै ॥ १३ ॥ व अप्सराओं से नाचोंकरके बहुत भांतिसे सेव्यमान मणियों के दीप समूह से नागिनियों से आरती कियागयाहै ॥ १४ ॥ व विद्याधरी और किन्नरियों करके तीनों कालमें भूषित व देवियोंकी चौंर पंक्तिसे ऐसी वैसी वीज्यमान है ॥ १५ ॥ उस लिंगको देखकर तब इन ईशानके यह इच्छाहुई कि महालिंगको शीतल जल से भरे घड़ों से नहवाऊंगा ॥ १६ ॥ रुद्ररूपधारी ईशानने बड़े वेगसे त्रिशूल करके विश्वनाथके दक्षिण दिशाके समीप में कुण्डको

तःपरिवेष्टितम् ॥ वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणांगणानाञ्चनिरन्तरम् ॥ १२ ॥ सिद्धानांयोगिनांस्तोमैरर्च्यमानंनिरन्तरम् ॥ गीयमानंचगन्धर्वैःस्तूयमानंचचारणैः ॥ १३ ॥ अङ्गहारैरप्सरोभिःसेव्यमानमनेकधा ॥ नीराज्यमानंसततन्नागीभिर्मणिदीपकैः ॥ १४ ॥ विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालंकृतमण्डनम् ॥ अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥ १५ ॥ अस्येशानस्यतल्लिङ्गंदृष्ट्वेच्छेत्यमवत्तदा ॥ स्नपयामिमहल्लिङ्गंकलशैःशीतलैर्जलैः ॥ १६ ॥ चखानचात्रिशूलेनदक्षिणाशोपकण्ठतः ॥ कुण्डंप्रचण्डवेगेनरुद्रोरुद्रवपुर्धरः ॥ १७ ॥ पृथिव्यावरणाम्भांसिनिष्क्रान्तानितदामुने ॥ भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरियंवसुधावृता ॥ १८ ॥ तैर्जलैःस्नापयाञ्चकेत्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः ॥ तुषारैर्जाड्यविधुरैर्जज्जपूकौघहारिभिः ॥ १९ ॥ सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्त्मवत् ॥ ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैःपावनैःशम्भुनामवत् ॥ २० ॥ पीयूषवत्स्वादुतरैःसुखस्पर्शैर्गवाङ्गवत् ॥ निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैःपापिशर्मवत् ॥ २१ ॥ विजिता

खना ॥ १७ ॥ हे मुने ! तब वे पृथिवी के आवरण जल निकले कि पचास करोड़ योजनभूमिके प्रमाण से दशगुण जिनकर के यह पृथिवी घिरी है ॥ १८ ॥ उन जलों से नहवाया जो कि अन्यजन्तुओं से न छुयेहुये शीतल ज्ञानस्वरूप पाप समूहहारी है ॥ १९ ॥ व संतों के मनों से सुठि स्वच्छ आकाश मार्ग से श्याम चांदनीकी नाईं उजली कान्तिवाले शिवनामके समान पवित्र है ॥ २० ॥ व अमृत से अधिक स्वादिल व गौओं की देहकी नाईं परसने से सुखद व पापहीन सुबुद्धियों से अगाध

व पापियों के सुखसे चंचल है ॥ २१ ॥ व कमल सुगन्धको जीते व पाटलि में सुगन्धदा न पहले म दृष्ट लोगों के मन नेत्रहरनहारे हैं ॥ २२ ॥ [illegible]
बहुत तपे प्राणियों के प्राणों के मुख्य रक्षक दही दूध घी सहत और शक्कर के पञ्चामृत जो स्नानहैं उसमें अधिक फलदाता हैं ॥ २३ ॥ [illegible]
के हृदय में तीन लिंगों के कारण व अज्ञान अँधेरेको सूर्य्य के समान ज्ञान देने में चंद्रकान्ती हैं ॥ २४ ॥ व त्रिभुवनाथको पार्वतीके छुयेहुये सुखसे अधिक [illegible]
यज्ञके अंतमें स्नानसे अधिक शुद्धि करण शील हैं हे अगस्त्य ! अति आनन्दितमन उन ईशानने सहस्रधारा कलशों में हजारबार नहवाया ॥ २६ ॥ [illegible]

ब्जमहागन्धैःपाटलामोदमोदिभिः ॥ अदृष्टपूर्वलोकानांमनोनयनहारिभिः ॥ २२ ॥ अज्ञानतापसंतप्तप्राणिप्राणक्ष
क्षिभिः ॥ पञ्चामृतानांकलशैःस्नपनातिफलप्रदैः ॥ २३ ॥ अदृष्टापस्पर्शिहृदयलिङ्गत्रितयहेतुभिः ॥ अज्ञानतिमिरर्कांश
ज्ञानदाननिदायकैः ॥२४॥ विश्वभर्तुरुमास्पर्शसुखातिसुखकारिभिः ॥ महावभृथसुस्नानमहाशुद्धिविधायिभिः ॥ २५ ॥
सहस्रधारैःकलशैःसईशानोघटोद्भव ॥ सहस्रकृत्वःस्नपयामाससंहृष्टमानसः ॥२६॥ ततःप्रसन्नोभगवान्विश्वात्मा
विश्वलोचनः ॥ तमुवाचतदेशानंरुद्रंरुद्रवपुर्धरम् ॥ २७ ॥ तवप्रसन्नोस्मीशानकर्मणानेनसुव्रत ॥ गुरुणानन्यपूर्वेणम
मातिप्रीतिकारिणा ॥ २८ ॥ ततस्त्वंजटिलेशानवरंब्रूहितपोधन ॥ अदेयंनतवास्त्यद्यमहोद्यमपरायण ॥ २९ ॥
ईशानउवाच ॥ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशवरयोग्योस्म्यहंयदि ॥ तदेतदतुलंतीर्थंतवनाम्नास्तुशङ्कर ॥ ३० ॥ विश्वेश्वरउवा
च ॥ त्रिलोक्यांयानितीर्थानिभूर्भुवःस्वःस्थितान्यपि ॥ तेभ्योखिलेभ्यस्तीर्थेभ्यःशिवतीर्थमिदंपरम् ॥ ३१ ॥ शिवं

ऐश्वर्य्य सम्पन्न, सर्व व्यापक, सबके स्वामी, शिवजी तब उन रुद्ररूपधारी, ईशानरुद्रसे बोले ॥ २७ ॥ कि हे सुव्रत ईशान ! नहीं है तुमसे अन्य पहले जिसमें न [illegible]
हमारी सुप्रीतिकारी है उस इस तुम्हारे भारी कर्मपाने कुंडसे निकाले जलस्नानसे मैं प्रसन्नहूं ॥ २८ ॥ हे बड़े उद्यममें तत्पर तपोधन, जटिल ईशान ! उसकारण तुम वर मांगो
आज तुमको कुछ अदेय नहीं है ॥ २९ ॥ ईशानजी बोले, किहे देवेश शंभो ! जो आप प्रसन्नहो और जो मैं वरके योग्यहूं तो तुम्हारे नामसे यह अतुल (अपार) तीर्थ
होवे ॥ ३० ॥ शिवजी बोले कि भूः भुवः स्वः नामक त्रिलोकमें जे तीर्थ टिके हैं उनसब तीर्थोंसे यह शिवतीर्थ परेहै ॥ ३१ ॥ क्योंकि शिव शब्दके अर्थ [illegible]

शिवको ज्ञान ऐसा कहते हैं वहीज्ञान यहां मेरी महिमाके उदयसे पघिलकर रसीलाहुआ है ॥ ३२ ॥ इससे यह ज्ञानोद नामतीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्धहोवे है इसका जल छूने मात्रसे सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ३३ ॥ ज्ञानोदतीर्थ के छूने से अश्वमेधका और छूने व पीनेसे राजसूय और अश्वमेधका फलपावे ॥ ३४ ॥ व मनुष्य फल्गुतीर्थ में नहाकर और पितरोंका तर्प्पणकर जो फलपाताहै वह यहां श्राद्धकर्मसे होवे ॥ ३५ ॥ व जब बृहस्पति दिन पुष्यनक्षत्र [illegible] अष्टमी और व्यतीपात योग होवे तब यहां श्राद्ध करनेसे गयासे करोड़ गुण अधिक फलहोवे ॥३६॥ व पुष्कर (चित्रकूटदेशांतर्गत पारिपात्र पर्वतके समीप) में पितरोंको [illegible] तर्पणकर जिसफलको

ज्ञानमितिब्रूयुःशिवशब्दार्थचिन्तकाः ॥ तच्चज्ञानन्द्रवीभूतमिहममहिमोदयात ॥ ३२ ॥ अतोज्ञानोदनामैतत्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ अस्यस्पर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३३ ॥ ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलंलभेत ॥ स्पर्शनाचमनाभ्याञ्चराजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३४ ॥ फल्गुतीर्थेनरःस्नात्वासन्तर्प्यचपितामहान् ॥ यत्फलंसमवाप्नोतितदत्रश्राद्धकर्मणा ॥ ३५ ॥ गुरुपुष्यासिताष्टम्यांव्यतीपातोयदाभवेत् ॥ तदात्रश्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणंभवेत् ॥ ३६ ॥ यत्फलंसमवाप्नोतिपितॄन्सन्तर्प्यपुष्करे ॥ तत्फलंकोटिगुणितंज्ञानतीर्थेतिलोदकैः ॥ ३७ ॥ [illegible] विवस्वति॥यत्फलंपिण्डदानेनतज्ज्ञानोदेदिनेदिने ॥३८॥ पिण्डनिर्वपणंयेषांज्ञानतीर्थेकृतं [illegible] शिवलोकेतेयावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामुपवासीनरोत्तमः ॥ प्रातःस्नात्वाथपीताम्भस्त्वन्तर्लिङ्गमयोभवेत ॥ ४० ॥ एकादश्यामुपोष्यात्रप्राश्नातिचुलुकत्रयम् ॥ हृदयेतस्यजायन्तेत्रीणिलिङ्गान्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ ईशानतो

पहुंचे वह फल इस ज्ञानोदतीर्थ में करोड़ गुणहै ॥ ३७ ॥ सूर्य्यके राहु ग्रस्तहोतेही (सूर्य्य ग्रहण समय) कुरुक्षेत्रके [illegible] जो फल है वह ज्ञानोदतीर्थ में दिनो दिनहोताहै ॥ ३८ ॥ व पुत्रोंने ज्ञानोदतीर्थ में जिनको पिण्डदान किया है वे प्रलय तक शिवलोक में [illegible] ॥ ३९ ॥ अष्टमी व चौदशिमें उपासा मनुष्य श्रेष्ठप्रातःकाल नहाकर अनन्तर जल पीनेवाला होकर अन्तर्लिंग रूपहोवे ॥ ४० ॥ जो एकादशी में उपासकर इसमें तीन चुल्लू पानी पीता है उसके हृदय में

निश्चयहै तीन लिंगहोते हैं ॥ ४१ ॥ विशेषसे सोमवारको ईशानतीर्थ (ज्ञानोद) में नहाकर देव ऋषि पितरोंको तर्पणकर व अपनी शक्तिसे दानदेकर ॥ ४२ ॥ व उस के बाद बड़ी सामग्री विस्तारों से श्रीलिंग (ईशानेश्वर या ज्ञानेश्वर या विश्वनाथ) को पूजकर व यहांभी अनेक धनदेकर बरतताहै वह मनुष्य कृतार्थहोवे है ॥ ४३ ॥ व ज्ञानोद तीर्थ में सन्ध्या वन्दनकर जो काललोपने से पापहै उसको दूरकर ब्राह्मण क्षणमें ज्ञानवान् होताहै ॥ ४४ ॥ यह शिवतीर्थ व यह ज्ञानतीर्थ व यह शुभतीर्थ व यह तारक नामकतीर्थ व यह मोक्षतीर्थभी कहागया है ॥ ४५ ॥ ज्ञानोदतीर्थ के सुमिरने सेही पापसमूह निश्चयकर नष्ट होवे व देखने से धर्म छूनेसे काम और पीने

येषःस्नात्वाविशेषात्सोमवासरे ॥ संतर्प्यदेवर्षिपितृन्दत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ४२ ॥ ततःसमभ्यर्च्यश्रीलिङ्गंमहासंभारविस्तरैः ॥ अत्रापिदत्त्वानानार्थान्कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ४३ ॥ उपास्यसन्ध्यांज्ञानोदेयत्पापंकाललोपजम् ॥ क्षणेनतदपाकृत्यज्ञानवान्जायतेद्विजः ॥ ४४ ॥ शिवतीर्थमिदंप्रोक्तंज्ञानतीर्थमिदंशुभम् ॥ तारकाख्यमिदंतीर्थंमोक्षतीर्थमिदंध्रुवम् ॥ ४५ ॥ स्मरणादपिपापौघोज्ञानोदस्यक्षयेद्ध्रुवम् ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादिसम्भवः ॥ ४६ ॥ डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः ॥ ग्रहाःकूश्माण्डझोटिङ्गाःकालकर्णीशिशुग्रहाः ॥ ४७ ॥ ज्वरापस्मारविस्फोटद्वितीयकचतुर्थकाः ॥ सर्वेप्रशममायान्तिशिवतीर्थजलेक्षणात् ॥ ४८ ॥ ज्ञानोदतीर्थपानीयैर्लिङ्गंयःस्नापयेत्सुधीः॥ सर्वतीर्थोदकैस्तेनध्रुवंसंस्नापितम्भवेत् ॥ ४९ ॥ ज्ञानरूपोहमेवात्रद्रवमूर्तिविधायच ॥ जाड्यविध्वंसनंकुर्यांकुर्यांज्ञानोपदेशनम् ॥ ५० ॥ इतिदत्त्वावरान्शम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंसोप्यमंस्तत्रिशूलभृत् ॥ ५१ ॥

से मोक्षका उद्भव होवेहै ॥ ४६ ॥ व डाकिनी शाकिनी भूत प्रेत बेताल राक्षस ग्रह कूष्माण्ड झोटिंग (प्रेतभेद मोटिंग नामसे गुजरातमें प्रसिद्ध) कालकर्णी (राक्षसीभेद) बालग्रह ॥ ४७ ॥ ज्वर मृगी विस्फोटक (शीतलानामसे प्रसिद्ध) अन्तरिया और चौथिया आदि सब रोग ज्ञानोदतीर्थ जलके दर्शनसे नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४८ ॥ व जो सुबुद्धिमान् ज्ञानोदतीर्थ के पानीसे लिंगको नहवावे उस करके निश्चय सब तीर्थ जलोंसे भलीभांति नहवाया गयाहोवे है ॥ ४९ ॥ व यहांरस रूपकर ज्ञान मूर्तिमेंही अज्ञानका नाश करताहूं और ज्ञानका उपदेश (प्रकाश) करताहूं ॥ ५० ॥ इसभांति वर देकर शंकरजी वहां अन्तर्द्धानहुये और उन त्रिशूलधारी ईशानने भी

आपनाको कृतार्थ मानता ॥ ५१ ॥ व ईशाननामक जटीले रुद्रने उस उत्तम जलको आचमनकर श्रेष्ठ ज्ञानपाया कि जिससे ब्रह्मानन्दको पहुंचेगा ॥ ५२ ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्य ! अद्भुत अर्थवाला पुराना इतिहास जो कि ज्ञान वापीमें भयाहै उसको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ५३ ॥ कि आगे हरिस्वामी इस नामसे प्रसिद्ध काशी में जो ब्राह्मण हुवा उसके एक कन्या उपजीथी जो कि पृथिवी में रूपसे अनूप थी ॥ ५४ ॥ व शील सम्पत्तिसे उसके समान अन्य कन्या भूमिमें नहीं थी जो कि कला समूह में निपुण स्वरसे कोकिलाको जीते हुईथी ॥ ५५ ॥ इस लोकमें वैसी मानुषी नहीं देवी नहीं किन्नरी नहीं विद्याधरी नहीं नागकन्या नहीं

ईशानोजटिलोरुद्रस्तत्प्राश्यपरमोदकम् ॥ अवाप्तवान्परंज्ञानंयेननिर्वृतिमाप्तवान् ॥ ५२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कलशोद्भवचित्रार्थमितिहासंपुरातनम् ॥ ज्ञानवाप्यांहियद्वृत्तन्तदाख्यामिनिशामय ॥ ५३ ॥ हरिस्वामीतिविख्यातःकाश्यामासीद्द्विजःपुरा ॥ तस्यैकातनयाजातारूपेणाऽप्रतिमाभुवि ॥ ५४ ॥ नसमाशीलसम्पत्त्यातस्याःकाचनभूतले ॥ कलाकलापकुशलास्वरेणजितकोकिला ॥ ५५ ॥ ननारीतादृगस्तीहनामरीकिन्नरीनच ॥ विद्याधरीननोनागीगन्धर्वीनासुरीनच ॥ ५६ ॥ सर्वसौंदर्यनिलयासर्वलक्षणसत्खनिः ॥ अधिशेतेध्रुवन्ध्वान्तन्तन्मौलिंभ्रमसाध्वसात् ॥५७॥ तदास्यंशरणंयातोमन्येदर्शभयाच्छशी ॥ दिवापिनत्यजेत्तान्तुत्रस्तश्चण्डमरीचितः ॥ ५८ ॥ तद्भ्रूभ्रमरराजीवगण्डपत्रलतान्तरे ॥ उदंचन्त्यश्चद्दुडीनगतेरभ्यासमाजिनी ॥५९॥ तच्चारुलोचनक्षेत्रेविचरन्तौचखञ्जनौ ॥ सदैवशारदींप्रीतिनिधिशेतेनिजेच्छया ॥ ६० ॥ सुदत्यारदनश्रेणीक्षदेषुविषमेषुणा ॥ विहिताकाञ्चनीरेखाकेंदावेतावतीकला ॥ ६१ ॥

गन्धर्वी नहीं और दानवीभी कोई स्त्री नहीं है ॥ ५६ ॥ जो कि सब सुन्दरताकाघर सकल सुलक्षण की निधि थी निश्चय से उसके शिरमें अन्धकार सूर्य्य के डरसे सोताहै ॥ ५७ ॥ व अमावसके डरसे चन्द्रमा उसके मुखके शरणगया व मैं ऐसा मानताहूं कि सूर्य्य की किरणोंसे डराहुवा चन्द्रमा दिनमें भी उसको नहीं तजे है ॥ ५८ ॥ उसके व नीचे उड़ चलनेकी समतावाली उसकी भौंह कपोलों में विरचित मकरीपत्र लताके बीचमें भौंर भौरसी सोहती थी ॥ ५९ ॥ व उसके नीके नेत्र क्षेत्रमें अपनी इच्छासे खेलते हुवे दोखंजन सदैव शरदऋतुकी प्रीतिको प्राप्तहोते से हैं ॥ ६० ॥ व कामने उससुदतीके दन्तपङ्क्तिपत्रों में जैसी सोने की रेखाकिया ऐसीकला चन्द्र-

मा में कहा है ॥ ६१ ॥ व काम नरेश के घरमें जो रत्नहैं वे हैं अन्तर में जिन के व जीतलियाहै मूंगाओं की छविको जिनने ऐसे उसके शुभओंठ ॥ ६२ ॥ व उसके कण्ठमें तीनरेखाओं के मिस काम शपथ करता है कि स्वर्गभूमि और पाताल तीन लोकों के बीच स्त्री में यह रेखा कहीं नहीं है ॥ ६३ ॥ व मैं मानताहूं कि उसके दोनों कुच अमोल रत्नोंसे पूर्ण व सोहती हुई काम राजाकी दो कपड़कुटी (तम्बू) हैं ॥ ६४ ॥ व नईहैं भौंहें जिसकी उसकी मानतीनाकी देहके बीच व [illegible] योनिमें काम घरका नियम करने के लिये लखानेवाली लाठीसी ऊंची रोमपङ्क्ति को ब्रह्माने बनायाहै ॥ ६५ ॥ व उसकी नाभी कन्दरामें जाकर अंगहीन काम फिर देह

प्रायोमदनभूपालहर्म्यरत्नान्तरेशुभे ॥ जितप्रवालमुच्छायेतस्यारदनवाससी ॥ ६२ ॥ स्वर्गमर्त्यचपातालेनेमारे खाकचित्स्त्रियाम् ॥ तत्कण्ठरेखात्रितयव्याजेनशपतेस्मरः ॥ ६३ ॥ शङ्केचित्तभुवोराज्ञोलमत्पटकुटीद्वयम् ॥ अन र्घ्यरत्नकोशाढ्यन्तस्यावक्षोरुहद्वयम् ॥ ६४ ॥ अनङ्गभूनियमतोऽदृश्येमध्येनतभ्रुवः ॥ रोमालीलाञ्छिकामूर्ध्वामिवय ष्टिंनिर्मिव्यधात् ॥ ६५ ॥ तस्यानाभीदरींप्राप्यकन्दर्पोऽनङ्गताङ्गतः ॥ पुनःप्राप्तुमिवाङ्गानितप्यतेपरमंतपः ॥ ६६ ॥ गुरु पीननितम्बेनमहामन्मथदीक्षया ॥ सुविवेकेयुवानोनस्वाधीनाःप्रापिताद्दशाम् ॥ ६७ ॥ ऊरुस्तम्भेनचैतस्याःस्तम्भ नस्कस्यनोमनः ॥ तस्तम्भेनमुनेर्वापिसुवृत्तेनसुवर्तनम् ॥ ६८ ॥ पादाङ्गुष्ठनखज्योतिःप्रभयाकस्यनप्रभा ॥ विवेकज निताऽध्वंसिमुनेतस्यामृगीदृशः ॥ ६९ ॥ साप्रत्यहंज्ञानवाप्यांस्नात्वास्नात्वाशिवालये ॥ संमार्जनादिकर्माणिकुरुतेऽन न्यमानसा ॥ ७० ॥ तत्पादप्रतिविम्बेषुरेखाशष्पांकुरश्चरन् ॥ नान्यद्वनान्तरंयातिकाश्यांयूनांमनोमृगः ॥ ७१ ॥

मिलनेके लिये श्रेष्ठ तपस्या तपतासा है ॥ ६६ ॥ व भारी इसके नितम्बसे जो बड़ा कामहै उसकी दीक्षासे पृथिवीमें कौन कौन युवा जन नेत्रोंके सुवश नहीं पहुंचाये गये ॥ ६७ ॥ व इसकी स्त्म्भसी गोली जंघासे किस मुनिकाभी सुचाली मन ठूंठसा नहीं थम्भा है ॥ ६८ ॥ हे अगस्त्यमुने ! उस मृगनयनीके नीके पद अंगुठों कीनखज्योतिकी छटाने किसकी ज्ञानसे उपजी छबिको नहीं कटाकिया है ॥ ६९ ॥ व नहीं है अन्य में मन जिसका वह प्रतिदिन ज्ञानवापी में नहा नहाकर शिवालयमें झारना बहारना आदिकर्म करतीथी ॥ ७० ॥ व काशीमें उसके पांवों के प्रतिबिम्बों याने बालूमें बनेपदोंमें स्वस्तिक कमल यव आदिरेखारूप कोमल खरको चरताहुवा

युवाजनोंका मन मृग अन्य दूसरे वनको नहीं जाताथा ॥ ७१ ॥ व युवाजनों की आंख भौंरभीरने उसके मुख कमलको छोंड़कर सुगन्धितफूली हुई दूजीलताको भी न सेया ॥ ७२ ॥ वह सुनेत्राभी किसी का मुख न देखतीथी व अच्छे कानवालीभी किसी का वचन न सुनतीथी ॥ ७३ ॥ व शीलसे भरी सुशीला नाम वह कन्या उसके विरहसे व्याकुल सुन्दर पुरुषों से एकान्त में याची गईभी किसी में अभिलाषको नबोधतीभई ॥ ७४ ॥ तब युवा लोगोंने द्रव्यदेना कहकर उसके पितासे बहुत प्रार्थना किया परन्तु सुचालसे बढ़ीहै शोभा जिसकी उस सुशीलाको वह न देसका ॥ ७५ ॥ तब उस सुशीला कन्याने ज्ञानोदतीर्थकी सेवासे सब जगत्को बाहर भीतरसे लिंग

तदास्यपङ्कजंहित्वायूनांनेत्रालिमालया ॥ नलतान्तरमासेविश्रप्यामोदप्रसूनयुक् ॥ ७२ ॥ सुलोचनापिसाकन्याप्रेक्षेता स्यंनकस्यचित् ॥ सुश्रवा अपिसाबालानादत्तेकस्यचिद्वचः ॥ ७३ ॥ सुशीलाशीलसम्पन्नारहस्ताद्विरहातुरैः ॥ प्रार्थितापि सुरूपाढ्यैर्नाभिलाषम्बबन्धसा ॥ ७४ ॥ धनैस्तस्याजनेतापियुवभिःप्रार्थितोबहु ॥ नाशक्त्तांसुशीलांसदातुंशीलोर्जि तश्रियम् ॥ ७५ ॥ ज्ञानोदतीर्थमज्जनात्सासुशीलाकुमारिका ॥ बहिरन्तस्तदाऽद्राक्षीत्सर्वलिङ्गमयंजगत् ॥ ७६ ॥ क दाचिदेकदातान्तुप्रसुप्तांसदनाङ्गणे ॥ मोहितोरूपसम्पत्त्याकश्चिद्विद्याधरोऽहरत् ॥ ७७ ॥ व्योमवर्त्मनितांरात्रौयावन्म लयपर्वतम् ॥ सनिनीषतितावच्चविद्युन्मालीसमागतः ॥ ७८ ॥ राक्षसोभीषणवपुःकपालकृतकुण्डलः ॥ वसारुधि रलिप्ताङ्गश्मश्रुलःपिङ्गलोचनः ॥ ७९ ॥ राक्षसउवाच ॥ ममदृग्गोचरंयातोविद्याधरकुमारक ॥ अद्यत्वामेतयासार्धंप्रे षयामियमालयम् ॥ ८० ॥ इतिश्रुत्वापसावाक्यंव्याघ्राघ्रातामृगीयथा ॥ चकंपेऽतीवसंभीताकदलीदलवन्मुहुः ॥ ८१ ॥

मय देखा ॥ ७६ ॥ व एक समय कभी रूप सम्पत्तिसे मोहित कोई विद्याधर घर के आंगन से सोती हुई उसको हरलेगया ॥ ७७ ॥ व वह रातमें आकाश मार्ग के मार्ग उसको जब तक मलय पर्वतमें पहुँचाया चाहता है तब तक विद्युन्माली आया ॥ ७८ ॥ जो कि राक्षस याने रात्रिचारी व भारी भयानक देह व कपालको कुण्डल किये हुआ व मेदा और रक्तसे लीपेहुये अंग वाला व दढ़ीला व पीले रंगकी आंखों वाला है ॥ ७९ ॥ वह राक्षस बोला कि हे विद्याधरके पुत्र ! तू मेरे नेत्रों के विषयको प्राप्तहुआ है आज इसकेसाथ तुमको यमलोकको पठाताहूं ॥ ८० ॥ अनन्तर ऐसा उसका वचन सुनकर वह बाघसे सूंघी मृगीकी नाईं डरी व बारबार केलाकी

[illegible] कांपने लगी ॥ ८१ ॥ और उस राक्षसने विद्याधरको त्रिशूलसेमारा बहुत मधुर आकारवाला विद्याधरका कुमारभी ॥ ८२ ॥ जो कि उसके भयानक त्रिशूलसे [illegible] छाती फटा व बड़ा बलवान्था उसने वज्रपातके समान मूठीघातसे उसकोभी मारा ॥ ८३ ॥ संग्राममें जो कि, मनुष्योंके मांस और मेदासेमत्त विद्युन्मालीराक्षस था [illegible] मूठीघातसे चूर्णगया व भूमिमें गिरपड़ा ॥ ८४ ॥ व वज्रसे पर्वतकी नाईं वह राक्षस मृत्यु, के वशमें गतहुआ और उसके त्रिशूलसे विकल किया विद्याधरभी ॥ ८५ ॥ [illegible] आंखें घूमगई हैं वह गद्गद वचनको बोला कि हे प्यारी ! तू वृथा भलीभांति आनीगई है व स्वर और व्यञ्जन मिलकर छः अक्षरका जो सुशीलानामहै उसकी

निजघानत्रिशूलेनरक्षोविद्याधरंचतम् ॥ विद्याधरकुमारोपिनितरांमधुराकृतिः ॥ ८२ ॥ तद्भीषणत्रिशूलेनभिन्नोरस्को महाबलः ॥ जघानमुष्टिघातेनवज्रपातोपमेनतम् ॥ ८३ ॥ नरमांसवसामत्तंविद्युन्मालिनमाहवे ॥ चूर्णितोमुष्टिपातेन सोऽपतद्वसुधातले ॥ ८४ ॥ राक्षसोमृत्युवशगोवज्रेणेवमहीधरः ॥ विद्याधरोपितच्छूलघातेनविकलीकृतः ॥ ८५ ॥ उवाचगद्गदंवाक्यंविघूर्णितविलोचनः ॥ प्रियेमुधासमानीतासुशिल्यर्धोक्तिमुच्चरन् ॥ ८६ ॥ जहौप्राणान्रणेवीरस्तां प्रियांपरितस्मरन् ॥ ८७ ॥ अनन्यपूर्वसंस्पर्शसुखंसमनुभूयसा ॥ तमेवचपतिंमत्त्वाचक्रेशोकाग्निसात्तनुम् ॥ ८८ ॥ त्रिकूलपशरीरिण्यास्तस्याःसान्निध्यतःसहि ॥ दिव्यंवपुःसमासाद्यराक्षसस्त्रिदिवंययौ ॥ ८९ ॥ रणेपणीकृतप्राणोवि द्याधरसुतोपि सः ॥ अन्तेप्रियांस्मरन्प्राप जनुर्मलयकेतुतः ॥ ९० ॥ ध्यायन्तीसापि तं बालाविद्याधरकुमारकम् ॥

[illegible] इस उक्तिको कहताहुआ ॥ ८६ ॥ व सब ओरसे उस प्यारीको सुमिरता हुआ वह वीर संग्राममें प्राणोंको तजताभया ॥ ८७ ॥ व नहीं है अन्य पहले जिससे उस स्पर्शके सुखको भोगकर व उसी विद्याधरको पतिमानकर उस सुशीलाने देहको शोक अग्नि से भस्मकर दियायाने वह मरगई ॥ ८८ ॥ व तीन लिंगहैं देहमें जिसके उस सुशीलाके समीप होने से वह राक्षसभी दिव्य देहको धरकर स्वर्गको गया ॥ ८९ ॥ व संग्राम में पण (बाजी) कियाहै प्राणोंको जिसने वह विद्याधरका पुत्रभी अन्त में प्यारीको सुमिरताहुवा मलयकेतु नामक पितासे जन्मको पाया ॥ ९० ॥ व उस विद्याधरके पुत्रको ध्यावतीहुई विरहाग्निमें मरी वह कन्याभी कर्णाट (विद्या

नगर) में उत्पन्नभई ॥ ९१ ॥ तब कुछकालके बाद बापसे ब्याहदीगई उस कलावती कन्याको मलयकेतुकेपुत्र माल्यकेतुने ब्याहा जोकि कामसे शोभावान्था ॥ ९२ ॥ और पूर्वजन्मकी वासनाके योगसे शिवलिंगको पूजतीहुई उस कन्यानेभी चन्दन चूर्णको तजकर भस्मको बहुतमाना ॥ ९३ ॥ व उससहजसुन्दरीने मोती वैदूर्य्य माणिक्य और पुष्पराग मणिसे भी अधिक मोल रुद्राक्ष को भूषण माना ॥ ९४ ॥ व माल्यकेतुको पति पाकर दिव्यभोगोंकी समृद्धिको सेवतीहुई पतिव्रता कलावतीने तीन पुत्र पाया ॥ ९५ ॥ अनन्तर उत्तरदिशा में उत्पन्न किसी चितेराने एक समय माल्यकेतु राजाको विचित्र चित्रपट दिखाया ॥ ९६ ॥ व राजाने वह चित्रपटी कलावतीको दिया उसके

विरहाग्नौविसृष्टासुःकर्णाटेजन्मभागभूत ॥ ९१ ॥ सुतोमलयकेतोस्तांकालेनपरिणीतवान् ॥ माल्यकेतुरनङ्गश्रीःपित्रादत्तांकलावतीम् ॥ ९२ ॥ सापिप्राग्वासनायोगाल्लिङ्गार्चनरतासती ॥ हित्वामलयजक्षोदंविभूतिंबहुमेस्तवे ॥ ९३ ॥ मुक्तावैदूर्यमाणिक्यपुष्परागेभ्यएवसा ॥ मेनेरुद्राक्षनेपथ्यमनर्घ्यंगर्भसुन्दरी ॥ ९४ ॥ कलावतीमाल्यकेतुंपतिंप्राप्यपतिव्रता ॥ अपत्यत्रितयंलेभेदिव्यभोगसमृद्धिभाक् ॥ ९५ ॥ एकदाकश्चिदौदीच्योमाल्यकेतुंनरेश्वरम् ॥ चित्रकृच्चित्रपटिकांचित्रांदर्शितवानथ ॥ ९६ ॥ तांतुचित्रपटींराजाकलावत्यैसमार्पयत् ॥ साथचित्रपटींरम्यांसंप्रहृष्टतनूरुहा ॥ ९७ ॥ मुहुर्मुहुःप्रपश्यन्तीरहसिप्राणदेवताम् ॥ विसस्मारस्वमपिचसमाधिस्थेवयोगिनी ॥ ९८ ॥ क्षणमुन्मील्यनयनेकृत्वानेत्रातिथिंपटीम् ॥ तर्जन्यग्रमथोत्क्षिप्यस्वात्मानंसमबोधयत् ॥ ९९ ॥ संभेदोयमसेरम्यउपलोलार्कमग्रतः ॥ उपश्रीकेशवपदंवरणैषासरिद्वरा ॥ १०० ॥ स्वर्गेप्रार्थितसंस्पर्शासैषास्वर्गतरङ्गिणी ॥ उदग्वहाभिलष्य

बाद सुन्दर चित्रपटीको पाकर वह रोमाञ्चित अङ्गवाली होकर ॥ ९७ ॥ एकान्तमें बारबार प्राणदेवता विश्वनाथको देखतीहुई समाधि में टिकी योगिनीकी नाईं अपना को भी बिसरगई ॥ ९८ ॥ व क्षणमें आंखोंको खोलकर चित्रपटी को नेत्रगोचरकर अनन्तर तर्जनी अंगुलीका अग्रभाग उठाकर उसने अपने आत्माको बोध दिया ॥ ९९ ॥ कि लोलार्क के समीप में आगे यह सुन्दर असीसंगमहै व श्रीकेशवस्थानके लगे यह नदियों में बड़ी वरणाहै ॥ १०० ॥ व स्वर्ग में प्रार्था जाताहै स्पर्श जिसका वह यह

[illegible] वाली गङ्गा है कि जिसको स्वर्ग के सम्बन्धी देवलोग सदा चाहतेहैं ॥ १ ॥ व जो वेदान्तमें मन वचनसे परे मोक्षलक्ष्मी पढ़ीजाती है वह यह श्रीमतीमणिकर्णिका [illegible] लोकी याने यहां मरे प्राणिमात्रकी मुक्तिके लिये है ॥ २ ॥ जहां मरना मंगल है व जहां जीना सफलहै व जहां स्वर्ग भी तृणुका सा होताहै वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ३ ॥ व जहां मरनेकी इच्छा से धनसमूहको देकर व संन्यासियों के वैराग्य व अहिंसा आदि व्रतको आधार कर कन्द व मूलको खाताहुवा पुण्यवान् जन टिकता है ॥ ४ ॥ व जहां मरे जनों को मोक्षमार्ग दिखातेहुये व अपने भाल में टिके बाल चन्द्र समेत त्रिलोकी की गलीमें चली गंगाको ढूंढ़तेहुये महादेवजी हैं ॥ ५ ॥ व

न्तियांदिवौकसः सदा ॥ १ ॥ अलक्ष्यामोक्षलक्ष्मीर्यावेदान्तेपरिपठ्यते ॥ विमुक्तयेमतांसैषाश्रीमतीमणिकर्णिका ॥ २ ॥ मरणंमङ्गलंयत्रसफलंयत्रजीवितम् ॥ स्वर्गस्तृणायतेयत्रसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ ३ ॥ यत्रसम्पत्तिसम्भारान्विश्राणयनिधनेच्छया ॥ यतिव्रतंसमालम्ब्यतिष्ठतेमूलकन्दभुक् ॥ ४ ॥ यत्रत्रिमार्गगांगङ्गांमार्गमाणोमृतान्हरः ॥ स्वमौलिबालचन्द्रेणमुक्तिमार्गंप्रदर्शयन् ॥ ५ ॥ संसारंयत्रदुर्वारंप्रतारयतिशङ्करः ॥ मृताअप्यमृतायन्तेकर्णधारायतोनराः ॥ ६ ॥ संसारसारपदवीयत्रस्याददवीयसी ॥ कर्णेजपान्महेशानात्करुणावरुणालयात् ॥ ७ ॥ अनेकभवसम्भूतप्रभूतसुकृतैर्नराः ॥ कर्णेजपंभवंयत्रलभन्तेतेभवापहम् ॥ ८ ॥ स्वीकृत्यक्षेत्रसंन्यासंयद्बलेनमहाधियः ॥ तृणंकृतान्तंमन्यन्तेसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ९ ॥ तृणीकृत्यनिजंदेहंयत्रराजर्षिसत्तमः ॥ हरिश्चन्द्रःसपत्नीकोऽव्यक्रीणाद्भूरियंहि सा ॥ १० ॥ अभिलष्यन्तियत्रत्यमपिवैकुण्ठवासिनः ॥ सैकतंमृदुलंतल्पंसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ ११ ॥

जहां वे शंकर जी दुःखसे निवारण योग्य संसार को छलते हैं याने पार उतारते हैं कि जिन गुरु से उपदेश पाकर मरे भी मनुष्य अमृत से हैं अर्थात् मुक्त होते हैं ॥ ६ ॥ व जहां मरतेहुये के दहिने कान में तारक मंत्रको कहतेहुये दयासमुद्र शिवसे संसार सार (दृढ़मार्ग) अदूर है ॥ ७ ॥ व अनेक जन्मों में हुये बहुते पुण्यसमूहों से संयुत जो मनुष्यहैं वे जहां कान में मन्त्र जपतेहुये संसारनाशक महादेवको लहते हैं ॥ ८ ॥ व बड़ी बुद्धिवाले लोग क्षेत्रसंन्यास को अंगीकार कर जिसके बलसे कालको तृणसे मानते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ९ ॥ और राजऋषियों में श्रेष्ठ व स्त्री समेत हरिश्चन्द्र ने अपनी देहको खरकर जहां बेचा है वह यही भूमि

है ॥ १० ॥ व वैकुण्ठवासी जन भी जहांके कोमल वालूमय शयनको अभिलाष करते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिकाहै ॥ ११ ॥ व बहुते जन्मों में उपजे कर्मसूत्र बन्धनको छोर कर जन जहां मुक्तहोवे हैं वह यह श्रीमणिकर्णिकाहै ॥ १२ ॥ आश्चर्य्य है कि सत्यलोक में भी जे जनहैं वे कैवल्य मिलने के लिये जिसको निरन्तर प्रार्थते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ १३ ॥ और वह यह कुलस्तम्भाहै कि जहां तीव्र यातना को दिखातेहुये कालभैरवजी क्षेत्रमें पापकारी कुविचारी मनुष्योंको सिखाते याने दण्डदेते हैं ॥ १४ ॥ अन्यत्र किये पाप काशी के दर्शन से नशाते हैं व काशी में किये पापों की यही उग्र यातनाहै ॥ १५ ॥ और यह वही पवित्र कपालमोचन तीर्थ है जहां

अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्रणम् ॥ उन्मुच्ययत्रमुक्ताःस्युःसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ १२ ॥ सत्यलोकेऽपियेलोकास्तेऽर्थयन्तिनिरन्तरम् ॥ यामहोदीर्घनिद्रायैसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ १३ ॥ अयंहिसकुलस्तम्भोयत्रश्रीकालभैरवः ॥ क्षेत्रपापकृतःशास्तिदर्शयंस्तीव्रयातनाम् ॥ १४ ॥ अन्यत्रविहितम्पापंनश्येत्काशीनिरीक्षणात् ॥ काश्यांकृतानांपापानांदारुणैयन्तुयातना ॥ १५ ॥ कपालमोचनंतीर्थमेतत्तदपिपावनम् ॥ कपालंपतितंयत्रविधेर्भैरवपाणितः ॥ १६ ॥ ऋणत्रयाद्विमुच्यन्तेयत्रस्नातानरोत्तमाः ॥ तीर्थंविशुद्धिजनकंतदेतदृणमोचनम् ॥ १७ ॥ प्रणवाख्यंपरंब्रह्मयत्रनित्यंप्रकाशते ॥ सपञ्चायतनोपेतओङ्कारेशोयमद्भुतः ॥ १८ ॥ अश्चउश्चमकारश्चनादोविन्दुश्चपञ्चमः ॥ पञ्चात्मकंपरंब्रह्मयत्रनित्यंप्रकाशते ॥ १९ ॥ एषामत्स्योदरीरम्यायत्स्नातोमानवोत्तमः ॥ मातुर्जातूदरदरींनविशेदेषनिश्चयः ॥ २० ॥ त्रिलोचनोयंभगवान्कुर्यादेवत्रिलोचनम् ॥ निजभक्तंकृपायुक्तस्त्वपिदेशान्तरास्थितम् ॥ २१ ॥ अ

भैरवके हाथ से ब्रह्माका कपाल गिराथा ॥ १६ ॥ व जहां नहाये हुये नरश्रेष्ठ, देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणसे छूटतेहैं वह यह विशुद्धिकर्ता ऋणमोचन तीर्थ है ॥ १७ ॥ व ॐकार नामक परब्रह्म जहां नित्यही प्रकाशताहै वह पांचों के आधार यह ॐकारनाथ अद्भुत हैं ॥ १८ ॥ कि जिनमें अ, उ,म, नाद और पँचवां विन्दु इन पांचों का रूप परब्रह्म सदा सोहता है ॥ १९ ॥ और यह रुचिर मत्स्योदरी नदी है जहां नहाया हुआ मनुष्यवर माताकी गर्भ कन्दरामें कभी न पैठे यह निश्चय है ॥ २० ॥ व ये ऐश्वर्य्यसम्पन्न कृपालु त्रिलोचन हैं जो कि दूसरे देशमें बसते हुये भी अपने भक्तों को त्रिलोचन करते हैं याने सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ २१ ॥ व यह

कामेश्वर देव हैं जो कि सन्तों के अभिलाष को पूरकरते हैं व जहां दुर्वासा भी अपने मनोरथ के बड़े उदय को पहुंचे हैं दुर्वासा नाम से यह जानाजाता है कि क्रोधी आदि लोगभी यहां कामनाको पाते हैं तो सन्तों की क्या कहनाहै ॥ २२ ॥ व भक्तों के मनोरथकी सिद्धिके लिये महेश जी यहां आपही लीन हुयेहैं उस कारण इन देवदेव त्रिशूलधारी का स्वर्लीनेश्वर नामहै ॥ २३ ॥ व काशी में जो भगवान् महादेव पुराणों में क्षेत्रके अभिमानी देवता पढ़े जाते हैं उनका यह अद्भुत मण्डप है ॥ २४ ॥ यह यह स्कन्देश्वर देवहैं कि जिसके श्रद्धासमेत दर्शन से मनुष्य जन्मभरके ब्रह्मचर्य्यका फल पावैहै ॥ २५ ॥ व ये सब सिद्धिदायक विनायकनाथ हैं जिनकी

सोकामेश्वरोदेवोयःकामान्पूरयेत्सताम् ॥ दुर्वासाअपियत्रापनिजकाममहोदयम् ॥ २२ ॥ स्वयंलीनोमहेशोत्रभक्तकामसमृद्धये ॥ तस्मात्स्वर्लीनसंज्ञास्यदेवदेवस्यशूलिनः ॥ २३ ॥ वाराणस्यांमहादेवोयःपुराणेषुपठ्यते ॥ क्षेत्राभिमानीभगवांस्तत्प्रासादोयमद्भुतः ॥ २४ ॥ असौस्कन्देश्वरोदेवःश्रद्धयायद्विलोकनात् ॥ आजन्मब्रह्मचर्यस्यफलमाप्नोतिमानवः ॥ २५ ॥ विनायकेश्वरश्चायंसर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ यत्सेवयाप्रणश्यन्तिनृणांसर्वेविनायकाः ॥ २६ ॥ इयंवाराणसीदेवीसाक्षान्मूर्त्तिमयीशुभा ॥ यस्याविलोकनात्पुंसांभूयोनोगर्भसम्भवः ॥ २७ ॥ पार्वतीश्वरलिङ्गस्यमहदायतनंत्विदम् ॥ यत्रनित्यंमहेशानोगौर्यासहविमुक्तिदः ॥ २८ ॥ एषभृङ्गीश्वरःश्रीमान्महापातकनाशनः ॥ जीवन्मुक्तोऽभवद्भृङ्गीयस्यलिङ्गस्यसेवया ॥ २९ ॥ चतुर्वेदेश्वरश्चैषचतुर्वेदधरोविधिः ॥ लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रोवेदाध्ययनजंफलम् ॥ ३० ॥ यज्ञैःसंस्थापितश्चैतल्लिङ्गंयज्ञेश्वराभिधम् ॥ यदर्चनाल्लभेन्मर्त्यःसर्वयागफलंमहत् ॥ ३१ ॥ पुराणेश्वरनामैतल्लि

सवारे मनुष्यों के सब विघ्न कारण कटते हैं ॥ २६ ॥ व प्रत्यक्ष मूर्तिवाली मंगलमयी यह काशी देवी है जिसके देखनेसे लोगोंका फिर गर्भ में होना नहींहै ॥ २७ ॥ व पार्वतीश्वर नाम लिंगका यह बड़ा मन्दिर है जहां पार्वती के साथ महेशजी सदा मुक्तिदाताहैं ॥ २८ ॥ व ये महापापनाशक श्रीभृंगीश्वर हैं जिस लिंगकी सेवासे भृंगी जीवन्मुक्त हुवाहै ॥ २९ ॥ व यह चतुर्वेदेश्वर व चार वेदधर विधाता हैं जिसके दर्शनसे ब्राह्मण वेद पढ़नेका फलपावे है ॥ ३० ॥ व यह यज्ञोंका थापा यज्ञेश्वर नामक लिंगहै जिसके पूजने से मनुष्य सब यज्ञोंका महाफल पावे है ॥ ३१ ॥ व यह अठारह अंगुलका पुराणेश्वर नामक लिंगहै जिसके दर्शन से अठारह विद्याओं

का आधार होवैहै ॥ ३२ ॥ व यह स्मृतियोंका थापा धर्मेशाख्येश्वर लिंगहै जिसके देखनेसे स्मृति पढ़ने की पुण्य होवैहै ॥ ३३ ॥ व सब अज्ञाननाशक यह सारस्वत लिंगहै व यह सर्वतीर्थेश्वर लिंग है जोकि शीघ्र अन्तःकरण की शुद्धिका दाता है ॥ ३४ ॥ व शैलेश्वर लिंगका यह बड़ा विचित्र मण्डप है जो सब रत्नसमूहों की उत्तम शोभाको धारता है ॥ ३५ ॥ व यह मनोहर सप्तसागरेश्वरनामक लिंगहै जिसके दर्शन से मनुष्य सात समुद्र नहानेका फल पावैहै ॥ ३६ ॥ व यह श्रीमान् मंत्र जपका फलदाता मंत्रेश्वर नाम लिंग है जिसको सतयुग में सात करोड़ महामंत्रोंने थापाहै ॥ ३७ ॥ व त्रिपुरेश लिंगके आगे यह बड़ा कुण्डहै जोकि पहले त्रि-

ङ्गमष्टादशाङ्गलम् ॥ अष्टादशानांविद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात् ॥ ३२ ॥ धर्मशास्त्रेश्वरश्चायंस्मृतिभिश्चप्रतिष्ठितः॥ स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यंयद्विलोकनतोभवेत् ॥ ३३ ॥ सारस्वतमिदंलिङ्गंसर्वजाड्यविनाशकृत् ॥ सर्वतीर्थेश्वरंलिङ्गमेत त्सद्योविशुद्धिदम् ॥ ३४ ॥ शैलेश्वरस्यलिङ्गस्यमण्डपोयंमहाद्भुतः ॥ सर्वेषांरत्नजातानांयोबिभर्तिपरांश्रियम् ॥ ३५॥ सप्तसागरसंज्ञंवैलिङ्गमेतन्मनोहरम् ॥ यद्वीक्षणाल्लभेन्मर्त्यःसप्ताब्धिस्नानजंफलम् ॥ ३६ ॥ असौमन्त्रेश्वरःश्रीमा न्मन्त्रजाप्यफलप्रदः ॥ सप्तकोटिमहामन्त्रैःस्थापितोयःपुरायुगे ॥ ३७ ॥ त्रिपुरेशस्यलिङ्गस्यपुरःकुण्डमिदंमहत् ॥ त्रिपुरैःखानितम्पूर्वंत्रिपुरारिप्रियम्परम् ॥ ३८ ॥ इदंबाणेश्वरंलिङ्गंसहस्रभुजपूजितम् ॥ द्विभुजस्यापिबाणस्यसहस्रभु जहेतुकम् ॥ ३९ ॥ वैरोचनेश्वरश्चैषपुरःप्रह्लादकेशवात् ॥ बलिकेशवनामासावेषनारदकेशवः ॥ ४० ॥ आदिकेशवपू र्वेणात्वयमादित्यकेशवः ॥ भीष्मकेशवनामासौदत्तात्रेयेश्वरस्त्वयम् ॥ ४१ ॥ दत्तात्रेयेश्वरात्पूर्वमेषआदिगदाधरः॥ भृगुकेशवनामासावेषवामनकेशवः ॥ ४२ ॥ नरनारायणावेतौयज्ञवाराहकेशवः ॥ विदारनारसिंहोयंगोपीगोविन्द

पुरवासियों का खनाया है महादेवका प्यारा और उत्तम है ॥ ३८ ॥ व सहस्रबाहु से पूजित यह बाणेश्वर लिंगहै जोकि दो बांहवाले बाणासुर की हजार बांहोंका कारण है ॥ ३९ ॥ व प्रह्लादकेशव से पूर्व यह वैरोचनेश्वर व यह बलिकेशव नामक व यह नारदकेशव है ॥ ४० ॥ व यह आदिकेशवके पूर्वमें आदित्यकेशव व यह भी-ष्मकेशव व यह दत्तात्रेयेश्वर ॥ ४१ ॥ व यह दत्तात्रेयेश्वर के पूर्व में आदिगदाधर व यह भृगुकेशवनामक व यह वामनकेशवहै ॥ ४२ ॥ व ये नरनारायण व यह यज्ञ

वाराहकेशव व यह विदारनारसिंह व यह गोपीगोविन्द हैं ॥ ४३ ॥ व यह रत्नरचित, लक्ष्मीनृसिंह का मंडपहै जिसकी प्रसन्नतासे प्रह्लादजीने इन्द्रासन पायाहै ॥ ४४ ॥ व लोगोंको बड़ी सिद्धिदायक ये सर्वविनायक हैं व पूर्वसमय में शेषसे थापे गये ये शेषमाधव हैं ॥ ४५ ॥ जिनके भक्त संकर्षणके मुखकी आगसे नहीं जलते हैं [illegible] शंखमाधवनामक ये शंखासुर को मारकर यहां भलीभांति से टिकेहैं ॥ ४६ ॥ व परब्रह्म रसका स्थान यह सारस्वत सोता है जहां महानदी सरस्वती व गंगाका संगम हुआहै ॥ ४७ ॥ व जहां नहाये नर फिर पृथिवीतलमें नहीं जन्मतेहैं व साक्षात् लक्ष्मी जीके पति सब से परे ये श्रीबिंदुमाधव हैं ॥ ४८ ॥ जिनके श्रद्धासे नमस्कारकर नर

एषह ॥ ४३ ॥ एषलक्ष्मीनृसिंहस्यप्रासादोरत्नकेतनः ॥ यस्यप्रसादात्प्रह्लादःपदमैन्द्रमवाप्तवान् ॥ ४४ ॥ असर्वसिद्धिदः पुंसामेषसर्वविनायकः ॥ शेषमाधवनामासौशेषेणस्थापितःपुरा ॥ ४५ ॥ यस्यभक्तानदह्यन्तेत्वपिसंवर्तवह्निना ॥ शङ्खमाधवनामासौशङ्खंहत्वात्रसंस्थितः ॥ ४६ ॥ इदंसारस्वतंस्रोतःपरंब्रह्मरसायनम् ॥ सरस्वत्यामहानद्यासङ्गमोयत्र गङ्गया ॥ ४७ ॥ यत्राप्लुतानराभूयःसम्भवन्तिनभूतले ॥ श्रीविन्दुमाधवस्त्वेषसाक्षाल्लक्ष्मीपतिःपरः ॥ ४८ ॥ श्रद्धया येनमन्मर्त्योनवसेद्गर्भवेश्मनि ॥ नदारिद्र्यमवाप्नोतिव्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४९ ॥ विन्दुमाधवभक्तोयस्तंयमोपिनमस्यति ॥ प्रणवात्मायएकोऽस्तिनादविन्दुस्वरूपधृक् ॥ ५० ॥ अमूर्तंयत्परंब्रह्मविन्दुमाधवएवसः ॥ एतत्पञ्चनदन्तीर्थंपञ्चब्रह्मात्मसंज्ञकम् ॥ ५१ ॥ यत्रस्नातोनगृह्णीयाच्छरीरंपाञ्चभौतिकम् ॥ एषासामङ्गलागौरीकाश्यांपरममङ्गलम् ॥ ५२ ॥ यत्प्रसादादवाप्नोतिनरोऽत्रचपरत्रच ॥ मयूखादित्यसंज्ञोयंरश्मिमालीतमोपहः ॥ ५३ ॥ गभस्तीशोमहालिङ्गमे

गर्भघर में न बसे न दारिद्र्यको प्राप्तहोवे और न रोगसे दबे ॥ ४९ ॥ जो बिंदुमाधव का भक्तहै उसको यम भी बन्दता है व नादबिंदुस्वरूपधारी ॐकार वाच्य जो एक है ॥ ५० ॥ व जो अरूप परब्रह्म है वह बिंदुमाधवही हैं व पंच ब्रह्मात्मक यह पंचनदतीर्थ है ॥ ५१ ॥ जहां नहाया हुआ नर पांच तत्त्व की देहको न गहै व यह वह मंगला गौरीहैं काशीमें परम मंगल को ॥ ५२ ॥ जिसके प्रसाद से मनुष्य इस उस लोक में भी पाताहै व यह अज्ञाननाशक मयूखादित्य संज्ञक सूर्य्य हैं ॥ ५३ ॥ व

...व्य ज्योतिवाला गभस्तीशनामक महालिंग है मार्कण्डेयने आगे यहां बड़ा तप कियाहै ॥ ५४ ॥ व अपने नामसे श्रेष्ठ लिंगको थापकर जोकि सबसे परे और आयु ... जाताहै व त्रिलोक में प्रसिद्ध यह किरणेश्वर नाम लिंगहै ॥ ५५ ॥ यह एक बार भी नमस्कार कियेहुये लोगोंको सूर्य्यलोक में पठाता है व यह पापनाशक धौतपापे- ... लिंगहै ॥ ५६ ॥ व भक्तोंका मोक्ष कारण यह निर्वाणनृसिंह है व महामणियों से भूषित यह मणिप्रदीप नागहै ॥ ५७ ॥ जिसके पूजने से मनुष्य नागोंसे कभी न ... व कपिलका थापा यह कपिलेश लिंगहै ॥ ५८ ॥ इसके दर्शन से बानर भी संसार से छूटे तब मनुष्योंका क्या कहना है यह बड़ा प्रियव्रतेश्वर लिंग प्रकाशता

...दिव्यमहःप्रदम् ॥ मृकण्डुसूनुनाप्यत्रतपस्तप्तंपुरामहत् ॥ ५४ ॥ लिङ्गंसंस्थाप्यपरमंस्वनाम्नायुःप्रदम्परम् ॥ किरणेश्व रनामैतल्लिङ्गंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५५ ॥ सकृन्नतमिदंलोकंनयेत्किरणमालिनः ॥ धौतपापेश्वरंलिङ्गमेतत्पातकधावन म् ॥ ५६ ॥ निर्वाणनरसिंहोयंभक्तनिर्वाणकारणम् ॥ मणिप्रदीपनागोयंमहामणिविभूषणः ॥ ५७ ॥ यदर्चनान्नरोजा तुननागैःपरिभूयते ॥ कपिलेशमिदंलिङ्गंकपिलेनप्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥ मुच्यन्तेकपयोप्यस्यदर्शनात्किमुमानवाः ॥ प्रियव्रतेश्वरंलिङ्गंमहदेतत्प्रकाशते ॥ ५९ ॥ यस्यार्चनाल्लभेज्जन्तुःप्रियत्वंसर्वजन्तुषु ॥ इदमायतनंश्रेष्ठंमणिमाणि क्यनिर्मितम् ॥ ६० ॥ श्रीमतःकालराजस्यकलिकालार्तिहारिणः ॥ निजभक्तंजनंपातियःपापात्पापभक्षणः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रविघ्नकरान्पापान्यातयन्यातनाशतैः ॥ इयंमन्दाकिनीरम्यातपस्तप्तुमिहागता ॥ ६२ ॥ काशीवाससुखंप्राप्य नायापिदिवमीहते ॥ स्नात्वात्रसन्तर्प्यपितॄञ्छ्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ ६३ ॥ नरोननरकंपश्येदपिदुष्कृतकर्मकृत् ॥

है ॥ ५९ ॥ जिसकी पूजासे जन्तु सब जन्तुओं में प्यारा भाव पावै व मणिमाणिक से बना यह श्रेष्ठ मन्दिर ॥ ६० ॥ कलिकालपीड़ाहारी श्रीकालराजका है जो पाप- भक्षण अपने भक्तजनों को पापसे बचाते हैं ॥ ६१ ॥ व क्षेत्रविघ्नकारी पापियों को सैकड़ों यातनाओं से पीड़ते हैं व तपस्या करने को यहां आई यह मनोहर मंदाकिनी है ॥ ६२ ॥ काशीवासका सुख पाकर अब भी स्वर्गको नहीं जाती है यहां नहाकर पितरों को तरप व विधिसे श्राद्धकर ॥ ६३ ॥ पापी भी नर नरकको न देखे व काशी

में जो कोई हजारों लिंगहैं ॥ ६४ ॥ उनमें यह रत्नेश्वरनामक लिंगरत्न है रत्नेश्वरके प्रसाद से बहुतै रत्नोंको भोगकर ॥ ६५ ॥ पुरुषार्थों में बड़े रत्नरूप मोक्षको किसने नहीं पाया व यह कृत्तिवासेश्वरके महामन्दिर की बनावट है ॥ ६६ ॥ जिसको दूरसे देखकर भी मनुष्य कृत्तिवासनामक शिवका स्थान पावे व कृत्तिवासेश्वर सब लिंगोंका शिरहै ॥ ६७ ॥ ओंकारेश चोटी जाननीयहै व त्रिलोचनेश्वर आंखें हैं व गोकर्णेश्वर और भारभूतेश्वर ये दोनों उसके कान कहेगये हैं ॥ ६८ ॥ विश्वेश्वर व अविमुक्तेश्वर ये दोनों दहिने हाथहैं धर्मेश्वर व मणिकर्णेश्वर ये दो बायें हाथहैं ॥ ६९ ॥ कालेश्वर व कपर्दीश्वर निर्मल पांवहैं ज्येष्ठेश्वर नितंब है मध्यमेश्वर नाभिहै ॥ ७० ॥ महादेव

यानिकानिचलिङ्गानिकाश्यांसन्तिसहस्रशः ॥ ६४ ॥ रत्नभूतमिदन्तेषुलिङ्गंरत्नेश्वराभिधम् ॥ रत्नेश्वरप्रसादेनभुक्त्वा रत्नान्यनेकशः ॥ ६५ ॥ पुरुषार्थमहारत्नंनिर्वाणंकोनलब्धवान् ॥ कृत्तिवासेश्वरस्यैषामहाप्रासादनिर्मितिः ॥ ६६ ॥ यांदृष्ट्वापिनरोदूरात्कृत्तिवासःपदंलभेत् ॥ सर्वेषामपिलिङ्गानांमौलित्वंकृत्तिवाससः ॥ ६७ ॥ ॐकारेशःशिखाज्ञेयालोचनानित्रिलोचनः ॥ गोकर्णभारभूतेशौतत्कर्णौपरिकीर्तितौ ॥ ६८ ॥ विश्वेश्वराविमुक्तौचद्वावेतौदक्षिणौकरौ ॥ धर्मेशमणिकर्णेशौद्वौकरौदक्षिणेतरौ ॥ ६९ ॥ कालेश्वरकपर्दीशौचरणावतिनिर्मलौ ॥ ज्येष्ठेश्वरोनितम्बश्चनाभिर्वैमध्यमेश्वरः ॥ ७० ॥ कपर्दोस्यमहादेवःशिरोभूषाश्रुतीश्वरः ॥ चन्द्रेशोहृदयन्तस्यआत्मावीरेश्वरःपरः ॥ ७१ ॥ लिङ्गन्तस्यतुकेदारःशुक्रंशुक्रेश्वरंविदुः ॥ अन्यानियानिलिङ्गानिपरःकोटिशतानिच ॥ ७२ ॥ ज्ञेयानिनखलोमानिवपुर्भूषणान्यपि ॥ यावेतौदक्षिणौहस्तौनित्यनिर्वाणदौहितौ ॥ ७३ ॥ जन्तूनामभयन्दत्त्वापततांमोहसागरे ॥ इयन्दुर्गाभगवतीपितृलिङ्गमिदम्परम् ॥ ७४ ॥ इयंहिचित्रघण्टेशीघण्टाकर्णह्रदस्त्वयम् ॥ इयंसाललितागौरीविशालाक्षीयम

इसका जटाजूट है व श्रुतीश्वर शिरके गहने हैं चन्द्रेश्वर उसका हृदय है श्रेष्ठ वीरेश्वर अहंकारहै ॥ ७१ ॥ व केदार उसका लिंगहै व शुक्रेश्वर को बीज कहते हैं व सैकड़ों करोड़ों से अधिक जो अन्य अनंत लिंगहैं ॥ ७२ ॥ वे नह रोम और अंगके आभूषण भी जानने योग्यहैं व जो ये दहिने हाथ याने विश्वनाथ व अविमुक्तेश्वर हैं ॥ ७३ ॥ वे मोहसमुद्र में पड़तेहुये मनुष्यों को अभय देकर सदैव मोक्षदाता हैं और यह भगवती दुर्गाहैं व यह उत्तम पितृलिंगहै॥७३।७४॥ व यह चित्रघंटेशी देवीहै यह

पंचाक्षणंकुण्ड है यह ललिता देवी और यह अद्भुतरूपा विशालाक्षी है ॥ ७५ ॥ व यह आशाविनायकहै यह अद्भुत धर्मकूप है जहां मनुष्य पिण्डा देकर पितरों को ब्रह्मा के लोकको पठावे है ॥ ७६ ॥ व यह सबसे परे जगत्की मुख्य माता विश्वभुजा हैं व यह त्रिलोक से वंदित वंदी देवीहै ॥ ७७ ॥ जोकि सुमिरी हुई बड़ी बंधनमें टिके भी मनुष्योंको छुड़ाती है व यह त्रिलोकवन्दित दशाश्वमेध तीर्थ है ॥ ७८ ॥ जहां तीनि आहुति से भी अग्निहोत्रका फल पावे व यह सब तीर्थों में अतिउत्तम प्रयाग तीर्थहै ॥ ७९ ॥ व यह अशोक तीर्थ है यह गंगाकेशव भी व यह श्रेष्ठ मोक्षद्वार और इसको स्वर्गद्वार कहते हैं ॥ १८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेज्ञानवापीवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

द्भुता ॥ ७५ ॥ आशाविनायकस्त्वेषधर्मकूपोयमद्भुतः ॥ यत्रपिण्डान्नरोदत्त्वापितॄन्ब्रह्मपदंनयेत ॥ ७६ ॥ एषाविश्वभुजादेवीविश्वैकजननीपरा ॥ असौवन्दीमहादेवीनित्यन्त्रैलोक्यवन्दिता ॥ ७७ ॥ निगडस्थानपिजनान्पाशान्मोचयतिस्मृता ॥ दशाश्वमेधिकन्तीर्थमेतत्त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ ७८ ॥ यत्राहुतित्रयेणापिअग्निहोत्रफलंलभेत् ॥ प्रयागाख्यमिदंस्रोतःसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ७९ ॥ अशोकाख्यमिदन्तीर्थंगङ्गाकेशवएषवै ॥ मोक्षद्वारमिदंश्रेष्ठंस्वर्गद्वारमिदंविदुः ॥ १८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्ञानवापीवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पुनर्ददर्शतन्वङ्गीचित्रपट्याङ्कटोद्भव ॥ स्वर्गद्वारात्पुरोभागेश्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ १ ॥ संसारसर्पदष्टानांजन्तूनांयत्रशङ्करः ॥ अपसव्येनहस्तेनब्रूतेब्रह्मस्पृशञ्छ्रुतिम् ॥ २ ॥ नकापिलेनयोगेननसांख्येननचव्रतैः ॥ यागतिःप्राप्यतेपुम्भिस्तान्दद्यान्मोक्षभूरियम् ॥ ३ ॥ वैकुण्ठेविष्णुभवनेविष्णुभक्तिपरायणाः ॥ जप्युःसततंमुक्त्यै

॥ ॥ ॥ ॥

चौंतिसवें अध्यायमें मणिकर्ण्यादि बखानि । परम प्रशंसित तीर्थ तहँ ज्ञानवापिका जानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्य ! फिर उस पतले अंगवालीने स्वर्गद्वारके आगे श्रीयुत मणिकर्णिका को देखा ॥ १ ॥ जहां संसार सांपसे डसे लोगोंके दहिने कानमें शिवजी दहिने हाथसे ब्रह्मज्ञानको कहते हैं ॥ २ ॥ व देवहूती से कपिलका कहा योग व आत्मा अनात्माका विचार इनसे मनुष्यों को जो गति नहीं मिलती है उसको यह मोक्षभूमि देतीहै ॥ ३ ॥ व विष्णुलोक वैकुण्ठ में मुक्ति के लिये

निरन्तर विष्णुभक्त जिस श्रीमणिकर्णिका को जपते हैं ॥ ४ ॥ और ब्राह्मणोत्तम जीवन पर्य्यन्त अग्निहोत्र होमकर भी मुक्तिके लिये अन्त में जिसको सेवते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ५ ॥ व पृथिवी में विधिवत् वेदोंको पढ़कर ज्ञान या वेद यज्ञ में रत ब्राह्मण मुक्तिके लिये जिसको सेवते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ६ ॥ व धन्य राजालोग सम्पूर्ण दक्षिणावाली अनेक यज्ञोंको पूजनकर अन्तमें मुक्तिके लिये मणिकर्णिका के ऊपर भागको आधार करते हैं ॥ ७ ॥ व पतिव्रता स्त्रियां भी निरन्तर मुक्तिकेलिये पतिके पीछे जाकर याने सतीहो मणिकर्णिकाको सेवती हैं ॥ ८ ॥ व न्यायसे कमाया सम्पत्ति जिन्होंने ने वैश्य भी धनोंको सज्जनों के अधीनकर अर्थात् उनको

श्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ ४ ॥ हुत्वाग्निहोत्रमपिचयावज्जीवन्द्विजोत्तमाः ॥ अन्तेश्रयन्तेमुक्त्यैयांसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ५ ॥ वेदान्पठित्वाविधिवद्ब्रह्मयज्ञरतामुवि ॥ यांश्रयन्तिद्विजामुक्त्यैसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ६ ॥ इष्ट्वाक्रतूनपिन्नृपानहून्सर्वान्सदक्षिणान् ॥ अन्यतेश्रेयसेधन्याःप्रान्तेऽधिमणिकर्णिकम् ॥ ७ ॥ सीमन्तिन्योपिसततंपातिव्रतपरायणाः ॥ मुक्त्यैपतिमनुव्रज्यश्रयन्तिमणिकर्णिकाम् ॥ ८ ॥ वैश्याअपिचसेवन्तेन्यायोपार्जितसम्पदः ॥ धनानिसाधुसात्कृत्वाप्रान्तेश्रीमणिकर्णिकाम् ॥ ९ ॥ त्यक्त्वापुत्रकलत्रादिसच्छूद्रान्यायमार्गगाः ॥ निर्वाणप्राप्तयेचैनांभजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १० ॥ यावज्जीवञ्चरन्तोपिब्रह्मचर्यञ्जितेन्द्रियाः ॥निःश्रेयसेश्रयन्त्येनांश्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ ११ ॥ अतिथीनपिसन्तर्प्यपञ्चयज्ञरताअपि ॥ गृहस्थाश्रमिणोनेमांत्यजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १२ ॥ वानप्रस्थाश्रमयुजोज्ञात्वानिर्वाणसाधनम् ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्राममंमणिकर्णीमुपासते ॥ १३ ॥ अनन्यसाधनांमुक्तिंज्ञात्वाशास्त्रैरनेकधा ॥ मुमु

देकर अन्त में मणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ ९ ॥ व सुचाली सज्जन शूद्र भी पुत्र व स्त्रीको तजकर मुक्ति मिलने के लिये इस मणिकर्णिकाको सेवते हैं ॥ १० ॥ व जीवन पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य करतेहुये इन्द्रियजित लोग भी मुक्तिके लिये इस श्रीमणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ ११ ॥ व अतिथियों को अन्नादिकों से भलीभांति तरप कर देव पितृ मनुष्य भूत और ब्रह्मयज्ञ इन पांचों में तत्पर गृहस्थ भी जिस मणिकर्णिकाको नहीं तजते हैं ॥ १२ ॥ व वानप्रस्थ आश्रमवाले लोग मोक्षका साधन जानकर व इन्द्रिय समूह को रोककर इस मणिकर्णिका की उपासना करते हैं ॥ १३ ॥ व नहींहै अन्य साधन जिसका याने जो स्वतः सिद्धहै ऐसी मुक्तिको अनेकभांति के शास्त्रों

मुक्षुभिस्त्वेकदण्डैःसेव्यतेमणिकर्णिका ॥ १४ ॥ दण्डयित्वामनोवाचङ्कायंनित्यन्त्रिदण्डिनः ॥ नैःश्रेयसींश्रियम्प्राप्तुंश्रय न्तेमणिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥ संन्यस्ताखिलकर्माणोदण्डयित्वाचलंमनः ॥ एकदण्डव्रतामुक्त्यैभजेयुर्मणिकर्णिका म् ॥ १६ ॥ शिखीमुण्डोजटीवापिकौपीनीवादिगम्बरः ॥ मुमुक्षुःकोनसेवेतमुक्तिदांमणिकर्णिकाम् ॥ १७ ॥ तपःकर्तुंनश क्तायेदानंवादातुमक्षमाः ॥ योगाभ्यासविहीनायेतेषामेषाविमुक्तिदा ॥ १८ ॥ सन्त्युपायाःसहस्रन्तुमुक्तयेनतथामुने ॥ हेल यैवयथादद्यान्निर्वाणंमणिकर्णिका ॥ १९ ॥ अनशनव्रतभृतेत्रिकालाभ्यवहारिणे ॥ प्रान्तेदद्यात्समांमुक्तिमुभाभ्यां मणिकर्णिका ॥ २० ॥ यथोक्तमाचरेदेकोनिष्ठापाशुपतंव्रतम् ॥ निरन्तरंस्मरेदेकोहृद्येनांमणिकर्णिकाम् ॥ २१ ॥ दृ ष्टानवपुषःपातेद्वयोश्चसदृशीगतिः ॥ तस्मात्सर्वंविहायाशुसेव्यैषामणिकर्णिका ॥ २२ ॥ स्वर्गद्वारेविशेयुर्येविगाह्यम णिकर्णिकाम् ॥ तेषांविधूतपापानांक्वापिस्वर्गोनदूरतः ॥ २३ ॥ स्वर्गद्वाःस्वर्गभूरेषामोक्षभूर्मणिकर्णिका ॥ स्वर्गापव

से जानकर मुक्ति चाही एकदण्डी भी मणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ १४ ॥ व मन वचन और देहको दण्ड देकर याने वचन से मौनको धर तनसे वृथा व्यापार को तज कर मनसे प्राणायाम को कर त्रिदण्डी लोग भी कैवल्यसम्बन्धिनी श्री मिलने के लिये मणिकर्णिका को सदा सेवते हैं ॥ १५ ॥ व सब कर्म्म त्यागे एकदण्डी संन्यासी चञ्चल मनको दण्डदेकर मणिकर्णिकाको भजते हैं ॥ १६ ॥ व चोटी रखाये मुण्डा व लँगोटी लगाये और नग्न चाहे जो होवे कौन मोक्षचाही मुक्तिदा मणिकर्णिका को न सेवै ॥ १७ ॥ व जे तपस्या करने व दान देनेको न समर्थ हैं और जे योगाभ्याससे रहितहैं उनको मोक्षदात्री यहीहै ॥ १८ ॥ हे मुने ! मुक्तिके लिये वैसे हजारों उपाय नहीं हैं जैसे बिना परिश्रम यह मणिकर्णिका मुक्ति देती है ॥ १९ ॥ मणिकर्णिका अन्न छोड़े व्रतधारी व त्रिकाल भोजनकारी इन दोनोंको बराबर मुक्ति देती है ॥ २० ॥ एक जन यथोक्त याने सनत्कुमारसंहिता में कहे विधिपूर्वक तात्पर्य्य समेत भस्मधारण आदि नियमको करे और एक इस मणिकर्णिका को मनमें सदा सुमिरे ॥ २१ ॥ उन दोनों की यहां देह त्याग में बराबर मुक्ति देखीगई है उस कारण सब छोड़कर यह मणिकर्णिका सेवने योग्यहै ॥ २२ ॥ जे मणिकर्णिका में नहाकर स्वर्गद्वारमें पैठें व नाशगये हैं पाप जिनके उनको स्वर्ग कहीं दूर नहीं है ॥ २३ ॥ यह मणिकर्णिका स्वर्गद्वार स्वर्गभूमि और मोक्षभूमि है इससे स्वर्ग व मोक्ष यहांही हैं ऊंचे नीचे भी

नहीं है ॥ २४ ॥ जे मणिकर्णिका में नहाकर बहुते दानको देकर स्वर्गद्वार में पैठेहैं वे नरकगामी नहीं हैं ॥ २५ ॥ स्वर्ग और अपवर्गका अर्थ पंडितोंने कहा है कि स्वर्ग सुख कहाता है व अपवर्ग महासुखहै ॥ २६ ॥ जो सुख मणिकर्णिकाके तीर बैठे सन्त को उपजता है वह सुख सिंहासन में बैठे इन्द्रको कहाँहै ॥ २७ ॥ व समाधि में भूला है आपन देह गेह जिनका उनको जो महासुख कहा गयाहै वह श्रीमणिकर्णिका में सहजही होताहै ॥ २८ ॥ व स्वर्गद्वार के आगे गंगाके पाछे सुन्दरता व ऐश्वर्यादिकों की निधि कोई अकथनीय मुख्य महास्थली मणिकर्णिकाहै ॥ २९ ॥ व सूर्य की रश्मि संयोग से जितने बालूके किनका भासने हैं उतने ब्रह्मा बीतगये हैं

गोवनैवनोपरिष्टान्नचाप्यधः ॥ २४ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानिविगाह्यमणिकर्णिकाम् ॥ स्वर्गद्वारम्प्रविष्टायेनतेनिरयगामिनः ॥ २५ ॥ स्वर्गापवर्गयोरर्थःकोविदैश्चनिरूपितः ॥ स्वर्गःसुखंसमुद्दिष्टमपवर्गोमहासुखम् ॥ २६ ॥ मणिकर्ण्युपविष्टस्ययत्सुखंजायतेसतः ॥ सिंहासनोपविष्टस्यतत्सुखंक्वशतक्रतोः ॥ २७ ॥ महासुखंयदुद्दिष्टंसमाधौविस्मृतात्मनाम् ॥ श्रीमत्यांमणिकर्ण्यान्तत्सहजेनैवजायते ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारात्पुरोभागेदेवनद्याश्चपश्चिमे ॥ सौभाग्यभाग्यैकनिधिःकाचिदेकामहास्थली ॥ २९ ॥ यावन्तोभास्वतःस्पर्शाद्भासन्तेसैकताःकणाः ॥ तावन्तोद्रुहिणाजग्मुर्नत्येषामणिकर्णिका ॥ ३० ॥ सन्तितीर्थानितावन्तिपरितोमणिकर्णिकाम् ॥ यावद्भिस्तिलमात्रापिनभूमिर्विरलीकृता ॥ ३१ ॥ यदन्वयेकोपिमुक्तःसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ तद्वंश्यास्तत्प्रभावेणमान्याःस्वर्गौकसामपि ॥ ३२ ॥ तर्पिताःपितरोयेनसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ सप्तसप्ततथासप्तपूर्वजास्तेनतारिताः ॥ ३३ ॥ आमध्याद्देवसरितआहरिश्चन्द्रमण्डपात् ॥ आगङ्गाकेशवाद्याचस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका ॥ ३४ ॥ एतद्रजःकणतुलान्त्रिलोक्यापिनगच्छति ॥ एतत्प्राप्त्यैप्रयतते

परन्तु यह मणिकर्णिका कहीं नहीं जातीहै ॥ ३० ॥ व मणिकर्णिकाके सब ओर उतने तीर्थहैं कि जितने से तिलभर भी भूमि अवकाशवाली नहीं है ॥ ३१ ॥ जिस कुलमें कोई मणिकर्णिका में जाकर मुक्त हुआ है उसके प्रभावसे उसके वंशवाले भी देवों के मान्य हैं ॥ ३२ ॥ जिसने मणिकर्णिका में जाकर पितरों को तरपा उसने इक्कीस पुस्ति पितरों को ताराहै ॥ ३३ ॥ गंगाका बीच हरिश्चन्द्रका मण्डप गंगाकेशव और स्वर्गद्वारतक मणिकर्णिका है ॥ ३४ ॥ व त्रैलोक्य भी इसकी धूरिके कणकी समता

को नहीं पहुँचता है क्योंकि त्रिलोक में वर्त्तमान सब जन्मवान् इसके मिलने को यत्न करता है ॥ ३५ ॥ यों बार बार चित्रपटी को देखतीहुई कलावतीने विश्वनाथ के द-
क्षिण में ज्ञानवापी को देखा ॥ ३६ ॥ कि यह दण्डनायकजी व संभ्रम और विभ्रम बड़ी भ्रांतिको देकर जिसके जलको दुष्टसे बचाते हैं ॥ ३७ ॥ व जो महादेवजी पुराण
में अष्टमूर्ति पढ़े जाते हैं उनकी यह ज्ञानवापी जोकि मोक्षदाहै वह जलमयी मूर्ति है ॥ ३८ ॥ व कलावतीने ज्ञानवापीको आंखोंके विषयकर याने देखकर क्षणमें कदम्बके
फूलसी रोमाचित देहको धारण किया ॥ ३९ ॥ व अंग कांप उठे माथमें बहुतही पसीना आया व उसके नेत्र आनन्द आंसुवों से मिलेभये होगये ॥ ४० ॥ व देहलता

त्रिलोकस्थोऽखिलोभवी ॥ ३५ ॥ कलावतीचित्रपटीम्पश्यन्तीत्थंमुहुर्मुहुः ॥ ज्ञानवापीन्ददर्शाथश्रीविश्वेश्वरदक्षिणे॥
३६ ॥ यदम्बुसततंरक्षेद्दुर्वृत्ताद्दण्डनायकः ॥ सम्भ्रमोविभ्रमश्चासौदत्त्वाभ्रान्तिङ्गरीयसीम् ॥ ३७ ॥ योष्टमूर्तिर्महादेवः
पुराणेपरिपठ्यते ॥ तस्यैषाम्बुमयीमूर्तिर्ज्ञानदाज्ञानवापिका ॥ ३८ ॥ नेत्रयोरतिथीकृत्यज्ञानवापींकलावतीम् ॥ कदम्ब
कुसुमाकारांबभारक्षणतस्तनुम् ॥ ३९ ॥ अङ्गानिवेपथुम्प्रापुःस्विन्नाभालस्थलीभृशम् ॥ हर्षवाष्पाम्बुकलिलेजातेत
स्याविलोचने ॥ ४० ॥ तस्तम्भगात्रलतिकामुखंवैवर्ण्यमापच ॥ स्वरोथगद्गदोजातोव्यभ्रंशत्तत्करात्पटी ॥ ४१ ॥ सा
क्षणंस्वंविसस्मारकाहंकाहंनवेत्तिच ॥ सौषुप्तायान्दशायाञ्चपरमात्मेवनिश्चला ॥ ४२ ॥ अथतत्परिचारिण्यस्त्वरमा
णाइतस्ततः ॥ किंकिंकिमेतदेतत्किंपृच्छन्तिस्मपरस्परम् ॥ ४३ ॥ तदवस्थांसमालोक्यतान्ताश्चतुरचेतसः ॥ विज्ञाय
सात्त्विकैर्भावैरिदमूचुःपरस्परम् ॥ ४४ ॥ भवान्तरेप्रेमपात्रमेतयैद्धितुकिञ्चन ॥ चिरात्तेनचसङ्गत्यसुखमूर्च्छामवाप

निश्चल हुई व मुखका रंग बदल गया अनन्तर स्वर गद्गद हुवा और वह चित्रपटी उसके हाथसे गिरपड़ी ॥ ४१ ॥ व वह क्षणभर अपनाको विसरगई कि मैं कौनहूं मैं
कहांहूं यो न जानती भई व सुषुप्तिकी अवस्थामें परमात्मासी निश्चलहुई ॥ ४२ ॥ अनन्तर ऐसी वैसी दौड़ीहुई वेगवती उसकी सेवकियोंने आपुसमें पूंछा कि यह क्याहै
क्याहै क्याहै ॥ ४३ ॥ उन चतुर बुद्धिवाली दासियोंने उस अवस्था में टिकीहुई उसको देखकर रोमांच आदि सात्त्विक भावोंसे उस अवस्थाको जानकर आपुस में यह

ह ॥ ४५ ॥ अथनेत्थंकथमियमकाण्डात्पर्यमूमुहत् ॥ प्रेक्षमाणारहश्चित्रपटीमतिपटीयसीम् ॥ ४६ ॥ तन्मोहस्यनिदानन्ताःसम्यगेवविचार्यच ॥ उपचेरुर्महाशान्तैरुपचारैरनाकुलम् ॥ ४७ ॥ काचित्तांवीजयाञ्चक्रेकदलीतालवृन्तकैः ॥ बिसिनीवलयैरन्याधन्यांतापर्यभूषयत ॥ ४८ ॥ अमन्दैश्चन्दनरसैरभ्यषिञ्चदमुम्परा ॥ अशोकपल्लवैरस्याःकाचिच्छोकमनीनशत ॥ ४९ ॥ धारामण्डपधाराम्बुशीकरैस्तत्तनूलताम् ॥ इष्टार्थविरहग्लानांसिञ्चयामासकाचन ॥ ५० ॥ जलार्द्रवाससाकाचिदेतस्यास्तनुमावृणोत् ॥ कर्पूरक्षोदजालेपैरन्यास्तामन्वलेपयन् ॥ ५१ ॥ पद्मिनीदलशय्याञ्चकाचिद्धरचयन्मृदुम् ॥ काचित्कुलिशनेपथ्यन्दूरीकृत्यतदङ्गतः ॥ ५२ ॥ मुक्ताकलापंरचयांचक्रेवक्षोजमण्डले ॥ काचिच्छशिमुखीतान्तुचन्द्रकान्तशिलातले ॥ ५३ ॥ स्वापयामासतन्वङ्गींस्रवच्छीताम्बुशीतले ॥ दृष्ट्वोपचार्यमाणान्तामित्थम्बुद्धिशरीरिणी ॥ ५४ ॥ अतितापपरीताङ्गीताःसखीःप्रत्यभाषत ॥ एतस्यास्तापशान्त्यर्थंजानेहम्परमौ

कहा कि ॥ ४४ ॥ इसने अन्य जन्मके किसी प्रीतिपात्र प्यारेको देखा इसमे बहुतकालमें उसका संगकर सुख मूर्च्छाको पायाहै ॥ ४५ ॥ ऐसा न होता तो एकान्तमें मुठि सुधर चित्रपटी को देखतीहुई यह अनवसरमें कैसे सब ओरसे मोह जाती ॥ ४६ ॥ यों भलीभांति मे उस मोहका कारण विचारकर उन दासियोंने व्याकुलतारहित ऐसे ही बैसे बड़े शांत पंखा आदि उपचारों से सेवा किया ॥ ४७ ॥ किसीने उसको केलाकी पातीके पंखासे बीजित किया व किसीने उस धन्याको कमल के पानसमूहों से भूषित किया ॥ ४८ ॥ व अन्यने इसको बहुते चंदनरसोंसे छिड़का व किसीने अशोकके पल्लवों से इसके शोकको विनाशा ॥ ४९ ॥ किसीने गुलावपाशके जलकिनकों से प्यारी वस्तुके विरहसे कुम्हिलानी ग्लानिवाली इसकी देहलताको सींचा ॥ ५० ॥ व किसीने पानी भीगे कपड़ेसे इसकी देहको घेरा व औरी दासियोंने कपूर चूरके लेपों से उसको लीपा ॥ ५१ ॥ व किसीने कोमल कमलदलकी शय्या बनाया किसीने उसके अंगसे हीराके भूषण को दूरकर ॥ ५२ ॥ कुचमंडलों में मोती समूहको रचित किया किसी चन्द्रमुखीने उसको उस चन्द्रकांत पत्थर के तरे ॥ ५३ ॥ कि जिससे पानी चूताथा पतली देहवाली को पौढ़ाया तब यों उपचार कराई जातीहुई उसको देखकर बुद्धिशरीरिणी नाम सखी ॥ ५४ ॥ जोकि बड़ी तपनि से तपी थी उसने उन सखियों के प्रति कहा कि मैं इसकी तपनि शांत होनेके लिये उत्तम औषध को जानती

हूं ॥ ५५ ॥ इन सब उपचारोंको दूरकरो देर मतहो शीघ्र इसको तापहीन करतीहूं मेरा खेल देखो ॥ ५६ ॥ यह चित्रपटको देखकर झट विकलताको प्राप्त भईहै इसमेंही कोई इसका प्रीतिपात्र है यह निश्चय कियागया है ॥ ५७ ॥ इससे यह चित्रपट परसने से परिताप को तजेगी तदनंतर बुद्धिशरीरिणी के वचन से उसकी दासियां ॥ ५८ ॥ उसके आगे चित्रपटको धर बोलीं कि हे कलावति ! देख जिसमें तेरे आनंद करनेवाली कोई इष्टदेवता है ॥ ५९ ॥ तब वह भी इष्टदेवताके नाम और उस चित्रपटके देखने से अमृतकी सींचनिको पहुँचसी मूर्च्छाको तजकर शीघ्र उठी ॥ ६० ॥ कि जैसे वृष्टिप्रतिघाती सूर्य्यतापसे कुम्हिलानी ओषधी वर्षाके धारासंपातोंसे हरी

पथम् ॥ ५५ ॥ उपचारानिमान्सर्वान्दूरीकुरुतमाचिरम् ॥ अपतापाङ्करोम्येनांसद्यःपश्यतकौतुकम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाचित्रपटीमेषासद्योविह्वलतामगात् ॥ अत्रैवकाचिदेतस्याःप्रेमभूरस्तिनिश्चितम् ॥ ५७ ॥ अतश्चित्रपटीस्पर्शात्परितापंविहास्यति ॥ वाक्याद्बुद्धिशरीरिण्यास्ततस्तत्परिचारिकाः ॥ ५८ ॥ निधायतत्पुरःप्रोचुःपटीम्पश्यकलावति ॥ तवानन्दकरीयत्रकाचिदस्तीष्टदेवता ॥ ५९ ॥ सापीष्टदेवतानाम्नातत्पटीदर्शनेनच ॥ सुधासेकमिवप्राप्यमूर्च्छांहित्वोत्थिताद्रुतम् ॥ ६० ॥ अवग्रहपरिम्लानावर्षासारैरिवौषधीः ॥ पुनरालोकयाञ्चक्रेज्ञानदांज्ञानवापिकाम् ॥ ६१ ॥ स्पृष्ट्वाकलावतीतान्तुवापींचित्रगतामपि ॥ लेभेभवान्तरज्ञानंयथासीत्पूर्वजन्मनि ॥ ६२ ॥ पुनर्विचारयाञ्चक्रेवापीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अहोचित्रगतापीयंसंस्पृष्टाज्ञानवापिका ॥ ६३ ॥ ज्ञानंमेजनयामासभवान्तरसमुद्भवम् ॥ अथतासाम्पुरोहृष्टाकथयामाससुन्दरी ॥ ६४ ॥ निजम्प्राग्भववृत्तान्तंज्ञानवापीप्रभावजम् ॥ कलावत्युवाच ॥ एतस्माज्जन्मनःपूर्वमहं

होती है फिर उसने ज्ञानदा ज्ञानवापी को देखा ॥ ६१ ॥ व कलावती ने चित्रपटी में प्राप्त भी ज्ञानवापी को परसकर वैसे अन्य जन्म के ज्ञानको पाया जैसे पहले जन्म में हुआ था ॥ ६२ ॥ फिर वापीकी उत्तम महिमाको विचारा आश्चर्य है कि चित्रपट में खींची भी छुई हुई इस ज्ञानवापीने ॥ ६३ ॥ अन्य जन्म में हुये मेरे ज्ञानको उपजाया है अनन्तर आनन्द संयुत सुन्दरीने उन दासियों के आगे उसको कहा ॥ ६४ ॥ जोकि ज्ञानवापी के प्रभावसे उपजा हुवा अपना पूर्व जन्म में हुवा हाल था

कलावती बोली कि इस जन्मके पहले ब्राह्मण की कन्या हुई मैं ॥ ६५ ॥ विश्वनाथके समीप काशीमें ज्ञानवापी के तीर आनन्द से खेलती थी व हरिस्वामी मेरा बाप व प्रियंवदा माताथी ॥ ६६ ॥ और सुशीला ऐसा मेरा नामथा मुझको विद्याधर हरलेगया अनंतर आधी रात बीच गली में मलयाचल के समीप ॥ ६७ ॥ वह वीर राक्षस से मारागया व उसने भी राक्षस को मारा तब शापसे छूटा राक्षस दिव्य देहको प्राप्तभया ॥ ६८ ॥ व इस गंधर्वने मलयकेतु से जन्म पाया और मैं कर्णाटक नरेशकी कन्या कलावती हुईहूं ॥ ६९ ॥ व ज्ञानवापी के देखने से क्षणमें यों मेरे ज्ञान हुवाहै यों उसका वचन सुनकर वह बुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥ व उसकी सब दासियां तब प्रसन्नमुखी

ब्राह्मणकन्यका ॥ ६५ ॥ उपविश्वेश्वरंकाश्यांज्ञानवाप्यांरमेमुदा ॥ जनकोमेहरिस्वामीजनयित्रीप्रियंवदा ॥ ६६ ॥ आख्याममसुशीलेतिमाञ्चविद्याधरोऽहरत् ॥ मध्येमार्गंनिशीथेयतदोपमलयाचलम् ॥ ६७ ॥ रक्षसासहतोवीरोराक्षसंसजघानह ॥ रक्षोपिमुक्तःशापात्तुदिव्यंवपुरवापह ॥ ६८ ॥ अवापजन्मगन्धर्वस्त्वसौमलयकेतुतः ॥ कर्णाटनृपतेःकन्यावभूवाहंकलावती ॥ ६९ ॥ इतिज्ञानंममोद्भूतंज्ञानवापीक्षणात्क्षणात् ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वासापिबुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥ ताश्चतत्परिचारिण्यःप्रहृष्टास्यास्तदाऽभवन् ॥ प्रोचुस्ताम्प्रणिपत्याथपुण्यशीलाङ्कलावतीम् ॥ ७१ ॥ अहोकथंहिसालभ्यायत्प्रभावोयमीदृशः ॥ धिग्जन्मतेषांमर्त्येऽस्मिन्यैर्नैदृष्टाज्ञानवापिका ॥ ७२ ॥ कलावतिनमस्तुभ्यंकुरुनोपिसमीहितम् ॥ जनिंसफलयास्माकंनयनःप्राथ्र्यभूपतिम् ॥ ७३ ॥ अयञ्चनियमोस्माकमद्यारभ्यकलावति ॥ निवेक्ष्यामोमहाभोगानुदृष्ट्वातांज्ञानवापिकाम् ॥ ७४ ॥ अवश्यंज्ञानवापीसानाम्नाभवितुमर्हति ॥ चित्रञ्चित्रगतापीहया

हुई अनंतर उस पुण्यशीला कलावतीके प्रणामकर बोलीं कि ॥ ७१ ॥ आश्चर्य है कि जिसका ऐसा यह प्रभाव है वह कैसे भी मिलने योग्य होवे इस मनुष्यलोकमें उनके जन्म को धिक्कारहै जिन्होंने ज्ञानवापी को नहीं देखाहै ॥ ७२ ॥ हे कलावति ! तुम्हारे नमस्कार है तुम हमारे भी वाञ्छितको पूरकरो व हमारी उत्पत्ति को सफल कराओ व राजा से प्रार्थनाकर हमको वहांपर पहुँचाओ ॥ ७३ ॥ हे कलावति ! आजसे लगाकर हमारा यह नियम है कि उस ज्ञानवापी को देखकर बड़े भोगोंको पहुँचेंगी ॥ ७४ ॥

तवज्ञानदायिनी ॥ ७५ ॥ अंकृत्यतासांवाक्यंसास्वाकारम्परिगोप्यच ॥ प्रियाणिकृत्वाभूभर्तुःप्रस्तावज्ञाव्यजिज्ञपत् ॥ ७६ ॥ कलावत्युवाच ॥ जीवितेशनमेत्वत्तःकिञ्चित्प्रियतरंक्वचित् ॥ त्वामासाद्यपतिंराजन्प्राप्ताःसर्वेमनोरथाः ॥ ७७॥ एकोमनोरथःप्रार्थ्योममास्त्यत्रार्यपुत्रक ॥ विचारपथमापन्नस्तवापिसमहाहितः ॥ ७८ ॥ ममतुत्वदधीनायाःसुदुष्प्रापतरोमहान ॥ तवस्वाधीनवृत्तेस्तुसिद्धप्रायोमनोरथः ॥ ७९ ॥ प्राणेशकिम्बहूक्तेनयदिप्राणैःप्रयोजनम् ॥ तदाभिलषितन्देहिप्राणायास्यन्त्यथान्यथा ॥ ८० ॥ प्राणेभ्योपिगरीयस्यास्तस्यावाक्यंनिशम्यसः॥ उवाचवचनंराजातस्याःस्वस्यापिचप्रियम् ॥ ८१ ॥ राजोवाच ॥ नाहंप्रियेत्वदेयमिहपश्यामिभामिनि ॥ प्राणाअपिममक्रीतास्त्वयाशीलकलागुणैः ॥ ८२ ॥ अविलम्बितमाचक्ष्वकृतंविद्धिकलावति ॥ भवद्विधानांसाध्वीनांमन्येऽप्राप्यंनकिञ्चन ॥ ८३ ॥ कःप्रार्थ्यःप्रार्थनीयंकिंकोवाप्रार्थयिताप्रिये ॥ नपृथग्जनइत्किञ्चिद्दत्तंनंनोकलावति ॥ ८४ ॥ देशःकोशोबलन्दुर्गंच

मानसकी है कि विपद में प्राप्त भी जो तुमको ज्ञान देनेवालीहुई वह अवश्यकर नामसे ज्ञानवापी होनेको योग्यहै ॥ ७५ ॥ तब वचन रचन को जानती उस कलावतीने उनका कहना अंगीकारकर व सात्त्विकभावके वश अपनी देहको छिपाकर राजाको प्यारकर विज्ञापना किया याने जनाया ॥ ७६ ॥ कलावती बोली, कि हे प्राणनाथ राजन ! मेरा आपसे अधिक प्यारा कुछ भी कहीं नहीं है आप पतिको पाकर मेरे सब मनोरथ प्राप्तहुयेहैं ॥ ७७ ॥ हे आर्य्यपुत्र ! यहां मेरा एक मनोरथ प्रार्थनीय याने आपसे मांगने योग्यहै जोकि आपका भी महाहितहै वह विचारमार्ग में प्राप्त हुवाहै ॥ ७८ ॥ व वह बड़ा पूजनीय मनोरथ तुम्हारे अधीन हुई मुझको बहुतही दुर्लभ है परन्तु अपने अधीन वृत्तिवाले आपका मनोरथ सिद्धप्रायहै ॥ ७९ ॥ हे प्राणेश ! बहुत कहनेसे क्याहै जो मेरे प्राणोंसे प्रयोजनहो तो वाञ्छितको देवो अन्यथा अनंतर प्राण जावेंगे ॥ ८० ॥ तब उस राजाने उस प्राणों से भी अधिक प्यारीका कहना सुनकर उसके और अपने भी प्यारे वचनको कहा ॥ ८१ ॥ राजा बोला कि हे प्यारी भामिनि ! मैं इस लोकमें तेरे न देने योग्यको नहीं देखताहूं क्योंकि तैंने स्वभाव, चौसठकला व पतिव्रतत्व आदिगुण इन सबोंसे मेरे प्राणोंको भी मोल लेलियाहै ॥ ८२ ॥ हे कलावति ! शीघ्रही कहो व उसको कियागया जानो क्योंकि आपसी पतिव्रताओंका अप्राप्य याने जो न मिलसके वह कुछ नहीं मानताहूं ॥ ८३ ॥ हे कलावति प्रिये ! कौन मांगने

योग्य व क्या मांगना व कौन मांगनेवाला है क्योंकि हम तुम दोनोंका वर्तना [illegible] ॥ ८४ ॥ हे [illegible] ! [illegible]
और अन्य भी जो कुछहै वह तेराहै मेरा नहीं है इसमें मेरा स्वामित्वमात्रहै ॥ ८५ ॥ हे [illegible] मानिनि ! [illegible]
से राज्यको भी खरके समानकर तजदूं ॥ ८६ ॥ ऐसा माल्यकेतु राजाका वचन सुनकर [illegible] कलावती गम्भीर वाणी से सुन्दर वचनको कहा ॥ ८७ ॥ कलावती बोली [illegible]
हे नाथ ! ब्रह्माने पहले बहुत भांतिकी प्रजाओं को उपजाया व उन प्रजाओं के हितके लिये चार पुरुषार्थों को बनायाहै ॥ ८८ ॥ उनमें तीन [illegible]

दन्यदपिभामिनि ॥ तत्त्वदीयंनमेकिञ्चित्स्वाम्यमात्रमिहास्तिमे ॥ ८५ ॥ तच्चस्वाम्यंममान्यत्रत्वद्दत्तंजीवितेश्वरि ॥
राज्यन्त्यजेयन्त्वद्वाक्यात्तृणीकृत्यापिमानिनि ॥ ८६ ॥ माल्यकेतोर्महीजानेरितिवाक्यंनिशम्यमा ॥ प्राहगम्भीर
यावाचावचश्चारुकलावती ॥ ८७ ॥ कलावत्युवाच ॥ नाथप्रजासृजापूर्वंसृष्टानानाविधाःप्रजाः ॥ प्रजाहितायसंसृष्टम्पु
रुषार्थचतुष्टयम् ॥ ८८ ॥ तद्विहीनाजनिरपिजलबुद्बुदवन्मुधा ॥ तस्मादेकोपिमंमाध्यःपरत्रेहचशर्मणे ॥ ८९ ॥ यत्रा
नुकूल्यन्दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्रवर्धते ॥ यदुच्यतेपुराविद्भिरितितत्तथ्यमीक्षितम् ॥ ९० ॥ महिषानान्तुदासीनांशतन्ते
ऽस्तीहमन्दिरे ॥ तथापिनितराम्प्रेमस्वामिनोमयिदृश्यते ॥ ९१ ॥ त्वद्दास्यपिभोगाढ्याकिमुताङ्कस्थलीचरी ॥ तत्राप्य
नन्यसम्पत्तिस्तत्रस्वाधीनभर्तृता ॥ ९२ ॥ विपश्चित्सञ्चयेदर्थानिष्टापूर्तायकर्मणे ॥ तपोर्थमायुर्निर्विघ्नंदारांश्चापत्य

है उससे इस और उस लोकमें भी कल्याण या सुखके लिये एकही भलीभांति से साधने योग्यहै ॥ ८९ ॥ जहां स्त्री पुरुष दोनोंमें परस्पर प्रीति [illegible] है वहां त्रिवर्ग बढ़ता
है यह जो आगे के पंडितोंने कहा है वह सत्य देखा गयाहै ॥ ९० ॥ यद्यपि मन्दिर में मुझसी दासियों का सैकड़ा है तो भी स्वामी का स्नेह मुझ में बहुतही दीखता
है ॥ ९१ ॥ आपकी दासी भी भोगोंसे भरी पुरी हैं फिर गोदस्थली में बैठनेवालीको क्या [illegible] भी जो अन्य के नहीं है वह [illegible] पतिका अपने आधीन
होना यह सब दुर्लभ है ॥ ९२ ॥ और बुद्धिमान् जन मठ देवमन्दिर कुवां तालआदि कर्मों के लिये धनको व तपस्या के अर्थ विघ्नहीन जीवन को और पुत्रकेलिये स्त्रीको

बढ़ोरे ॥ ९३ ॥ हे प्रिय! विश्वनाथकी दयासे यहां आपके यह सबहै जो मेरा मनोरथ पूरा करने के योग्यहै तो मैं कहतीहूं सुनो ॥ ९४ ॥ कि हे नाथ! मुझको शीघ्र काशीके प्रति पठावो प्राण तो पहलेही गये हैं मैं केवल देहशेषवालीहूं ॥ ९५ ॥ यों कलावतीका स्पष्ट वचन सुनकर क्षणभर अपने अन्तःकरण में विचारकर माल्यकेतु राजाने उस प्यारी से कहा ॥ ९६ ॥ कि हे प्रिये कलावति! जो तुमको जानाही है तो तुमसे हीन अतिचंचल इस राज्यलक्ष्मीसे हमको क्याहै ॥ ९७ ॥ क्योंकि राज्यको राज्य नहीं कहते हैं परमप्यारीही राज्यलक्ष्मी है उससे हीन, सप्तांग याने स्वामी मंत्री मित्र धनराशि देश कोट सेना इन सबोंसे संयुतभी वह राज्य तृणके समान होती

लब्धये ॥ ९३ ॥ तवैतत्सर्वमस्तीहविश्वेशानुग्रहात्प्रिय ॥ पूरणीयोऽभिलाषोमेयदितद्वच्म्यहंशृणु ॥ ९४ ॥ नृणंप्रहिणुमांनाथविश्वनाथपुरीम्प्रति ॥ प्राणाःप्रयाताःप्रागेववपुःशेषास्मिकेवलम् ॥ ९५ ॥ माल्यकेतुःकलावत्याइत्याकर्ण्यवचःस्फुटम् ॥ क्षणंविचार्यस्वहृदिराजाप्रोवाचताम्प्रियाम् ॥ ९६ ॥ प्रियेकलावतियदितवगन्तव्यमेवहि ॥ राज्यलक्ष्म्यानयाकिम्मेचलयात्वद्विहीनया ॥ ९७ ॥ नराज्यंराज्यमित्याहूराज्यश्रीःप्रेयसीध्रुवम् ॥ सप्ताङ्गमपितद्राज्यन्तयाहीनन्तृणायते ॥ ९८ ॥ निःसपत्नंकृतंराज्यंभुक्ताभोगान्निरन्तरम् ॥ हृषीकार्थाःकृतार्थाश्चविधृताआकृतिःप्रिये ॥ ९९ ॥ अपत्यान्यपिजातानिकिंकर्तव्यमिहास्तिमे ॥ अवश्यमेवगन्तव्याऽऽवाभ्यांवाराणसीपुरी ॥ १०० ॥ माल्यकेतुःप्रियामित्थमाश्वास्यकृतनिश्चयः ॥ समाहूयचदैवज्ञान्प्रकृतीःपरिपूज्यच ॥ १ ॥ पुत्रंराज्यंनिधायाथराजाकाशीम्प्रतस्थिवान् ॥ रत्नजातञ्चयदपिपुत्रादर्थम्प्रगृह्यच ॥ २ ॥ दृष्ट्वाविश्वेश्वरपुरींहृष्टरोमानरेश्वरः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंमंसा

है ॥ ९८ ॥ हे प्रिये! मुझसे सदा भोगोंको भोगकर अकंटक राज्य कियागया व इन्द्रियोंके विषय कृतार्थहुये सब ओरसे धीरज धरा गयाहै ॥ ९९ ॥ और लड़के भी उपजे अब यहां मेरे करने योग्य क्या है अर्थात् कुछ नहीं है इससे अवश्य हम तुम दोनोंको काशीपुरी को चलना चाहिये ॥ १०० ॥ इस भांतिसे प्रिया निश्चयकर जिसने वह माल्यकेतु प्यारीको समझाकर व ज्योतिषी पंडितों को बुलाकर पुरवासियोंको पूजकर ॥ १ ॥ व पुत्रमें राज्यको थापकर अनन्तर पुत्रसे कुछ भी रत्नसमूह धन ले करके राजा

काशीको चला ॥ २ ॥ व विश्वनाथकी पुरीको देखकर रोमांचित राजाने अपनाको संसारसमुद्र के पार गया व धन्य माना ॥ ३ ॥ व पहले जन्मकी वासना के भोगसे वह कलावती रानी भी दूसरे ग्रामसे आईसी आपही पुरीकी गलियोंको जानतीथी ॥ ४ ॥ उसके बाद मणिकर्णिका में नहाकर तदनंतर बहुते धनको देकर व अनेक रत्न समूहों से विश्वनाथ को पूजकर ॥ ५ ॥ वहां भी रत्न हाथी घोड़े गौवों के समूह विचित्र रेशमी वस्त्र और पूजाके पात्रको भी देकर ॥ ६ ॥ सोने व चांदीके कलशे दीवट दर्पण चँवर ध्वजा खम्भसंयुत पताका और विचित्र चन्द्रातप इन सब चीजोंको भी देकर ॥ ७ ॥ अनंतर प्रदक्षिणाकर मुक्तिमण्डप में बैठा वहां धर्मकी कथाको सुनकर वहां भी

राम्बुधिपारगम् ॥ ३ ॥ प्राग्जन्मवासनायोगात्सापिराज्ञीकलावती ॥ ग्रामान्तरादागतेवपुरीमार्गानवेत्स्वयम् ॥ ४ ॥ मणिकर्ण्यामथस्नात्वाभूरिदत्त्वाततोवसु ॥ विश्वेशमर्चयित्वाथरत्नजातैरनेकशः ॥ ५ ॥ दत्त्वातत्रापिरत्नानिगजानश्वा न्गवांव्रजम् ॥ दुकूलानिविचित्राणिपूजोपकरणानिच ॥ ६ ॥ सुवर्णरूप्यकलशान्दीपीदर्पणचामरान् ॥ ध्वजस्तम्भपताकाश्चविचित्रोल्लोचकानिच ॥ ७ ॥ अथप्रदक्षिणीकृत्यमुक्तिमण्डपमाविशत् ॥ तत्रधर्मकथांश्रुत्वादत्त्वातत्रापिसद्धनम् ॥ ८ ॥ सायन्तनीम्महापूजाम्पुनःकृत्वाक्षितीश्वरः ॥ तत्रजागरणंकृत्वातौर्यत्रिकमहोत्सवैः ॥ ९ ॥ अथप्रातःसमुत्थायकृत्वाशौचाचमक्रियाम् ॥ राज्ञ्याविनिर्दिष्टपथाज्ञानवापींनृपोययौ ॥ १० ॥ नृपःसार्धकलावत्यातत्रसस्नौप्रहृष्टवत् ॥ अथपिण्डान्सनिर्वाप्यसन्तर्प्यश्रद्धयापितॄन् ॥ ११ ॥ तत्ररूप्यसुवर्णादिपात्रेभ्यःप्रतिपाद्यच ॥ दीनान्धकृपणानाथान्महार्हैरत्नजातकैः ॥ १२ ॥ प्रीणयित्वानरपतिःपारणांकृतवांस्ततः ॥ संस्कार्यरत्नसोपानैर्ज्ञानवापींकलावती ॥ १३ ॥

अच्छा धन देकर ॥ ८ ॥ फिर सन्ध्यासमय की बड़ी पूजाको कर व नाच गान और वाद्यविधान समेत महोत्सवों से वहां जागरणको कर पृथिवीका स्वामी ॥ ९ ॥ प्रातः काल उठकर मृत्तिका व जलसे शुद्धता और आचमन कर्मको कर रानीकी दिखाई गलीसे ज्ञानवापीको गया ॥ १० ॥ व प्रसन्नहुये राजाने कलावती के साथ वहां नहाया उसके बाद वह श्रद्धासे पिण्डा पारकर पितरों को तरपकर ॥ ११ ॥ व वहां सुपात्रों को सोना आदि दान देकर दीन अन्धे दरिद्री और अनाथोंको बड़े मोलके योग्य रत्नसमूहोंसे ॥ १२ ॥ तृप्तकर तदनन्तर नरनायक पारण करता भया व रत्नकी सीढ़ियों से ज्ञानवापीको संस्कार कराकर कलावती रानी ॥ १३ ॥

जोकि बड़ी तपस्विनी थी उसने स्वामी के साथ उसमें सनेहको बांधा व कभी एक दिन भोजन के अन्तर एक दिन उपास व तीन दिन व्रत ॥ १४ ॥ व छठें दिन भोजन भी अनंतर सात दिनके नियम व पाखभरके अन्तर उपास व मास उपवास आदि ॥ १५ ॥ व चान्द्रायण व्रत कृच्छ्र व्रत और पतिकी सेवाओं सेभी शेष आयुके कालको क्षणकी नाईं उस अपापाने बिताया ॥ १६ ॥ एक दिन ज्ञानवापीमें प्रातः नहाकर बैठ स्त्री व पुरुष उन दोनोंके हाथमें किसी जटीलेने आकर विभूति दिया ॥ १७ ॥ और प्रसन्नमुख होकर आशीर्वादों से बढ़ाकर कहा कि उठो आजही महाभूषण को करो ॥ १८ ॥ यहां क्षण में तुम दोनोंका तारक मंत्रके उपदेश से ज्ञानके

आबवन्धरतिन्तत्रसहभर्त्रातपस्विनी ॥ एकान्तरोपवासैश्चकदाचित्त्र्यहोव्रतैः ॥ १४ ॥ पड्हो भोजनैश्चापिपक्षार्धनियमैरथ ॥ पक्षान्तरोपवासैश्चमासोपवसनादिभिः ॥ १५ ॥ चान्द्रायणव्रतैःकृच्छ्रैर्भर्तुःशुश्रूषणैरपि ॥ निनायक्षणवत्कालमायुःशेषस्यसानघा ॥ १६ ॥ एकदाज्ञानवाप्यान्तुप्रातःस्नात्वोपविष्टयोः ॥ आगत्यजटिलःकश्चिद्विभूतिन्दत्तवान्करे ॥ १७ ॥ उवाचचप्रसन्नास्यआशीर्भिरभिनन्द्यच ॥ उत्तिष्ठतम्प्रकुरुतंमहानेपथ्यमद्यवै ॥ १८ ॥ तारकोदयसम्प्राप्तिर्भवित्रीवांक्षणादिह ॥ यावदित्थंसमाचष्टजटिलोऽग्रेतयोर्वचः ॥ १९ ॥ तावद्विमानमापन्नंसक्कणत्किङ्किणीगणम् ॥ पश्यतांसर्वलोकानाञ्चन्द्रमौलिरथोरथात् ॥ २० ॥ उत्तीर्यतच्छ्रुतिपुटेकिमपिस्वयमादिशत् ॥ अनाख्येयंयत्परंज्योतिरुच्चक्रामचतत्क्षणात् ॥ २१ ॥ उद्योतयन्नभोवर्त्मदेवोपिस्वालयन्ययौ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तदाप्रभृतिलोकेऽत्रज्ञानवापीविशिष्यते ॥ २२ ॥ सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यःप्रत्यक्षज्ञानदामुने ॥ सर्वज्ञानमयीचैपासर्वलिङ्गमयीशुभा ॥ २३ ॥

उदय की प्राप्ति होनेवाली है उस जटीलेने जबतक उनके आगे ऐसा वचन कहा ॥ १९ ॥ तबतक बाजती क्षुद्रघंटिका समूह समेत विमान आया अनंतर सब लोगोंके देखतेही चन्द्रमौलने रथसे ॥ २० ॥ उतरकर आपही उनके दो कानोंमें किसी ज्ञानको उपदेश दिया उसके बाद वचन और मनसे परे जो ज्योतिरूप स्वप्रकाश ब्रह्महै उसको उसी क्षण वह कलावती समेत माल्यकेतु प्राप्तभया अथवा अकथनीय ज्योतिरूप, श्रेष्ठ जो विमानहै वह ऊपरको गया ॥ २१ ॥ व आकाशमार्गको प्रकाशते हुये महादेव भी अपने स्थानको गये श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि तबसे लगाकर इस लोक में ज्ञानवापी विशेष होती है ॥ २२ ॥ हे मुने! जोकि यह सब तीर्थों से अधिक प्रत्यक्ष

ज्ञान देनेवाली सब ज्ञानमयी शुभा ॥ २३ ॥ प्रत्यक्ष शिवकी मूर्त्ति ज्ञानकारिणी ज्ञानवापी है वह सबसे परे है क्योंकि शीघ्र पवित्र करनेवाले भी अनेकों तीर्थ हैं ॥ २४ ॥ परन्तु ज्ञानवापीकी सोलहवीं कलाके भी योग्य नहीं होते हैं जो एकाग्रचित्त होकर ज्ञानवापी की उत्पत्ति को सुनेगा उसके ज्ञानका नाश मरण समय में भी कहीं नहीं होगा ॥ २५ ॥ यह बड़ा आख्यान पुण्यरूप बड़े पापोंका नाशक व महादेव और पार्वतीजी की प्रीतिको बढ़ानेवाला है ॥ २६ ॥ ज्ञानवापी के मंगलमय आख्यान को पढ़ व पढ़ाकर व सुनकर श्रद्धासमेत जन शिवलोक में पूजा जाताहै ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेमिश्रिनाथत्रिवेदिविरचितेज्ञानवापीप्रशंसनंनामच

साक्षाच्छिवमयीमूर्तिर्ज्ञानकृज्ज्ञानवापिका ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिसद्यःशुचिकराण्यपि ॥ २४ ॥ परन्तुज्ञानवाप्याहि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ज्ञानवाप्याःसमुत्पत्तिंयःश्रोष्यतिसमाहितः ॥ नतस्यज्ञानविभ्रंशोमरणेजायतेकचित ॥ २५ ॥ महाख्यानमिदम्पुण्यम्महापातकनाशनम् ॥ महादेवस्यगौर्याश्चमहाप्रीतिविवर्धनम् ॥ २६ ॥ पठित्वापाठयित्वावा श्रुत्वावाश्रद्धयान्वितः ॥ ज्ञानवाप्याःशुभाख्यानंशिवलोकेमहीयते ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्ञानवापीप्रशंसनंनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कुम्भयोनिरुवाच ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रंपरंनिर्वाणकारणम् ॥ क्षेत्राणाम्परमंक्षेत्रंमङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ॥ १ ॥ श्मशानानाञ्चसर्वेषांश्मशानम्परमंमहत् ॥ पीठानाम्परमम्पीठमूषराणांमहोषरम् ॥ २ ॥ धर्माभिलाषिबुद्धीनांधर्मराशिकरम्पर

तुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पैंतिसयें अध्यायमें चारवर्ण आचार । और ब्रह्मचर्य्यादि इत आश्रम चार प्रकार ॥ अगस्त्यजी बोले, कि अविमुक्त याने काशीनामक महाक्षेत्र सबसे परे है जोकि मोक्षका कारण क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र व मंगलों में मंगलरूप है ॥ १ ॥ व सब श्मशानों में श्रेष्ठ बड़ा श्मशान याने जिसमें आकाशादि पंचभूत भी लीन होते हैं व पीठों में परे पीठ ऊषरों में महाऊषर अर्थात् जिसमें कर्म बीज नहीं जगते हैं ॥ २ ॥ और हे मयूरवाहन ! धर्मज्ञोंका धर्मसमूहके करनेवाला उत्तम व अर्थचाहियों के परमार्थ

का प्रकाशक है ॥ ३ ॥ व कामियों के वाञ्छित फलको उपजाता व मोक्षचाहियों का मुक्तिदाता है जहां जहां यह सुना जाता है वहां वहां परामृत याने कैवल्यरूप है ॥ ४ ॥ हे पार्वती हृदयके आनन्ददायक! क्षेत्रके एक देशमें वर्तती हुई ज्ञानवापी की इस उत्तम कथाको सुनकर मैं ऐसा मानताहूं ॥ ५ ॥ कि अणुप्रमाण जैसेहो वैसे अ-त्यंत बहुत थोड़ी भी प्रकाशिनी जो भूमि काशी के मध्यमें होवे वह मुक्तिके लिये बड़ी भारी जानने योग्य है यह कभी या कहीं मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥ इस सम्पूर्ण भूतल में कितने तीर्थ नहीं हैं परन्तु काशीकी धूरिमात्रके साथ तौलनेकी समता उनमें भी कहांहै ॥ ७ ॥ व इस लोकमें समुद्रको आनन्द देनेवाली कितनी नदियां नहीं ब-

म् ॥ अर्थार्थिनांशिखिरथपरमार्थप्रकाशकम् ॥ ३ ॥ कामिनांकामजननंमुमुक्षूणाञ्चमोक्षदम् ॥ श्रूयतेयत्रयत्रैनत्तत्रत त्परामृतम् ॥ ४ ॥ क्षेत्रैकदेशवर्तिन्याज्ञानवाप्याःकथाम्पराम् ॥ श्रुत्वेमामितिमन्येहंगौरीहृदयनन्दन ॥ ५ ॥ अणु प्रमाणमपियामध्येकाशिविकाशिनी ॥ महीमहीयसीज्ञेयासासिद्ध्यैनमुधाक्वचित् ॥ ६ ॥ कियन्तिसन्तितीर्थानिनेह क्षोणीतलेऽखिले ॥ परंकाशीरजोमात्रतुलासाम्यंकतेष्वपि ॥ ७ ॥ कियन्त्योनस्रवन्त्योत्ररत्नाकरमुदावहाः ॥ परं स्वर्गतरङ्गिण्याःकाश्यांकासाम्यमुद्वहेत् ॥ ८ ॥ कियन्तिसन्तिनोभूम्यांमोक्षक्षेत्राणिषण्मुख ॥ परंमन्येऽविमुक्तस्यको ट्यंशोपिनतेष्वहो ॥ ९ ॥ गङ्गाविश्वेश्वरःकाशीजागर्तित्रितयंयतः ॥ तत्रनैःश्रेयसीलक्ष्मीर्लभ्यतेचित्रमत्रकिम् ॥ १० ॥ कथमेषात्रयीस्कन्दप्राप्यतेनियतंनरैः ॥ तिष्येयुगेविशेषेणनितरांचञ्चलेन्द्रियैः ॥ ११ ॥ तपस्तादृक्कवातिष्येतिष्ये

हती हैं परन्तु काशी में गंगाकी बराबरी को कौन पहुँचेगी अर्थात् कोई नहींहै ॥ ८ ॥ हे षण्मुख! पृथिवी में कितने मोक्षदायक क्षेत्र नहीं हैं याने अनेकहैं परन्तु उनमें भी काशीकी महिमाके करोड़ हिस्सों में एक अंश कहां है मैं ऐसा मानताहूं कि आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥ जहां गंगा व विश्वनाथ और काशी ये तीनों जागते हैं वहां मुक्ति की सम्पत्ति मिलती है इसमें क्या अचम्भा है ॥ १० ॥ हे कार्त्तिकेयजी! कलियुगमें विशेष से बहुत चंचल इन्द्रियवाले मनुष्योंको यह त्रयी याने पूर्वोक्त तीनों का सं-ग्रह अवश्य करके कैसे प्राप्त कियाजाता है ॥ ११ ॥ क्योंकि कलियुग में वैसा तप कहां व कलियुग में वैसा योग कहां व कलियुग में व्रत और दान कहां है इससे

मोक्ष किससे होवेहै ॥ १२ ॥ हे षण्मुख, कार्त्तिकेय ! तप विना जप विना योग विना और दान विना भी आपने काशीमें मोक्षको कहाहै ॥ १३ ॥ हे स्कन्द ! क्या क्या करतेहुये लोगोंको काशी मिलेहै उसको कहो मैं मानताहूं कि अच्छे आचार विना मनोरथ नहीं सिद्ध होवेहैं ॥ १४ ॥ इससे आचार उत्तम धर्महै व आचार उत्तम तपहै व आचारसे आयु बढ़ती है और आचारसेही पापका नाश होताहै ॥ १५ ॥ हे षण्मुख! उस कारण मुख्य आचारकोही कहो कि श्रीमहादेवजीने आपके आगे जैसे कहाहै वैसेही आप कहो षण्मुख इस सम्बोधन से यह जाना जाताहै कि एक मुखवाला अन्य कैसे कहसक्ता है ॥ १६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मित्र और वरुण से

योगःकृतादृशः ॥ कथंव्रतैःकथंदानैर्नन्तिष्येमोक्षस्त्वतःकुतः ॥ १२ ॥ विनापितपसास्कन्दविनायोगेनषण्मुख ॥ विनाव्रतैर्विनादानैःकाश्यांमोक्षस्त्वयेरितः ॥ १३ ॥ किंकिमाचरतास्कन्दकाशीप्राप्येततद्वद ॥ मन्येविनासदाचारंनसिद्ध्येयुर्मनोरथाः ॥ १४ ॥ आचारःपरमोधर्मआचारःपरमंतपः ॥ आचाराद्वर्धतेह्यायुराचारात्पापसंक्षयः ॥ १५ ॥ आचारमेवप्रथमंतस्मादाचक्ष्वषण्मुख ॥ देवदेवोयथाप्राहतवाग्रेत्वन्तथावद ॥ १६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ मित्रावरुणजाख्यामिसदाचारंसतांहितम् ॥ यदाचरन्नरोनित्यंसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ स्थावराःकृमयोऽब्जाश्चपक्षिणःपशवोनराः ॥ क्रमेणधार्मिकास्त्वेतएतेभ्योधार्मिकाःसुराः ॥ १८ ॥ सहस्रभागःप्रथमाद्द्वितीयोनुक्रमात्तथा ॥ सर्वएतेमहाभागायावन्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ १९ ॥ चतुर्णामपिभूतानांप्राणिनोऽतीवचोत्तमाः ॥ प्राणिभ्योपिमुनेश्रेष्ठाःसर्वेबुद्ध्युपजीविनः ॥ २० ॥ मति

उत्पन्न याने देवपुत्र होनेसे सुनने के अधिकारिन् अगस्त्य ! मैं सन्तों के हितकारी शिष्टाचार को कहताहूं जिसको नित्य करता हुवा नर सब कामोंको पावेहै ॥ १७ ॥ स्थावर (वृक्षादि) कृमि (चींटी आदि जन्तु जिनके हाड़ नहीं होतेहैं) जलसे उत्पन्न (मछली आदि) व पक्षी पशु और मनुष्य ये सब क्रमसे एक एकसे अधिक धर्मात्मा हैं जैसे स्थावरों से अधिक कृमि व कृमियों से अधिक जलजन्तु ऐसे जानना चाहिये और देवता लोग इन सबोंसे अधिक धर्मज्ञ हैं ॥ १८ ॥ व पहले से दूसरा हजार गुण अधिक है वैसे अनुक्रम से जानना उचित है व मुक्तिपर्य्यन्त बराबर है संसाररूप आधार जिनका ऐसे ये सब महान् भाग्यवान् हैं ॥ १९ ॥ हे मुने ! अंडज पिंडज स्वेदज उद्भिज्ज इन चार भांति के जन्तुवों के बीचमें भी श्वासवाले अत्यन्त उत्तम हैं और प्राणियों से भी वे सब श्रेष्ठ होते हैं जोकि ज्ञानपूर्वक

उपजीवी हैं याने हित अनहित को जानते हैं ॥ २० ॥ व बुद्धिमानों से मनुष्य व उनसे ब्राह्मण व ब्राह्मणों से भी विद्यावान् श्रेष्ठहैं और यह योंही है इस भांतिकी बुद्धिको किया जिन्होंने वे उन विद्यावानों से श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ व कृतबुद्धियों से भी श्रेष्ठ कर्ता है और कर्ताओं से श्रेष्ठ वे हैं जे कि ब्रह्मनिष्ठहैं हे अगस्त्य ! तीनों लोकोंमें उनसे अधिक पूज्य अन्य नहीं है ॥ २२ ॥ वेभी तप और विद्याके अविशेष याने सामान्य से आपुस में एक एकके पूजक होतेहैं जिससे ब्रह्माने ब्राह्मण को सब भूतोंका स्वामी बनाया है ॥ २३ ॥ इससे जगत् में टिकी हुई सब वस्तुको ब्राह्मण योग्य होता है अन्य कोई नहीं व सदाचारवालाही सबके योग्यहै और आचार से हीन योग्य नहीं

मद्भ्योनराःश्रेष्ठास्तेभ्यःश्रेष्ठास्तुवाडवाः ॥ विप्रेभ्योपिचविद्वांसोविद्वद्भ्यःकृतबुद्धयः ॥ २१ ॥ कृतधीभ्योपिकर्तारःकर्तृभ्योब्रह्मतत्पराः ॥ नतेषामर्चनीयोऽन्यस्त्रिषुलोकेषुकुम्भज ॥ २२ ॥ अन्योन्यमर्चकास्तेवैतपोविद्याऽविशेषतः ॥ ब्राह्मणोब्रह्मणासृष्टःसर्वभूतेश्वरोयतः ॥ २३ ॥ अतोजगत्स्थितंसर्वंब्राह्मणोऽर्हतिनापरः ॥ सदाचारोहिमर्वार्होनाचाराद्विच्युतःपुनः ॥ तस्माद्विप्रेणसततंभाव्यमाचारशीलिना ॥ २४ ॥ विद्वेषरागरहिताअनुतिष्ठन्तियंमुने ॥ विद्वांसस्तंसदाचारंधर्ममूलंविदुर्बुधाः ॥ २५ ॥ लक्षणैःपरिहीनोपिसम्यगाचारतत्परः ॥ श्रद्धालुरनसूयुश्चनरोजीवेत्समाःशतम् ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंस्वेषुस्वेषुचकर्मसु ॥ सदाचारंनिषेवेतधर्ममूलमतन्द्रितः ॥ २७ ॥ दुराचाररतोलोकेगर्हणीयःपुमान्भवेत् ॥ व्याधिभिश्चाभिभूयेतसदाल्पायुःसुदुःखभाक् ॥ २८ ॥ त्याज्यंकर्मपराधीनंकार्यमात्मवशंसदा ॥ दुःखीय

है इससे ब्राह्मणको सदा आचार शीलवाला होना उचित है ॥ २४ ॥ हे मुने ! वैर और प्रीति से हीन, पंडितजन जिसको करते हैं उस सदाचार को ज्ञानी लोग धर्मकी जड़ कहते हैं ॥ २५ ॥ लक्षणों से रहित भी, भली भांति चारमें तत्पर व श्रद्धावान् व अनसूय याने पराये गुणोंमें दोषको न लगाता हुआ मनुष्य सौ वर्षतक जीवैहै ॥ २६ ॥ व इससे आलस हीन होकर अपने अपने कर्मों में वेद व स्मृतियों से कहे हुये धर्ममूल सदाचार को सेवै ॥ २७ ॥ दुष्ट आचार में तत्पर पुरुष लोकमें सदा निन्दनीय व बहुत दुःखित होवै और रोगों से हारेहै ॥ २८ ॥ व पराये अधीन जो कर्म है वह सदा तजने योग्य है और अपने अधीन जो कर्म है वह करने योग्यहै

जिससे अन्यके अधीन पुरुष सदैव दुखी है व अपने वश हुवा सदैव सुखी होवे है ॥ २९ ॥ व किये जाते हुये जिस कर्म्म में भीतरका आत्मा प्रसन्न होताहै वही कर्म्म करना चाहिये उससे उलटा कहीं नहीं ॥ ३० ॥ जिससे पहले नियम और यम धर्म के सर्वस्व कहगये हैं इससे धर्म चाही करके उनमेंही यत्न भी करने योग्यहै ॥ ३१ ॥ सत्य वचन क्षमा सीधापन ध्यान अक्रूरता या अमारकता प्राणीमात्रको पीड़ा न देना इन्द्रियों का रोंकना प्रसन्नता मधुरता और कोमलता ये दश यमहैं ॥ ३२ ॥ माटी व जलसे बाहरका तथा भावसे भीतरका शौच, स्नान तप (कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत) दान मौन (वृथा न बतलाना) पञ्चयज्ञादि करना वेद पाठ व्रत (चातुर्मास्यादि)

तःपराधीनःसदैवात्मवशःसुखी ॥ २९ ॥ यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्माक्रियमाणेप्रसीदति ॥ तदेवकर्मकर्तव्यंविपरीतंनच कचित ॥ ३० ॥ प्रथमंधर्मसर्वस्वंप्रोक्तायन्नियमायमाः ॥ अतस्तेष्वेववैयत्नःकर्तव्योधर्ममिच्छता ॥ ३१ ॥ सत्यंक्षमा र्जवन्ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥ दमःप्रसादोमाधुर्यंमृदुतेतियमादश ॥ ३२ ॥ शौचंस्नानन्तपोदानंमौनेज्याध्यय नंव्रतम् ॥ उपोषणोपस्थदण्डौदशैतेनियमाःस्मृताः॥३३॥कामंक्रोधंमदंमोहंमात्सर्यंलोभमेवच ॥ अमून्षड्वैरिणोजि त्वासर्वत्रविजयीभवेत ॥३४॥शनैःशनैःसञ्चिनुयाद्धर्मंवल्मीकशृङ्गवत्॥परपीडामकुर्वाणःपरलोकसहायिनम् ॥ ३५ ॥ धर्मएवसहायीस्यादमुत्रनपरिच्छदः ॥ पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनादिकः ॥ ३६ ॥ जायतेचैकलःप्राणीप्रम्रियेत तथैकलः ॥ एकलःसुकृतम्भुङ्क्तेभुङ्क्तेदुष्कृतमेकलः ॥३७॥ देहंपञ्चत्वमापन्नन्त्यक्त्वाकौकाष्ठलोष्टवत ॥ बान्धवाविमुखायान्ति

उपास (एकादशी आदि) लिंग इन्द्रियको दण्ड देना याने पर स्त्रीसे विमुख होना ये दश नियम कहेगयेहैं ॥ ३३ ॥ व काम कोह मद मोह मत्सरता (ईर्ष्या) और लोभ भी इन छः शत्रुवों को जीतकर सब ओरमें विजयी होवे ॥ ३४ ॥ व तन मन और वचन से पर पीड़ाको न करता हुआ मनुष्य बिमौरकूट की नाईं याने जैसे बिमौरके कीट कणसे उसको बढ़ाते हैं वैसे परलोकसहायक धर्म्मको धीरे धीरे बटोरे ॥ ३५ ॥ क्योंकि धर्महीं उस लोकमें सहायक होवै है पिता माता पुत्र भ्राता स्त्री मित्रजनादि हाथी घोड़े और मन्दिरादि सामग्री नहीं ॥ ३६ ॥ किंतु अकेला प्राणी उपजताहै तथा अकेला मरता है अकेला पुण्य को भोगताहै व अकेला पापको भोगता है ॥ ३७ ॥ देखो कि पञ्चत्व याने पांच तत्त्वों के भावको प्राप्तभई देह को काठ व लुकेंढ़ की नाईं भूमि में तजकर बांधव लोग विमुख होजाते हैं और धर्म्मही जातहुये जनके

पीछे जाते हैं ॥ ३८ ॥ उस कारण पुण्यवान् या सुकर्मी लोग उस लोकमें सहायक धर्मको बटोरें व धर्मको सहायक पाकर दुस्तर दुःख या, संसार अज्ञान अन्धकार को भलीभांति तरे ॥ ३९ ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य उत्तम उत्तम लोगों के साथ सम्बन्ध को नित्यही करे व अधम अधम जनोंको तजकर कुलको बड़ाई के प्रति पहुँचावे ॥ ४० ॥ उत्तम उत्तम लोगों के पास जाता व नीचों को बराता हुवा ब्राह्मणश्रेष्ठता को प्राप्त होता है और नीचों के साथ सम्बन्धादि करने से उपजेहुये पाप से शूद्र के भावको जाता है ॥ ४१ ॥ व न पठनशील व सदाचारहीन व आलसी और दुष्टअन्न खानेवाले ब्राह्मण को काल बांधताहै ॥ ४२ ॥ उस कारण ब्राह्मण यत्न से

न्तिधर्मोयान्तमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तस्मात्सञ्चिनुयाद्धर्मंततोऽमुत्रसहायिनम् ॥ धर्मंसहायिनंलब्ध्वासन्तरेदुस्तरन्तमः ॥ ३९ ॥ सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैःसुधीः ॥ अधमानधमांस्त्यक्त्वाकुलमुत्कर्षतांनयेत ॥ ४० ॥ उत्तमानुत्तमानेवगच्छन्हीनांश्चवर्जयन् ॥ ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेतिप्रत्यवायेनशूद्रताम् ॥ ४१ ॥ अनध्ययनशीलञ्चसदाचारविलङ्घिनम् ॥ सालसञ्चदुरन्नादंब्राह्मणम्बाधतेऽन्तकः ॥ ४२ ॥ ततोऽभ्यसेत्प्रयत्नेनसदाचारंसदाद्विजः ॥ तीर्थान्यप्यभिलष्यन्तिसदाचारिसमागमम् ॥ ४३ ॥ रजनीप्रान्तयामार्धंब्राह्मःसमयउच्यते ॥ स्वहितञ्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिन्नुत्थायसर्वदा ॥ ४४ ॥ गजास्यंसंस्मरेदादौततईशंसहाम्बया ॥ श्रीरङ्गंश्रीसमेतन्तुब्रह्माणंवाकमलोद्भवम् ॥ ४५ ॥ इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःश्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ४६ ॥ क्षीरोदादीन्समुद्रांश्चमानसादिसरांसिच ॥ वनानिनन्दनादीनिधेनूःकामदुघादिकाः ॥ ४७ ॥ कल्पवृक्षादिवृक्षांश्चधातून्काञ्चनमुख्यतः ॥ दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याग

सदा अच्छे आचरण को अभ्यास करे क्योंकि तीर्थभी सदाचारी की संगति चाहते हैं ॥ ४३ ॥ और रात्रि के पीछे पहरका आधा याने चारदण्ड समय ब्राह्ममुहूर्त कहाता है उसमें उठाकर बुद्धिमान् मनुष्य सदैव अपने हितका उपाय विचारे ॥ ४४ ॥ पहले श्रीगणेश जी को सुमिरे तदनन्तर पार्वती के साथ शिव व लक्ष्मी समेत श्रीरङ्गनाथ विष्णु सरस्वती सहित ब्रह्मा ॥ ४५ ॥ व इन्द्रादि सब देव वशिष्ठादि मुनि भी गङ्गादि सब नदी श्रीशैलादि सब पर्वत ॥ ४६ ॥ व क्षीरसागरादि समुद्र मानस

आदि तड़ाग नन्दनादि वन व कामधेनु आदि गौवें ॥ ४७ ॥ व कल्पवृक्ष सुवर्णादि धातु उर्वशीआदि अप्सरायें गरुड़ादि पक्षी ॥ ४८ ॥ व शेषादि नाग ऐरावतादि हाथी उच्चैःश्रवाआदि घोड़े कौस्तुभादि शुभमणि ॥ ४९ ॥ व अरुंधती आदि पतिव्रता स्त्री नैमिषारण्यादि वन और काशीआदि पुरी इन सबको भलीभांति सुमिरै ॥ ५० ॥ व विश्वेश्वरादि लिङ्ग ऋग्वेदादि वेद भी व गायत्री आदि मन्त्र व सनकादि योगी ॥ ५१ ॥ व ओंकारादि महाबीज नारदादि वैष्णव बाणासुरादि शिवभक्त व प्रह्लादादि दृढ़व्रत वाले ॥ ५२ ॥ व दधीचि आदि बड़ेदानी हरिश्चन्द्रादि राजा और सब तीर्थों से अत्यन्त उत्तम माता के पांवों को सुमिरकर ॥ ५३ ॥ फिर पिता व

रुद्रादीनप्सरसः ॥ ४८ ॥ नागांश्चशेषप्रमुखान्गजानैरावतादिकान् ॥ अश्वानुच्चैःश्रवोमुख्यान्कौस्तुभादीन्मणीञ्छुभान् ॥ ४९ ॥ स्मरेदरुन्धतीमुख्याःपतिव्रतवतीर्वधूः ॥ नैमिषादीन्यरण्यानिपुरीःकाशीपुरीमुखाः ॥ ५० ॥ विश्वेशादीनिलिङ्गानिवेदानृक्प्रमुखानपि ॥ गायत्रीप्रमुखान्मन्त्रान्योगिनःसनकादिकान् ॥ ५१ ॥ प्रणवादिमहाबीजंनारदादींश्चवैष्णवान् ॥ शिवभक्तांश्चबाणादीन्प्रह्लादादीन्दृढव्रतान् ॥ ५२ ॥ वदान्यांश्चदधीच्यादीन्हरिश्चन्द्रादिभूपतीन् ॥ जननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ ५३ ॥ पितरञ्चगुरूंश्चापिहृदिध्यात्वाप्रसन्नधीः ॥ ततश्चावश्यकंकर्तुंनैर्ऋतींदिशमाश्रयेत ॥ ५४ ॥ ग्रामाद्धनुःशतञ्गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ॥ तृणैराच्छाद्यवसुधांशिरःप्रावृत्यवाससा ॥ ५५ ॥ कर्णोपवीत्युदग्वक्त्रोदिवसेसन्ध्ययोरपि ॥ विण्मूत्रेविसृजेन्मौनीनिशायान्दक्षिणामुखः ॥ ५६ ॥ नतिष्ठन्नाप्सुनोविप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ नफालकृष्टेभूभागेनरथ्यासेव्यभूतले ॥ ५७ ॥ नालोकयेद्दिशोभागाञ्ज्योतिश्चक्रंनभोमलम् ॥ वा

गुरुओं को हृदय में ध्यानधर प्रसन्न चित्त होकर तदनन्तर आवश्यक कर्म करने के लिये नैर्ऋत्य दिशाको सेवै ॥ ५४ ॥ ग्रामसे चारसौ हाथ और नगर से चौगुन याने सोलहसौ हाथ बाहर निकलजावै तब भूमिको खरसमूह से ढांपकर वस्त्र से शिरको घेरकर ॥ ५५ ॥ व कानमें यज्ञोपवीत वाला उत्तर मुख बैठा हुआ मौनधारी मनुष्य दिन और दोनों सन्ध्याओं में भी विष्ठा व मूत्र को तजे तथा रातमें दक्षिण मुख होवै ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण गऊ आग और वायुके सम्मुख बैठा नहीं खड़ाहुवा नहीं जल व जोतेखेत में नहीं और गली व सेवने योग्य भूतल में विष्ठा तथा मूत्रको न तजे ॥ ५७ ॥ दिशाके भाग नक्षत्र समूह और निर्मल आकाश को न देखे बायें

हाथ से लिंगको पकड़कर बड़े यत्नवाला नर उठे ॥ ५८ ॥ अनन्तर मूसकी खनी शौचरो बची व ग्युरा से हुई माटीको छोड़कर जन्तु व कङ्कर से हीन माटीको लेवे॥ ५९ ॥ लिङ्गमें एक माटी व गुदा में बीच बीच पानीसे अन्तरवाली पांच व बायें हाथ में भी दश और दोनों हाथों में सात माटी देवे ॥ ६० ॥ व दोनों पाँवों में एक एक व दोनों हाथों में तीनमाटी देवे इसभांति गृहस्थजन दुर्गंध के नाशतक शौचको करे ॥ ६१ ॥ व ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीनों में क्रम से इस से दूना चौगुना और अठगुना शौच होता है दिनमें उचित शौचका आधा रातमें करे ॥ ६२ ॥ रोग में आधा व उसका आधा अर्थात् चौथाई शौच चोरआदिकी

मेनपाणिनाशिश्नन्धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ ५८ ॥ अथोमृदंसमादायजन्तुकर्करवर्जिताम् ॥ विहायमूषकोत्खातांशौचो च्छिष्टाश्चनाकुलाम् ॥ ५९ ॥ गुदेदद्यान्मृदश्चैकाम्पायौपञ्चाम्बुसान्तराः॥दशवामकरेचापिसप्तपाण्योर्द्वयमृदः॥६०॥ एकैकाम्पादयोर्दद्यात्तिस्रःपाण्योर्मृदस्तथा ॥ इत्थंशौचंगृहीकुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ॥ ६१ ॥ क्रमाद्द्वैगुण्यमेतस्माद्ब्र ह्मचर्यादिषुत्रिषु ॥ दिवाविहितशौचस्यरात्रावर्धंसमाचरेत् ॥ ६२ ॥ रुज्यर्धञ्चतदर्धञ्चपथिचौरादिबाधिते ॥ तदर्धंयो षिताञ्चापिस्वस्थेन्यूनंनकारयेत् ॥ ६३ ॥ अपिसर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चापिगोमयैः ॥ आपादमाचरञ्शौचंभावदुष्टोनशु द्धिभाक् ॥ ६४ ॥ आर्द्रधात्रीफलोन्मानामृदःशौचेप्रकीर्तिताः ॥ सर्वाश्चाहुतयोप्येवंग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ॥ ६५ ॥ प्रा गास्यउदगास्योवासूपविष्टःशुचौभुवि ॥ उपस्पृशेद्द्विहीनायान्तुपाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ ६६ ॥ अनुष्णाभिरफेनाभिर

बाधावाली गली में करे और उसका आधा स्त्रियों के लिये कहा गयाहै किन्तु स्वस्थ चित्त में कम न करावे ॥ ६३ ॥ संभावना कीजाती है कि सब नदियों के पानी माटी के ढीले और गोबर समूह से भी मूड़ से पांव पर्यंत शौचको करता हुआ दोषयुत अन्तःकरणवाला शुद्धिका भागी नहीं है ॥ ६४ ॥ शौचमें माटी व होम में सब आहुतियां और चान्द्रायण व्रतमें कौरमी तौल से ओदे आँराफल के बराबर कहेगये हैं ॥ ६५ ॥ भूमी अंगार हाड़ और राख से रहित पवित्र भूमि में पूर्वमुख व उत्तर मुख होकर नीचे बैठाहुआ पानीको परसे ॥ ६६ ॥ व स्वस्थचित्त वेगात्रर्जित ब्राह्मण, शीतल व फेनाहीन व दृष्टि से पवित्र व हृदय के जातेहुये

जलसे ब्रह्मतीर्थ याने अंगुष्ठ मूल में धर पान करके आचमन करे ॥ ६७ ॥ व गले तक गये पानी से क्षत्रिय तथा तालूतक गये से वैश्य शुद्ध होवे व स्त्री और शूद्र मुख में पानी परसने मात्र सेही शुद्ध होते हैं ॥ ६८ ॥ मस्तक व कण्ठ में वस्त्रबांधे व चोटी छोड़े व दोनों पावँ न धोये और जलमें आचमन किये हुवा भी अन अशुद्धही माना गया है ॥ ६९ ॥ इस से शुद्ध होने के अर्थ तीनचार पानीकोपीकर तदनन्तर इन्द्रियों को जल से विशेष शुद्धकरे उसकी विधि कहते हैं कि अंगुठा के मूल भाग से दो दो बार दोनों ओठोंको परसे ॥ ७० ॥ फिर सुबुद्धिमान् पीछे से तीनि अंगुलियों करके मुखको छूवे व तर्जनी याने अंगुठाके लगेकी अंगुली

द्विर्हृद्गाभिरस्वरः ॥ ब्राह्मणोब्रह्मतीर्थेनदृष्टिपूताभिराचमेत् ॥ ६७ ॥ कण्ठगाभिर्नृपःशुद्ध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः ॥ स्त्री शूद्रावास्यसंस्पर्शमात्रेणापिविशुद्ध्यतः ॥ ६८ ॥ शिरःप्रावृत्यकण्ठंवाजलेमुक्तशिखोऽपिच ॥ अक्षालितपदद्वन्द्वआ चान्तोप्यशुचिर्मतः ॥ ६९ ॥ त्रिःपीत्वाम्बुविशुद्ध्यर्थन्ततःखानिविशोधयेत् ॥ अंगुष्ठमूलदेशेनद्विर्द्विरोष्ठाधरौस्पृशे त् ॥ ७० ॥ अंगुलीभिस्त्रिभिःपश्चात्पुनरास्यंस्पृशेत्सुधीः ॥ तर्जन्यंगुष्ठकोट्याचघ्राणरन्ध्रेपुनःपुनः ॥ ७१ ॥ अंगुष्ठाना मिकाग्राभ्यांचक्षुःश्रोत्रेपुनःपुनः ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोगेननाभिरन्ध्रमुपस्पृशेत् ॥ ७२ ॥ स्पृष्ट्वातलेनहृदयंसमस्ताभिः शिरःस्पृशेत् ॥ अंगुल्यग्रैस्तथास्कन्धौसाम्बुसर्वत्रसंस्पृशेत ॥ ७३ ॥ आचान्तःपुनराचामेत्कृतेरथ्योपसर्पणे ॥ स्ना त्वाभुक्त्वापयःपीत्वाप्रारम्भेशुभकर्मणाम् ॥ ७४ ॥ सुप्त्वावासःपरीधायतथादृष्ट्वाप्यमङ्गलम् ॥ प्रमादादशुचिंस्पृष्ट्वा

और अंगुठा के आगे से नाक के दोनों बिलोंको बार बार विशोधन करे ॥ ७१ ॥ व अंगुठा और अनामिका के अग्रों से आंखों और कानों को वैसेही छगुनियां व अंगुठा के योगसे तोंदी को बार बार धोवे ॥ ७२ ॥ व हाथकी गदोरी से हृदय को परसकर सब अंगुलियों से मस्तक के और अंगुलियों के आगे से कांधों को पानी समेत जैसेहो वैसे सबओर भलीभांति परसे ॥ ७३ ॥ व आचमन किये हुवा भी गली चलने से फिर अचवे क्योंकि नहाकर खाकर दूध पीकर व शुभ कर्मों के प्रारम्भ याने लगालगाने में आचमन कियेहुवा भी फिर आचमन करे ॥ ७४ ॥ व शयन कर कपड़े पहिनकर व अमंगल को देखकर तथा अशुद्ध को छूकर दुबारा

आचमन करता हुआ पवित्र होवे है ॥ ७५ ॥ उसकेबाद मुख शोधने के लिये दतून को गहे जिससे अँचयेहुवा भी दतून को न कर अपवित्रही होता है ॥ ७६ ॥ परीवा अमावस छठ नवमी और सूर्य्यवार में दांतों व काठका संयोग सात कुलतक जलावे है ॥ ७७ ॥ इससे दतून के न मिलने व वर्जित तिथि और दिनमें मुख की शुचिके लिये बारह कुल्ले गहने योग्यहै ॥ ७८ ॥ वा छगुनियासे मोटी व त्वचा समेत निश्छिद्र कोमल या सीधी और साढ़े बारह अंगुलकी लम्बी दतून होवेहै ॥ ७९ ॥ व एक एक अंगुल कम करने से क्षत्रियादि अन्य वर्णों में दंतकाठ कहागयाहै आंब अंबार और औराकी व कंकोल और खैरसे हुई ॥ ८० ॥ व छीगुरि लटजीरा खजूर

द्विराचान्तःशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अथोमुखविशुद्ध्यर्थंगृह्णीयाद्दन्तधावनम् ॥ आचान्तोप्यशुचिर्यस्मादकृत्वादन्तधावनम् ॥ ७६ ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषुनवम्यांरविवासरे ॥ दन्तानांकाष्ठसंयोगोदहेदासप्तमंकुलम् ॥ ७७ ॥ अलाभेदन्तकाष्ठानांनिषिद्धेवाथवासरे ॥ गण्डूषाद्वादशग्राह्यामुखस्यपरिशुद्धये ॥ ७८ ॥ कनिष्ठाग्रपरीमाणंसत्वचंनिर्व्रणंऋजुम् ॥ द्वादशांगुलमानञ्चसार्धंस्याद्दन्तधावनम् ॥ ७९ ॥ एकैकांगुलह्रासेनवर्णेष्वन्येषुकीर्तितम् ॥ आम्राम्रातकधात्रीणांकङ्कोलखदिरोद्भवम् ॥ ८० ॥ शम्यपामार्गखर्जूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् ॥ राजादनञ्चनारङ्गंकषायकटुकण्टकम् ॥ ८१ ॥ क्षीरवृक्षोद्भवंचापिप्रशस्तंदन्तधावनम् ॥ जिह्वोल्लेखनिकांचापिकुर्याच्चापाकृतिंशुभाम् ॥ ८२ ॥ अन्नाद्यायव्यूहध्वंसोमोराजायसागमत् ॥ समेमुखम्प्रमार्क्ष्यतेयशसाचभगेनच ॥ ८३ ॥ आयुर्बलंयशोवर्चःप्रजाःपशुवसूनिच ॥ ब्रह्मप्रज्ञाञ्चमेधाञ्चत्वन्नोदेहिवनस्पते ॥ ८४ ॥ मन्त्रावेतौसमुच्चार्ययःकुर्याद्दन्तधावनम् ॥ वनस्पतिगतःसोमस्तस्यनित्यम्प्रसी

वा कुहारा लसोढ़ा कायफर चिरौंजी व पिलुवासे हुई व नारंगी बाकठ व कोमल कटीले ॥ ८१ ॥ और दुधारे वृक्षोंकी भी दतून उत्तम है उसके बाद जीभ शोधने के लिये धन्वा के आकारकी शुभ जीभीको भी बनावे ॥ ८२ ॥ हे दन्तो ! तुम अन्न खाने के लिये निर्मल या दृढ़ होवो जिसमें वनस्पति के प्रति या काठरूप यह चन्द्र राजा आयाहै वह मेरे मुखको सुयश और भाग्य से शोधेगा ॥ ८३ ॥ हे वनस्पते ! तुम हमको आयु बल सुयश तेज पुत्रादि पशु धन ब्रह्मज्ञान और धारणाशक्ति

कोदो ॥ ८४ ॥ इन दोनों मन्त्रों को कहकर जो दन्तधावनको करे उससे वनस्पति में प्राप्त चन्द्रमा सदा प्रसन्नहोवैहै ॥ ८५ ॥ जिससे मनुष्य मुखके वासी [illegible]
चित्रहोते हैं उसकारण शुद्धि के लिये प्रयत्नसे दतूनको करे ॥ ८६ ॥ व बारह कुल्ले करके दन्तों का धोवना अंजन सुगन्ध गहने भूषण व फूलोंकी माला और [illegible]
पन ये सब उपवास में भी नहीं दूषित होते हैं ॥ ८७ ॥ तब प्रातःकाल विशेष से शुद्ध तीर्थ में स्नानकर दन्तधावनपूर्वक प्रातःसंध्या करै ॥ ८८ ॥ जिसमें नाक कान आंखें
मुख लिंग और गुदा इन नव छेदों से छिद्रित सदा मलिन जो यह देह रातोदिन झिरती है उससे वह प्रातः स्नान से शुद्ध होवे है ॥ ८९ ॥ इससे उत्साह बुद्धि

दति ॥ ८५ ॥ मुखेपर्युषितेयस्माद्भवेदशुचिभाग्नरः ॥ ततःकुर्यात्प्रयत्नेनशुद्ध्यर्थंदन्तधावनम् ॥ ८६ ॥ उपवासेपिनो
दुष्येद्दन्तधावनमञ्जनम् ॥ गन्धालङ्कारसद्वस्त्रपुष्पमालानुलेपनम् ॥ ८७ ॥ प्रातःसन्ध्यान्ततःकुर्याद्दन्तधावनपूर्विका
म् ॥ प्रातःस्नानञ्चरित्वाचशुद्धेतीर्थेविशेषतः ॥ ८८ ॥ प्रातःस्नानाद्यतःशुद्ध्येत्कायोयंमलिनःसदा ॥ छिद्रितोनवभि
श्छिद्रैःस्रवत्येवदिवानिशम् ॥ ८९ ॥ उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्त्तकम् ॥ मनःप्रसन्नताहेतुःप्रातःस्नानम्प्रश
स्यते ॥ ९० ॥ प्रस्वेदलालाद्याक्लिन्नोनिद्राधीनोयतोनरः ॥ प्रातःस्नानात्ततोर्हःस्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु ॥ ९१ ॥ प्रा
तःप्रातस्तुयत्स्नानंसञ्जातेचारुणोदये ॥ प्राजापत्यसमम्प्राहुस्तन्महाघविघातकृत् ॥ ९२ ॥ प्रातःस्नानंहरेत्पापमल
क्ष्मींग्लानिमेवच ॥ अशुचित्वञ्चदुःस्वप्नंतुष्टिम्पुष्टिम्प्रयच्छति ॥ ९३ ॥ नोपसर्पन्तिवैदुष्टाःप्रातःस्नायिजनंक्वचित ॥ दृ
ष्टादृष्टफलंयस्मात्प्रातःस्नानंसमाचरेत् ॥ ९४ ॥ प्रसङ्गतःस्नानविधिंवक्ष्यामिकलशोद्भव ॥ विधिस्नानंयतःप्राहुःस्नाना

सौभाग्य रूप सम्पत्ति और शोभाका दाता व मनकी प्रसन्नताका कारण प्रातःकालमें नहाना प्रशंसा जाताहै ॥ ९० ॥ व जिससे नींदके वश मनुष्य पसीना व लार आदि
से भीगाहुवा होताहै उस कारण प्रातः स्नान से मंत्र स्तोत्र और जपादिकों में योग्य होवे है ॥ ९१ ॥ अरुणोदयके होतेही याने चारदण्ड रात रहजाने पर प्रातःकाल प्रातः
कालमें जो स्नान है उसको प्राजापत्य व्रतके समान महापापनाशक कहते हैं ॥ ९२ ॥ व प्रातः स्नान पाप दरिद्र ग्लानि अशुद्धता और दुष्ट स्वप्नको हरताहै तथा संतुष्टि
व पुष्टिको देताहै ॥ ९३ ॥ व दुष्ट भी कहीं प्रातःकाल नहातेहुये जनके समीप नहीं जातेहैं और जिससे देखा व देखाहुवा भी फल होताहै उस प्रातःस्नान को करे ॥ ९४ ॥

शतगुणोत्तरम् ॥ ९५ ॥ विशुद्धांमृदमादायबर्हींषितिलगोमयम् ॥ शुचौदेशेपरिस्थाप्यत्वाचम्यस्नानमाचरेत् ॥ ९६ ॥
उपग्रहीनबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ॥ उरुंहीतिमन्त्रेणतोयमावर्त्यसुस्थितः ॥ ९७ ॥ येतेशतन्ततोजप्त्वातो
यस्यामन्त्रणायच ॥ सुमित्रियानोमन्त्रेणपूर्वंकृत्वाजलाञ्जलिम् ॥ क्षिपेद्द्वेष्यंसमुद्दिश्यजपन्दुर्मित्रियाइति ॥ ९८ ॥ इदं
विष्णुरिमञ्जप्त्वालिम्पेदङ्गानिमृत्स्नया ॥ मृदैकयाशिरःक्षाल्यद्वाभ्यांनाभेस्तथोपरि ॥ ९९ ॥ नाभेरधस्तुतिसृभिःपादौ
षड्भिर्विशोधयेत् ॥ मज्जेत्प्रवाहाभिमुखआपोअस्मानिमंजपन् ॥ १०० ॥ उदिदाभ्यःशुचिरितिमन्त्रउन्मज्जनेमतः ॥
मानस्तोकइमंजप्त्वालिम्पेद्गात्राणिगोमयैः ॥ १ ॥ इमम्मेवरुणेत्यादिमन्त्रैःस्वात्माभिषेचनम् ॥ तत्त्वायामितथात्वन्नः

हे अगस्त्य ! प्रसंग से स्नानका विधान कहूंगा जिससे विधिपूर्वक नहानेको सामान्य स्नान से सैकड़ों गुण अधिक कहते हैं ॥ ९५ ॥ कि शुद्ध माटी कुश तिल और गोबर लेकर पवित्र देशमें धर आचमनकर स्नानको करे ॥ ९६ ॥ कुश लिये व चोटी बन्धन किये हुवा मनुष्य (उरु ९ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्था मन्वेतवाउ ॥ अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुताय वक्ता हृदयाविधश्चित् नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः) इस मन्त्रकरके दक्षिणमार्ग में जलको आवर्त्तनकर पानीके भीतर भलीभांतिसे पैठे ॥ ९७ ॥ तदनन्तर जलको सम्मुखकरनेके लिये (येते शतं वरुणसहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोघनवितोतविष्णुर्विश्वेमुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः) इसमन्त्रको जपकर पहले (सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु) इस मन्त्रसे जलकी अंजलीकर फिर (दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः) इस मन्त्रको जपताहुवा वैरीको उद्देशकर पानीको उछाड़े ॥ ९८ ॥ और (इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम ॥ समूढमस्यपांसुरे) इस मन्त्र से अंगों में माटी लगावै एक माटीसे शिरको शोधे व दोसे नाभिके ऊपर ॥ ९९ ॥ व तीन से नाभि के नीचे और छः बार माटी लगाने से दोनों पावों को शुद्धकर तब (आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नः घृतप्वः पुनन्तु ॥ विश्वं हिरिप्रं प्रवहन्ति देवीः) इस मन्त्रको जपताहुवा प्रवाहके सम्मुखहोकर पानीमें डुबकी लगावै ॥ १०० ॥ व (उदिदाभ्यः शुचिरापूतएमि) यह मन्त्र उन्मज्जन याने ऊपर निकलने में मानागयाहै और (मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः ॥ मानो वीरान् रुद्रभामिनोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्वाहवामहे) इस मन्त्रको जपकर गोबरसे अंगों को लीपै ॥ १ ॥ उसके बाद इमं मे वरुण इत्यादि मन्त्रों से अपने ऊपर जल

को छिड़के उन सब मन्त्रोंको क्रमसे लिखताहूं जे कि मूलमें प्रतीकमात्रसे कहेगये हैं (इमंमेवरुणश्रुधीहवमद्याचमृडय ॥ त्वामवस्युराचके १ तत्त्वायामिब्रह्मणावन्दमान स्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः ॥ अहेडमानोवरुणेहबोध्युरुशश्ठंसमानआयुः प्रमोषीः २ त्वन्नोअग्नेवरुणस्यविद्वान्देवस्यहेडोअवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठोवह्नितमःशोशुचानोवि श्वाद्वेषाश्ठंसिप्रमुमुग्ध्यस्मत् ३ सत्वंनोअग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोअस्याउषसोव्युष्टौ ॥ अवयक्ष्वनोवरुणश्ठंरराणोवीहिमृडीकश्ठंसुहवोनएधि ४ उदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमश्ठंश्रथाय ॥ अथावयमादित्यव्रतेतवानागसोअदितयेस्याम ५ ॥ २ ॥ धाम्नोधाम्नोराजंस्ततोवरुणनोमुञ्च ६ मापोमौषधीर्हिंसीः ७ यदाहुरघ्न्यावरुणेतिशपामहेततो वरुणनोमुञ्च ८ सुमित्रियानआपओषधयःसन्तुदुर्मित्रियास्तस्मैसन्तुयोऽस्मान्द्वेष्टि ... अवभृथनिचुम्पुणनिचेरुरसिनिचुम्पुणः ॥ अवदेवैर्देवकृतमेनोयासिषमवमर्त्यै र्मर्त्यकृतंपुरुराव्णोदेवरिषस्पाहि १०) इन मंत्रोंको भलीभांति से जपे ॥ ३ ॥ जल देवतावाले ये मंत्र अपने अभिषेक करनेमें कहे गयेहैं उसके बाद ॐकार और भूः भुवः

सत्वंनश्चाप्युदुत्तमम् ॥ २ ॥ धाम्नोधाम्नस्तथामापोमौषधीरितिसंजपेत् ॥ यदाहुरघ्न्यामुञ्चन्तुमेतिचावभृथेतिच ॥ ३ ॥
अब्देवताइमेमन्त्राःप्रोक्ताःस्वात्माभिषेचने ॥ प्रणवेनततोविप्रोमहाव्याहृतिभिस्ततः ॥ ४ ॥ आत्मानम्पावयेद्विद्वान्गा
यत्र्याचततःकृती ॥ आपोहिष्ठेतितिसृभिःप्रत्यृचंपावनंस्मृतम् ॥ ५ ॥ एतेपिपावनामन्त्राइदमापोहविष्मतीः ॥ देवीरा

स्वः इन तीनों महाव्याहृतियोंसे ब्राह्मण ॥ ४ ॥ जोकि पंडित व पुण्यवान् या चतुरहो वह अपनाको पवित्रकरे तदनन्तर गायत्री याने (तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि ॥ धियोयोनः प्रचोदयात्) इस मंत्र से भी और (आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन ॥ महेरणायचक्षसे १ योवःशिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः ॥ उशतीरिवमातरः २ तस्माअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ ॥ आपोजनयथाचनः ३) इन तीन ऋचाओं से ऋचा ऋचाके प्रति पवित्रता कही गईहै ॥ ५ ॥ व आगे कहे जातेहुये जे ये मंत्रभी पवित्रता करनेवाले हैं उनको क्रमसे लिखताहूं (इदमापःप्रवहतावद्यंचमलंचयत् ॥ यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्चशेपेअभीरुणम् ॥ आपोमातस्मादेनसःपवमानश्चमुञ्चतु १ हवि ष्मतीरिमाआपोहविष्माँआविवासति ॥ हविष्मान्देवोअध्वरोहविष्माँअस्तुसूर्य्यः २ देवीरापोऽपान्नपाद्योवऊर्मिर्हविष्यः ॥ इन्द्रियावान्मदिन्तमः ३ अपोदेवामधुमतीरगृभ्णन्नू र्जस्वतीराजस्वश्चितानाः ॥ याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ४ द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नःस्नातोमलादिव ॥ पूतंपवित्रेणेवाज्यमापःशुन्धन्तुमैनसः ५ शन्नोदेवीरभिष्टयआपोभवन्तुपीतये ॥ शंयोरभिस्रवन्तुनः ६ अपोदेवीरुपसृजमधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ॥ तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयःसुपिप्पलाः ७ अपाश्ठंरसउद्वयस

ळसूर्योंसन्तथंसमाहितम् ॥ अपाथंरसस्यपोरसस्तंवोगृह्णाम्युत्तमम् ८) ॥ ६ ॥ इन आठमंत्रोंके आगे पुनन्तुमापितरःइत्यादि नव पावमानी याने प[illegible]ना करनेवाली ऋचायें कही गईहैं वे ये हैं कि (पुनन्तुमापितरःसोम्यासः पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषा १ पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्रपितामहाः ॥ पवित्रेणशता[illegible]युषा विश्वमायुर्व्यश्नवै २ अग्नआयूंषिपवसआसुवोर्जमिषंचनः ॥ आरेबाधस्वदुच्छुनाम् ३ पुनन्तुमादेवजनाः पुनन्तुमनसाधियः ॥ पुनन्तुविश्वाभूतानिजातवेदःपुनी[illegible] ४ पवित्रेणपुनीहिमाशुक्रेणदेवदीद्यत ॥ अग्नेक्रत्वाक्रतूंरनु ५ यत्तेपवित्रमर्चिष्यग्नेविततमन्तरा ॥ ब्रह्मतेनपुनातुमा ६ पवमानः सो अद्यनःपवित्रेणविचर्षणिः ॥ यः पोता[illegible] पुनातुमा ७ उभाभ्यांदेवसवितः पवित्रेण सवेनच ॥ मांपुनीहिविश्वतः ८ वैश्वदेवीपुनतीदेव्यागायस्यामिमाबह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ॥ तयामदन्तःसधमादेषुवयंस्यामपत

पञ्चपोदेवाद्दुपदादिवसंज्ञकाः ॥ ६ ॥ शन्नोदेवीरपोदेवीरपांरसमित्यपि ॥ पुनन्तुमेतिचनवपावमान्यःप्रकीर्तिताः ॥७॥ ततोऽघमर्षणंजप्त्वाद्रुपदांवातोजपेत् ॥ प्राणायामञ्चविधिवदथवान्तर्जलेजपेत् ॥ ८ ॥ प्रणवान्त्रिर्जपेद्वापिविष्णुं वासंस्मरेत्सुधीः ॥ स्नात्वेत्थंवस्त्रमापीड्यगृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ ९ ॥ आचम्यचततःकुर्यात्प्रातःसन्ध्यांकुशान्विता म् ॥ योनसन्ध्यामुपासीतब्राह्मणोहिविशेषतः ॥ १० ॥ सजीवन्नेवशूद्रस्तुमृतःश्वाजायतेध्रुवम् ॥ सन्ध्याहीनोऽशु चिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु ॥ ११ ॥ यदन्यत्कुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥ प्रणवम्प्राग्दिशिस्मृत्वाततोदत्त्वाकुशा

योरर्षीणाम् ९) ॥ ७ ॥ तदनन्तर अघमर्षण मन्त्रको जप फिर द्रुपदादिवमुमुचानः इस पूर्वोक्त मंत्रको जपे अथवा जलके भीतर विधिपूर्वक प्राणायामको जपे (ऋतंचसत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥ ततोरात्र्यजायत ततःसमुद्रोअर्णवः ॥ समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोअजायत ॥ अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्यमिषतोवशी ॥ सूर्याचन्द्रमसौधातायथा पूर्वमकल्पयत् ॥ दिवंचपृथिवींचान्तरिक्षमथोस्वः ॥ इति अघमर्षणमन्त्रः ॥ ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात् ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ॥ इति प्राणायाममन्त्रः) ॥ ८ ॥ व तीन बार ॐकारको जपे व विष्णुको सुमिरे ऐसे नहाकर वस्त्रोंको नि- चोड़कर धोये कपड़ोंको पहने ॥ ९ ॥ तदनन्तर आचमनकर कुशों समेत प्रातःसन्ध्याको करे जो ब्राह्मणभी विशेषसे सन्ध्याको नहीं उपासताहै अर्थात् सन्ध्योपासनको नहीं करताहै ॥ १० ॥ वह जीवताही शूद्रहै और मराहुआ निश्चयकर कुत्ता होताहै व सन्ध्यासे हीन ब्राह्मण सब कर्मों में अयोग्य और अपवित्रहो ॥ ११ ॥ जिस कर्मको

स०पु० ४४३

करे उसके फलका भागी न होवे ॐकारको सुमिरकर तदनन्तर पूर्व दिशामें कुशासन देवे ॥ १२ ॥ (चतुःशक्तिर्नाभिकृतस्यसप्रथाःमनोनिरायुः सप्रथाः । [illegible]
प्रथाः अपहेषो अपह्वरोऽन्यव्रतस्यसश्चिम) इस मंत्रको पढ़कर अन्यत्र दृष्टि व मन लगानेवाला न होकर ॥ १३ ॥ चोटीको बांधि व पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठाहुआ दाहिने और
से अपने ऊपर जलको छिड़ककर प्राणायामको करै ॥ १४ ॥ भूः आदि सात व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्रको शिर याने अन्त में आपोज्योति. इनके साथ तीनवार जो यह
प्राणायाम दश ॐकारसमेत कहा जाताहै जैसे ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः इत्यादि पूरामन्त्र पहले लिखाहै ॥ १५ ॥ इन्द्रिय और मनको रोक प्राणायाम करता हुआ

सनम् ॥ १२ ॥ चतुःशक्तिरिमंमन्त्रंपठित्वानान्यदृङ्मनाः ॥ १३ ॥ प्राङ्मुखोबद्धचूडोवाप्युपविश्यउदङ्मुखः ॥ प्रन्
निर्णस्त्वमभ्युक्ष्यप्राणायामंसमाचरेत् ॥ १४ ॥ गायत्रींशिरसासार्द्धंसमव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ त्रिर्जपेत्सदशोङ्काराःप्रा
णायामोयमुच्यते ॥ १५ ॥ प्राणायामांश्चरन्विप्रोनियतेन्द्रियमानसः ॥ अहोरात्रकृतैःपापैर्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ १६ ॥
दशद्वादशसंख्यावाप्राणायामाःकृतायदि ॥ नियम्यमानसन्तेनतदातप्तंमहत्तपः ॥ १७ ॥ सव्याहृतिप्रणवकाःप्राणाया
मास्तुषोडश ॥ अपिभ्रूणहनंमासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ १८ ॥ यथापार्थिवधातूनांदह्यन्तेध्मानान्मलाः ॥ तथेन्द्रियैःकृ
तादोषाज्वाल्यन्तेप्राणसंयमात् ॥ १९ ॥ एकंसम्भोज्यविधिवद्ब्राह्मणंयत्फलंलभेत ॥ प्राणायामैर्द्वादशभिस्तत्फलं
श्रद्धयाप्यते ॥ २० ॥ वेदादिवाङ्मयंसर्वंप्रणवेयत्प्रतिष्ठितम् ॥ ततःप्रणवमभ्यस्येद्वेदादिंवेदजापकः ॥ २१ ॥ प्रणवंनि

ब्राह्मण उसीक्षण रात दिनके पापोंसे छूटाहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि जो मनको रोककर जिसने दश या बारह प्राणायाम किया तो उसने बड़ी तपस्या तपा ॥ १७ ॥ रोजरोज किये
ॐकार और भूः आदि व्याहृतिपूर्वक सोलह प्राणायाम गर्भपाती या ब्रह्मघाती कोभी पवित्र करते हैं ॥ १८ ॥ जैसे सोना चांदी आदि धातुओं के मल आगके संयोग से
जलते हैं वैसे इन्द्रियों से किये दोष प्राणायामसे नाशे जाते हैं ॥ १९ ॥ एक ब्राह्मणको विधिपूर्वक भलीभांतिसे खिला पिलाकर जिस फलको पावै है वह श्रद्धासमेत बारह
प्राणायामों से मिलताहै ॥ २० ॥ जिससे वेद आदि सब शब्द समूह ॐकार में टिकाहै उस कारण वेदके जपनेवाला वेदबीज ॐकारको अभ्यास करे ॥ २१ ॥ ॐकार

व भूः आदि सात व्याहृतियां और तीन पदवाली गायत्री याने तत्सवितुः इत्यादि मन्त्र इन सबमें जो जुड़ाहै उसका कहींसे डर नहीं होताहै ॥ २२ ॥ हे अगस्त्य ! ॐकार परब्रह्महै व प्राणायाम बड़ी तपस्याहै और गायत्रीसे परे पवित्र करनेवाला अन्य कुछ नहीं है ॥ २३ ॥ रातमें कर्म मन और वचनसे जिस पापको करे उसको प्रातःसन्ध्या करताहुआ शुद्धकरे ॥ २४ ॥ व दिनमें मन वचन और देहके कर्मों से जिस पापको करे उसको सायंसन्ध्या करताहुआ प्राणायामसे हरे ॥ २५ ॥ प्रातःसन्ध्यामें गायत्रीको जपताहुआ सूर्योदय तक खड़ारहै व पाछिली याने सायंसन्ध्या करताहुआ भलीभांति से नक्षत्रों के उदय होनेतक बैठकर जपकरे ॥ २६ ॥ जो पहली याने प्रातःसन्ध्या में

स्ययुक्तस्यसप्तसुव्याहृतिष्वपि ॥ त्रिपदायान्तुगायत्र्यां न भयंजायतेक्वचित् ॥ २२ ॥ एकाक्षरंपरंब्रह्मप्राणायामःपरन्तपः ॥ गायत्र्यास्तुपरंनास्तिपावनंकलशोद्भव ॥ २३ ॥ कर्मणामनसावाचायद्रात्रौकुरुतेत्वघम् ॥ उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायांप्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ २४ ॥ यदह्नाकुरुतेपापंमनोवाक्कायकर्मभिः ॥ आसीनःपश्चिमांसन्ध्यांतत्प्राणायामतोहरेत् ॥ २५ ॥ पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ पश्चिमान्तुसमासीनःसम्यगृक्षविभावनात् ॥ २६ ॥ पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति ॥ पश्चिमान्तुसमासीनोमलंहन्तिदिवाकृतम् ॥ २७ ॥ नोपतिष्ठेत्तुयःपूर्वांनोपास्तेयस्तुपश्चिमाम् ॥ सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ २८ ॥ अपांसमीपमासाद्यनित्यकर्मसमाचरेत् ॥ गायत्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यंसमाहितः ॥ २९ ॥ गृहाद्बहुगुणायस्मात्सन्ध्याबहिरुपासिता ॥ गायत्र्यभ्यासमात्रोऽपिवरंविप्रोजितेन्द्रियः ॥ ३० ॥ त्रिवेदापिचनोमान्यःसर्वभुक्सर्वविक्रयी ॥ सवितादेवतायस्यामुखमग्निस्त्रिपाच्चया ॥ ३१ ॥

जपताहुआ खड़ा रहै वह रातिके पापको नाशता है और सायंसन्ध्या में बैठाहुआ जपताहुआ जन दिनमें किये पापको पछाड़ता है ॥ २७ ॥ जो पहली और पाछिली सन्ध्याकी उपासना नहीं करताहै वह शूद्रकी नाईं सब ब्रह्मकर्म्म से बाहर करने योग्यहै ॥ २८ ॥ इसमे जलके समीप में आकर नित्य कर्मको करे और एकाग्रचित्त होकर बनमें जाकर गायत्रीको भी जपे ॥ २९ ॥ जिससे बाहर किया सन्ध्यावन्दन घरसे बहुत गुण अधिक होताहै व जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण केवल गायत्री जपताहोवे वह भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ और तीनों वेद पढ़े भी सब खाता व सब बेचताहुआ ब्राह्मण माननीय नहीं है जोकि तीन पदवाली है व जिसके सूर्य देवता व अग्नि मुखहै ॥ ३१ ॥

और विश्वामित्र ऋषि हैं वह गायत्री सबसे अधिक होतीहै उस गायत्रीको प्रातःकालमें ऐसे ध्यावे कि लालरंग ब्रह्मा देवता ॥ ३२ ॥ हंसपर सवार आठ वर्षकी अवस्था लालरंगकी माला और अनुलेपनवाली ऋग्वेदरूप अभयदायिनी रुद्राक्षकी माला पहिने ॥ ३३ ॥ व व्यासऋषि से प्रशंसित और अनुष्टुप् छन्दसे संयुतहै ऐसे प्रातःकालकी देवता गायत्री के ध्यानसे रात्रिके पापको नाशता है ॥ ३४ ॥ उसके बाद (सूर्यश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्योरक्षन्तां यद्रात्र्यापापमकार्षंमनसावाचाहस्ता भ्यांपद्भ्यामुदरेणशिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किंचिदुरितम्मयि इदमहममृतयोनौसूर्येज्योतिषिपरमात्मनिजुहोमिस्वाहा) उत्तम आचमन और आपोहिष्ठामयोभुवः इ-

विश्वामित्रोऋषिश्छन्दोगायत्रीसाविशिष्यते ॥ गायत्रीमुषसि ध्यायेल्लोहितां ब्रह्मदैवताम् ॥ ३२ ॥ हंसारूढामष्टवर्षां रक्तस्रगनुलेपनाम् ॥ ऋक्स्वरूपामभयदामक्षमालावलम्बिनीम् ॥ ३३ ॥ व्यासर्षिणास्तूयमानांछन्दसानुष्टुभायुताम् ॥ एतद्ध्यानादुषर्देव्या नैशमेनो व्यपोहति ॥ ३४ ॥ सूर्यश्चेतिचमन्त्रेणस्यादाचमनमुत्तमम् ॥ आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जनन्तु ततश्चरेत् ॥ ३५ ॥ भूमौशिरसिचाकाशेआकाशेभुविमस्तके ॥ मस्तकेचतथाकाशेभूमौचनवधाक्षिपेत् ॥ ३६ ॥ भूमिशब्देनचरणावाकाशंहृदयंस्मृतम् ॥ शिरस्येवशिरःशब्दोमार्जनज्ञैरुदाहृतः ॥ ३७ ॥ वारुणादपिचाग्नेयाद्वायव्यादपिचैन्द्रतः ॥ मन्त्रस्नानादपिपरंब्राह्मंस्नानमिदम्परम् ॥ ३८ ॥ ब्राह्मस्नानेन यःस्नातःसबाह्याभ्यन्तरेशुचिः ॥ सर्वत्रचार्हतामेतिदेवपूजादिकर्मणि ॥ ३९ ॥ नक्तन्दिनंनिमज्ज्याप्सुकैवर्ताःकिमुपावनाः ॥ शतशोऽपितथास्नातानशुद्धाभावदूषिताः ॥ ४० ॥ अन्तःकरणशुद्धायेतान्विभूतिःपवित्रयेत् ॥ किं पावनाःप्रकीर्त्यन्तेरासभाभस्मधूस

त्यादि पूर्वोक्त तीन ऋचाओं से मार्जनको करे याने अपने ऊपर जल छिड़के ॥ ३५ ॥ भूमि शिर आकाश आकाश भूमि मस्तक मस्तक आकाश तथा भूमिमें नवप्रकारसे पानी को छोड़े ॥ ३६ ॥ मार्जनकी विधिके जाननेवाले लोगोंने भूमिशब्द से पांव व आकाशसे हृदय और शिरशब्द से मस्तक को कहाहै ॥ ३७ ॥ पानी भी व विभूति व वायु से उड़ी धूरि भी व मेघ विना इन्द्र के हाथीकी सूंड़ से तजा जल और मन्त्रों का जप भी इन सब के स्नानों से भी यह उत्तम मार्जनरूप ब्राह्मस्नान श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ ब्राह्मस्नान वाले आपोहिष्ठामयोभुवः इत्यादि मन्त्रोंसे मार्जन किया जिसने वह बाहर और भीतर में भी शुद्ध होकर देवपूजादि कर्म्म में सब से योग्यताको प्राप्त होता

है ॥ ३९ ॥ रातो दिन जलोंमें पड़े केवट लोग क्या पवित्र होतेहैं वैसेही सैकड़ों बार भी नहाये भी भावसे दूषित दुष्टलोग अशुद्धही रहते हैं ॥ ४० ॥ जो अन्तःकरण से शुद्धहैं उनको विभूति पवित्र करती है क्योंकि भस्मसे धूसर गर्दभ क्या पवित्रतावाले कहेजाते हैं ॥ ४१ ॥ इससे इस लोकमें जिसका मन शुद्धहै वह सब तीर्थों में नहायाहुवा व सब मलोंसे विवर्जित है और उसने सैकड़ों यज्ञोंसे पूजा की ॥ ४२ ॥ हे मुने ! वह चित्त जैसे निर्मलहोवे उस उपायको सुनो कि जो श्रीविश्वनाथजी प्रसन्नहों तो मन शुद्धहोवे और तौरसे कहीं नहीं ॥ ४३ ॥ इससे चित्तशुद्ध होनेकेलिये काशीके नाथ श्रीविश्वनाथजी को भलीभांति सेवे उनके शरण में नियमकरके सब मनके मल नशाते हैं ॥ ४४ ॥ और श्रीविश्वनाथजी के उत्तमअनुग्रह से भलीभांति नष्टहुये मनके मल जिसके वह इस देहको तजकर परब्रह्ममें जाताहै ॥ ४५ ॥ जिससे

राः ॥ ४१ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुससर्वैर्मलवर्जितः ॥ तेनक्रतुशतैरिष्टंचेतोयस्येहनिर्मलम् ॥ ४२ ॥ तदेवनिर्मलञ्चेतोयथास्यात्तन्मुनेशृणु ॥ विश्वेशश्चेत्प्रसन्नःस्यात्तदास्यान्नान्यथाक्वचित् ॥ ४३ ॥ तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थंकाशीनाथंसमाश्रयेत् ॥ तदाश्रयेणनियतंसंक्षीयन्तेमनोमलाः ॥ ४४ ॥ संक्षीणमानसमलो विश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ इदंशरीरमुत्सृज्यपरब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥ विश्वेशानुग्रहेहेतुःसदाचारोमतोनृणाम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंतस्मात्तमनुसंश्रयेत् ॥ ४६ ॥ द्रुपदान्तुततोजप्त्वाजलमादायपाणिना ॥ कुर्यादृतञ्चमन्त्रेणविधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ॥ ४७ ॥ निमज्ज्याप्सुचयोविद्वाञ्जपेत्रिरघमर्षणम् ॥ यथाश्वमेधावभृथस्तस्यस्यात्तत्तथाध्रुवम् ॥ ४८ ॥ जलेवापिस्थलेवापियःकुर्यादघमर्षणम् ॥ तस्या

मनुष्योंका सदाचारही श्रीविश्वनाथजी की दयाका कारण मानागया है उससे वेद और धर्म्मशास्त्रों से कहेहुये उसको भलीभांति आचारकरे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर, द्रुपदादिवमुमुचानः इस पूर्वोक्त मन्त्रको जपकर विधिके जाननेवाला, ऋतंच सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत इस पूर्वोक्त पूरे मन्त्रसे अघमर्षणकरे याने दाहिने हाथकी गादी में जलको लेकर नासा में लगाकर व सूंघकर श्वासको चढ़ाकर मनमें पाप पुरुषकी चिंतनाकर उसको उतारी हुई श्वासाके साथ हाथके पानीमें आयाहुवा जानकर उसको अपने बाम ओरमें पटक देवे ॥ ४७ ॥ जो सुजान जन जलमें नहाकर या बुड़ी लगाकर तीनवार अघमर्षण मन्त्रका जपे उसका वह स्नान वैसाहोवे कि जैसा यज्ञके अन्त-

वाला होताहै ॥ ४८ ॥ इससे जो जन जल व थलमें अघमर्षणको करै उसके पापसमूह ऐसे नष्टहोवैं कि जैसे सूर्य्यके उदय में अन्धकार नशाता है ॥ ४९ ॥ तदनन्तर इममेवरणशुधी, इस पूर्वोक्त पूरे मन्त्रको जपकर द्विज याने ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य भी आचमनको करै व कोई अन्य आचार्य्य वेदशाखा के भेदसे इच्छा करते हैं कि आगे कहेजाते अन्तश्चरसिभूतेषु इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये ॥ ५० ॥ हे परमेश्वर ! तुम सब प्राणियों के भीतर बुद्धिमें विचरतेहो व यज्ञ और मुखवालेहो व तुम यज्ञ वषट्कार जल ज्योति आनन्द और अविकारहो ॥ ५१ ॥ शिर याने आपोज्योतीरसोमृतं, इससे हीन और ॐकारपूर्वक तीन व्याहृतियां पहले हैं जिसके उस गाय-

घौघोविनश्येतयथासूर्योदये तमः॥ ४९ ॥ इमंमन्त्रन्ततश्चोक्त्वाकुर्यादाचमनंद्विजः ॥ आचार्याःकेचिदिच्छन्तिशाखा भेदेन चापरे ॥ ५० ॥ अन्तश्चरसिभूतेषुगुहायांविश्वतोमुखः ॥ त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारआपोज्योतीरसोऽमृतम् ॥ ५१ ॥ गा यत्रींशिरसाहीनांमहाव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रणवाद्यांजपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ ५२ ॥ तेनवज्रोदकेनाशुमन्दे हानाम राक्षसाः ॥ सूर्यारयःप्रलीयन्तेशैलावज्रहताइव ॥ ५३ ॥ विवस्वतःसहायार्थंयोद्विजोनाञ्जलित्रयम् ॥ क्षिपेन्म न्देहनाशायसोपिमन्देहतांव्रजेत् ॥ ५४ ॥ प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् ॥ उपविष्टोजपेत्सायमृक्षाणा मावितोकनात् ॥ ५५ ॥ काललोपोनकर्तव्यो द्विजेनस्वहितेप्सुना ॥ अर्द्धोदयास्तसमयेतस्माद्वज्रोदकंक्षिपेत् ॥ ५६ ॥ विधिनापिकृतासन्ध्याकालातीताऽफलाभवेत् ॥ अयमेवहिदृष्टान्तोवन्ध्यास्त्रीमैथुनंयथा ॥ ५७ ॥ जलंवामकरेकृत्वा

त्रीको अर्थात् (ओं भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात्) इस मंत्रको जपता खड़ाहुवा पानीकी तीन अंजली बहावे ॥ ५२ ॥ सूर्य्य के शत्रु मन्देहनाम राक्षस उस उछालेहुये वज्रसमान जलसे शीघ्रही नशते हैं कि जैसे वज्रके मारे पहाड़ फूटजाते हैं ॥ ५३ ॥ इससे जो ब्राह्मणादि वर्ण मन्देहनामक राक्षसोंके नाशके लिये व सूर्य्यके सहायार्थ तीन अंजली जलको न उछाड़े वह भी मन्देहराक्षसोंके भावको प्राप्त होवेहै ॥ ५४ ॥ प्रातःकालमें सूर्य्य के देखनेतक जपताहुवा खड़ा रहे और सायंकालमें नक्षत्रों के देखनेतक बैठाहुवा जपे ॥ ५५ ॥ अपने हितको चाहते हुये ब्राह्मणकरके कालका लोपकरने योग्य नहीं है उससे सूर्य्य के आधे उदय और आधे अस्त समयमें वज्रसमान जलको बहावे ॥ ५६ ॥ काल बीतजानेपर विधिसे भी कीहुई सन्ध्या फलहीन होवेहै उसमें यही दृष्टान्त है कि जैसे बांझ स्त्रीके साथ

रति करता किसी पुत्रादि फलको नहीं उपजाता है ॥ ५७ ॥ व बायें हाथसे जलको धरकर ब्राह्मणोंने जो सन्ध्याक्रिया उसको शूद्री समझना चाहिये क्योंकि वह राक्षस समूहोंको आनन्द देनेवाली है॥ ५८ ॥ और (उद्वयं तमसःपरिस्वःपश्यन्त उत्तरम ॥ देवंदेवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम १ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्तिकेतवः ॥ दृशे विश्वायसूर्यम् २ चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्यावापृथिवीअन्तरिक्षं सूर्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च ३ तच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत ॥ पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदःशतं शृणुयामशरदःशतम ४) ये सूर्य के उपस्थान याने उनकी ओर ऊपरको हाथ उठाकर नमस्कार करने के मन्त्र सिद्धिदायक

यासन्ध्याचरिताद्विजैः ॥ वृषलीसापरिज्ञेयारक्षोगणमुदावहा ॥ ५८ ॥ उद्वयन्तमुदुत्यञ्चचित्रन्देवेतितत्परम् ॥ तच्चक्षुरित्युपस्थानमन्त्राब्रध्नस्यसिद्धिदाः ॥ ५९ ॥ सहस्रकृत्वोगायत्र्याःशतकृत्वोऽथवापुनः ॥ दशकृत्वोथदेव्यैवकुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ ६० ॥ सहस्रपरमांदेवींशतमध्यान्दशावराम् ॥ गायत्रींयोजपेद्विप्रो न स पापैःप्रलिप्यते ॥ ६१ ॥ विभ्राडित्यनुवाकंवा सूक्तंवापौरुषंजपेत् ॥ शिवसङ्कल्पमथवा ब्राह्मणंमण्डलन्तुवा ॥ ६२ ॥ एतानिचोपस्थानानिरविप्रीतिकराणिच ॥ रक्तचन्दनमिश्राद्भिरक्षतैःकुसुमैःकुशैः ॥ ६३ ॥ वेदोक्तैरागमोक्तैर्वामन्त्रैरर्घम्प्रदापयेत् ॥ अर्चितःसवितायेनतेनत्रैलोक्यमर्चितम् ॥ ६४ ॥ अर्चितःसवितासूतेसुतान्पशुवसूनिच ॥ व्याधीन्हरेद्ददात्यायुःपूरयेद्वाञ्छितान्य

हैं ॥ ५९ ॥ व हजारबार अथवा सौबार गायत्रीका जपकर व दशबार गायत्री देवीसेही सूर्य्यका उपस्थानकरे ॥ ६० ॥ जोकि, हजारबार जपने से उत्तम सौसे मध्यम और दशबारसे लघुहै उस गायत्री को जो ब्राह्मणादि जपे वह पापों से नहीं लिप्त होताहै याने उसमें पाप नहीं लगसक्ते हैं ॥ ६१ ॥ विभ्राड् बृहत्पिबतु इत्यादि चौदह ऋचारूप अनुवाक व सहस्रशीर्षापुरुषः इत्यादि पुरुषसूक्त व यज्जाग्रतोदूरं इत्यादि छः ऋचाका शिवसङ्कल्प अथवा यदेतन्मण्डलं इत्यादि तेईस कण्डिकारूप मण्डल ब्राह्मणको जपे ॥ ६२ ॥ ये उपस्थान सूर्य्यकी प्रीति करनेवाले हैं व लालचन्दनसे मिश्रित जल अक्षत फूल कुश इत्यादि उचित चीजोंसे॥ ६३॥ वेदोक्त, हंसः शुचिषत् इत्यादि और आगमोक्त, एहिसूर्यसहस्रांशो इत्यादि मन्त्रोंकरके अर्घ देवे जिसने सूर्यको पूजा उसने त्रिलोकको पूजाहै ॥ ६४ ॥ व पूजागये सूर्य्यजी पुत्र पशु और धनोंको

पि ॥६५॥ अयंहिरुद्रआदित्योहरिरेषदिवाकरः ॥ रविर्हिरण्यगर्भोसौत्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥६६॥ रवेस्तुतोषणात्तुष्टाब्रह्मवि-ष्णुमहेश्वराः ॥ इन्द्रादयोखिलादेवामरीच्याद्यामहर्षयः ॥ ६७ ॥ मानवामनुमुख्याश्चसोमपाद्याःपितामहाः ॥ रवेरर्चांविधायेत्थंततस्तर्पणमारभेत् ॥ ६८ ॥ दर्भानगर्भानादायनवसप्तचपञ्चवा ॥ साग्रान्समूलानच्छिन्नान्द्विजो दक्षिणपाणिना ॥ ६९ ॥ अन्वारब्धेनसव्येनतर्पयेत्षड्विनायकान् ॥ ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथामुनीन् ॥ ७० ॥ चन्दनागुरुकस्तूरीगन्धवत्कुसुमैरपि ॥ तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्वितिसमुच्चरन् ॥ ७१ ॥ मनकादीन्मनुष्यांश्चनिवीतीतर्पयेच्चवैः ॥ अंगुष्ठद्वयमध्येतुकृत्वादर्भानृजून्द्विजः ॥ ७२ ॥ कव्यवाडनलादींश्चपितॄन्दिव्यान्प्रतर्पयेत ॥ प्राचीनावीतिकोदर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥७३॥ रवौशुक्रेत्रयोदश्यांसप्तम्यांनिशिसन्ध्ययोः ॥ श्रेयोर्थीब्राह्मणोजातुनकुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ ७४ ॥ यदिकुर्यात्ततःकुर्याच्छुक्लैरेवतिलैःकृती ॥ चतुर्दशयमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥ ७५ ॥ ततः

उपजाते हैं व रोगोंको हरतेहैं और आयुको देतेहैं और मनोरथको पूरा करते हैं ॥ ६५ ॥ यही सूर्य्य रुद्रहैं व यही दिनकर विष्णुहैं और यही रवि ब्रह्मा हैं उसमें यह मूर्त्त्यर्यरूप कहेजाते हैं ॥ ६६ ॥ सूर्य्य के संतुष्ट होनेसे ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्रादि सम्पूर्ण देव और मरीचिआदि सब ऋषि संतुष्ट होते हैं ॥ ६७ ॥ व मनुआदि मनुष्य और सोमपादि पितामह भी प्रसन्न होजाते हैं इसभांति सूर्य्यकी पूजाकोकर तदनन्तर तर्पणको प्रारंभ करे ॥ ६८ ॥ नव व सात व पांच कुशोंको जोकि भीतर अन्य अंकुरसे हीन व बिना टूटे व अग्रभाग और जड़समेतहों उनको लेकर ब्राह्मण दक्षिण हाथसे ॥ ६९ ॥ व दहिने में लगे बायेंसे चण्ड प्रचण्ड धर्म विनायक विघ्नराज महागणपति इत्यादि छःविनायक, ब्रह्मादि सम्पूर्णदेव तथा मरीचिआदि मुनियोंको तृप्त करे ॥ ७० ॥ तृप्यन्तु इसपदको कहताहुवा चन्दन अगर कस्तूरी सुगन्धयुत फूल और पवित्र पानीसे भी तरपे ॥ ७१ ॥ फिर ब्राह्मण निवीती होकर (कण्ठमें जनेऊ पहिन) व दोनों अंगुठोंके बीचमें कुटिलता हीन कोमल कुशोंकोकर यव और जलसे तर्पणकरे ॥७२॥ तब दहिने कांधेमें यज्ञोपवीतवाला होकर कव्यवाट् अनलआदि दिव्य पितरोंको तिल मिश्रित दुगुने कुशोंसे तरपे ॥ ७३ ॥ व सुखचाहनेवाला ब्राह्मण सूर्य्यवार शुक्रवार तेरसि सप्तमी रात और दोनों की सन्ध्याओं में तिलोंसे तर्पणको कभी न करे ॥ ७४ ॥ व सुकर्म्मवान् जो तिलों से तर्पणकरे तो उजले तिलोंसे करे व उसके बाद यमादि

स्वगोत्रमुच्चार्य्यतर्प्पयेत्स्वपितॄन्मुदा ॥ सव्यजानुनिपातेनपितृतीर्थेनवाग्यतः ॥ ७६ ॥ एकैकमञ्जलिन्देवाद्वौद्वौतुसनकादिकाः ॥ पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमञ्जलिम् ॥ ७७ ॥ अंगुल्यग्रेभवेद्दैवमार्षमंगुलिमूलगम् ॥ ब्राह्ममंगुष्ठमूलेतुपाणिमध्येप्रजापतेः ॥ ७८ ॥ मध्येंगुष्ठप्रदेशिन्योःपित्र्यन्तीर्थम्प्रचक्षते ॥ नवर्चमुच्चरन्विद्वान्विदध्यात्पितृतर्पणम् ॥ ७९ ॥ उदीरतामङ्गिरसआयन्तुनइतीष्यते ॥ ऊर्जंवहन्तीपितृभ्यःस्वधायिभ्यस्ततःपठेत ॥ ८० ॥ येचेहपितरस्तद्वन्मधुवाताइतित्र्यृचम् ॥ नमोवःपितरश्चोक्त्वापठन्सिञ्चेज्जलम्भुवि ॥ ८१ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंदेवर्षिपितृमानवाः ॥ तृप्यन्तुपितरःसर्वेमातृमातामहादयः ॥ ८२ ॥ अतीतकुलकोटीनांसप्तद्वीपनिवासिनाम् ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तुतिलोदकम् ॥ ८३ ॥ येचास्माकंकुलेजाताअपुत्रागोत्रिणोमृताः ॥ सर्वेतेतृप्तिमायान्तुवस्त्रनिष्पीडनोदकैः ॥ ८४ ॥ अग्निकार्यन्ततःकृत्वावेदाभ्यासन्ततश्चरेत ॥ श्रुत्यभ्यासःपञ्चधास्यात्स्वीकारोर्थविचारणम् ॥ ८५ ॥ अभ्यासश्चजपश्चापिशि

नाम कहता हुआ चौदह यमों को तरपे ॥ ७५ ॥ तदनन्तर वचन रोके हुआ आनंदसंयुक्त होकर बाईं जांघ नवाने और पितृतीर्थ से अपना गोत्र कहकर अपने पितरों को तृप्तकरे ॥ ७६ ॥ देवतायें एक एक अञ्जलीको सनकादिक दोदो को पितर तीन तीनको और स्त्रियां एक एक अंजलीको चाहती हैं ॥ ७७ ॥ अंगुलियोंके आगे देवों का अंगुलीमूलमें ऋषियों का अंगुठा के मूलमें ब्रह्मा का हाथ के बीचमें प्रजापति का ॥ ७८ ॥ और अंगुठा व कनिष्ठा के बीचमें पितरों का तीर्थ कहाताहै नव ऋचाओंको पढ़ता हुआ पण्डित पितरोंका तर्पणकरे ॥ ७९ ॥ उदीरताम् १ आंगिरसः२ आयन्तुनःपितरः ३ ऊर्ज्जं वहन्ति ४ पितृभ्यःस्वधायिभ्यः ५ ॥ ८० ॥ येचेहपितरः ६ और मधुवाता ऋतायते, इत्यादि तीन ऋचाओंको पढ़ता हुआ भूमि में जल छोड़े ॥ ८१ ॥ व ब्रह्मासे लगाकर गुच्छे पर्यन्त देव ऋषि पितर मनुष्य माता और नाना आदि सब जने पितर तृप्त होवें ॥ ८२ ॥ इस लोकसे ब्रह्माके लोकतक बीती हैं कुलों की करोड़ें जिनकी ऐसे जे सातों द्वीपों के वासी प्राणी समूहहैं उनके लिये यह तिलमिश्रित जल होवे ॥ ८३ ॥ व जे हमारे कुलमें उत्पन्न व विना पुत्रके गोत्रवाले लोग मरे हैं वे सब इस वस्त्र निचोड़ने के पानी से तृप्तिको प्राप्त होवें ॥ ८४ ॥ तदनन्तर होमकर उसके बाद वेदोंका अभ्यासकरे वह वेदोंका अभ्यास पांच प्रकारसे होवे है गुरुसे पढ़ना अर्थ विचारना ॥ ८५ ॥ पाठ करना जप और विद्यार्थियोंके लिये पाठ देना

ऐसे पांच भांति से कहागयाहै फिर पाये हुये पढ़ने के पालने व न पायेहुये के पाने के लिये ॥ ८६ ॥ पाठदाता के पास जावे ऐसे अपनी गुरुताको बढ़ावे हे ब्राह्मणोत्तम ! यह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके भी करने योग्य प्रातःकाल का नित्यकर्म्म कहा गया ॥ ८७ ॥ अब दूसरी विधि से कहते हैं कि अथवा चार दण्ड रात रहगये प्रातः-कालमें उठकर आवश्यक विष्ठामूत्रादि के त्याग कोकर शौच और आचमन को लेकर दतून करे ॥ ८८ ॥ व सब अंगों को शोधकर प्रातःसन्ध्याको भलीभांति से करे व वेदों के अर्थ अनेक भांति के शास्त्रों के पढ़ने या पाठ करने या विचारने के लिये अधिकता से प्राप्त होवे ॥ ८९ ॥ व पवित्र हितकारी व बुद्धिमान् शिष्योंको

ष्येभ्यःप्रतिपादनम् ॥ लब्धस्यप्रतिपालार्थमलब्धस्यचलब्धये ॥ ८६ ॥ दातारंसमुपेयाद्वै स्वगुरुत्वञ्चवर्धयेत्॥ प्रातः कृत्यमिदम्प्रोक्तंद्विजातीनां द्विजोत्तम ॥ ८७ ॥ अथवाप्रातरुत्थायकृत्वावश्यकमेवच॥शौचाचमनमादायभक्षयेद्दन्त धावनम् ॥ ८८ ॥ विशोध्यसर्वगात्राणिप्रातःसन्ध्यांसमाचरेत् ॥ वेदार्थानधिगच्छेच्चशास्त्राणिविविधान्यपि ॥ ८९ ॥ अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ॥ उपेयादीश्वरञ्चैवयोगक्षेमादिसिद्धये ॥ ९० ॥ ततोमध्याह्नकर्मि क्यर्थंपूर्वोक्तंस्नानमाचरेत् ॥ स्नात्वामाध्याह्निकींसन्ध्यामुपासीतविचक्षणः ॥ ९१ ॥ नवयौवनभिन्नाङ्गींशुद्धस्फटिकनि र्मलाम् ॥ त्रिष्टुप्छन्दःसमायुक्तांसावित्रींरुद्रदेवताम् ॥ ९२ ॥ कश्यपर्षिसमायुक्तांयजुर्वेदस्वरूपिणीम् ॥ त्र्यक्षरांवृषभा रूढांभक्ताभयकराम्पराम् ॥ ९३ ॥ देवताम्परिपूज्याथनैत्यिकं विधिमाचरेत्॥ पचनाग्निंसमुज्ज्वाल्यवैश्वदेवंसमाच

को पढ़ावे और योग कल्याण के लिये परमेश्वर के शरण को जावे ॥ ९० ॥ तदनन्तर मध्याह्न याने दुपहरके कर्मों की सिद्धिके अर्थ विधिपूर्वक पहले कहेहुये स्नान को करे नहाकर बुद्धिमान् मनुष्य मध्याह्नवाली संध्याकी उपासना करे ॥ ९१ ॥ वहां नये युवापनसे बिलग बिलग बने अंगों से सुन्दरी व उजले पत्थर से अमल व त्रिष्टुप् छन्द से समेत व रुद्रदेवतावाली सावित्री देवी ॥ ९२ ॥ जोकि कश्यप ऋषि से संयुत व यजुर्वेदस्वरूपिणी ॐकारमयी व बैलमें चढ़ी भक्तों की निडर-करणी और उत्तमताधरणी वरणी गई है ॥ ९३ ॥ उस देवताको पूजकर अनन्तर नित्य करने योग्य विधानको करे उसको कहते हैं कि रसोईकी आगको उदगारकर

बलिवैश्वदेव नामक श्राद्धको भलीभांतिकरै ॥ ९४ ॥ सेंबिया दुबिया कोदौं उड़द बाटुला चना तेलमें पकाहुआ व लोन पड़ा पकाहुआ सब अन्न ॥ ९५ ॥ व अरहड़ मसुरी मटरी या कम्हिली लोबिया व भोजनसे बचाहुआ और बासी अन्न इन सबको वैश्वदेवमें बरावे ॥ ९६ ॥ व भलीभांति आचमनको कर हाथमें पैंती पहने हुआ प्राणायामको कर अनन्तर (पृष्ठोदिवि पृष्ठोग्निः) इस मंत्रसे पर्य्युक्षणको करे याने सब ओर जल छिड़के ॥ ९७ ॥ व दहिने ओर जल छिड़क पवित्रकर कुशोंको बिछाकर (एषो हदेवःप्रदिशोनुसर्वाःपूर्वोह जातःसउगर्भेअन्तः ॥ सएवजातःसजनिष्यमाणःप्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः) इस मन्त्रसे अग्निको सम्मुखकरे ॥ ९८ ॥ अनन्तर घी समेत

रेत् ॥ ९४ ॥ निष्पावान्कोद्रवान्माषान्कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ॥ तैलपक्वञ्चपकान्नंसर्वंलवणयुक्तत्यजेत् ॥ ९५ ॥ आढकीश्चमसूरांश्चवर्तुलान्वरटांस्तथा ॥ भुक्तशेषंपर्युषितंवैश्वदेवेविवर्जयेत् ॥ ९६ ॥ दर्भपाणिःसमाचम्यप्राणायामंविधाय च ॥ पृष्ठोदीवीतिमन्त्रेणपर्युक्षणमथाचरेत् ॥ ९७ ॥ प्रदक्षिणञ्चपर्युक्ष्य त्रिःपरिस्तीर्यवैकुशान् ॥ एषोहदेवमन्त्रेणकुर्याद्वह्निंसुसम्मुखम् ॥ ९८ ॥ वैश्वानरंसमभ्यर्च्यसाज्यपुष्पाक्षतैरथ ॥ भूराद्याश्चाहुतीस्तिस्रःस्वाहान्ताःप्रणवादिकाः ॥ ९९ ॥ ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहेतिविप्रोदद्यात्तथाहुतिम् ॥ तथादेवकृतस्याद्याज्जुहुयाच्चषडाहुतीः ॥ २०० ॥ यमायतूष्णीमेकाञ्चतथाग्निष्टकृतीद्वयम् ॥ विश्वेभ्यश्चापिदेवेभ्योभूमौदद्यात्ततोबलिम् ॥ १ ॥ सर्वेभ्यश्चापिभूतेभ्योनमोदद्यात्तदुत्तरे ॥ तद्दक्षिणेपितृभ्यश्चप्राचीनावीतिकोददेत् ॥ २ ॥ निर्णेजनोदकान्नञ्चैशान्यांवैयक्ष्मणेऽर्पयेत् ॥ ततोब्रह्मादिदेवेभ्योनमो

फूल और अक्षतों से आगको पूजकर ॐ भूःस्वाहा १ ॐभुवः स्वाहा २ ॐस्वःस्वाहा ३ ॥ ९९ ॥ ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहा, इन मन्त्रोंसे ब्राह्मण चार आहुतियों को देवे व से (देवकृतस्यएनसोवयजनमसिस्वाहा ॥ मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसिस्वाहा) इत्यादि मन्त्रों से छः आहुतियों को होमकरे ॥ २०० ॥ तथा चुपचाप होकर यम के लिये एक और अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा, इत्यादि दो आहुतियोंको करदे तब विश्वेदेवोंके लिये बलिको देवे ॥ १ ॥ व उनके उत्तर में, सब भूतों के लिये (सर्वेभ्योभूतेभ्योनमः) इस मन्त्र से बलिको देवे और अपसव्यहो याने दहिने कांधे में यज्ञोपवीत पहिने हुआ पितरोंको देवे ॥ २ ॥ व ईशानकोणमें यक्ष्मणेनमः इस मन्त्रसे यक्ष्माको निर्णेजन

दद्यात्तदुत्तरे ॥ २ ॥ निवीतीसनकादिभ्यःपितृभ्यस्त्वपसव्यवान् ॥ हन्तःषोडशभिर्ग्रासैश्चतुर्भिःपुष्कलंस्मृतम् ॥ ४ ॥ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षागृहस्थसुकृतप्रदा ॥ अध्वगःक्षीणवृत्तिश्चविद्यार्थीगुरुपोषकः ॥ ५ ॥ यतिश्चब्रह्मचारीचषडेतेधर्मभिक्षुकाः ॥ अतिथिःपथिकोज्ञेयोऽनूचानःश्रुतिपारगः ॥ ६ ॥ मान्यावेतौगृहस्थानांब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ अपिश्वपाके शुनिवानैवान्नंनिष्फलम्भवेत् ॥ ७ ॥ अन्नार्थिनिसमायातेपात्रापात्रंनचिन्तयेत् ॥ शुनाञ्चपतितानाञ्चश्वपचाम्पापरोगिणाम् ॥ ८ ॥ काकानाञ्चकृमीणाञ्चबहिरन्नंकिरेद्भुवि ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्याःसौम्यावैनैर्ऋताश्चये ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्णन्त्विमंपिण्डंकाकाभूमौमयार्पितम् ॥ द्वौश्वानौश्यामशबलौवैवस्वतकुलोद्भवौ ॥ १० ॥ ताभ्याम्पिण्डम्प्रदास्यामिस्यातामेतावहिंसकौ ॥ देवामनुष्याःपशवोरक्षोयक्षोरगाःखगाः ॥ ११ ॥ दैत्याःसिद्धाःपिशाचाश्चप्रेताभूताश्चदानवाः ॥ तृणानितरवश्चापिमद्दत्तान्नाभिलाषुकाः ॥ १२ ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्याःकर्मबद्धाबुभुक्षिताः ॥ तृप्त्यर्थमन्नंहिमयादत्तन्तेषां

जल संयुत अन्न सौंपे तदनन्तर उसके उत्तरमें चतुर्थ्यंत नामके पांछे नमः पदको जोड़कर ब्रह्मादि देवोंको बलिदेवे ॥ ३ ॥ व कण्ठमें यज्ञोपवीतवत् सनकादिकों को तथा अपसव्य होकर पितरों के लिये बलि देनाचाहिये और सोलह कौलोंसे हन्त व चारसे पुष्कल कहागया है ॥ ४ ॥ व एक कौलमात्र से गृहस्थों की पुण्य देनेवाली भिक्षा होतीहै व बटोही वृत्तिहीन विद्यार्थी और गुरुको पोषताहुवा ॥ ५ ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी ये छः धर्मभिक्षुक कहाते हैं व गली चलतेहुये को अतिथि वैसेही मांग वेद पढ़ेहुये को अनूचान नाम जानना चाहिये ॥ ६ ॥ ये दोनों ब्रह्मलोक चाही गृहस्थों के मान्य हैं परन्तु कूकर व चाण्डाल में भी अन्न निष्फल नहीं होताहै ॥ ७ ॥ इससे अन्नचाहीके आतेही पात्र और कुपात्रका विचार न करे श्वान पतित श्वपच पापरोगी ॥ ८ ॥ व काग और कृमियों के लिये भूमिमें अन्नको डालदेवे तब इन मन्त्रों को पढ़े कि इन्द्र वरुण वायु चन्द्र और निर्ऋतिके भी ॥ ९ ॥ जे कागहैं वे भूमिमें मेरे डाले इस पिण्डको सामने से गहें तथा यमके कुलमेंहुये श्याम व शबल जे दो कूकर हैं ॥ १० ॥ मैं उनको पिण्ड देताहूं वे हिंसासे हीन होवें व देव मनुष्य पशु राक्षस उरग (सर्पजाति) पक्षी या आकाश में चलनेवाले ॥ ११ ॥ व दैत्य सिद्ध पिशाच प्रेत भूत दानव तृण वृक्ष और जे मेरे दिये अन्नके चाही ॥ १२ ॥ व कर्म्मों से बँधेहुये भूंखे कृमि कीट पतंगादि जन्तुहैं उनकी तृप्तिके अर्थ मेरा दियाहुवा अन्न आनन्दके

लिये भी होवे ॥ १३ ॥ ऐसे भूतोंको बलि देकर जितनी बेरमें गऊ दुही जातीहै उतने कालतक आतेहुये अतिथि को परखकर तदनन्तर भोजनके घरमें पैठे ॥ १४ ॥ व कागोंको बलि न देकर नित्य श्राद्धको भलीभांतिसे करै नित्य श्राद्धमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन दो व एक ॥ १५ ॥ ब्राह्मणको पितृयज्ञके अर्थ खिलावै पिलावै और जो दरिद्री होवे तो अपने भोजनके अन्नसे थोड़ा थोड़ा निकालकर सबको एक बलिदेवै जोकि नित्य श्राद्धहै वह विश्वेदेवोंमें हीन व नियमादिरहितहै ॥ १६ ॥ व दक्षिणासे वर्जितहै और यह देने व खानेवालेके व्रतों से विहीनहै ऐसे आतुरतारहित स्वस्थचित्त होकर पितरोंका यज्ञकर ॥ १७ ॥ उत्तम आसन में बैठकर लड़कों के साथ

मुदेस्तुवै ॥ १३ ॥ इत्यम्भूतबलिन्दत्त्वाकालङ्गोदोहमात्रकम् ॥ प्रतीक्ष्यातिथिमायान्तंविशेद्भोज्यगृहन्ततः ॥ १४ ॥
अदत्त्वावायसबलिंनित्यश्राद्धंसमाचरेत् ॥ नित्यश्राद्धेस्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापिवा ॥ १५ ॥ भोजयेत्पितृयज्ञार्थंद
द्यादुद्धृत्यदुर्बलः ॥ नित्यश्राद्धंदेवहीनंनियमादिविवर्जितम् ॥ १६ ॥ दक्षिणारहितंत्वेतद्दातृभोक्तृव्रतोज्झितम् ॥ पितृय
ज्ञंविधायेत्थंस्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥ १७ ॥ अदुष्टासनमध्यास्यभुञ्जीतशिशुभिःसह ॥ सुगन्धिःसुमनाःस्रग्वीशुचिवासो
द्वयान्वितः ॥ १८ ॥ प्रागास्यउदगास्योवाभुञ्जीतपितृसेवितम् ॥ १९ ॥ विधायान्नमनग्नन्तदुपरिष्टादधस्तथा ॥
आपोशानविधानेनकृत्वाश्नीयात्सुधीर्द्विजः ॥ २० ॥ प्रदद्याद्भुवःपतयेभुवनपतयेतथा ॥ भूतानाम्पतयेस्वाहेत्युक्त्वाभूमौ
बलित्रयम् ॥ २१ ॥ सकृत्पापउपस्पृश्यप्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ॥ दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदर्भपाणिःप्रसन्नधीः ॥ २२ ॥ द
र्भपाणिस्तुयोभुङ्क्तेतस्यदोषोनविद्यते ॥ केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥ २३ ॥ यावद्भुच्यन्नमश्नीयान्नब्रूया

भोजनकरे व सुगन्ध लगाये प्रसन्न मनवाला माला पहनेहुये पवित्र दो वस्त्रोंसे संयुत ॥ १८ ॥ व पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठाहुआ मनुष्य, पितरोंकी यज्ञमे बचेहुये अन्नको खावे पीवे ॥ १९ ॥ आपोशान विधानकरके उस अन्नको ऊपर व नीचेसे नंगा न कर सुबुद्धिमान् ब्राह्मण भोजनकरे ॥ २० ॥ अब आपोशान विधानके क्रमको कहते हैं कि (भुवःपतयेस्वाहा १ भुवनपतये स्वाहा २ भूतानांपतयेस्वाहा ३) ऐसा कहकर तीन बलियोंको देवे ॥ २१ ॥ फिर एक बार पानीको स्पर्शकर व आचमनकर कुशकी पैंती पहने प्रसन्नबुद्धिवाला अपने उदरकुण्डकी आगमें प्राणादिकों के लिये पांच आहुतियोंको देवे ॥ २२ ॥ जो कुशकी पैंती पहने खाताहै उसको बाल और कीड़े घुन

आदिकों से उत्पन्न दोष नहीं होताहै इस कारण कुशसमेत होकर भोजनकरे ॥ २३ ॥ जबतक रुचिहो तबतकलौं अन्नको भोजनकरे उसका गुण व अवगुण न कहै क्यों कि जबतक गुण व अवगुण नहीं कहेजावें तबतक पितर भोजन करते हैं ॥ २४ ॥ इससे जो मौनसे खाताहै वह केवल अमृतको खाताहै तदनन्तर दूध व माठाको पीछेसे पीकर ॥ २५ ॥(अमृतापिधानमसि)ऐसा कहकर एकबार पानीको पानकर इस मन्त्रको पढ़ताहुवा पीनेसे बचे जलको भूमिमें छोंड़देवे ॥ २६ ॥ बिना धोये हाथके पहिले अंगुठाके मूलसे पानीको फैलाना चाहिये उसके मन्त्रको कहते हैं कि पापके घर रौरवादि नरकमें पद्म और दशकरोड़ याने बहुत वर्षों से बसने ॥ २७ ॥ व जूंठे

सद्गुणागुणान ॥ भुञ्जतेपितरस्तावद्यावन्नोक्तागुणागुणाः ॥ २४ ॥ अतोमौनेनयोभुङ्क्तेसभुङ्क्तेकेवलामृतम् ॥ अनुपीय ततःक्षीरन्तक्रम्पानीयमेववा ॥ २५ ॥ अमृतापिधानमसीत्येवंप्राश्योदकंसकृत ॥ पीतशेषन्क्षिपेद्भूमौतोयंमन्त्रमिमम्पठन ॥ २६ ॥ अप्रक्षालितहस्तस्यदक्षिणांगुष्ठमूलतः ॥ रौरवेऽपुण्यनिलयेपद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ २७ ॥ उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २८ ॥ पुनराचम्यमेधावीशुचिर्भूत्वाप्रयत्नतः ॥ हस्तेनोदकमादायमन्त्रमेतमुदीरयेत ॥ २९ ॥ अंगुष्ठमात्रःपुरुषस्त्वंगुष्ठञ्चसमाश्रितः ॥ ईशःसर्वस्यजगतःप्रभुःप्रीणातिविश्वभुक् ॥ ३० ॥ इत्यन्नंपरिसङ्कल्प्यप्रक्षाल्यचरणौकरौ ॥ ततोन्नपरिणामार्थमन्त्रानेतानुदीरयेत ॥ ३१ ॥ अग्निराप्याययन्धातून्पार्थिवान्पवनेरितः ॥ दत्तावकाशोनभसाजरयत्वस्तुमेसुखम् ॥ ३२ ॥ प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ॥ अन्नम्पुष्टिकरञ्चास्तु ममास्त्वव्याहतंसुखम् ॥ ३३ ॥ समुद्रोवडवाग्निश्चब्रध्नोब्रध्नस्यनन्दनः ॥ मयाभ्यवहृतंयत्तदशेषंजरयन्त्विमे ॥ ३४ ॥

जलके चाही जनोंके लिये यह अक्षय्य होकर समीप में टिके ॥ २८ ॥ फिर आचमन कर यत्नसे पवित्र होकर बुद्धिमान् हाथमें जलको लेकर इस मन्त्रको पढ़े ॥ २९ ॥ अंगुठा में बसाहुवा अंगुठाभरेका पुरुष जोकि सब जगतका स्वामी और सर्वभोक्ताहै वह प्रभु प्रसन्न होवे ॥ ३० ॥ ऐसे अन्नको संकल्पकर हाथों व पावोंको पखारकर उसके बाद अन्न पचने के लिये इन मन्त्रोंको पढ़े ॥ ३१ ॥ कि, दिया आकाशने ठौर जिसको वह वायुसे प्रेरित अग्निदेव पृथिवीसे बने धातुओंको बढ़ाताहुवा अन्नको पचावे व मुझका सुखहो ॥ ३२ ॥ वह अन्न प्राण अपान समान उदान और व्यान वायुके पुष्ट करनेवाला होवे व मुझका अखण्ड सुखहोवे ॥ ३३ ॥ समुद्र वड़वानल

सूर्य और शनैश्चर ये सब जने उस सम्पूर्णको पचावें कि जो मैंने खायाहै ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मुखकी शुद्धिकर बचे दिनको पुराण सुनने आदि सुकर्म्मोंमें बिताकर उस के बाद सन्ध्यावन्दन करनेको लगालगावे ॥ ३५ ॥ घर गोशाला नदीका किनारा इन स्थानों में कीहुई सन्ध्या क्रमसे दशगुण अधिक होवे है व संगम में सौगुण और शिवके समीपमें अनन्तफलवाली होती है ॥ ३६ ॥ घरसे बाहर उपासना कीगई जिसकी ऐसी सन्ध्या दिनमें स्त्रीसंग झूंठ वचन और मद्यके गन्धसे उत्पन्न पापको नशावे है ॥ ३७ ॥ सामवेदस्वरूपिणी वसिष्ठऋषिसे संयुत व काले रंग अंगवाली श्यामवर्णके वस्त्र पहने व कुछ बूढ़ी ॥ ३८ ॥ व गरुड़पर चढ़ी व विघ्नविनाशिनी व जगतीछन्द

मुखशुद्धिन्ततःकृत्वापुराणश्रवणादिभिः ॥ अतिवाह्यदिवाशेषन्ततःसन्ध्यांसमारभेत् ॥ ३५ ॥ गृहेगोष्ठेनदीतीरेसन्ध्यादशगुणाक्रमात् ॥ सम्भेदस्याच्छतगुणाह्यनन्ताशिवसन्निधौ ॥ ३६ ॥ उपासिताबहिःसन्ध्यादिवामैथुनपातकम् ॥ शमयेदनृतोक्ताघंमद्यगन्धजमेवच ॥ ३७ ॥ सामवेदस्वरूपाञ्चवसिष्ठर्षिसमायुताम् ॥ कृष्णाङ्गींकृष्णवसनांनातिस्खलितयौवनाम् ॥ ३८ ॥ सरस्वतींताक्ष्यंयानांविघ्नघ्नींविष्णुदेवताम् ॥ जगतीच्छन्दसायुक्तांध्यायेदेकाक्षरापराम् ॥ ३९ ॥ अग्निश्चेतिचमन्त्रेणविधायाचमनंसुधीः॥ पश्चिमास्योजपेत्तावद्यावन्नक्षत्रदर्शनम् ॥ ४० ॥ अतिथिंसायमायान्तमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥ सम्भाव्यपरिकल्प्येत्थंनिशःप्राक्प्रहरंसुधीः ॥ ४१ ॥ इत्थंदिवाकर्म्मकृत्वाश्रुतेःपठनपाठनैः ॥ एककाष्ठमयींशय्यांनातितृप्तोथसंविशेत् ॥ ४२ ॥ उद्देशतःसमाख्यातोह्येषनित्यतमोविधिः ॥ इत्थंसमाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसदाचारोनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

से युक्त और विष्णुहैं देवता जिसके उस ॐकाररूपा श्रेष्ठ सरस्वतीको ध्यावे ॥ ३९ ॥ फिर अच्छी बुद्धिवाला (अग्निश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्च०) इस पूरे मन्त्रमें आचमन और अन्य कर्मोंको भी पहलेकी नाईं कर जबतक नक्षत्रोंका देखना होवे तबतक गायत्रीमन्त्रको जपे ॥ ४० ॥ व सायङ्कालमें आयेहुये अतिथिको मीठे वचन भूमि कुशासन जल और अन्न आदिकोंसेभी आदरकर ऐसे रातके पहले पहरको बिताकर बुद्धिमान् बहुत सन्तृप्त न होकर पीढ़े ऐसेही दिनका नित्यकर्मकर वेदोंके पढ़ने व पढ़ानेसे पहले पहरको बितावे ॥ ४१।४२ ॥ यह नित्यकर्म का विधान उद्देशसे कहागया ऐसा करताहुवा ब्राह्मण कभी भी नहीं दुःखित होताहै ॥४३॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

दो॰। छतिसयें अध्यायमें शुनि गृहस्थके धर्म। शुद्धि शुद्धि हित होतहैं सदाचार शुभ कर्म ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी! सदाचारके उस विशेष को मैं फिर कहताहूं कि जिसको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य अज्ञानअन्धकारमें नहीं पैठताहै ॥ १ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विज कहातेहैं क्योंकि पहले एकबार मातासे व दूसरे बार यज्ञोपवीत कर्मसे उपजेहैं इससे इनका द्विज नामहै ॥ २ ॥ व गर्भाधानसे लगाकर मरण पर्यन्त इनकी क्रिया वेदविधानवाली है उस को कहते हैं कि ऋतुकालमें याने रजस्वला स्नानसे शुद्धहुई स्त्रीमें बुद्धिमान् गर्भको धारे उस समयमें मघा व मूलनक्षत्रको तजे ॥ ३ ॥ व गर्भस्थ लड़काके फड़कनेसे

स्कन्दउवाच ॥ पुनर्विशेषंवक्ष्यामिसदाचारस्यकुम्भज ॥ यंश्रुत्वापिनरोधीमान्नाज्ञानतिमिरंविशेत ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यास्त्रयोवर्णाद्विजाःस्मृताः ॥ प्रथमंमातृतोजाताद्वितीयंचोपनायनात् ॥ २ ॥ एषांक्रियानिषेकादिश्मशाना न्तावैदिकी ॥ आदधीतसुधीर्गर्भंमृतौमूलंमघान्त्यजेत ॥ ३ ॥ स्पन्दनात्प्राक्पुंसवनंसीमन्तोन्नयनन्ततः ॥ मासि षष्ठेऽष्टमेवापिजातेपोजातकर्मच ॥ ४ ॥ नामाह्न्येकादशेगेहाच्चतुर्थेमासिनिष्क्रमः ॥ मासेन्नप्राशनंषष्ठेचूडाब्देवायथाकु लम् ॥ ५ ॥ शमसेनेव्रजेदेवंबैजङ्गर्भजमेवच ॥ स्त्रीणामेताःक्रियास्तूष्णीम्पाणिग्राहस्तुमन्त्रवान् ॥ ६ ॥ सप्तमेऽथाष्ट मेवाब्देसावित्रींब्राह्मणोऽर्हति ॥ नृपस्त्वेकादशेवैश्योद्वादशेवायथाकुलम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थंविप्रोब्देपञ्चमेऽर्हति॥ षष्ठेवलार्थीनृपतिर्मौञ्जीवैश्योऽष्टमेध्रियेत् ॥ ८ ॥ महाव्याहृतिपूर्वञ्चवेदमध्यापयेद्गुरुः ॥ उपनीयचतंशिष्यंशौचाचा

पहलेही पुंस्त्व बढ़ाने के लिये पुंसवन व छठयें या कि अठयेंमासमें समिन्तकर्म (सिरवन्त) उसके अनन्तर उत्पन्न होतेही जातकर्म ॥ ४ ॥ व ग्यारहवें दिनमें नामक- रण व चौथे मासमें घरसे निकलना व छठयें मासमें पसनी और वर्षमें मुण्डन करके चोटी रखानाचाहिये व जैसी जिसके कुलमें रीतिहोवे ॥ ५ ॥ यों बीज और गर्भसे उपजाहुवा पाप नाशको पहुँचेहै व स्त्रियोंकी ये क्रियायें चुपचाप याने वेदमन्त्रोंसे हीन होतीहैं और ब्याहका विधान मन्त्रवान् है ॥ ६ ॥ व सातवें अथवा आठवें में ब्राह्मण ग्यारहवें में क्षत्रिय और बारहवें वर्ष में वैश्य गायत्रीके योग्य होताहै ॥ ७ ॥ ब्रह्मतेजकी बढ़ती के अर्थ पांचवें में ब्राह्मण व छठे में बलका चाही क्षत्रिय और खेती आदि वाणिज्य बढ़ने के लिये आठवें वर्ष में वैश्य मौंजीको धारणकरे ॥ ८ ॥ तब गुरु उस शिष्यको समीप में आनकर याने यज्ञोपवीत कर्मका विधानकर शुभ-

पुनः स्वरपूर्वक वेद अर्थात् गायत्री मन्त्रको पढ़ावे व शौच और अच्छे आचारमें लगावे ॥ ९ ॥ वह पूर्वोक्त विधि से शौच तथा आचमनका करे तब दन्त व जीभको धोकर मलका विशोधनकर ॥ १० ॥ फिर जलदेवतावाले मन्त्रों से नहाकर यत्नसे प्राणों को चढ़ाकर दोनों सन्ध्याओं में भी सूर्यका उपस्थानकर ॥ ११ ॥ तदनन्तर अग्निहोत्रकर अमुकगोत्रः अहंअभिवादये ऐसा कहताहुवा ब्राह्मणों को नमस्कार करे ॥ १२ ॥ क्योंकि ब्राह्मणों को बंदते व वृद्धोंको सेवतेहुये जनकी बुद्धि बल सुयश और आयु दिनों दिन अधिक बढ़ती है ॥ १३ ॥ व गुरुसे बुलायाहुवा पढ़े उसके लिये प्राप्त वस्तुको देवे व कर्म मन और वचन से सदा उसका हितकरे ॥ १४ ॥ ब

रेचयोजयेत् ॥ ९ ॥ पूर्वोक्तविधिनाशौचंकुर्यादाचमनन्तथा ॥ दन्ताञ्जिह्वांविशोध्याथकृत्वामलविशोधनम् ॥ १० ॥ स्नात्वाम्बुदैवतैर्मन्त्रैःप्राणानायम्ययत्नतः ॥ उपस्थानंरवेःकृत्वासन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ ११ ॥ अग्निकार्यन्ततःकृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥ ब्रुवन्नमुकगोत्रोहमभिवादयइत्यपि ॥ १२ ॥ अभिवादनशीलस्यवृद्धसेवारतस्यच ॥ आयुर्यशो बलम्बुद्धिर्वर्धतेऽहरहोऽधिकम् ॥ १३ ॥ अधीतेगुरुणाहूतःप्राप्तन्तस्मैनिवेदयेत् ॥ कर्मणामनसावाचाहितन्तस्याचरेत्स दा ॥ १४ ॥ अध्याप्याधर्मतोनार्थोत्साध्वाप्तज्ञानवित्तदाः ॥ शक्ताःकृतज्ञाःशुचयोऽद्रोहकाश्चानसूयकाः ॥ १५ ॥ धा रयेन्मेखलादण्डोपवीताजिनमेवच ॥ अनिन्द्येषुचरेद्भैक्ष्यंब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशामादि मध्यावसानतः ॥ भैक्ष्यचर्याक्रमेणस्याद्भवच्छब्दोपलक्षिता ॥ १७ ॥ वाग्यतोगुर्वनुज्ञातोभुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥ ए

अच्छे आप्तज्ञानवाले धनदायक समर्थ उपकारज्ञ द्रोहरहित और गुणसहितमें दोष को न लगातेहुये लोग धर्मसे पढ़ाने के योग्यहैं न कि धनके लोभसे ॥ १५ ॥ और मेखला दण्ड यज्ञोपवीत व मृगचर्मको धरे व अनिन्दितब्राह्मणों में अपनी वृत्तिके लिये भिक्षाको करे ॥ १६ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी भैक्ष्यचर्या क्रमसे आदि मध्य व अन्तमें भवत् शब्दसे उपलक्षित यानी युक्त होती है जैसे कि, भवति भिक्षां देहि, ब्राह्मणोंकी व भिक्षां भवति देहि, क्षत्रियोंकी और भिक्षां देहि भवति वैश्योंकी भैक्ष्य-चर्या को ऐसे जानना चाहिये ॥ १७ ॥ गुरुकी आज्ञालिये व बोल बन्द किये और अन्नको न निन्दताहुवा ब्रह्मचारी खावे पीवे व श्राद्ध और आपदा में एक अन्नको

भोग लगावे और अन्यत्र एककोही व खावे याने कई अन्नों का भोजनकरे ॥ १८ ॥ जिससे बहुत भोजनकरना आरोग्य आयु स्वर्ग पुण्य और लोकमें भी विरुद्ध है उस से उसको बरावे ॥ १९ ॥ व ब्राह्मणादि त्रिवर्ण एक दिनमें कभी न दो बार भोजनकरे और अग्निहोत्रकी विधिको जानताहुआ सायङ्काल और प्रातःकालमें भोजन पावे ॥ २० ॥ व शहद मांस प्राणियोंको पीड़ना व उगतेहुये सूर्य्यका देखना अंजन व स्त्री व बासी व उच्छिष्ट अन्न और निंदा या विवाद इन सबको बरावे ॥ २१ ॥ व ब्राह्मण का सोलह क्षत्रियका बाईस और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीत कर्म्म करने के लिये उत्तम काल कहा गयाहै ॥ २२ ॥ इसके ऊपर धर्ममें हीन व पतित हुये वे

कान्नंनसमश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथापदि ॥ १८ ॥ अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यंश्चातिभोजनम् ॥ अपुण्यंलोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥ नद्विर्भुञ्जीतचैकस्मिन्दिवाक्वापिद्विजोत्तमः ॥ सायम्प्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् ॥ २० ॥ मधुमांसम्प्राणिहिंसाभास्करालोकनाञ्जने ॥ स्त्रियंपर्युषितोच्छिष्टंपरिवादंविवर्जयेत् ॥ २१ ॥ औपनायनिकःकालोब्रह्मक्षत्रविशाम्परः ॥ आषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशदब्दतः ॥ २२ ॥ इतोप्यूर्ध्वंनसंस्कार्याःपतिताधर्मवर्जिताः ॥ व्रात्यस्तोमेनयज्ञेनतत्पातित्यम्परिव्रजेत् ॥ २३ ॥ सावित्रीपतितैःसार्धंसम्बन्धंनसमाचरेत् ॥ ऐणंरौरवंबास्तंक्रमाच्चर्मद्विजन्मनाम् ॥ २४ ॥ वसीरन्नानुपूर्व्येणशाणक्षौमाविकानिच ॥ द्विजस्यमेखलामौञ्जीमौर्वीचभुजजन्मनः ॥ भवेत्त्रिवृत्समाश्लक्ष्णाविशस्तुशाणतान्तवी ॥ २५ ॥ मुञ्जाभावेविधातव्याकुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ ग्रन्थिनैकेनसंयुक्तात्रिभिःपञ्चभिरेववा ॥ २६ ॥ उपवीतंक्रमेणस्यात्कार्पासंशाणमाविकम् ॥ त्रिवृदूर्ध्ववृतंतन्तुभवेदायुर्विवृद्धये ॥ २७ ॥

संस्कार कराने योग्य नहीं हैं क्योंकि उनका पतितभाव व्रात्यस्तोम यज्ञसे जावैहै ॥ २३ ॥ व गायत्री पतितोंके साथ सम्बन्धको नहीं करतीहै अथवा गायत्री से पतितोंके साथ सम्बन्धको न करे व ब्राह्मणादि त्रिवर्णोंके लिये हरिण रुरु और छाग इन तीनोंका चर्म्म क्रमसे कहागयाहै ॥ २४ ॥ व वे लोग अनुक्रमसे सन रेशम और ऊनके कपड़े पहिने व ब्राह्मणकी मेखला मूंजकी क्षत्रियकी मूर्वानामक तृणकी व वैश्यकी सनकी तथा त्रिगुण बराबर और सचिक्कण स्पर्शवाली मेखला होवे ॥ २५ ॥ मूंजके अभाव में कुश अश्मन्तकतृण और बागई की मेखला बनाना चाहिये जो कि एक गांठ व तीन व पांचसे भी संयुत होती है ॥ २६ ॥ व क्रमसे कपास सन और ऊनका यज्ञोप-

वीत होवे व त्रिगुण तथा दहिनावर्त्तवाला वह आयुर्वृद्धि के लिये होवे है ॥ २७ ॥ ब्राह्मणका बेल व पलाशका दण्ड क्षत्रियका बरगद व खैरका और वैश्यका दण्ड पीलू व गूलरका होवे ॥ २८ ॥ तथा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यका दण्ड क्रमसे मस्तक माथ व नाकके ऊपरतक लम्बा व बकलासमेतहोवे और आगसे दूषित न होवे ॥ २९ ॥ सूर्य्यका उपस्थान व अग्निके प्रदक्षिणा घुमाकर दण्ड मृगचर्म और यज्ञोपवीत समेत ब्रह्मचारी यथोक्तप्रकारसे भिक्षाको करे ॥ ३० ॥ व माता मौसी बहन और फूफू आदि ये पहले भीखलेने योग्यही हैं व जोकि इसके प्रति नाहीं को न कहे उससे भी याचना योग्यहै ॥ ३१ ॥ गुरु मैत्रादि वेद व्रतोंको करताहुआ जबतक वेदों

बिल्वपालाशयोर्दण्डोब्राह्मणस्यनृपस्यतु ॥ न्यग्रोधखादिरयोःपीलूदुम्बरयोर्विशः ॥ २८ ॥ आमौलिंवाऽऽललाटं वाऽऽनासमूर्ध्वंप्रमाणतः ॥ ब्रह्मत्वग्विशान्दण्डस्त्वगाढ्योनाग्निदूषितः ॥ २९ ॥ प्रदक्षिणंपरीत्याग्निमुपस्थायदिवाकरम् ॥ दण्डाजिनोपवीताढ्यश्चरेद्भैक्ष्यंयथोदितम् ॥ ३० ॥ मातृमातृष्वसृस्वसृपितृस्वसृपुरःसराः ॥ प्रथमंभिक्षणीयाःस्युरेतायाचननोवदेत् ॥ ३१ ॥ यावद्वेदमधीतेचचरन्वेदव्रतानिच ॥ ब्रह्मचारीभवेत्तावदूर्ध्वंस्नातोगृहीभवेत् ॥ ३२ ॥ प्रोक्तोसावुपकुर्वाणोद्वितीयस्तत्रनैष्ठिकः ॥ तिष्ठेत्तावद्गुरुकुलेयावत्स्यादायुषःक्षयः ॥ ३३ ॥ गृहाश्रमंसमाश्रित्ययः पुनर्ब्रह्मचर्यभाक् ॥ नासौयतिर्वनस्थोवास्यात्सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ३४ ॥ अनाश्रमीनतिष्ठेतदिनमेकमपिद्विजः ॥ आश्रमन्तुविनातिष्ठन्प्रायश्चित्तीयतोहिसः ॥ ३५ ॥ जपंहोमंव्रतंदानंस्वाध्यायंपितृतर्पणम् ॥ कुर्वाणोप्याश्रमभ्रष्टोनाप्नोत

को पढ़ता है तबतक ब्रह्मचारी होवे उसके बाद नहानेवाला होकर गृहस्थ होवे ॥ ३२ ॥ वहां यह ब्रह्मचारी उपकुर्वाण कहाताहै और वह दूसरा नैष्ठिक नामसे प्रसिद्ध है जोकि जबतक आयुका क्षय न होवे तबतक उस गुरुकुल में बसैहै ॥ ३३ ॥ और जोकि गृहाश्रमको आश्रयकर याने गृहस्थ होकर फिर ब्रह्मचारीके नियम को सेवता है वह सब आश्रमोंसे वर्जित होकर वानप्रस्थ और संन्यासी भी नहीं होसक्ताहै ॥ ३४ ॥ इससे ब्राह्मणादि त्रिवर्ण आश्रम से हीन होकर एक दिन भी न रहे जिस से आश्रम विना टिकताहुआ वह प्रायश्चित्तवाला होताहै ॥ ३५ ॥ जोकि आश्रमसे भ्रष्ट होवे वह जप होम व्रत दान वेदपाठ और पितरोंका तर्पण करताहुआ भी अन-

स्तार उन सब कर्म्मोंके फलको न पावै ॥ ३६ ॥ मेखला मृगचर्म और दण्ड ये ब्रह्मचारीके तथा वेदाभ्यास व यज्ञादि गृहस्थके व नख व रोम ये वानप्रस्थके चिह्न हैं ॥ ३७ ॥ और यहां संन्यासीका चिह्न त्रिदण्डादिक भी कहागयाहै इन लक्षणों से हीन होकर दिनो दिन प्रायश्चित्ती होवैहै ॥ ३८ ॥ इससे पुराने कमण्डलु दण्ड यज्ञोपवीत और चर्म्मको भी जलमें डालकर मन्त्रसमेत अन्यको लेवै ॥ ३९ ॥ व गृहस्थाश्रमकी सिद्धिके लिये क्रमसे सोलहवें वर्षमें ब्राह्मण व बाइसवें में क्षत्रिय और चौबीसवें में वैश्य भी केशान्तकर्मको करै ॥ ४० ॥ व ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके लिये एक वेदही तप यज्ञ व्रत और सब सुकर्म से अधिक मुक्ति सुख सम्पत्तिका कारण है ॥ ४१ ॥

त्फलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ मेखलाजिनदण्डाश्चलिङ्गंस्याद्ब्रह्मचारिणः ॥ गृहिणोवेदयज्ञादिनखलोमवनस्थितः ॥ ३७ ॥ त्रिदण्डादियतेरुक्तमुपलक्षणमत्रवै ॥ एतल्लक्षणहीनस्तुप्रायश्चित्तीदिनेदिने ॥ ३८ ॥ जीर्णंकमण्डलुन्दण्डमुपवीता जिनेअपि ॥ अप्स्वेवतानिनिक्षिप्यगृह्णीतान्यचमन्त्रवत् ॥ ३९ ॥ विदध्यात्षोडशेवर्षेकेशान्तंकर्मचक्रमात् ॥ द्वाविंशे चचतुर्विंशेगार्हस्थ्यप्रतिपत्तये ॥ ४० ॥ तपोयज्ञव्रतेभ्यश्चसर्वस्माच्छुभकर्मणः ॥ द्विजातीनांश्रुतिर्मोक्षहेतुर्निःश्रेयसश्रियः ॥ ४१ ॥ वेदारम्भेविसर्गेचविदध्यात्प्रणवंसदा ॥ अफलोऽनोंकृतोयस्मात्पठितोपिनसिद्धये ॥ ४२ ॥ वेदस्यवद नम्प्रोक्तंगायत्रीत्रिपदापरा ॥ तिसृभिःप्रणवाद्याभिर्महाव्याहृतिभिःसह ॥ ४३ ॥ सहस्रंसाधिकञ्चित्रिकमेतज्जपन्ब्व मी ॥ मासम्बहिःप्रतिदिनंमहापापादपिमुच्यते ॥ ४४ ॥ अत्यब्दमितियोभ्यस्येत्प्रतिघस्रमनन्यधीः ॥ गच्छेत्समुक्तःशु

इससे वेदों के आदि व अन्तमें सदा ॐकारका उच्चारणकरे जिससे ॐकारसे हीन पढ़ाहुवा भी वेद विफल होकर सिद्धिकेलिये नहीं होताहै ॥ ४२ ॥ ॐकारपूर्वक भूर्भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृतियों के साथ तीन पादवाला तत्सवितुः इत्यादि जो श्रेष्ठ गायत्रीमन्त्र है वह वेदका मुख कहागयाहै ॥ ४३ ॥ घरसे बाहर एक महीना पर्यन्त प्रतिदिन में कुछ अधिक एक हजार बार इस त्रिक याने ॐकारपूर्वक तीन व्याहृति समेत गायत्री को जपताहुवा अहिंसा सत्यादि यम नियमवाला मनुष्य महापाप से भी छूटताहै ॥ ४४ ॥ जोकि अनन्यबुद्धि होकर अर्थात् मन्त्रमेंही बुद्धिको लगाकर इस भांतिसे कुछ अधिक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन जपताहै वह शुद्धान्तःकरणवाला

आकाशरूप होकर परब्रह्म को पहुँचताहै ॥ ४५ ॥ व अ, उ, म इन तीनों अक्षरोंके समष्टिरूप ॐकार व भूः, भुवः, स्वः इन तीनों व्याहृतियों और गायत्रीके तत्सवितुः, आदि तीनों चरणों को ऋग्, यजुः, सामनाम तीनों वेदोंने दुहाहै ॥ ४६ ॥ जो कि वेदों का जाननेवाला ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओं में इस ॐकार अक्षर और भूः आदि व्याहृतिपूर्वक तत्सवितुः इस गायत्रीमन्त्र को जपता है वह वेदपाठ के पुण्य से युक्त होताहै ॥ ४७ ॥ व विधिपूर्वक कियेहुये यज्ञसमूहके फलसे दश गुण अधिक जो जपका फलहै उसको पाताहै क्योंकि जपरूप यज्ञ विधिपूर्वक यज्ञसे दश गुण कहागया है ॥ ४८ ॥ व उपांशु (जिसमें स्पष्ट जीभ नहीं डोलती) जप उस यज्ञमे सौगुना

ह्यात्मापरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥ त्रिवर्णमयमोङ्कारंभूर्भुवःस्वरितित्रयम् ॥ पादत्रयञ्चसावित्र्यास्त्रयोवेदाअदूदुहन् ॥ ४६ ॥ एतदक्षरमेनाञ्चजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रोवेदपुण्येनयुज्यते ॥ ४७ ॥ विधिक्रतोर्दशगुणंजपस्यफलमश्नुते ॥ विधिक्रतोर्दशगुणोजपक्रतुरुदीरितः ॥ ४८ ॥ उपांशुस्तच्छतगुणःसहस्रोमानसस्ततः ॥ ४९ ॥ अधीत्यवेदान्वेदौवावेदंवाशक्तितोद्विजः ॥ सुवर्णपूर्णधरणीदानस्यफलमश्नुते ॥ ५० ॥ श्रुतिमेवसदाभ्यस्येत्तपस्तद्धिद्विजोत्तमः ॥ श्रुत्यभ्यासोहिविप्रस्यपरमन्तपउच्यते ॥ ५१ ॥ हित्वाश्रुतेरध्ययनंयोन्यत्पठितुमिच्छति ॥ सदोग्ध्रीन्धेनुमुत्सृज्यग्रामक्रोडीन्दुधुक्षति ॥ ५२ ॥ उपनीयचवैशिष्यंवेदमध्यापयेद्द्विजः ॥ सकल्पंसरहस्यञ्चतमाचार्यंविदुर्बुधाः ॥ ५३ ॥ योध्यापयेदेकदेशंश्रुतेरङ्गान्यथापिवा ॥ वृत्त्यर्थंसउपाध्यायोविद्वद्भिःपरिगीयते ॥ ५४ ॥ यथाविधिनिषेकादि

और मनसे कियाहुआ जप उससे हजारगुना होताहै ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण अपनी शक्तिके अनुसार एक वेद दो वेद व तीन वेदोंको पढ़कर सोनेसे भरी भूमिदान के फलको पहुँचताहै ॥ ५० ॥ इससे ब्राह्मणोत्तम तपस्या करने के लिये सदा वेदोंकोही अभ्यास करे जिससे वेदोंका अभ्यास ब्राह्मणकी उत्तम तपस्या है ॥ ५१ ॥ जो वेदका पढ़ना तजकर अन्यको पढ़नेकी इच्छा करता है वह दुधारी गऊको छोड़कर ग्राम शूकरी को दुहना चाहताहै ॥ ५२ ॥ व जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत कर्मको कर शिष्यको कल्प समेत और रहस्य समेत वेदको पढ़ावे उसको पण्डितलोग आचार्य्य कहते हैं ॥ ५३ जोकि वृत्तिके अर्थ वेदके एक भाग अथवा व्याकरणादि अंगों को पढ़ाताहै वह

विद्वानों करके उपाध्याय गाया जाताहै ॥ ५४ ॥ व जो ब्राह्मण यथाविधिपूर्वक गर्भाधानादि कर्मको कराताहै व अन्नसे बढ़ाताहै वह यहां गुरु कहाताहै ॥ ५५ ॥ व जो जिसका वर्णीहोकर आहवनीयआदि अग्नि के उपजानेवाले कर्म्म व पाके सस्यादि अन्नोंके निमित्त यज्ञ या अष्टकादि और अग्निष्टोमादि यज्ञोंको करताहै वह यहां उसका ऋत्विज् कहाजाताहै ॥ ५६ ॥ उपाध्यायसे दशगुना आचार्य्य आचार्य्य से सौगुना पिता और पिताकी गुरुतासे माता हजारगुना अधिक होती है ॥ ५७ ॥ ज्ञानसे ब्राह्मणोंकी, बलसे क्षत्रियोंकी, धनधान्यसे वैश्योंकी और जन्मसे शूद्रोंकी जिठाई (बड़ाई) होती है ॥ ५८ ॥ जैसे काठका हाथी व जैसे चमड़ेका मृग है वैसेही न पढ़ताहुआ ब्राह्मण

यःकर्मकुरुतेद्विजः ॥ सम्भावयेत्तथान्नेनगुरुःसइहकीर्त्यते ॥ ५५ ॥ अग्न्याधेयम्पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ॥ यःकरोतिवृतोयस्यसतस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ ५६ ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्यआचार्यात्तुशतम्पिता ॥ सहस्रन्तुपितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते॥५७॥विप्राणाञ्ज्ञानतोज्यैष्ठ्यंक्षत्रियाणान्तुवीर्यतः॥वैश्यानान्धान्यधनतःपज्जातानान्तुजन्मतः ॥ ५८ ॥ यथादारुमयोहस्तीयथाकृत्तिमयोमृगः ॥ तथाविप्रोऽनधीयानस्त्रयोऽमीनामधारिणः ॥ ५९ ॥ स्वप्नेसिक्त्वाब्रह्मचारीद्विजःशुक्रमकामतः ॥ स्नात्वार्कमर्चयित्वात्रिःपुनर्मामित्यृचञ्जपेत् ॥ ६० ॥ स्वधर्मनिरतानाञ्चवेदयज्ञक्रियावताम् ॥ ब्रह्मचारीचरेद्भैक्ष्यंवेश्मसुप्रयतोऽन्वहम् ॥ ६१ ॥ अकृत्वाभैक्ष्यचरणमसमिध्यहुताशनम् ॥ अनातुरःसप्तरात्रमवकीर्णिव्रतञ्चरेत् ॥ ६२ ॥ यथेष्टचेष्टोनभवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥ ननामपरिगृह्णीयात्परोक्षेप्यविशेषणम् ॥ ६३ ॥ गुरु

ये तीनों नामधारीमात्र हैं यथार्थ में नहीं हैं ॥ ५९ ॥ ब्रह्मचारी ब्राह्मणादि त्रिवर्ण स्वप्नमें कामना के विना वीर्य्यको सींचकर याने स्खलितहो नहाकर सूर्य्यकी पूजाकर, (पुनर्मामैत्विन्द्रियं) इस ऋचाको तीनबारजपे ॥ ६० ॥ व यत्नधारी जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी वेद यज्ञ क्रियावाले व अपने धर्म्म में तत्पर लोगों के घरों में दिनोदिन भिक्षा को करे ॥ ६१ ॥ जोकि किसी कारणसे आतुर न होवे वह भिक्षाचरणको न कर और अग्निको न बढ़ाकर या न पूजकर सात दिन रात पर्य्यन्त अवकीर्णिव्रत अर्थात् रेतगिरों के प्रायश्चित्तको करे ॥ ६२ ॥ गुरुके नेत्रगोचर में याने उसके आगे अपनी यथाइच्छासे मनमानी चेष्टा करनेवाला न होवे व परोक्ष में भी श्रीस्वामीआदि विशेषण

रहित गुरु का नाम न गहे अर्थात् न कहे ॥ ६३ ॥ जहां गुरुकी निन्दा व जहां अपवाद होवे वहांसे अन्यत्र जाना चाहिये अथवा कानोंको ढांपकर रहनाचाहिये ॥ ६४ ॥ गुरुके अपवादसे गर्दभ होवे है व गुरुनिन्दक कुक्कुर होवे व गुरुसे मत्सर करनेवाला छोटा कीड़ा होवे और गुरु से आगे भोजन करनेहारा कृमि होवे है ॥ ६५ ॥ और गुण व दोषोंको जानतेहुये बीस वर्ष के शिष्यकरके दोनों पावोंको स्पर्शकर पतिव्रता गुरु की स्त्री कभी वन्दना करनेयोग्य नहींहै अर्थात् दूरसे उसके नमस्कार करे ॥६६॥ क्योंकि स्त्रियोंका स्वभाव चंचल होताहै इसीसे पुरुषोंका दोष कहागयाहै उस कारण बुद्धिमान् लोग स्त्रियों में कहींभी विश्वास नहीं करते हैं ॥६७॥ जिनले वे सब प्रकारसे

निन्दाभवेद्यत्रपरिवादस्तुयत्रच ॥ श्रुतीपिधायवास्थेयंयातव्यंवाततोऽन्यतः ॥ ६४ ॥ खरोगुरोःपरीवादाच्छ्वाभवेद्गुरु निन्दकः ॥ मत्सरीक्षुद्रकीटःस्यात्परिभोक्ताभवेत्कृमिः ॥ ६५ ॥ नाभिवाद्यागुरोःपत्नीस्पृष्ट्वाङ्घ्रीयुवतीसती ॥ कापिविंशतिवर्षेणज्ञातृणांगुणदोषयोः ॥ ६६ ॥ स्वभावश्चञ्चलःस्त्रीणांदोषःपुंसामतःस्मृतः ॥ प्रमदासुप्रमाद्यन्तिकचिन्नैवविपश्चितः ॥ ६७ ॥ विद्वांसमप्यविद्वांसंयतस्ताधर्षयन्त्यलम् ॥ स्ववशंवापिकुर्वन्तिमूत्रबद्धशकुन्तवत् ॥ ६८ ॥ नमात्रानदुहित्रावानस्वसैकान्तशीलता ॥ बलवन्तीन्द्रियाण्यत्रमोहयन्त्यपिकोविदान् ॥ ६९ ॥ प्रयत्नेनखनन्यद्वद्भूमेर्वार्यधिगच्छति ॥ शुश्रूषयागुरोस्तद्वद्विद्यांशिष्योधिगच्छति॥७०॥ शयानमभ्युदयतेब्रध्नश्चेद्ब्रह्मचारिणम् ॥ प्रमादादथनिम्लोचेज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥ ७१॥ सुतस्यसम्भवेक्लेशंसहेतेपितरौचयत् ॥ शक्यावर्षशतेनापिनोकर्तुन्तस्यनिष्कृतिः॥७२॥ अतस्तयोःप्रियंकुर्याद्गुरोरपिचसर्वदा ॥ त्रिषुतेषुसुतुष्टेषुतपःसर्वंसमाप्यते ॥ ७३ ॥ तेषान्त्रयाणांशुश्रूषापरमन्तपउ

मूर्ख व पण्डितको भी सूतसे बांधे पक्षीकी नाईं क्षोभ करती हैं और अपने बश मेंभी करलेती हैं ॥ ६८ ॥ माताके नहीं व पुत्रीके नहीं और बहनके साथ भी एकान्तमें टिकना नहीं चाहिये क्योंकि बड़ी बलवती इन्द्रियाँ विद्वान्को भी मोहती हैं ॥ ६९ ॥ जैसे प्रयत्नमें भूमिको खनताहुआ पुरुष पानीको प्राप्तहोता है वैसे शिष्यभी गुरुकी सेवासे विद्याको पाताहै ॥ ७० ॥ जो सूर्य्यजी प्रमादसे सोतेहुये ब्रह्मचारी के सामने उदयहोवें अथवा अस्तहोवें तो गायत्रीको जपताहुआ एकदिन उपवासकरे ॥ ७१ ॥ पुत्रकी उत्पत्ति में जिस क्लेशको माता पिता सहते हैं उसका उद्धार हजार वर्ष में भी करने योग्य नहीं है ॥ ७२ ॥ इससे सदा उनका और गुरुका भी प्यार करे

उन तीनोंके सन्तुष्ट होतेही सब तपस्या समाप्त होती है ॥ ७३ ॥ उन तीनों की सेवाही श्रेष्ठ तपस्या कहाती है उनको [illegible] ॥ ७४ ॥
उन तीनों को भलीभांति से पूजकर तीनों लोकों को जीतले व उनके सन्तोष की [illegible] से बढ़ाहुआ [illegible] सुजान स्वर्ग में देवों के समान [illegible] ॥ ७५ ॥
व पुण्यवान् सुकर्मी पुत्र माताकी सेवासे भूमिलोक पिताकी सेवासे भुवर्लोक और ऐसेही गुरुकी सेवासे स्वर्लोक को जीतलेवे ॥ ७६ ॥ जो [illegible] इन तीनों का [illegible]
करना है यही मनुष्यों का पुरुषार्थचतुष्टय याने अर्थ धर्म काम और मोक्ष है व उनसे अन्य कर्म उपधर्म कहाताहै ॥ ७७ ॥ क्रमसे [illegible] वेद वेद तीन [illegible]

च्यते ॥ ताननतिक्रम्ययत्कुर्यात्तन्नसिद्ध्येत्कदाचन ॥ ७४ ॥ त्रीनेतान्समाराध्यत्रीँल्लोकान्प्रजयेत्सुधीः ॥ देववद्दिविदी
प्येततेपान्तोषंविवर्धयन् ॥ ७५ ॥ भूर्लोकञ्जननीभक्त्याभुवर्लोकन्तथापितुः ॥ गुरोःशुश्रूषणात्तद्वत्स्वर्लोकञ्चजयेत्कृ
ती ॥ ७६ ॥ एतदेवनृणाम्प्रोक्तम्पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ यदेतेषांहिसन्तोषउपधर्मोन्यउच्यते ॥ ७७ ॥ अधीत्यवेदान्वेदौ
वावेदंवापिक्रमाद्द्विजः ॥ अप्रस्खलद्ब्रह्मचर्योगृहाश्रममथाश्रयेत ॥ ७८ ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्योविश्वेशानुग्रहाद्भवेत् ॥ अनुग्र
हश्चविश्वेशःकाशीप्राप्तिकरःपरः ॥ ७९ ॥ काशीप्राप्त्याभवेज्ज्ञानंज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥ निर्वाणार्थम्प्रयत्नोहिसदा
चारस्यधीमताम् ॥ ८० ॥ सदाचारोगृहेयद्वन्नतथास्त्याश्रमान्तरे ॥ विद्याजातम्पठित्वान्तेगृहस्थाश्रममाश्रयेत् ॥ ८१ ॥
गृहाश्रमात्परंनास्तियदिपत्नीवशंवदा ॥ आनुकूल्यंहिदम्पत्योस्त्रिवर्गोदयहेतवे ॥ ८२ ॥ आनुकूल्यंकलत्रंचेत्त्रिदिवेनापि

चार वेदों को पढ़कर ब्राह्मणादि वर्ण अखण्ड ब्रह्मचारी होकर अनन्तर गृहस्थाश्रमको सेवे (आधार करे) ॥ ७८ ॥ व श्रीविश्वनाथ की दयासे अखण्डित ब्रह्मचर्य्य
वालाहोवे है और विश्वनाथ का उत्तम अनुग्रहही काशीकी प्राप्तिका कर्ताहै ॥ ७९ ॥ व काशीकी प्राप्तिसे ज्ञानहोवे और ज्ञानसे मोक्षको प्राप्तहोताहै (जाताहै) इमसे
मोक्षकेही लिये बुद्धिमानों के सदाचार का प्रयत्न उचित है ॥ ८० ॥ जैसे घरमें सदाचार होताहै वैसे अन्य आश्रममें नहीं है ऐसे जानकर विद्या समूहको पढ़कर अन्त
में गृहस्थाश्रम को आधार करे ॥ ८१ ॥ जो स्त्री अधीन वचन बोलनेवाली होतो गृहाश्रम से परे अन्य आश्रम नहीं है बरन स्त्री और पुरुषकी परस्पर प्रीति अर्थादि

त्रिवर्गके लिये होतीहै ॥ ८२ ॥ जोस्त्री प्रीतिवालीहो तो स्वर्गमें भी क्याहै और जोस्त्री प्रीतिमती न हो तो नरकमेंभी क्याहै ॥ ८३ ॥ गृहस्थाश्रम सुखके लिये होताहै और वह सुख स्त्रीमूलक है और वही स्त्री है जो कि विनीताहो और निश्चयकर अर्थादि त्रिवर्गही विनय कहाताहै ॥ ८४ ॥ और मन्दबुद्धिवाले लोग स्त्रियों की जोंकके साथ उपमा देते हैं परन्तु विचार से स्त्रियों व जोंकों में बड़ा भारी अन्तर होताहै ॥ ८५ ॥ जैसे कि तपस्वी जोंक केवल रक्तकोही ग्रहण करतीहै और स्त्रियां मनुष्य मन, धन, बल और सुखको भी गहती हैं ॥ ८६ ॥ जोकि स्त्री सब कामों में निपुण पुत्रवती पतिव्रता प्रियवाक् और अधीन वचन बोलनेवाली होकर इन गुणों से संयुत

किंततः ॥ प्रातिकूल्यंकलत्रंचेन्नरकेणापिकिंततः ॥ ८३ ॥ गृहाश्रमःसुखार्थायभार्यामूलंचतत्सुखम् ॥ साचभार्याविनीतायात्रिवर्गोविनयोध्रुवम् ॥ ८४ ॥ जलौकयोपमीयन्तेप्रमदामन्दबुद्धिभिः ॥ मृगींदृशांजलौकानांविचारान्महदन्तरम् ॥ ८५ ॥ जलौकाकेवलंरक्तमाददानातपस्विनी ॥ प्रमदामर्वदादत्तेचित्तंवित्तंबलंसुखम् ॥ ८६ ॥ दक्षाप्रजावतीसाध्वीप्रियवाक्चवशंवदा ॥ गुणैरमीभिःसंयुक्तासाश्रीःस्त्रीरूपधारिणी ॥ ८७ ॥ गुरोरनुज्ञयास्नात्वाव्रतंवेदंसमाप्यच ॥ उद्वहेत्ततोभार्यांसवर्णांसाधुलक्षणाम् ॥ ८८ ॥ जनेतुरसगोत्रायामातुर्याप्यमपिण्डका ॥ दारकर्मणियोग्यासाद्विजानांधर्मवृद्धये ॥ ८९ ॥ स्त्रीसम्बन्धेप्यपस्मारिक्षयिश्वित्रिकुलंत्यजेत् ॥ अभिशस्तिममायुक्तंतथाकन्याप्रसूंत्यजेत् ॥ ९० ॥ रोगहीनांभ्रातृमतींस्वस्मात्किञ्चिल्लघीयसीम् ॥ उद्वहेतद्विजोभार्यांसौम्यास्यांमृदुभाषिणीम् ॥ ९१ ॥ नपर्वतर्क्षवृक्षा

होवै वह स्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मी है ॥ ८७ ॥ उस कारण गुरुकी आज्ञामें नहाकर ब्रह्मचर्यव्रत और वेदको समाप्तकर इसके पीछे अच्छे लक्षणवाली समानवर्ण की स्त्रीको ब्याहे ॥ ८८ ॥ जोकि पिताके समगोत्रकी नहीं व माताके भी कुलकी न होवे वह स्त्री ब्राह्मणादिकों के धर्मकी वृद्धिके लिये ब्याह में योग्य होतीहै ॥ ८९ ॥ स्त्रीके सम्बन्धमें भी मृगी व क्षयी रोगवाले और कोढ़ीके कुलको त्यागदेवै व लोकापवादमसेन कुलको तथा कन्याओं के उपजानेवाली स्त्रीको भी त्यागदेवै [illegible] का उपजाना ज्योतिषादि से जानना चाहिये" ॥ ९० ॥ भ्रातासहित रोगरहित व अपनासे कुछ छोटी सम्मुखी और कोमल वचन बोलनेवाली [illegible]

पर्वत, वृक्ष, वृक्ष नामवाली को न ब्याहे नदी व सर्प नामवाली को न ब्याहे पक्षी, नाग, व दास नामवाली को न ब्याहे और सुबुद्धिमान् मनुष्य अच्छे नामवाली स्त्री को ब्याहे ॥ ९२ ॥ अधिक व न्यून अंगवालीको न ब्याहे बहुत बड़ी को न ब्याहे व दुबली को न ब्याहे बिना रोमवालीको न ब्याहे अधिक रोमवालीको न ब्याहे बहुत रूखे मोटे बालवालीको न ब्याहे ॥ ९३ ॥ और मोहसे कुलहीन कन्याको न ब्याहे क्योंकि कुलहीन कन्याके ब्याहने से सन्तति भी हीनताको प्राप्त होतीहै ॥ ९४ ॥ इससे पहले लक्षणों को परीक्षाकर तदनन्तर कन्याको ब्याहे जो कन्या सुलक्षणा और अच्छे आचारवाली होवे वह पतिकी आयुको बढ़ावे है ॥ ९५ ॥ हे अगस्त्य! यह

कांननदीसर्पनामिकाम् ॥ नपक्ष्याहिप्रेष्यनाम्नींसौम्याख्यामुद्वहेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ नचातिरिक्तहीनाङ्गींनातिदीर्घांनचाकृशाम् ॥ नालोमिकांनातिलोमांनास्निग्धस्थूलमौलिजाम् ॥ ९३ ॥ मोहात्समुपयच्छेतकुलहीनांनकन्यकाम् ॥ हीनोपयमनात्यातिसन्तानमपिहीनताम् ॥ ९४ ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौततःकन्यांसमुद्वहेत् ॥ सुलक्षणासदाचारापत्युरायुर्विवर्धयेत् ॥ ९५ ॥ ब्रह्मचारिसदाचारइतितेसमुदीरितः ॥ घटोद्भवप्रसङ्गेनस्त्रीलक्षणमथब्रुवे ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्द उवाच ॥ सदागृहीसुखंभुङ्क्तेस्त्रीलक्षणवतीयदि ॥ अतःसुखसमृद्ध्यर्थमादौलक्षणमीक्षयेत् ॥ १ ॥ वपुरावर्तगन्धाश्चछायासत्त्वंस्वरोगतिः ॥ वर्णश्चेत्यष्टधाप्रोक्ताबुधैर्लक्षणभूमिका ॥ २ ॥ आपादतलमारभ्ययावन्मौलिरुहंक्रमात् ॥ शु

ब्रह्मचारियों का सदाचार तुमसे कहागया अनन्तर मैं प्रसंग से स्त्रियों के लक्षणको कहताहूं ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धोसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । सैंतिसयें अध्याय में तियलक्षण कहि दीन । प्रथम परखि पुनि ब्याहिये पूरुष परम प्रवीन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जो स्त्री सुलक्षणवालीहो तो गृहस्थ सदा सुखको भोगताहै इससे सुखकी वृद्धिके अर्थ पहलेही स्त्रीके लक्षणको देखलेवे ॥ १ ॥ देह, दक्षिणावर्त्त (नाभी आदि) गन्ध, कान्ति, अन्तःकरण या परपुरुष में मनके न लगाने का कारण गुणविशेष, स्वर, गमन और रंग ऐसे आठप्रकार से लक्षणों के स्थानको पण्डितोंने कहाहै ॥ २ ॥ हे मुने! पावोंसे लगाकर बालोंतक क्रमसे

शुभाशुभानि वक्ष्यामि लक्षणानि मुने शृणु ॥ ३ ॥ आदौ पादतलं रेखास्ततोंऽगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठं गुल्फद्वयं पार्ष्णी जङ्घे रोमाणि जानुनी ॥ ४ ॥ ऊरू कटी नितम्बस्फिग्भगो जघनवस्तिके ॥ नाभिः कुक्षिद्वयं पार्श्वोदरमध्यवलित्रयम् ॥ ५ ॥ रोमाली हृदयं वक्षो वक्षोजद्वयचूचुकम् ॥ जत्रुस्कन्धांसकक्षा दोर्मणिबन्धकरद्वयम् ॥ ६ ॥ पाणिपृष्ठम्पाणितलं रेखांगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठिः कृकाटिका कण्ठे चिबुकञ्च हनुद्वयम् ॥ ७ ॥ कपोलौ वक्त्रमधरोत्तरोष्ठौ द्विजजिह्विकाः ॥ घण्टिका तालु हसितं नासिका क्षुतमक्षिणी ॥ ८ ॥ पक्ष्म भ्रू कर्णभालानि मौलिसीमन्तमौलिजाः ॥ षष्टिः षडुत्तरा योषिदङ्गलक्षणसत्खनिः ॥ ९ ॥ स्त्रीणां पादतलं स्निग्धं मांसलं मृदुलं समम् ॥ अस्वेदमुष्णमरुणं बहुभोगोचितं स्मृतम् ॥ १० ॥ रूक्षं विवर्णम्परुषं खण्डितप्रतिबिम्बकम् ॥ शूर्पाकारं विशुष्कञ्च दुःखदौर्भाग्यसूचकम् ॥ ११ ॥ चक्रस्वस्तिकशङ्खाब्जध्वजमीनातपत्रवत् ॥

शुभ और अशुभ लक्षणों को मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि पहले पांव व तलवा उसके बाद रेखा अँगुठा अंगुलियां नख पद पृष्ठ दोनों घुट्टन् एड़ी मुरवा रोम गांठें ॥ ४ ॥ ऊरू (गांठों के ऊपर मोटी जांघें) कटि, नितम्ब, कुल, योनि, जघन (कटिका अग्रभाग) वस्ति (नाभीका नीचाभाग) नाभि, दोनों कोखें, पार्श्व, पेट, मध्य, त्रिवली ॥ ५ ॥ रोमपंक्ति, हृदय, वक्षस्थल, दोनों कुच, कुचों के अग्रभाग, हँसिया याने कांधों के जोड़, कांध, कांधोंका ऊपर भाग, कांख, बाहें, पहुँचा, दोनों हाथ ॥ ६ ॥ हाथोंकी पीठ, गदोरी, रेखा, अंगुलियां, नख, पीठ, गले के पीछे कृकाटिका याने घोंटा, कण्ठ, ठोंढ़ी, दोनों हनु (कपोलों के परभाग) ॥ ७ ॥ कपोल, मुख, नीचेका ओठ, ऊपरका ओठ, दन्त, जीभ, जीभका नीचाभाग, तालु, हास्य, नासिका, छींक, आंखें, ॥ ८ ॥ पलकें, भौंहें, कान, माथ, मस्तक, मांग, और बाल इन छासठ सुलक्षणों की खानि स्त्री की देहहो तो सदा सौभाग्यवती कहीजाती है ॥ ९ ॥ अब क्रमसे एक एक अंगों के शुभाशुभलक्षण कहते हैं कि जो स्त्रियोंके पावों के तलवा चीकन, मसीले, मृदुल व पसीनासे हीन और ललेंरगवालेहों तो बहुते भोगकेयोग्य कहेगये हैं ॥ १० ॥ और रूखे, विवर्ण, कठोर, खण्डितप्रतिबिंबक (जिनका प्रतिबिंब खण्डित होवे याने धूलिमें चलने से पूरा चिह्न न बने) व सूपके आकार और विशेष सूखेसेहों तो दुःख व दुर्भाग्यको सूचनकरते हैं ॥ ११ ॥ व जिस स्त्रीके पादतल में

चक्र स्वस्तिक शंख कमल ध्वज मछली और छत्रकी रेखाहों वह रानी होती है ॥ १२ ॥ [illegible]
लिये कहीजाती है व मूस सर्प और कागके आकारवाली रेखा दुःख और दारिद्र्य [illegible]
होताहै व जो कुटिल छोटा और चिपिटाहो तो सुख और सौभाग्यको तोड़ना है ॥ १४ ॥ [illegible]
सघन सुगोल ऊंची और कोमल अंगुलियां प्रशंसनीयहैं ॥ १५ ॥ और लम्बी अंगुलियों से कुलटा व पतली [illegible]

यस्याःपादतलेरेखासाभवेत्क्षितिपाङ्गना ॥ १२ ॥ भवेदस्याङ्गुष्ठमग्रादिन्योमध्यांगुलिमङ्गता ॥ रेखाखुभुजगकाकाभा
दुःखदारिद्र्यसूचिका ॥ १३ ॥ उन्नतोमांसलांगुष्ठोवर्त्तलोतुलभोगदः ॥ वक्रोह्रस्वश्चचिपिटःसुखसौभाग्यभञ्जकः ॥
१४ ॥ विधवाविपुलेनस्याद्दीर्घांगुष्ठेनदुर्भगा ॥ मृदवोंगुलयःशस्ताघनावृत्ताःसमुन्नताः ॥ १५ ॥ दीर्घांगुलीभिःकुलटाकृ
शाभिरतिनिर्धना ॥ ह्रस्वायुष्याचह्रस्वाभिर्भुग्नाभिर्भुग्नवर्त्तिनी ॥ १६ ॥ चिपिटाभिर्भवेद्दासीविरलाभिर्दरिद्रिणी ॥
परस्परंसमारूढाःपादांगुल्योभवन्तिहि ॥ १७ ॥ हत्वाबहूनपिपतीनपरप्रेष्यातदाभवेत् ॥ यस्याःपथिसमायान्त्यारजो
भूमेःसमुच्छलेत् ॥ १८ ॥ सापांसुलाप्रजायेतकुलत्रयविनाशिनी ॥ यस्याःकनिष्ठिकाभूमिंनगच्छन्त्याःपरिस्पृशेत् ॥
१९ ॥ सानिहत्यपतिंयोषाद्वितीयंकुरुतेपतिम् ॥ अनामिकाचमध्याचयस्याभूमिंनसंस्पृशेत् ॥ २० ॥ पतिद्वयंनि

युवाली और टेढ़ी अंगुलियों से स्त्री कुटिल व्यवहार में बर्तनेहारी होती है ॥ १६ ॥ व चिपटी अंगुलियों से दासी और बिरली अंगुलियों से दरिद्रिणी होवे और जो पावों
की अंगुलियां परस्पर एक एक पर चढ़ी होतीहैं ॥ १७ ॥ तो वह स्त्री बहुते पतियों को भी मारकर पराये अधीन होतीहै व गलीमें चलतीहुई जिस स्त्रीके पांछेसे भूमिकी धूलि
उड़ती या ऊपरको उठती है ॥ १८ ॥ वह स्त्री तीनों अर्थात् माता पिता और पतिके कुलकी विनाशनेवाली व्यभिचारिणी होतीहै व चलती हुई जिस स्त्रीकी कनिष्ठा अं-
गुली पृथिवीको न परसे ॥ १९ ॥ वह स्त्री अपने पतिको मारकर दूसरे पतिको करतीहै व जिसकी अनामिका और जिसकी मध्यमा अंगुली भूमिको न छुवे वे दोनों स्त्रियां

कराने योग्य हैं ॥ २० ॥ क्योंकि पहली याने जिसकी अनामिका पृथिवी को नहीं परसती है वह दो पतियोंको और दूसरी तीन पतियोंको मारती है और जो वे पूर्वोक्त अनामिका व मध्यमा अंगुलियां हीन होवें तो पतिकी हीनता करनेवाली होती हैं ॥ २१ ॥ व यह बहुत निश्चय है कि जिस स्त्रीकी प्रदेशिनी याने अंगुठाके लगवाली अंगुली अँगुठासे मिलीहोवे वह कन्याही कुलटा होतीहै ॥ २२ ॥ व सचिक्कण समुन्नत सुगोल और लाल रंगवाले पाद नख शुभहैं और इनसे उलटा होनेसे अशुभहैं ॥ २३ ॥ व स्त्रियों के पावोंकी पीठ जो उन्नत व पसीना और नसोंसे हीन व मांसयुक्त सचिक्कण और कोमलहो तो रानीके भावको सूचन करतीहै याने वह स्त्री रानी होतीहै ॥ २४ ॥ व पांवके ऊपर बीचमें नम्र होनेसे दरिद्रिणी व नसयुक्त से सदा गली चलनेवाली व रोमयुक्त से दासी और मांसहीन पदपृष्ठसे दुर्भगा होती है ॥ २५ ॥ व नसोंसे हीन

हन्त्याद्याद्वितीयाचपतित्रयम् ॥ पतिहीनत्वकारिण्योहीनेतेहेइमेयदि ॥ २१ ॥ प्रदेशिनीभवेद्यस्याअंगुष्ठात्यतिरेकिणी ॥ कन्यैवकुलटासास्यादेषएवविनिश्चयः ॥ २२ ॥ स्निग्धाःसमुन्नतास्ताम्रावृत्ताःपादनखाःशुभाः ॥ २३ ॥ राज्ञीत्वसूचकंस्त्रीणांपादपृष्ठंसमुन्नतम् ॥ अस्वेदमशिराढ्यञ्चमसृणंमृदुमांसलम् ॥ २४ ॥ दरिद्रामध्यनम्रेणशिरालेनसदाध्वगा ॥ रोमाढ्येनभवेद्दासीनिर्मांसेनचदुर्भगा ॥ २५ ॥ गूढौगुल्फौशिवायोक्तावशिरालौसुवर्त्तुलौ ॥ स्थपुटौशिथिलौदृश्यौस्यातान्दौर्भाग्यसूचकौ ॥ २६ ॥ समपार्ष्णिःशुभानारीपृथुपार्ष्णिश्चदुर्भगा ॥ कुलटोन्नतपार्ष्णिःस्याद्दीर्घपार्ष्णिश्चदुःखभाक् ॥ २७ ॥ रोमहीनेसमेस्निग्धेयज्जङ्घेक्रमवर्त्तुले ॥ साराजपत्नीभवतिविशिरेसुमनोहरे ॥ २८ ॥ एकरोमाराजपत्नीद्विरोमाचसुखावहा ॥ त्रिरोमारोमकूपेपुभवेद्वैधव्यदुःखभाक् ॥ २९ ॥ वृत्तंविशिरंमांसलग्नंजानुयुग्मंप्रशस्यते ॥ नि

सुगोल और मांससे मूँदे गुल्फ याने पावों के घुट्ठना कल्याण के लिये कहेगये हैं और जो नीचे व शिथिल व [illegible] पड़तेहों तो दुर्भाग्य को [illegible] ॥ २६ ॥ जिसकी एड़ी समानहो वह स्त्री शुभहै व मोटी एड़ीवाली दुर्भगा होतीहै व ऊंची एड़ीवाली कुलटा होतीहै और [illegible] दुःख [illegible] होती ॥ २७ ॥ व जिसके घुटुवा मनोहर समान चढ़ा उतार व रोमरहित व नसोंसहीन और क्रमसे सुगोल होवें वह रानी होती है ॥ २८ ॥ [illegible] वह भी रानी होती है व दो रोमवाली स्त्री सुखके प्राप्त करनेहारी होतीहै और तीन रोमवाली स्त्री विधवा और दुःखिनी होती ॥ २९ ॥ [illegible] और मांसल मूंदे [illegible]

पाँवोंकी गाँठें प्रशंसी जाती हैं व स्वैरिणी की मांसहीन और दरिद्रिणी स्त्रीकी गाँठें शिथिल होतीहैं ॥ ३० ॥ करभ (मणिबन्धसे कनिष्ठा अंगुलीतक) के आकार व नसोंसे हीन सचिक्कण सघन व रोमरहित और गोली ऊरुओं से स्त्रियां रानी होती हैं ॥ ३१ ॥ व रोमभरी ऊरुओं से वैधव्य व चिपिटियों से दौर्भाग्य व जिनके बीचमें नसें हों या बिलहों उनसे महादुःख है और कठिन चर्मवाली ऊरुओंसे दरिद्रता कही गई है ॥ ३२ ॥ चौबीस अंगुलकी चौकोन व ऊंचे नितम्ब बिम्बसे समेत स्त्रियों की कटि प्रशस्त होती है ॥ ३३ ॥ व चिपिटी लम्बी मांसहीन व कठिन और ह्रस्व (छोटे) रोमों से संयुत कटि स्त्रीके वैधव्य व दुःखकी सूचन करनेवाली है ॥ ३४ ॥

मांसस्वैरचारिण्यादरिद्रायाश्वविश्लथम् ॥ ३० ॥ विशिरैःकरभाकारैरूरुभिर्मसृणैर्घनैः ॥ सुवृत्तैरोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्ल भाः ॥ ३१ ॥ वैधव्यंरोमशैरूरुकंदौर्भाग्यञ्चिपिटैरपि ॥ मध्यच्छिद्रैर्महादुःखंदारिद्र्यंकठिनत्वचैः ॥ ३२ ॥ चतुर्भिरंगुलैः शस्ताकटिर्विंशतिसंयुतैः ॥ समुन्नतनितम्बाढ्याचतुरस्रामृगीदृशाम् ॥ ३३ ॥ विनताचिपिटादीर्घानिर्मांसासङ्कटाक टिः ॥ ह्रस्वारोमयुतानार्यादुःखवैधव्यसूचिका ॥ ३४ ॥ नितम्बबिम्बोनारीणामुन्नतोमांसलःपृथुः ॥ महाभोगायसम्प्रो क्तस्तदन्योऽशर्मणेमतः ॥ ३५ ॥ कपित्थफलवद्वृत्तौमृदुलौमांसलौघनौ ॥ स्फिचौवलिविनिर्मुक्तौरतिसौख्यविवर्धनौ ॥ ३६ ॥ शुभःकमठपृष्ठाभोगजस्कन्धोपमोभगः ॥ वामोन्नतस्तुकन्याजःपुत्रजोदक्षिणोन्नतः ॥ ३७ ॥ आखुरोमागूढ मणिःसुश्लिष्टःसंहतःपृथुः ॥ तुङ्गःकमलपर्णाभःशुभोऽश्वत्थदलाकृतिः ॥ ३८ ॥ कुरङ्गखुररूपोयश्चुल्लिकोदरसन्निभः ॥

ऊंचा व मांसल और विस्तारयुक्त स्त्रियों का नितम्बबिम्ब भारी भोगों के लिये कहा गया है और उससे उलटाहुवा दुःख के लिये मानाजाता है ॥ ३५ ॥ व कैथाके फलके समान गोल कोमल व मांसयुक्त सघन व बिना बलिके स्फिक् याने कूल रतिसौख्य के बढ़ानेवाले होतेहैं ॥ ३६ ॥ जोकि स्त्रियों की योनि कछुवे की पीठ की नाईं निबिड़ व हाथी के माथे के कुम्भ के समान उन्नत होवे वह शुभ है और जो वाम ओर को ऊंची होती है वह कन्या उपजानेवाली है व जो दक्षिण को उन्नत होवे वह पुत्रको उपजाती है ॥ ३७ ॥ व मूशके से रोमों से संयुत गुप्तमध्यभागवाली अच्छी भांति से सघन व दृढ़ विस्तार युक्त उन्नत व कमल

फलके समान और पीपल पत्रके आकारवाली योनि शुभ होती है ॥ ३८ ॥ और जोकि हरिणके खुरके समान व चूल्हे के उदर के आकार व रोमों से भरी पुरी व उपड़े मुखवाली व दृश्यनासा (जिसका छिद्रयुक्त मध्यदेश देख पड़ताहो) है वह अत्यन्त निन्दित या दुर्भाग्य का कारणहै ॥ ३९ ॥ जिस स्त्री की योनि शंख के समान आवर्तवाली या तीन रेखादिकों से अङ्कित होती है वह इसमें गर्भ को इच्छा नहीं करती है और चिपिटी व फूटे घड़े की खपड़ी के आकार बनी हुई योनि दासी पद के देनेवाली है ॥ ४० ॥ वैसेही बांस व बेंतकी पाती के समान व हाथी के से ऊंचे रोमों से संयुत विकट व वक्राकार और लम्बे गलवाली योनि अशुभ होती

रोमशोविवृतास्यश्चदृश्यनासोतिदुर्भगः ॥ ३९ ॥ शङ्खावर्तोभगोयस्याःसागर्भमिहनेच्छति ॥ चिपिटःखर्पराकारः किङ्करीपददोभगः ॥ ४० ॥ वंशवेतसपत्राभोगजरोमोच्चनासिकः ॥ विकटःकुटिलाकारोलम्बगलस्तथाऽशुभः ॥ ४१ ॥ भगस्यभालञ्जघनंविस्तीर्णन्तुङ्गमांसलम् ॥ मृदुलंमृदुलोमाढ्यंदक्षिणावर्तमीडितम् ॥ ४२ ॥ वामावर्तञ्चनिर्मांसंभुग्नंवैधव्यसूचकम् ॥ सङ्कटस्थपुटंरूक्षंजघनन्दुःखदंसदा ॥ ४३ ॥ वस्तिःप्रशस्ताविपुलामृद्वीस्तोकसमुन्नता ॥ रोमशाचशिरालाचरेखाङ्कानैवशोभना ॥ ४४ ॥ गम्भीरादक्षिणावर्तानाभीस्यात्सुखसम्पदे ॥ वामावर्तासमुत्तानाव्यक्तग्रन्थिर्नशोभना ॥ ४५ ॥ सूतेसुतान्बहून्नारीपृथुकुक्षिःसुखास्पदम् ॥ क्षितीशञ्जनयेत्पुत्रंमण्डूकाभेनकुक्षिणा ॥ ४६ ॥ उन्नतेनवलीभाजासावर्तेनापिकुक्षिणा ॥ वन्ध्याप्रव्रजितादासीक्रमाद्योषाभवेदिह ॥ ४७ ॥ समैःसमांसैर्मृदुभिर्योपिन्म

है ॥ ४१ ॥ जोकि भगका भाल याने योनि का ऊपर भाग जघन कहाता है वह विस्तारयुक्त, उन्नत, मसीला, मृदुल और दक्षिणावर्त कोमल रोमोंसे संयुत होवे वह प्रशसितहै ॥ ४२ ॥ व वाम ओर को घूमी हुई रेखाओं या रोमों से व्याप्त, मांसहीन कुटिल जघन वैधव्यका सूचक होताहै और सिकुड़ा नीचा व रूखा हुवा वह सदैव दुःख देनेवाला है ॥ ४३ ॥ कुछेक ऊंची विस्तार युक्त व कोमल वस्ति (कटिका नीचा भाग) प्रशस्त होती है व नाड़ी रोम और रेखाओं से अङ्कित हुई वह अशुभहै ॥ ४४ ॥ गम्भीर व दक्षिणावर्त घूमी हुई नाभी सुख और सम्पत्ति के लिये होवे है व वामावर्त घूमी रोमपङ्क्तिवाली ऊंची और प्रकट मध्यभागवाली भी शुभ नहीं है ॥ ४५ ॥ विस्तीर्ण कोखवाली स्त्री बहुते पुत्रों को उत्पन्न करती है व मेढ़क के उदर के समान कोखसे सुखके स्थानरूप राजा पुत्रको उपजावे है ॥ ४६ ॥ व इस लोकमें

स्त्री कम से ऊंची कोखसे बांस वर्णोवाली से संन्यासिनी और आवर्त सहित कोखसे दासी होवे या होती है ॥ ४७ ॥ व मांससंयुत, समान, शुभ, कोमल और मूंदे हाड़ वाले पार्श्वों से स्त्री सौभाग्य व सुखकी निधि होवे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ जिस स्त्री के पार्श्वभाग नाड़ी याने नसों से संयुत प्रकट होवें व उन्नत और रोमराजी से युक्त होवें वह पुत्रादिकों से हीन व दुःशीला और दुःखकी निधि होवे ॥ ४९ ॥ व नाड़ीरहित, कोमल चर्मवाले, बहुत छोटे उदरसे स्त्री सदैव भोगवती और मि- ष्टान्नसेविनी होती है ॥ ५० ॥ व दरिद्रिणी स्त्रीका उदर घड़े के आकार, मृदंगके समान, कुम्हड़ाके तुल्यहै और यवके समान बनाहुवा उदर दुष्पूर होताहै ॥ ५१ ॥

न्नास्थिभिःशुभैः ॥ पार्श्वैःसौभाग्यसुखयोर्निधानंस्यादसंशयम् ॥ ४८ ॥ यस्याहृश्यशिरेपार्श्वैउन्नतेरोमसंयुते ॥ नि रपत्याचदुःशीलासामवेदुःखशेवधिः ॥ ४९ ॥ उदरेणातितुच्छेनविशिरेणमृदुत्वचा ॥ योषिद्भवतिभोगाढ्यानित्यंमिष्टा न्नसेविनी ॥ ५० ॥ कुम्भाकारन्दरिद्रायाजठरञ्चमृदङ्गवत् ॥ कूष्माण्डाभंयवाभञ्चदुष्पूरञ्जायतेस्त्रियाः ॥ ५१ ॥ सुवि शालोदरीनारीनिरपत्याचदुर्भगा ॥ प्रलम्बजठराहन्तिश्वशुरञ्चापिदेवरम् ॥ ५२ ॥ मध्यक्षामाचसुभगाभोगाढ्यामव लित्रया ॥ ऋज्वीतन्वीचरोमालीयस्याःसाशर्मनर्मभूः ॥ ५३ ॥ कपिलाकुटिलास्थूलाविच्छिन्नारोमराजिका ॥ चौर वैधव्यदौर्भाग्यंविदध्यादिहयोषिताम् ॥ ५४ ॥ निर्लोमहृदयंयस्याःसमंनिम्नत्ववर्जितम् ॥ ऐश्वर्यञ्चाप्यवैधव्यंप्रियप्रेम चसालभेत ॥ ५५ ॥ विस्तीर्णहृदयायोषापुंश्चलीनिर्दयातथा ॥ उद्भिन्नरोमहृदयापतिंहन्तिविनिश्चितम् ॥ ५६ ॥ अष्टा

बहुत विस्तारयुक्त उदरवाली स्त्री अपत्यों (लड़कों) से हीन व दुर्भगा होतीहै व लम्बे उदरवाली स्त्री श्वशुर और देवरको भी मारडालती है ॥ ५२ ॥ व पतले मध्य- भागवाली स्त्री सुभगा होतीहै व तोंदीके समीप त्रिबलीवाली स्त्री भोगोंसे संयुत होतीहै व जिसकी रोमपंक्ति सीधी सूक्ष्म और लम्बी होवे वह सुख व क्रीड़ाका स्थान होती है ॥ ५३ ॥ कपिलरंग, कुटिल, स्थूल और बीचमें छिन्न भिन्न हुई स्त्रियोंकी रोमपंक्ति इस लोकमें चोरी वैधव्य और दौर्भाग्यको करती है ॥ ५४ ॥ जिस स्त्रीका हृदय रोम रहित, बराबर व गहरा नहीं है वह ऐश्वर्य, अवैधव्य और पतिके प्रेमको भी पातीहै ॥ ५५ ॥ व विस्तारयुक्त हृदयवाली स्त्री पुंश्चली तथा निर्दया होती है और जिसके

हृदयमें रोमराजी जमी होवे वह स्त्री निश्चयकरके पतिको मारडालती है ॥ ५६ ॥ व अठारह अंगुलका चौड़ा सघन समुन्नत वक्षःस्थल सुखके लिये होताहै और बहुत विस्तारवाला रोमों से संयुत व कुटिल उर दुःखके लिये होताहै ॥ ५७ ॥ गोलाकार व सघन व समान व मोटे व कड़े कुच प्रशस्त हैं व स्थूल अग्रवाले बीरल और सूखे हुये कुच स्त्रियों के सुखदाता नहीं हैं ॥ ५८ ॥ जिस स्त्रीको दक्षिण ओरका कुच उन्नत होताहै वह पुत्रवती और श्रेष्ठ मानी जाती है व वामोन्नत कुचवाली स्त्री सौभाग्य मंयुत सुन्दरी कन्याको उत्पन्न करती है ॥ ५९ ॥ व रहँटके बीचवाली घटीके समान कुच दुष्टशीलताके सूचक होते हैं व मोटे मुखवाले अन्तरसमेत और अन्तके समीप

दशांगुलततमुरः पीवरमुन्नतम् ॥ सुखायदुःखायभवेद्रोमशंविषमंपृथु ॥ ५७ ॥ घनौवृत्तौदृढौपीनौसमौशस्तौपयोधरौ ॥ स्थूलाग्रौविरलौशुष्कौवामोरूणांनशर्मदौ ॥ ५८ ॥ दक्षिणोन्नतवक्षोजापुत्रिणीत्वग्रणीर्मता ॥ वामोन्नतकुचासूतेकन्यांसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५९ ॥ अरघट्टघटीतुल्यौकुचौदौःशील्यसूचकौ ॥ पीवरास्यौसान्तरालौपृथूपान्तौनशोभनौ ॥ ६० ॥ मूलेस्थूलौक्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौपयोधरौ ॥ सुखदौपूर्वकालेतुपश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ ६१ ॥ सुदृढंचूचुकयुगंशस्तंश्यामंसुवर्तुलम् ॥ अन्तर्मग्नञ्चदीर्घञ्चकृशंक्लेशायजायते ॥ ६२ ॥ पीवराभ्याञ्चजत्रुभ्यांधनधान्यनिधिर्वधूः ॥ श्लथास्थिभ्याञ्चनिम्नाभ्यांविषमाभ्यान्दरिद्रिणी ॥ ६३ ॥ अबद्धावनतौस्कन्धावदीर्घौवक्रकृशौशुभौ ॥ वक्रौस्थूलौचरोमाढ्यौप्रेष्यवैधव्यसूचकौ ॥ ६४ ॥ निगूढसन्धीशस्ताग्रौशुभावंसौसुसंहतौ ॥ वैधव्यदौसमुच्चाग्रौनिर्मांसावतिदुःख

में विस्तारयुक्त कुच शुभ नहीं हैं ॥ ६० ॥ मूलमें स्थूल व क्रमसे कृश (पतले) और अग्रभाग में तीक्ष्णतासंयुत कुच पूर्वकालमें सुखदाता होते हैं व उसके बाद अधिक दुःखदायक हैं ॥ ६१ ॥ व सुदृढ़ सुगोल और काले रंगवाले दोनों चूचुक (कुचों के अग्रभाग) शुभहैं व भीतर डूबेहुये लम्बे और कृशतायुक्त चूचुकयुगल क्लेशके लिये होताहै ॥ ६२ ॥ मोटी हासियों से स्त्री धन व धान्यकी निधिहै और पसरे हाड़वाली खाली व विषम जत्रवों से दरिद्रिणी होतीहै ॥ ६३ ॥ व बिना बँधेहुये दीर्घताहीन, मांसयुक्त स्कन्ध शुभ हैं व कुटिल स्थूल और रोमों से भरेहुये वे दास्य व वैधव्यके सूचक हैं ॥ ६४ ॥ मूंदे जोड़वाले व नयेहुये अग्रभागवाले व बहुत दृढ़ अंग

शुभ होतेहैं और उन्नताग्रवाले वैधव्यके दायक होते हैं व मांससे हीनहुये वे बहुत दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ व बहुत सूक्ष्म रोमवाली ऊंची मसीली सचिक्कण कांखें शुभ होती हैं व गहरी, नसवाली और स्वेद (पसीना) से चीकनहुई वे शुभ नहीं हैं ॥ ६६ ॥ मूँदेहुये हाड़ों की गांठोंवाली, कोमल, सरल, रोमरहित और नसों से हीन स्त्रियों की बाहैं निर्दोषहैं ॥ ६७ ॥ व स्थूल रोमवाली बाहैं वैधव्यको सूचित करती हैं व छोटी बाहैं दौर्भाग्य के सूचनेवाली होती हैं और प्रकट नसवाली बाहैं स्त्रियों के क्लेश के लिये कही गई हैं ॥ ६८ ॥ कमलकी अधफूली कलीके समान आकारवाला व अंगुठा अंगुलियों और अच्छे मुखसे युक्त हाथोंका जोड़ा स्त्रियोंके बहुत भोगोंके

दौ ॥ ६५ ॥ कक्षेसुसूक्ष्मरोमेतुङ्गेस्निग्धेचमांसले ॥ शस्तेनशस्तेगम्भीरेशिरालेस्वेदमेदुरे ॥ ६६ ॥ स्यातांदोषौसुनिर्दो
षौगूढास्थिग्रन्थिकोमलौ ॥ विशिरौचविरोमाणौसरलौहरिणीदृशाम् ॥ ६७ ॥ वैधव्यंस्थूलरोमाणौह्रस्वौदौर्भाग्यसूच
कौ ॥ परिक्लेशायनारीणांपरिदृश्यशिरौभुजौ ॥ ६८ ॥ अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्ठांगुलिसम्मुखम् ॥ हस्तद्वयंमृगाक्षी
णांबहुभोगायजायते ॥ ६९ ॥ मृदुमध्योन्नतंरक्तंतलंपाण्योररन्ध्रकम् ॥ प्रशस्तंशस्तरेखाढ्यमल्परेखंशुभश्रियम् ॥
७० ॥ विधवाबहुरेखेणानिरेखेणदरिद्रिणी ॥ भिक्षुकीसुशिराढ्येननारीकरतलेनवै ॥ ७१ ॥ विरोमविशिरंशस्तंपाणि
पृष्ठंसमुन्नतम् ॥ वैधव्यहेतुरोमाढ्यंनिर्मांसंस्नायुमत्त्यजेत् ॥ ७२ ॥ रक्ताव्यक्तागभीराचस्निग्धापूर्णाचवर्तुला ॥ कररेखा
ङ्गनायाःस्याच्छुभाभाग्यानुसारतः ॥ ७३ ॥ मत्स्येनसुभगानारीस्वस्तिकेनवसुप्रदा ॥ पद्मेनभूपतेःपत्नीजनयेद्भूपतिंसुत

लिये होताहै ॥ ६९ ॥ कोमल, मध्योन्नत, रक्तरंगसहित व छिद्ररहित अच्छी रेखावाला व थोड़ी रेखाओं से संयुत शुभ शोभावान् हाथोंका तल प्रशस्त होताहै ॥ ७० ॥ बहुत रेखावाले करतलसे स्त्री विधवा होती है व रेखाहीन से दरिद्रिणी और नस भरेहुये करतल से भी भिक्षुकी होती है ॥ ७१ ॥ रोमरहित व नसहीन जो हाथों का पृष्ठहै वह शुभ होताहै व रोमों से भराहुआ वैधव्यका कारणहै व निर्मांस और नसवाले करपृष्ठको त्यागदेवे ॥ ७२ ॥ व लाली प्रकट, गहरी सचिक्कण पूरी और गोली हाथोंकी रेखा स्त्रियोंकी भाग्यके अनुसारसे शुभ होती है ॥ ७३ ॥ और स्त्री मीनरेखा से सुभगा होती है व स्वस्तिक से धन देनेवाली है व कमलरेखासे रानी होती है व

मूर्ख पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ७४ ॥ चक्रवर्ती राजाकी स्त्रीके हाथमें दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक रेखा व शंख, छत्र और कछुवे के समान रेखायें नृपके माताभावको सूचन करती हैं ॥ ७५ ॥ व तुलामानके आकार रेखायें वणिक्पत्नीत्व याने बनियाकी स्त्री होने में कारणहैं व स्त्रियोंके बायें हाथमें हाथी घोड़ा और बैलके आकार ॥ ७६ ॥ व प्रासाद (महल) और वज्रके समान रेखायें उसके पुत्रको तीर्थ करनेवाला कहती हैं अथवा दो शकट (गाड़ी) रेखाओंसे किसानकी स्त्री होतीहै ॥ ७७ ॥ यह निश्चयहै कि चँवर अंकुश और धन्वासे राजाकी स्त्री होवेहै व अंगुष्ठमूलसे निकलकर रेखा कनिष्ठा अंगुलीको जावे ॥ ७८ ॥ जो ऐसा होवे तो सुबुद्धिमान् उस स्त्रीको दूरसे त्यागदेवे क्योंकि

म् ॥ ७४ ॥ चक्रवर्तिस्त्रियाःपाणौनन्द्यावर्तःप्रदक्षिणः ॥ शङ्खातपत्रकमठान्नृपमातृत्वसूचकाः ॥ ७५ ॥ तुलामानाकृतीरेखावणिक्पत्नीत्वहेतुके ॥ गजवाजिवृषाकाराःकरेवामेमृगीदृशाम् ॥ ७६ ॥ रेखाःप्रासादवज्राभाब्रूयुस्तीर्थकरंसुतम् ॥ कृषीवलस्यपत्नीस्याच्छकटेनयुगेनवा ॥ ७७ ॥ चामरांकुशकोदण्डैराजपत्नीभवेद्ध्रुवम् ॥ अंगुष्ठमूलान्निर्गत्यरेखायातिकनिष्ठिकाम् ॥ ७८ ॥ यदिसापतिहन्त्रीस्याद्दूरतस्तान्त्यजेत्सुधीः ॥ त्रिशूलासिगदाशक्तिदुन्दुभ्याकृतिरेखया ॥ नितम्बिनीकीर्तिमतीत्यागेनपृथिवीतले ॥ ७९ ॥ कङ्कजम्बूकमण्डूकवृकवृश्चिकभोगिनः ॥ रासभोष्ट्रबिडालाःस्युःकरस्थादुःखदाःस्त्रियाः ॥ ८० ॥ शुभदःसरलोंगुष्ठोवृत्तोवृत्तनखोमृदुः ॥ ८१ ॥ अंगुल्यश्चसुपर्वाणोदीर्घावृत्ताःक्रमात्कृशाः ॥ चिपिटाःस्युपुटारूक्षाःपृष्ठरोमयुजोऽशुभाः ॥ ८२ ॥ अतिह्रस्वाःकृशावक्राविरलारोगहेतुकाः ॥ दुःखायांगुलयःस्त्रीणांबहुपर्वसमन्विताः ॥ ८३ ॥ अरुणाःसशिखास्तुङ्गाःकरजाःसुदृशांशुभाः ॥ निम्नाविवर्णाःशुक्त्याभाःपीतादारिद्र्य

वह पतिके मारनेवाली होवे है व त्रिशूल, तलवार, गदा, शक्ति और दुन्दुभि (नगरिया) के आकारवाली रेखासे स्त्री दानके द्वारा पृथिवीतल में कीर्तिवाली होती है ॥ ७९ ॥ व स्त्री के हाथमें टिकेहुये कंक (चील्हभेद) स्यार, मेढुक, भेड़िया, वृश्चिक, सर्प, गधा, ऊंट और बिलार दुःखदायक होतेहैं ॥ ८० ॥ व गोल नखवाला सरल सुगोल कोमल अंगुठा शुभहै ॥ ८१ ॥ व क्रमसे छोटी या पतली लम्बी गोली और अच्छी गांठोंवाली अंगुलियां शुभहोतीहैं व चिपिटी खाली रूखी व पीछे रोमवाली अशुभहैं ॥ ८२ ॥ व बहुत छोटी, पतली, कुटिल, बिरली अंगुलियां रोगका कारण हैं और विस्तारयुक्त पर्ववाली अंगुलियां स्त्री के दुःखके लिये होती हैं ॥ ८३ ॥ शिखासमेत, उन्नत, लाले

रंगवाले स्त्रियोंके नख शुभहोते हैं व खाली, विवर्ण, सूती के समान श्वेत और पीतरंगवाले नख दारिद्र्यके दायकहैं ॥ ८४ ॥ व बहुधा पुंश्चली स्त्री के नखोंमें उजले बिन्दु होतेहैं और पुरुष भी श्वेत पुष्पके समान नखोंसे दुःखित होते हैं ॥ ८५ ॥ व भीतर निमग्नहै बांसके आकार बीचकी हड्डी जिसमें वह मांसयुक्त पीठ शुभहै और रोमसंयुत पीठसे स्त्री निश्चय वैधव्यको पाती है ॥ ८६ ॥ कुटिल व विशेष नईहुई व नाड़ी (नस)युक्त पीठसे स्त्री दुःखितहोती है मांसरामेत व ऊंची और समान सीधी घांटी श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥ व नससंयुत, सूखी रोमों से भरी चौड़ी और टेढ़ी कृकाटिका (घांटी) अशुभहोती है और मांसल व गोलाकार चार अंगुलका कण्ठ प्रशस्तहोताहै ॥ ८८ ॥ तीन रेखाओंसे

दायकाः ॥ ८४ ॥ नखेषुबिन्दवःश्वेताःप्रायःस्युःस्वैरिणीस्त्रियाः ॥ पुरुषाअपिजायन्तेदुःखिनःपुष्पितैर्नखैः ॥ ८५ ॥ अन्तर्निमग्नवंशास्थिःपृष्ठिःस्यान्मांसलाशुभा ॥ पृष्ठेनरोमयुक्तेनवैधव्यंलभतेध्रुवम् ॥ ८६ ॥ भुग्नेनविनतेनापिसशिरेणापिदुःखिता ॥ ऋज्वीकृकाटिकाश्रेष्ठासमांसाचसमुन्नता ॥ ८७ ॥ शुष्काशिरालारोमाढ्याविशालाकुटिलाशुभा ॥ मांसलोवर्तुलःकण्ठःप्रशस्तश्चतुरंगुलः ॥ ८८ ॥ शस्ताग्रीवात्रिरेखाङ्कात्वव्यक्तास्थिःसुसंहता ॥ निर्मांसाचिपिटादीर्घास्थपुटानशुभप्रदा ॥ ८९ ॥ स्थूलग्रीवाचविधवावक्रग्रीवाचकिङ्करी ॥ बन्ध्याहिचिपिटग्रीवाह्रस्वग्रीवाचनिःसुता ॥ ९० ॥ चिबुकंद्व्यंगुलंशस्तंवृत्तंपीनंसुकोमलम् ॥ स्थूलंद्विधासंविभक्तमायतंरोमशंत्यजेत् ॥ ९१ ॥ हनुश्चिबुकसंलग्नानिर्लोमासुघनाशुभा ॥ वक्रास्थूलाकृशाह्रस्वारोमशानशुभप्रदा ॥ ९२ ॥ शस्तौकपोलौवामाक्ष्याःपीनौवृत्तौसमुन्नतौ ॥ रोमशौपरुषौनिम्नौनिर्मांसौपरिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥ समंसमांसंसुस्निग्धंस्वामोदंवर्तुलम्मुखम् ॥ जनेतृवदनच्छायन्धन्यानां

युक्त, मुंदेहुये हाड़वाली व मांससे भरी सुदृढ़ ग्रीवा शुभहै व मांसहीन चिपटी लम्बी व खालीहुई ग्रीवा शुभ देनेवाली नहीं है ॥ ८९ ॥ स्थूलग्रीवावाली स्त्री विधवा कुटिलग्रीवा दासी चिपिटग्रीवा बन्ध्या और ह्रस्वग्रीवा स्त्री पुत्रोंसे हीन होती है ॥ ९० ॥ गोल, कोमल व मोटी दो अंगुलकी दाढ़ी शुभहै व बहुत स्थूल व दो भागसे विलग बँटीहुई रोमयुक्त व चौड़ी चिबुक को त्यागदेवे ॥ ९१ ॥ और चिबुक में संलग्नहुई रोमहीन सघन हनु शुभ होती है व कुटिल मोटी पतली छोटी और रोमवाली हनु शुभप्रदा नहीं है ॥ ९२ ॥ स्त्रीके मोटे, समुन्नत व गोल कपोल प्रशस्तहैं व रोमयुक्त, कठोर गहरे और मांसहीन कपोलोंको सबओरसे बरादेवे ॥ ९३ ॥ इसलोकमें धन्य लोगोंका मुख

मांससमेत, समान, सचिक्कण, सुगन्धसंयुत, सुगोल और माता व पिताके मुख की छायावाला होताहै ॥ ९४ ॥ पाटल फूलके समान रंगसंयुत व मध्यदेश में रेखाओं से भूषित व सुगोल स्त्रियोंका अधर राजाका प्यारा होताहै ॥ ९५ ॥ व पतला, लम्बा, स्फुटित और रूखाहुवा वह दौर्भाग्यका सूचकहै व स्थूल और कपिशवर्ण नीचेका ओठ वैधव्य और कलहके देनेवालाहै ॥ ९६ ॥ बीचमें कुछेक उन्नत, सचिक्कण व रोमरहित स्त्रीका उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओठ) सुभोगों का दाता होताहै और उससे उलटाहुवा विरुद्ध फल करनेवालाहै ॥ ९७ ॥ और नीचे व ऊंचे बराबर, कुछेक ऊंचे, सचिक्कण दूधके समान श्वेतवर्ण बत्तिस दांत शुभ होतेहैं ॥ ९८ ॥ व पीले, कबीले,

सिद्धजायते ॥ ९४ ॥ पाटलोवर्तुलःस्निग्धोलेखाभूषितमध्यभूः ॥ सीमन्तिनीनामधरोधराजानिप्रियोभवेत् ॥ ९५ ॥ कृशःप्रलम्बःस्फुटितोरूक्षोदौर्भाग्यसूचकः ॥ श्यावःस्थूलोऽधरोष्ठःस्याद्वैधव्यकलहप्रदः ॥ ९६ ॥ मसृणोमतकाशिन्याश्चोत्तरोष्ठःसुभोगदः ॥ किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमाविपरीतोविरुद्धकृत् ॥ ९७ ॥ गोक्षीरसन्निभाःस्निग्धाद्वात्रिंशद्दशनाःशुभाः ॥ अधस्तादुपरिष्टाच्चसमाःस्तोकसमुन्नताः ॥ ९८ ॥ पीताःश्यावाश्चदशनाःस्थूलादीर्घाद्विपङ्क्तयः ॥ शुक्त्याकाराश्चविरलादुःखदौर्भाग्यकारणम् ॥ ९९ ॥ अधस्तादधिकैर्दन्तैर्मातरंभक्षयेत्स्फुटम् ॥ पतिहीनाचविकटैःकुलटाविरलैर्भवेत् ॥ १०० ॥ जिह्वेष्टमिष्टभोक्त्रीस्याच्छोणामृद्वीतथासिता ॥ दुःखायमध्यसङ्कीर्णापुरोभागसविस्तरा ॥ १ ॥ सितयातोयमरणंश्यामयाकलहप्रिया ॥ दरिद्रिणीमांसलयालम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी ॥ २ ॥ विशालयारमनयाप्रमदातिप्रमाद

स्थूल, दीर्घ व दो पंक्तिवाले व सुती के आकार विरले दन्त दुःख और दौर्भाग्य का कारणहैं ॥ ९९ ॥ यह स्पष्ट है कि, नीचेकी पंक्तिमें अधिक दांतों से कन्या माताका भक्षण करलेती है व विकट दांतों से विधवा और विरलों से कुलटा होती है ॥ १०० ॥ व कुछेक लाल रंगवाली कोमल जीभ प्यारी मनमानी मिष्ट चीजों की भोगनेहारी होतीहै वैसेही आगे विस्तारयुक्त व बीचमें संकीर्ण और काली या उजली जीभ दुःखके लिये होतीहै ॥ १ ॥ उजली जीभसे जलमें डूबकर मरना होताहै व काली से स्त्री कलहको प्यार करती है व मांसल जीभसे दरिद्रिणी होती है और लम्बी से अभक्ष्य भोजन खानेवाली होतीहै ॥ २ ॥ व चौड़ी जीभसे स्त्री बड़े प्रमादके सेवनेवाली होती

है व सचिक्कण, कोकनदके समान सुरंगवाला और कोमल तालु प्रशस्त होताहै ॥ ३ ॥ उजले तालुसे वैधव्य व पीले से सन्यासिनी व कालेसे पुत्रादि वियोगसे पीड़ित और रूखे से बहुत कुटुम्बवाली होवे है ॥ ४ ॥ व कण्ठ में स्थूल सुगोल व क्रमसे सूक्ष्म व लोहित रंगवाली और लम्बाई से हीन घण्टी शुभहै व स्थूल और काले रंगवाली दुःखदाहै ॥ ५ ॥ जिसमें दांत न देखपड़ें व कुछेक कपोल गोल फूल उठें और आंखें न मूंदें वह सुनयनियों का हँसना प्रशस्तहै ॥ ६ ॥ समान संचार मार्गवाली और छिद्रोंसे युक्त नासिका शुभके प्राप्त करनेहारी होती है व आगे स्थूल बीचमें विनम्र और समुन्नत नासिका प्रशस्त नहीं है ॥ ७ ॥ संकुचित व अग्रभाग में लाले रंगवाली

भाक् ॥ स्निग्धंकोकनदाभासंप्रशस्तंतालुकोमलम् ॥ ३ ॥ सितेतालुनिवैधव्यंपीतेप्रव्रजिताभवेत ॥ कृष्णेऽपत्यवियोगा तांरूक्षेभूरिकुटुम्बिनी ॥ ४ ॥ कण्ठेस्थूलासुवृत्ताचक्रमतीक्ष्णासुलोहिता ॥ अप्रलम्बाशुभाघण्टीस्थूलाकृष्णाचदुःख दा ॥ ५ ॥ अलक्षितद्विजंकिञ्चित्किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ॥ स्मितंप्रशस्तंसुदृशामनिमीलितलोचनम् ॥ ६ ॥ समवृत्त पुटानासालघुच्छिद्राशुभावहा ॥ स्थूलाग्रामध्यनम्राचनप्रशस्तासमुन्नता ॥ ७ ॥ आकुञ्चितारुणाग्राचवैधव्यक्लेशदा यिनी ॥ परप्रेष्याचचिपिटाह्रस्वादीर्घाकलिप्रिया ॥ ८ ॥ दीर्घायुःकृत्क्षुतन्दीर्घंयुगपद्द्वित्रिपिण्डितम् ॥ ललनालोचने शस्तेरक्तान्तेकृष्णतारके ॥ ९ ॥ गोक्षीरवर्णविशदेसुस्निग्धेकृष्णपक्ष्मणी ॥ उन्नताक्षीनदीर्घायुर्वृत्ताक्षीकुलटाभवे त ॥ १० ॥ मेषाक्षीमहिषाक्षीचकेकराक्षीनशोभना ॥ कामगृहीलानितरांगोपिङ्गाक्षीसुदुर्वृता ॥ ११ ॥ पारावताक्षीदुः

नासिका वैधव्यदायिनी है व चिपटी हुई नासिका पराई दासी होती है याने उस स्त्री को दासी करदेतीहै व छोटी और लम्बी नासिका कलिप्रियाहै ॥ ८ ॥ एक साथही दो तीनबार क्षुत (छींकना) दीर्घायुका कर्त्ता है व लाले अन्तवाले और श्याम तारों से संयुत स्त्री के नेत्र शुभ होते हैं ॥ ९ ॥ व गोदुग्धके समान श्वेत और काली पलकों वाली आंखें अच्छी होतीहैं व उन्नत आंखोंवाली स्त्री दीर्घायु नहीं होती है और गोली आंखोंवाली स्त्री पुंश्चली होवेहै ॥ १० ॥ व मेषाक्षी महिषाक्षी और चिपिटाक्षी स्त्री शुभ नहीं है व गऊके समान पिंगाक्षी स्त्री बहुतही कामकी चाहिनी और अच्छे दुर्जनोंसे घिरीहुई होतीहै ॥ ११ ॥ व कपोतके समान आंखोंवाली स्त्री कुशीला होती है व लाली

आंखोंवाली पतिको मारती है व वृक्षोंके छेदों के समान नेत्रोंवाली स्त्री दुष्टा होती है और गजनेत्रा स्त्री शोभना नहीं है ॥ १२ ॥ वाम ओरकी कानी स्त्री पुंश्चली व दक्षिण नेत्रकी कानी वन्ध्या होतीहै और मधु के समान पिंगाक्षी स्त्री धन और धान्यकी समृद्धि को भजती है ॥ १३ ॥ व सघन सचिक्कण श्याम और सूक्ष्म पलकों से स्त्री सुभाग्यकी सेविनी है व कपिलरंग बिरली व स्थूल पलकों से स्त्री निन्दित होती है ॥ १४ ॥ व अच्छी भौंहवाली स्त्रीकी जे भौंहें सुगोल सचिक्कण श्याम व परस्पर न जुड़ीहुई कोमल रोमवाली और धन्वाके आकार बनी हैं वे प्रशस्त हैं ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरोमा विस्तारयुक्त बिथुड़ीहुई सरला दीर्घरोमा पीली और मिलीहुई स्त्रीकी भौंह शुभ नहीं

शीलारक्ताक्षीभर्तृघातिनी ॥ कोटरानयनादुष्टागजनेत्रानशोभना ॥ १२ ॥ पुंश्चलीवामकाणाक्षीवन्ध्यादक्षिणकाणि
का ॥ मधुपिङ्गाक्षीरमणीधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ १३ ॥ पक्ष्मभिःसुघनैःस्निग्धैःकृष्णैःसूक्ष्मैःसुभाग्यभाक् ॥ कपिलैर्वि
रलैःस्थूलैर्निन्द्याभवतिभामिनी ॥ १४ ॥ भ्रुवौसुवर्तुलेतन्व्याःस्निग्धेकृष्णेअसंहते ॥ प्रशस्तेमृदुरोमाणौसुभ्रुवःकार्मुका
कृती ॥ १५ ॥ खररोमाचपृथुलाविकीर्णासरलास्त्रियाः ॥ नभ्रूःप्रशस्तामिलितादीर्घरोमाचपिङ्गला ॥ १६ ॥ लम्बौकर्णौ
शुभावर्तौसुखदौचशुभप्रदौ ॥ शष्कुलीरहितौनिन्द्यौशिरालौकुटिलौकृशौ ॥ १७ ॥ भालःशिराविरहितोनिर्लोमार्धे
न्दुसन्निभः ॥ अनिम्नस्त्र्यंगुलोनार्याःसौभाग्यारोग्यकारणम् ॥ १८ ॥ व्यक्तस्वस्तिकरेखश्चललाटंराज्यसम्पदे ॥ प्रल
म्बमस्तकंयस्यादेवरंहन्तिसाध्रुवम् ॥ १९ ॥ रोमशेनशिरालेनप्रांशुनारोगिणीमता ॥ २० ॥ सीमन्तःसरलःशस्तोमौ
लिःशस्तःसमुन्नतः ॥ गजकुम्भनिभोवृत्तःसौभाग्यैश्वर्यसूचकः ॥ २१ ॥ स्थूलमूर्धाचविधवादीर्घशीर्षाचबन्धकी ॥ वि

है ॥ १६ ॥ शुभ आवर्त (घेर) वाले लम्बे कान सुखद व शुभदायकहैं व शष्कुलीरहित, नससहित, कुटिल और कृश हुये कान निंदनीयहैं ॥ १७ ॥ नसोंसे हीन, रोमरहित, चन्द्रखण्डके समान समुन्नत तीन अंगुलका भाल स्त्री की सौभाग्य और आरोग्यका कारण होताहै ॥ १८ ॥ व स्पष्टस्वस्तिकरेखावाला माथ राज्यसम्पत्ति के लिये है और जिसका माथ लम्बाहै वह स्त्री निश्चय से देवरको मारती है ॥ १९ ॥ व रोमयुक्त, नससमेत और ऊंचे माथसे स्त्री रोगिणी मानीगई है ॥ २० ॥ स्त्रीका सरल सीमंत (मांग) शस्त होताहै व समुन्नत मस्तक शस्त होताहै और जोकि मस्तक हाथी के कुम्भ की नाईं सुगोलहै वह सौभाग्य और ऐश्वर्य का सूचक होताहै ॥ २१ ॥

स्थूलमस्तकवाली स्त्री विधवा व दीर्घमस्तकवाली स्त्री पुंश्चली होती है और चौड़े मस्तक से दौर्भाग्य का भाजन होती है ॥ २२ ॥ भौंर भीर के समान श्याम, सचिक्कण, सूक्ष्म, सुकोमल, कुटिल और कुछेक आकुंचित अग्रवाले बाल बहुत शुभहैं ॥ २३ ॥ व कठोर आगे फाटेहुये बिरले पीले छोटे व रूखे बाल दुःख दारिद्र्य और बन्धन के दाता हैं ॥ २४ ॥ स्त्री की भौंहों के बीच में व माथ में मशा राज्य का सूचक होताहै व कपोलमें कुछेक लालरंगवाला मशा मिष्टान्नदाताहै ॥ २५ ॥ हृदय में तिलक व लक्षण सौभाग्य का कारण है व जिसके दहिने कुच में तिलक व लक्षण होताहै ॥ २६ ॥ वह स्त्री चार कन्याओं को उपजाती है और तीन पुत्रों

स्थूलेनापिशिरसाभवेद्दौर्भाग्यभाजनम् ॥ २२ ॥ केशाअलिकुलच्छायाःसूक्ष्माःस्निग्धाःसुकोमलाः ॥ किञ्चिदाकुञ्चिताग्राश्चकुटिलाश्चातिशोभनाः ॥ २३ ॥ परुषाःस्फुटिताग्राश्चविरलाश्चशिरोरुहाः ॥ पिङ्गलालघवोरूक्षादुःखदारिद्र्यबन्धदाः ॥ २४ ॥ भ्रुवोरन्तर्ललाटेवामशकोराज्यसूचकः ॥ वामेकपोलेमशकःशोणोमिष्टान्नदःस्त्रियाः ॥ २५ ॥ तिलकंलाञ्छनंवापिहृदिसौभाग्यकारणम् ॥ यस्यादक्षिणवक्षोजेशोणेतिलकलाञ्छने॥ २६ ॥ कन्याचतुष्टयंसूतेसूतेसाचसुतत्रयम् ॥ तिलकंलाञ्छनंशोणंयस्यावामेकुचेभवेत् ॥ २७॥ एकंपुत्रंप्रसूयादौततःसाविधवाभवेत् ॥ गुह्यस्यदक्षिणेभागेतिलकंयदियोषितः ॥ २८ ॥ तदाक्षितिपतेःपत्नीसूतेवाक्षितिपंसुतम् ॥ नासाग्रेमशकःशोणोमहिष्याएवजायते ॥ २९ ॥ कृष्णःसएवभर्तृघ्नयाःपुंश्चल्याश्चप्रकीर्तितः॥नाभेरधस्तात्तिलकंमशकोलाञ्छनंशुभम्॥ ३० ॥ मशकस्तिलकंचिह्नंगुल्फदेशेदरिद्रकृत ॥ करेकर्णेकपोलेवाकण्ठेवामेभवेद्यदि॥ ३१ ॥ एषांत्रयाणामेकंतुप्राग्गर्भेपुत्रदम्भवेत् ॥ भालगेनत्रिशूलेन

को उत्पन्न करती है तथा जिसके वाम कुचमें तिलक व लाञ्छन होवे ॥ २७ ॥ वह पहलेही एक पुत्रको उत्पन्नकर तदनन्तर विधवा होजावे व जो स्त्री की योनि के दक्षिण भाग में तिलकहो ॥ २८ ॥ तो राजा की स्त्री होती है अथवा भूपति पुत्रको उत्पन्न करती है और पटरानी कीही नासाके आगे कुछेक लाल मशा होता है ॥ २९ ॥ व वही काला हुवा मशा पुंश्चली और पति के मारनेहारी नारी के भी कहागया है नाभी से नीचे अङ्गमें तिलक व लक्षण शुभ है ॥ ३० ॥ व गुल्फदेशमें हुआ मशा तिलक और लाञ्छन दरिद्रकारी है व हाथ कपोल और कण्ठ में जो होवे ॥ ३१ ॥ इन तीनों में से एक तो पहले गर्भ में पुत्रको देनेवाला होवे और ब्रह्मा के बनाये

हुये माथगत त्रिशूल से ॥ ३२ ॥ स्त्री हजारों स्त्रियों के स्वामित्वको पावे जो कि सोतीहुई स्त्री परस्पर दांत कटकटाती है ॥ ३३ ॥ वैसेही जो कुछ बक उठती है वह सुलक्षणा भी स्त्री शुभ नहीं है व हाथ में रोमों का दक्षिणावर्त धर्म के योग्यहै और वामावर्त शुभ नहीं है ॥ ३४ ॥ व नाभी कान और उरमें दक्षिणावर्त प्रशंसितहै व पीठ के बीचमें वंशाकार हाड़ के दक्षिणदेश में दक्षिणावर्त सुखके लिये होताहै ॥ ३५ ॥ व पीठ के बीचमें नाभी के समान गोलाकार दक्षिणावर्त्त बहुती आयु और पुत्रों के बढ़ानेवालाहै व रानी की योनि के शिर पर दक्षिणावर्त्त देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ जो वह शकट के समान हो तो बहुत पुत्रादि सुखदायकहै और गुह्यपर्य्यन्त से

निर्मितेन स्वयम्भुवा ॥ ३२ ॥ नितम्बिनीसहस्राणांस्वामित्वंयोषिदाप्नुयात् ॥ सुप्तापरस्परंयातुदन्तान्किटिकिटायते ॥ ३३ ॥ सुलक्ष्मापिनसाशस्तायाकिञ्चित्प्रलपेत्तथा ॥ पाणौप्रदक्षिणावर्त्तोधर्म्योवामोनशोभनः ॥ ३४ ॥ नाभौश्रुतावुरसिवादक्षिणावर्तईडितः ॥ सुखायदक्षिणावर्तःपृष्ठवंशस्यदक्षिणे ॥ ३५ ॥ अन्तःपृष्ठंनाभिसमोबह्वायुःपुत्रवर्धनः ॥ राजपत्न्याःप्रदृश्येतभगमौलौप्रदक्षिणः ॥ ३६ ॥ सचेच्छकटभङ्गःस्याद्बह्वपत्यसुखप्रदः ॥ कटिगोगुह्यवेधेनपत्यपत्यनिपातनः ॥ ३७ ॥ स्यातामुदरवेधेनपृष्ठावर्तौनशोभनौ ॥ एकेनहन्तिभर्तारंभवेदन्येनपुंश्चली ॥ ३८ ॥ कण्ठगोदक्षिणावर्तोदुःखवैधव्यहेतुकः ॥ सीमन्तेयत्ललाटेवात्याज्योदूरात्प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ सापतिंहन्तिवर्षेणयस्यामध्येकृकाटिकम् ॥ प्रदक्षिणोवावामोवारोम्णामावर्त्तकःस्त्रियाः ॥ ४० ॥ एकोवामूर्धनिद्वौवावामेवामगतौयदि ॥ आदशाहम्पतिघ्नौतौत्याज्यौदूरात्सुबुद्धिना ॥ ४१ ॥ कट्यावर्ताचकुलटानाभ्यावर्तापतिव्रता ॥ पृष्ठावर्त्ताचभर्तृघ्नीकुलटावाथजायते ॥ ४२ ॥

कटिमें प्राप्त दक्षिणावर्त्त पति व पुत्रका नाशकहै ॥ ३७ ॥ उदरपर्य्यन्त प्राप्त वेधसे पृष्ठावर्त्त शुभ नहीं है क्योंकि एक से स्त्री अपने पतिको मारडाले व अन्य दूसरे से पुंश्चली होवे ॥ ३८ ॥ व कण्ठगत दक्षिणावर्त्त दुःख और वैधव्य का कारण है व सीमन्त (मांग) अथवा ललाटमें वह प्रयत्नसे दूर त्यागने योग्यहै ॥ ३९ ॥ और जिस स्त्री की बीच घांटी में प्रदक्षिण व रोमोंका वामावर्त्त है वह एक वर्ष में पतिको मारडालती है ॥ ४० ॥ व जो मस्तक के वामभाग में एक व दो वामावर्त्त हों तो वे दश दिनतकमें पतिके मारनेवाले हैं इससे सुबुद्धिमान् करके दूर त्यागने योग्यहैं ॥ ४१ ॥ कटिमें रोमावर्त्तवाली स्त्री कुलटा व नाभि में आवर्त्तवाली पतिव्रता व पीठमें

स्कन्दउवाच ॥ सुलक्षणापिदुःशीलाकुलक्षणाशिरोमणिः ॥ अलक्षणापिसासाध्वीसर्वलक्षणभूस्तुसा ॥ ४३ ॥ सुलक्षणासुचारित्रास्वाधीनापतिदेवता ॥ विश्वेशानुग्रहादेवगृहेयोषिदवाप्यते ॥ ४४ ॥ अलंकृताःस्ववासिन्योयाभिःप्राक्तनजन्मनि ॥ नानाविधैरलङ्कारैस्ताःसुरूपाभवन्तिहि ॥ ४५ ॥ सुतीर्थेषुवपुर्याभिःक्षयितंवाविहायितम् ॥ तालावण्यतरङ्गिण्योभवन्तीहसुलक्षणाः ॥ ४६ ॥ अर्चिताजगताम्मातायाभिर्मृडवधूरिव ॥ ताभवन्तिसुचारित्रायोषाःस्वाधीनभर्तृकाः ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिकानाञ्चसुशीलानांमृगीदृशाम् ॥ स्वर्गापवर्गावत्रैवसुलक्षणफलंहितत् ॥ ४८ ॥ सुलक्षणैःसुचरितैरपिमन्दायुषम्पतिम् ॥ दीर्घायुषम्प्रकुर्वन्तिप्रमदाःप्रमदास्पदम् ॥ ४९ ॥ अतःसुलक्षणायोषापरिणेयाविचक्षणैः ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौहित्वादुर्लक्षणान्यपि ॥ ५० ॥ लक्षणानिमयोक्तानिसुखायगृहमेधिनाम् ॥ विवाहानपिवक्ष्यामितन्निबोधघटोद्भव ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

आवर्तवाली पतिविनाशिनी अथवा पुंश्चली होती है ॥ ४२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि सुलक्षणा भी जो दुष्टशीलवाली स्त्री है वह कुलक्षणवालियों में शिरोमणि है व लक्षणों से हीन हुई भी जो पतिव्रताहै वह सकल सुलक्षणों की भूमि है ॥ ४३ ॥ व घर में विश्वनाथके अनुग्रह सेही सुलक्षणा, सुशीला, स्वाधीना व पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ४४ ॥ जिन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक भांति से सुवासिनियों को अलङ्कार कियाहै वेही स्वरूपवाली स्त्री होती हैं ॥ ४५ ॥ व जिन्होंने अच्छे तीर्थ में देहको क्षीण किया व तजदिया वेही स्त्रियां इस लोक में सुलक्षणा व सुन्दरताकी नदियां होती हैं ॥ ४६ ॥ व जिन्होंने जगदम्बा श्रीपार्वतीजी की भी पूजा कियाहै वे सुधर्म्मवाली स्त्रियां स्वाधीनपतिका होती हैं ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिका व सुशीला व सुनेत्रवाली सुनयनी स्त्रियों का स्वर्ग और मोक्ष यहांही है वह सुलक्षण का ही फल है ॥ ४८ ॥ जिससे अच्छे लक्षण और अच्छे चरितों से संयुत स्त्रियां थोड़ी आयुवाले पति को भी दीर्घायु व आनन्द का आश्रय करदेती हैं ॥ ४९ ॥ इससे पहलेही सुलक्षणों को परखकर व कुलक्षणोंको भी त्यागकर पण्डितोंको सुलक्षणा स्त्री ब्याहना चाहिये ॥ ५० ॥ हे अगस्त्यजी ! मैंने गृहस्थों के सुखके लिये लक्षणों को कहा अब विवाहों को भी कहूंगा उसको तुम सुनो ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते स्त्रीलक्षणकथनं नाम सप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा। अड़तीसयें अध्याय में आठ भांति के ब्याह। ब्रह्मयज्ञ इत्यादि इत सदाचार चितचाह॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच ये आठप्रकार के ब्याह कहेजाते हैं॥ १॥ जिसमें वरको बुलाकर भूषणभूषित कन्या दीजाती है वह ब्राह्म नामक ब्याह है उसका पुत्र इक्कीस पुरुषों को पवित्र करता है॥ २॥ व यज्ञ में टिके ऋत्विज् के लिये कन्यादान को दैव ब्याह कहते हैं उससे उत्पन्न हुआ पुत्र चौदह पुरुषों को तारताहै और वर से दो गौवें लेकर कन्या देने से आर्ष ब्याह होताहै उससे उपजा हुआ लड़का छः पुरुषों को उबारताहै॥ ३॥ तुम दोनों साथही धर्म कर्म करो यह कहकर जिस ब्याह में

स्कन्द उवाच॥ विवाहाब्राह्मदैवार्षाःप्राजापत्यासुरौतथा॥ गान्धर्वोराक्षसश्चापिपैशाचोऽष्टमउच्यते॥ १॥ सब्राह्मोव रमाहूययत्रकन्यास्वलंकृता॥ दीयतेतत्सुतःपूयात्पुरुषानेकविंशतिम्॥ २॥ यज्ञस्थायर्त्विजेदैवस्तज्जःपातिचतुर्दश॥ वरादादायगोद्वन्द्वमार्षस्तज्जःपुनातिषट्॥ ३॥ सहोभौचरतान्धर्ममित्युक्त्वादीयतेर्थिने॥ यत्रकन्याप्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनातिषट्॥ ४॥ चत्वारएतेविप्राणांधर्म्याःपाणिग्रहाःस्मृताः॥ आसुरःक्रयणाद्द्रव्यैर्गान्धर्वोन्योन्यमैत्रतः॥ ५॥ प्रसह्यकन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितःसताम्॥ छलेनकन्याहरणात्पैशाचोगर्हितोऽष्टमः॥ ६॥ प्रायःक्षत्रविशोरुक्ताग न्धर्वासुरराक्षसाः॥ अष्टमस्त्वेषपापिष्ठःपापिष्ठानाञ्चसम्भवेत्॥ ७॥ सवर्णयाकरोग्राह्योधार्यःक्षत्रिययाशरः॥ प्रतोदो वैश्ययाधार्योवासोन्तःपज्जयातथा॥ ८॥ असवर्णस्त्वेषविधिःस्मृतोदृष्टश्चवेदने॥ सवर्णाभिस्तुसर्वाभिःपाणिर्ग्राह्यस्त्व

भयों को कन्या दीजाती है वह प्राजापत्यहै उससे उपजा हुआ पुत्र छह वंशोंको पवित्र करता है॥ ४॥ ये चार प्रकार के ब्याह ब्राह्मणों के धर्म्म कहेगये हैं और द्रव्य से मोल लेने से आसुरहै व परस्पर वर और कन्याकी प्रीति से गान्धर्व ब्याह होता है॥ ५॥ व हठसे कन्याके हरने से जो राक्षस ब्याह वह सज्जनों के लिये निन्दित है और छलसे कन्या हरने से आठवां पैशाच नामक ब्याह बहुतही निन्दितहै॥ ६॥ व गान्धर्व आसुर तथा राक्षस ये ब्याह बहुधा क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों केही कहे गये हैं और यह आठवां बड़ा पापी पैशाच नामक ब्याह पापी लोगों काही होताहै॥ ७॥ समान वर्णवाली कन्या को वर का हाथ पकड़ना चाहिये क्षत्रियाको बाण व वैश्याको कोड़ा तथा शूद्री को वस्त्रका मध्य धारना चाहिये है॥ ८॥ यह असवर्ण ब्याह की विधि शास्त्रमें देखी हुई कहीगई है और समानवर्णवाली सब कन्याओं

को वरका हाथ पकड़ना चाहिये यही विधि जानना चाहिये ॥ ९ ॥ धर्म्य ब्याहों से सौ वर्ष जीनेवाले धर्मज्ञ पुत्र उपजते हैं और अधर्म्य ब्याहों से अधर्मी, अभागी, अधन और अल्पायुवाले होते हैं ॥ १० ॥ ऋतुकालमें स्त्री के समीप जाना यह गृहस्थोंका उत्तम धर्म है अथवा स्त्रियोंके वरको सुमिरकर यथाभिलाषी होवे ॥ ११ ॥ दिनमें स्त्रियों के साथ समागम करना बड़ा आयु का नाशक मानागया है व श्राद्ध दिन व सब पर्वों याने अमावस पूर्णमासी चतुर्दशी अष्टमी और संक्रांति को बुद्धिमान् करके वराना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि उनमें मोहसे स्त्री के समीप जाता हुआ पुरुष श्रेष्ठ धर्म से पतित होजाता है ॥ १३ ॥ जो कि ऋतुकाल याने मासिकधर्म से शुद्ध स्त्री

यंविधिः ॥ ९ ॥ धर्म्यैर्विवाहैर्जायन्तेधर्म्याएवशतायुषः ॥ अधर्म्यैर्धर्मरहितामन्दभाग्यधनायुषः ॥ १० ॥ ऋतुकालाभिग मनंधर्मोयंगृहिणःपरः ॥ स्त्रीणांवरमनुस्मृत्ययथाकाम्यथवाभवेत् ॥ ११ ॥ दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यंपरंमतम् ॥ श्रा द्धाहःसर्वपर्वाणियत्नात्याज्यानिधीमता ॥ १२ ॥ तत्रगच्छन्स्त्रियंमोहाद्धर्मात्प्रच्यवतेपरात् ॥ १३ ॥ ऋतुकालाभिगा मीयःस्वदारनिरतश्चयः ॥ ससदाब्रह्मचारीचविज्ञेयःसगृहाश्रमी ॥ १४ ॥ ऋतुःषोडशयामिन्यश्चतस्रस्तासुगर्हिताः ॥ पुत्रास्तास्वपियायुग्मास्वयुग्माःकन्यकाप्रजाः ॥ १५ ॥ त्यक्त्वाचन्द्रमसंदुःस्थंमघांपौष्णांविहायच ॥ शुचिःसन्निर्विशेत्पत्नीं पुन्नामर्क्षेविशेषतः ॥ शुचिंपुत्रंप्रसूयेतपुरुषार्थप्रसाधकम् ॥ १६ ॥ आर्षेविवाहेगोद्वन्द्वंयदुक्तंतन्नशस्यते ॥ शुल्कमण्वपि कन्यायाःकन्याविक्रयपापकृत् ॥ १७ ॥ अपत्यविक्रयीकल्पंवसेद्विट्कृमिभोजने ॥ अतोनाण्वपिकन्यायाउपजीवेत्पि

के समीप जानेवाला व अपनी स्त्री का नियमी होवे उस गृहस्थको सदा ब्रह्मचारी जानना चाहिये ॥ १४ ॥ सोलह रात्रियां ऋतु कहाती हैं उनमें से पहले की चार निन्दित कही हैं शेष बारह रात्रियोंमें से जो समहैं उनमें पुत्र उपजते हैं और विषम याने पँचईं सतईं नवईं ग्यारहवीं तेरहवीं और पन्द्रहवीं ये कन्या प्रजावाली होती हैं ॥ १५ ॥ इससे पवित्र हुआ पुरुष चौथी छठईं आठईं आदि रात्रियों में राहु ग्रस्त दुष्ट चन्द्रमाको छोड़कर व मघा और रेवती नक्षत्र को बराबर विशेषसे श्रवण हस्त पुनर्वसु मूल पुष्य और मृगशिरा इन पुरुष संज्ञक नक्षत्रोंमें स्त्रीको भोगकरे या पासजावे तो स्त्री पुरुषार्थ साधनेवाले पवित्र पुत्रको उत्पन्न करे ॥ १६ ॥ और आर्ष ब्याह में जो दो गौवों का लेना कहागयाहै वह प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि कन्याका थोड़ा भी मोललेना कन्या बेंचने के पापको करताहै ॥ १७ ॥ जिससे लड़की बेंचनेवाला

मनुष्य विट्कृमिभोजन नरक में कल्प भर याने हजार चौयुगी तक बसताहै इस से पिता कन्या के थोड़े भी धनसे जीविका को न करे ॥ १८ ॥ इस लोकमें जे बा लोग मोहसे कन्या के धनसे जीवते हैं वे केवल आपही नहीं नरकगामी होते हैं बरन उनके पुरिखा भी नरक को जाते हैं ॥ १९ ॥ जहां स्त्री पति से सन्तुष्ट होती और जहां स्त्री से पति तुष्ट होताहै वहां विष्णुसमेत महालक्ष्मीजी बसती हैं ॥ २० ॥ वाणिज्य व राजाकी सेवा तथा वेदों का न पढ़ाना कुत्सित ब्याह और क्रियाओं लुप्त करना ये सब कुलमें पतितहोने के कारणहैं ॥ २१ ॥ अब वैवाहिक अग्निसे यज्ञादि कर्म्मोंको कहते हैं कि गृहस्थ विवाहवाली आगमें रोज रोज घरके उचितव

ताधनम् ॥ १८ ॥ स्त्रीधनान्युपजीवन्तियेमोहादिहबान्धवाः ॥ नकेवलंनिरयगास्तेषामपिहिपूर्वजाः ॥ १९ ॥ पत्यातुष्यति यत्रस्त्रीतुष्येद्यत्रस्त्रियापतिः ॥ तत्रतुष्टामहालक्ष्मीर्निवसेद्दानवाऽरिणा ॥ २० ॥ वाणिज्यंनृपतेःसेवावेदानध्यापनंतथा ॥ कुविवाहःक्रियालोपःकुलेपतनहेतवः ॥ २१ कुर्याद्वैवाहिकेवह्नौगृह्यंकर्मान्वहंगृही ॥ प [यज्ञक्रियांचापिपक्तिंदैनन्दिनी मपि ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रमिणःपञ्चसूनाकर्मदिनेदिने ॥ कण्डनीपेषणीचुल्लीह्युदकुम्भस्तुमार्जनी ॥ २३ ॥ तासांचपञ्चस नानांनिराकरणहेतवः ॥ क्रतवःपञ्चनिर्दिष्टागृहिश्रेयोभिवर्धनाः ॥ २४ ॥ पाठंब्रह्मयज्ञःस्यात्तर्पणञ्चपितृक्रतुः ॥ मोदैवोबलिर्भौतोऽतिथ्यर्चानृक्रतुःक्रमात् ॥ २५ ॥ पितृप्रीतिम्प्रकुर्वाणःकुर्वीतश्राद्धमन्वहम् ॥ अन्नोदकपयोमूलैःफ वाँपिगृहाश्रमी ॥ २६ ॥ गोदानेनचयत्पुण्यंपात्रायविधिपूर्वकम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षान्दत्त्वातत्फलमाप्नुयात् ॥ २७ तपोविद्यासमिद्धोग्नेहुतंविप्रास्यपावके ॥ तारयेद्विप्रसङ्घेभ्यःपापाब्धेरपिदुस्तरात् ॥ २८ ॥ अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद्

व दिनोदिनका अन्न पकाना और पंचयज्ञ क्रियाको भी करे ॥ २२ ॥ जिससे कांड़ी जांत चूल्ह व पानी का पात्र और बढ़नी ये पांचों दिनोदिन गृहस्थोंके हिंसा होते हैं ॥ २३ ॥ इससे उन पांचों हिंसास्थानों के पापों के दूर करने के कारण व गृहस्थोंके कल्याण बढ़ानेवाले पांच यज्ञ कहेगयेहैं ॥ २४ ॥ उनको क्रमसे कहते वेदपाठ ब्रह्मयज्ञ व तर्पण पितृयज्ञ व होम देवयज्ञ व बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथिपूजा मनुष्ययज्ञ ये पांचों क्रमसे होते हैं ॥ २५ ॥ व पितरों की प्र करताहुआ गृहस्थ अन्न जल दूध जड़ और फलों से भी रोजरोज श्राद्धको करे ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक सुपात्रके लिये गौ देनेसे जो पुण्य होतीहै उस फलको सत्क

करकेभिक्षुके लिये भिक्षा देकर पुरुष प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ व तपस्या और विद्यारूप ईंधनसे प्रज्वलित ब्राह्मण मुख अग्निमें जो कुछ होमागया वह विघ्नसमूह और दुस्तर पापसमुद्र से तारताहै ॥ २८ ॥ व बिना पूजा हुवा निराश अतिथि जिसके घरसे जाताहै वह जन्मभरकी कमाई पुण्यसे क्षणमें बाहर होताहै ॥ २९ ॥ इससे प्यारे वचन व शय्याके अर्थ भूमि और तृणादि बिछौना व अन्न और जल ये सब भी अतिथिकी प्रसन्नताके लिये देने योग्य हैं ॥ ३० ॥ और पराये पाकका खानेवाला गृहस्थ उसके पशुभावको प्राप्तहोताहै जिससे परान्नसे पुष्ट पुरुषकी पुण्यको अन्नदाता लेलेताहै ॥ ३१ ॥ सायंकालमें अस्तमित सूर्य्यके साथमें आयाहुआ अतिथि यत्नसे सत्कार करनेयोग्यहै क्योंकि आदरसे हीन होकर अन्यत्र जाताहुआ वह बहुत पापको देताहै ॥ ३२ ॥ इस लोकमें अतिथि भोजनसे शेष अन्नको खाताहुआ

शोयस्यगच्छति ॥ आजन्मसञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्सहिबहिर्भवेत् ॥ २९ ॥ सान्त्वपूर्वाणिवाक्यानिशय्यार्थेभूस्तृणोदके ॥ एतान्यपिप्रदेयानिसदाभ्यागततुष्टये ॥ ३० ॥ गृहस्थःपरपाकादीप्रेत्यतत्पशुतांव्रजेत् ॥ श्रेयःपरान्नपुष्टस्यगृह्णात्यन्नदोयतः ॥ ३१ ॥ आदित्योढोऽतिथिःसायंसत्कर्तव्यःप्रयत्नतः ॥ असत्कृतोन्यतोगच्छन्दुष्कृतंभूरियच्छति ॥ ३२ ॥ भुञ्जानोऽतिथिशेषान्नमिहायुर्धनभाग्भवेत् ॥ प्रणोद्यातिथिमन्नाशीकिल्बिषीचगृहाश्रमी ॥ ३३ ॥ वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तःसूर्योढोवातिथिःस्मृतः ॥ नपूर्वकालआयातोनचदृष्टचरःक्वचित् ॥ ३४ ॥ बलिपात्रकरेविप्रेयद्यन्योतिथिरागतः ॥ अदत्त्वातम्बलिन्तस्मैयथाशक्त्यान्नमर्पयेत् ॥ ३५ ॥ कुमाराश्चस्ववासिन्योगर्भिण्योऽतिरुजान्विताः ॥ अतिथेरादितोप्येतेभोज्यानात्रविचारणा ॥ ३६ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्योदत्त्वाश्नात्यमृतंगृही ॥ स्वार्थम्पचन्नघम्भुङ्क्तेकेवलंस्वोदरम्भरिः ॥

अधिक आयुवाला और धनवान् होताहै व अतिथिको दूरकर अन्नभोजी मनुष्य महापापी कहाताहै ॥ ३३ ॥ जोकि वैश्वदेव के अन्तमें व अस्तमित सूर्य्यके साथ आया हो वह अतिथि कहागयाहै और उससे पहले आया नहीं व कहीं जाता देखा गया अतिथि नहीं है ॥ ३४ ॥ और जब भूतों के लिये बलिदेने को हाथमें अन्नका पात्र लेकर ब्राह्मण विद्यमान हो तब जो अन्य अतिथि आवे तो उस भूतबलिको न देकर उसके लिये यथाशक्ति कुछ अन्नको देवे ॥ ३५ ॥ लड़का लड़की बूढ़ी सुवासिनी गर्भवती स्त्रियां और रोग समेत लोग इनको अतिथि से पहले भी खिलाना चाहिये इसमें विचार नहीं है ॥ ३६ ॥ क्योंकि देव पितर और मनुष्यों के लिये देकर गृहस्थ

अमृत खाताहै और केवल अपने अर्थ पकानेवाला व अपना उदर भरताहुआ मनुष्य पाप खाताहै ॥ ३७ ॥ इससे दुपहर में वैश्वदेवविधानको गृहस्थ आपही करे ३ सायंकालमें स्त्रीही सिद्ध अन्नों से मंत्रहीन बलिको देदेवे ॥ ३८ ॥ यह सायंकालका वैश्वदेव गृहस्थाश्रममें प्रसिद्ध है इस भांति प्रयत्नसे मध्याह्न और सायंकालमें वैश्व विधान होताहै ॥ ३९ ॥ व जे बलिवैश्वदेवसे हीनहैं और अतिथिपूजासे विमुखहैं ये सब वेदपाठी ब्राह्मण भी शूद्रही जानने योग्यहैं ॥ ४० ॥ और जे ब्राह्मणाधम श्वदेवको न कर याने उसके किये विना खाते हैं वे इस लोकमें अन्नहीन होते हैं और उसके बाद काकयोनिको जाते हैं ॥ ४१ ॥ इससे आलस्यरहित होकर नित्य अ

रिः ॥ ३७ ॥ माध्याह्निकंवैश्वदेवंगृहस्थःस्वयमाचरेत् ॥ पत्नीसायम्बलिन्दद्यात्सिद्धान्नैर्मन्त्रवर्जितम् ॥ ३८ ॥ एतत्सा यन्तनंनामवैश्वदेवंगृहाश्रमे ॥ सायम्प्रातर्भवेदेवंवैश्वदेवंप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ वैश्वदेवेनयेहीनाआतिथ्येनविवर्जिताः ॥ सर्वे तेवृषलाज्ञेयाःप्राप्तवेदाअपिद्विजाः ॥ ४० ॥ अकृत्वावैश्वदेवन्तुभुञ्जतेयेद्विजाधमाः ॥ इहलोकेन्नहीनाःस्युःकाकयोनिं व्रजन्त्यथ ॥ ४१ ॥ वेदोदितंस्वककर्मनित्यंकुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिप्राप्नुयात्सद्गतिम्पराम् ॥ ४२ ॥ ष ष्टम्योर्वसेत्पापंतैलेमांसेसदैवहि ॥ पञ्चदश्याञ्चतुर्दश्यान्तथैवचभगेक्षुरे ॥ ४३ ॥ उदयन्तंनचेक्षेतनास्तंयन्तंनम गम् ॥ नराहुणोपसृष्टञ्चनाम्बुसंस्थन्दिवाकरम् ॥ ४४ ॥ नवीक्षेतात्मनोरूपमाशुधावेन्नवर्षति ॥ नोल्लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं नग्नोजलमाविशेत ॥ ४५ ॥ देवतायतनंविप्रंधेनुंमधुमृदंघृतम् ॥ जातिवृद्धंवयोवृद्धंविद्यावृद्धंतपस्विनम् ॥

वेदोक्त कर्मको करे क्योंकि यथाशक्ति उसकोही करता हुआ परम उत्तम गति को जाताहै ॥ ४२ ॥ व छठि और अष्टमी तथा अमावस और चतुर्दशीको क्रमसे के छुरा और स्त्री की योनिमेंही सदैव पाप बसताहै इससे उनको बरावे ॥ ४३ ॥ उगते को नहीं अस्त प्राप्त होते को नहीं व दुपहर में मध्य आकाशमें वर्त्तमान को • राहुसे ग्रसे को नहीं और जलके भीतर प्रतिबिम्बरूपसे टिकेहुये सूर्य्यको न देखे ॥ ४४ ॥ व अपनी परछाहींके ओर न निहारे व मेघके बरसतेही शीघ्र न दौड़े व बछे बन्धन की रस्सी को न लांघे और नग्न होकर जलमें न पैठे ॥ ४५ ॥ देवमन्दिर ब्राह्मण गऊ शहद गोपीचन्दन घी व जाति से बड़ा व अवस्थासे बूढ़ा विद्यासे वृ

व तपस्वी ॥ ४६ ॥ व पीपलवृक्ष व पूज्यवृक्ष गुरु व पानी से भरा घड़ा सिद्ध अन्न दही और सर्षप इन सबको चलताहुआ अपने दहिनेओर में करदेवे ॥ ४७ ॥ व रजस्व०खं
स्त्री को न सेवे व स्त्री के साथ न खावे व एक वस्त्र पहनेहुये न खावे व उत्कट आसन में बैठकर न खावे ॥ ४८ ॥ व भोजन करती हुई स्त्री को न देखे और तेजका च० ३
द्विजोत्तम देवता व पितरोंको तृप्त किये विना नवीन अन्नको कभी न भोजनकरे ॥ ४९ ॥ व दीर्घ काल तक जीवनेकी इच्छावाला मनुष्य देवोंको अरपे विना पक्व
न खावे व मांसको न खावे व गोशालामें बेंबौरमें नहीं और भस्ममें मूत्रको न करे ॥ ५० ॥ व जन्तुयुक्त गड्ढेमें नहीं खड़ा नहीं व चलताहुआ भी न मूते व ग

अश्वत्थञ्चैत्यवृक्षञ्चगुरुंजलभृतंघटम् ॥ सिद्धान्नन्दधिसिद्धार्थंगच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥ रजस्वलांनसं
श्नीयात्सहभार्यया ॥ एकवासानभुञ्जीतनभुञ्जीतोत्कटासने ॥ ४८ ॥ नाश्नन्तींस्त्रींसमीक्षेततेजस्कामोद्विजोत्तमः
असन्तर्प्यपितॄन्देवान्नाद्यादन्नन्नवंक्वचित् ॥ ४९ ॥ पक्वान्नञ्चापिनोमांसंदीर्घकालञ्जिजीविषुः ॥ नमूत्रङ्गोव्रजेकुर्य
वल्मीकेनभस्मनि ॥ ५० ॥ नगर्तेषुससत्त्वेषुनतिष्ठन्नव्रजन्नपि ॥ गोविप्रसूर्यवाय्वग्निचन्द्रर्क्षाम्बुगुरूनपि ॥ ५१ ॥ आ
पश्यन्नकुर्वीतमलमूत्रविसर्जनम् ॥ तिरस्कृत्यावनिंलोष्टकाष्ठपर्णतृणादिभिः ॥ ५२ ॥ प्रावृत्यवाससामौलिंमौनीवि
ण्मूत्रमुत्सृजेत ॥ यथासुखमुखोरात्रौदिनेछायान्धकारयोः ॥ ५३ ॥ भीतिषुप्राणबाधायांकुर्यान्मलविसर्जनम् ॥ मुखे
नोपधमेन्नाग्निंनग्नांनेक्षेतयोषितम् ॥ ५४ ॥ नांघ्रीप्रतापयेदग्नौनवस्त्वशुचिनिक्षिपेत् ॥ प्राणिहिंसांनकुर्वीतनाश्नी

सूर्य वायु अग्नि चन्द्रमा नक्षत्र जल और गुरुको भी ॥ ५१ ॥ सामने से देखता हुआ मल मूत्रका त्याग न करे व कंकड़ काठ पत्ते और तृणादिकों से भूमि
आच्छादनकर ॥ ५२ ॥ व वस्त्रसे शिर को ढांपकर मौनधारी (चुपचाप होकर) मल मूत्रको तजे व यथासुख मुख याने जैसी चहै वैसी को मुखकर बैठा हु
मनुष्य रातमें व दिनमें छाया और अन्धकारमें ॥ ५३ ॥ व डर व प्राणबाधा में मलमूत्र का त्याग करे अर्थात् जब स्वस्थचित्त होवे तब पूर्वोक्त विचार करके त्यागे
अग्निको मुखसे न फूंके और नग्न स्त्री को न देखे ॥ ५४ ॥ अग्निमें पांवको न तपावे और अशुद्ध वस्तुको न डाले व प्राणियों का वध न करे और दोनों संध्या ८६

में न खावे ॥ ५५ ॥ संध्यामें न सोवे व पश्चिम और उत्तर में शिरवाला भी न सोवे व बहुत कालजीने का चाही मनुष्य पानी में विष्ठा मूत्र और थूकको न करे ॥ ५६ ॥
बछडेको पिलाती गऊ या पीती हुई बछिया को न बतावे व इन्द्रधनुषको न दिखावे व शून्य स्थानमें कहीं अकेले न सोवे और सोतेको न जगावे ॥ ५७ ॥ व अके॰
गली में न चले व अंजली से पानीको न पीवे व दिनमें पीना आदि और रातमें दहीको न खावे ॥ ५८ ॥ व रजस्वला स्त्री से न बोले व रातमें तृप्तिपर्य्यंत भोजनको न ॰
व नाच गान और बाजाओंके प्यार करनेवाला न होवे व कांसेके पात्रमें पांवोंको न पखारे ॥ ५९ ॥ व जो अज्ञानी श्राद्ध करके अन्य के श्राद्ध में खाताहै वह पापभो॰

यात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ५५ ॥ नसंविशेतसन्ध्यायांप्रत्यक्सौम्यशिराअपि ॥ विण्मूत्रष्ठीवनन्नाप्सुकुर्याद्दीर्घंजिजीविषुः ॥ ५६ ॥ नाचक्षीतधयन्तींगांनेन्द्रचापंप्रदर्शयेत् ॥ नैकःसुप्यात्कचिच्छून्येनशयानम्प्रबोधयेत् ॥ ५७ ॥ पन्थानन्नैकलोयायान्नवार्यञ्जलिनापिबेत् ॥ नदिवोद्धृतसारञ्चभक्षयेद्दधिनोनिशि ॥ ५८ ॥ स्त्रीधर्मिण्यानाभिवदेन्नाद्यादातृप्तिरात्रिषु ॥ तौर्यत्रिकप्रियोनस्यात्कांस्येपादौनधावयेत् ॥ ५९ ॥ श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धेयोऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ दातुःश्राद्धफलन्नास्तिभोक्ताकिल्बिषभुग्भवेत् ॥ ६० ॥ नधारयेदन्यभुक्तंवासश्चोपानहावपि ॥ नभिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते ॥ ६१ ॥ आरोहणंगवांपृष्ठेप्रेतधूमंसरित्तरम् ॥ बालातपन्दिवास्वापंत्यजेद्दीर्घंजिजीविषुः ॥ ६२ ॥ स्नात्वामार्जयेद्गात्रंविसृजेन्नशिखांपथि ॥ हस्तौशिरोनधुनुयान्नाकर्षेदासनम्पदा ॥ ६३ ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखंदशनेनचन ॥ करजैःकरजच्छेदंतृणच्छेदंविवर्जयेत् ॥ ६४ ॥ शुभायनयदायत्यांत्यजेत्तत्कर्मयत्नतः ॥ अद्वारेणनगन्त

होताहै और अन्नदाताको श्राद्धका फल नहीं है ॥ ६० ॥ व और के जूंठे कपड़े और जूतोंको भी न पहने व फूटे पात्र में न भोजनकरे और अग्निआदि से दू॰
में न बैठे ॥ ६१ ॥ व बहुत जीवन चाहता हुआ मनुष्य गौवों की पीठपर चढ़ना मुर्दा का धुवां नदी पैरना व प्रातःकाल के बाल सूर्य्य का घाम और दिन में स॰
सबको त्यागे ॥ ६२ ॥ व स्नानकर पीछे से देहको न मीड़े व गली में चोटी को न छोड़े व हाथों और मस्तक को न कँपावे व आसन को पांवसे न खींचे ॥ ६३ ॥
दांतसे रोम और नखको कभी न उखाड़े व नखों से नखों के छेदने और तृण तोड़नेको भी बरावे ॥ ६४ ॥ जो कर्म उत्तर कालमें शुभके लिये न हो अर्थात् जिसका प॰

णाम न अच्छाहो उसको यत्नसे त्यागे व अपने घर और पराये घर में भी अह्वार याने सिरकी आदिक गली स न जाना चाहिये ॥ ६५ ॥ पांसों स न खेलै व पाखण्डियों खं
नहीं और रोगियोंके साथ न बैठे व नग्न होकर कभी न सोवे व हाथ मेंही न भोजन करे ॥ ६६ ॥ भीगे पांव हाथ और मुखवाला होकर भोजन करता हुआ बहुत ७ ३८
तक जीवताहै व ओदे पगवाला न सोवै या न पौढ़े व जूंठा कहीं नहीं आवे ॥ ६७ ॥ व शय्या पर बैठा हुआ ब्राह्मणादि वर्ण न खावे न पीवे और न जप करे व पाद
न अँचवे व खड़ा हुआ एक धारा से पानी को न पीवे ॥ ६८ ॥ व सुखका चाही सायंकालमें सब तिलमय अन्नको न खावे व मलमूत्रको न देखे और जूंठे

वेश्मपरवेश्मनोः ॥ ६५ ॥ क्रीडेन्नाक्षैःसहासीतनधर्मघ्नैर्नरोगिभिः ॥ नशयीतकचिन्नग्नःपाणौभुञ्जीतनैवच ॥
आर्द्रपादकरास्योश्नन्दीर्घकालञ्चजीवति ॥ संविशेन्नार्द्रचरणोनोच्छिष्टःकचिदाव्रजेत् ॥ ६७ ॥ शयनस्थोनचाश्नी
न्नपिबेन्नजपेद्विजः ॥ सोपानत्कश्चनाचामेन्नतिष्ठन्धारयापिबेत् ॥ ६८ ॥ सर्वंतिलमयन्नाद्यात्सायंशर्माभिलाषुकः ॥
निरीक्षेतविण्मूत्रेनोच्छिष्टःसंस्पृशेच्छिरः ॥ ६९ ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ पतितैःसहसंवासःपतनाय
वजायते ॥ ७० ॥ श्रावयेद्वेदकंमन्त्रंनशूद्रायकदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयतेविप्रःशूद्रोधर्माच्चहीयते ॥ ७१ ॥ धर्मोपदेशः
शूद्राणांस्वश्रेयःप्रतिघातयेत् ॥ द्विजशुश्रूषणन्धर्मःशूद्राणांहिपरोमतः ॥ ७२ ॥ कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यांनशुभम्म
तम् ॥ आताडनङ्कराभ्याञ्चकोशनङ्केशलुञ्चनम् ॥ ७३ ॥ अशास्त्रवर्तिनोभूपाल्लुब्धात्कृत्वाप्रतिग्रहम् ॥ ब्राह्मणःसान्व

को न छुवे ॥ ६९ ॥ फरहा या भूसी अङ्गार भस्म बाल और खपड़ों में न बैठे व पतित लोगोंके साथ भलीभांति बसना पतनकेही लिये होताहै याने उनके संगमें न बसे
७० ॥ व शूद्रको वेदका मंत्र कभी न सुनावे क्योंकि उसके सुनाने से ब्राह्मण ब्रह्मतेज से हीन होताहै और शूद्र भी धर्म से हीन होताहै ॥ ७१ ॥ इसरो शूद्रोंके लिये ध
का उपदेश अपनी पुण्यको विनाशताहै जिससे ब्राह्मणादि वर्णों की सेवाही शूद्रोंका परमधर्म माना गयाहै ॥ ७२ ॥ व दोनों हाथों से मूड़ खजुवाना व ताड़ना व बाल
उखाड़ना और चिघड़ना शुभ नहीं मानागयाहै ॥ ७३ ॥ व राजनीतिसे हीन लोभी राजासे दानको ग्रहणकर ब्राह्मण कुटुम्ब समेत इक्कीस नरकोंको जाताहै इससे टर

का दान न लेवे ॥ ७४ ॥ अकालमें बिजली सहित मेघगर्जन व वर्षाऋतु में धूलि वर्षण व बड़ी बयारका शब्द और रात इन समयोंको अनध्याय कहते हैं ॥ ७५ ॥ उल्कापात भूडोल दिग्दाह आधीरात दोनों सन्ध्यायें शूद्रका समीप राजाका सूतक और राहुका सूतक (ग्रहणसमय) ॥ ७६ ॥ व अमावस व अष्टका याने भाद्र अगहन पूस माघ और फागुनकी कृष्णाष्टमी व चतुर्दशी में व श्राद्ध का निमन्त्रण लेकर व पूरी प्रतिपदा व हाथी और ऊंटका बीच ॥ ७७ ॥ व गर्दभ ऊंट और स्यार इनके बोलते समय व इकट्ठे रोने समय व उपाकर्म व ऋग्वेदादिकोंका उत्सर्ग व नाव गली डोंगा और जलमें ॥ ७८ ॥ व आरण्यक को पढ़कर भी व बाण और सामवेद

योयातिनरकानेकविंशतिम् ॥ ७४ ॥ अकालविद्युत्स्तनितेवर्षतोंपांसुवर्षणे ॥ महावातध्वनौरात्रावनध्यायाःप्रकीर्तिताः ॥ ७५ ॥ उल्कापातेचभूकम्पेदिग्दाहेमध्यरात्रिषु ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपान्तेराज्ञोराहोश्चसूतके ॥ ७६ ॥ दर्शाष्टकासुभूतायांश्राद्धिकम्प्रतिगृह्यच ॥ प्रतिपद्यपिपूर्णायांगजोष्ट्राभ्यांकृतान्तरे ॥ ७७ ॥ खरोष्ट्रक्रोष्टृविरुतेसमवायेरुदत्यपि ॥ उपाकर्मणिचोत्सर्गेनाविमार्गेतरौजले ॥ ७८ ॥ आरण्यकमधीत्यापिबाणसाम्नोरपिध्वनौ ॥ अनध्यायेष्वेतेषुनाधीयीतद्विजःक्वचित् ॥ ७९ ॥ कृतान्तरायोनपठेद्भेकाखुश्वाहिबभ्रुभिः ॥ भूताष्टम्योःपञ्चदश्योर्ब्रह्मचारीसदाभवेत् ॥ ८० ॥ नायुष्यकरञ्चैवपरदारोपसर्पणम् ॥ तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यंवैरिणाञ्चोपसेवनम् ॥ ८१ ॥ पूर्वर्धिभिःपरित्यक्तमात्मानंनमानयेत ॥ सदोद्यमवतांयस्माच्छ्रियोविद्यानदुर्लभाः ॥ ८२ ॥ सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्चनानृतम्ब्रूयादेषधर्मोघटोद्भव ॥ ८३ ॥ भद्रमेववदेन्नित्यंभद्रमेवविचिन्तयेत् ॥ भद्रैरेवेहसंसर्गोनाभद्रैश्चकदाचन ॥

शब्द सुन पड़ने में इत्यादि पूर्वोक्त अनध्यायोंमें ब्राह्मणादि कहीं न पढ़े ॥ ७९ ॥ व मेढुक,मूस,कूकर, सर्प और निउलामे कियागयाहो विघ्न जिसका वह न अष्टमी अमावस और पूर्णमासी में सदा ब्रह्मचारी होवे ॥ ८० ॥ जिससे पर स्त्री के समीपमें जाना आयुकाहीन करनेवालाहै उसमे उसको और शत्रुके सम्बन्ध को दूर से त्यागना चाहिये ॥ ८१ ॥ व पहलेकी बढ़ती से हीन हुये अपने को अनादर न करावे जिससे सदा उद्यमी लोगों के लिये सब सम्पत्तियां और विद्यायें दुर्लभ नहीं हैं ॥ ८२ ॥ और सत्यको बोले प्रियको बोले व जोकि प्यार न हो उस सत्यको भी न बोले व असत्य प्रिय वचनको न बोले हे अगस्त्य! यह धर्महै ॥ ८३ ॥ व

मंगल वचन कोही बोले व मंगलकोही विचारे व यहां कल्याणकारी मंगल मय महात्माओंकाही समीप करे और दुष्टों का संसर्ग कभी न करे याने उनके पा[illegible]
जाने को बरावे ॥ ८४ ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य रूप धन और कुलसेहीन लोगों को मत निंदरे व अपवित्र होकर चन्द्रमा व सूर्य्य और नक्षत्रों के समूह को न दे[illegible]
व वचनके वेग मनके वेग और जिह्वाके वेगको बरावे अर्थात् बहुत न बोले मनको न डुलावे व नीके मीठे का स्वाद न चाहे व उत्कोच (जोकि
लियाजाताहै) द्यूत (जुवा) दूतपन और आर्त के धनको दूरसे त्यागदेवे ॥ ८६ ॥ व गऊ ब्राह्मण और अग्निको जूंठे हाथसे न छुवे और जोकि आतुर न ॥

रूपवित्तकुलैर्हीनान्सुधीर्नाधिक्षिपेन्नरान् ॥ पुष्पवन्तौनचेक्षेतत्वशुचिर्ज्योतिषाङ्गणम् ॥ ८५ ॥ वाचोवेगंमनाःक्रनी[illegible]
ह्वावेगंचवर्जयेत् ॥ उत्कोचद्यूतदौत्यार्तद्रव्यन्दूरात्परित्यजेत् ॥ ८६ ॥ गोब्राह्मणाग्नीनुच्छिष्टपाणिनानैवसंस्पृशे[illegible] ॥
नस्पृशेदनिमित्तेनखानिस्वानित्वनातुरः ॥ ८७ ॥ गुह्यजान्यपिलोमानितत्स्पर्शादशुचिर्भवेत् ॥ पादधौतोदकंमूत्रनाथ
च्छिष्टान्नोदकानिच ॥ ८८ ॥ निष्ठीवनञ्चश्लेष्माणंगृहाद्दूरंविनिक्षिपेत् ॥ अहर्निशंश्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणा
त् ॥ अद्रोहवत्याबुद्ध्याचपूर्वजन्मस्मरेद्द्विजः ॥ ८९ ॥ वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देतदद्यात्तेषांस्वमासनम् ॥ विनम्रधमनिस्तस्मा
दनुयायात्ततश्चतान् ॥ ९० ॥ श्रुतिभूदेवदेवानांनृपसाधुतपस्विनाम्॥पतिव्रतानांनारीणांनिन्दांकुर्यान्नकर्हिचित्॥९१॥
नमनुष्यस्तुतिंकुर्यान्नात्मानमपमानयेत् ॥ अभ्युद्यतंनप्रणुदेत्परमर्माणिनोच्चरेत् ॥ ९२ ॥ अधर्माद्धेधतेपूर्वंविद्वेष्टन्नपिस

कारण अपने कान आदि छिद्रों को न छुवे ॥ ८७ ॥ जोकि गुह्य इन्द्रियके समीपमें उपजे रोमहैं उनके स्पर्श से अशुद्धहोताहै वे रोम व पाद धोवन पानी व मूत्र व जूंठे [illegible]
अन्न व जल ॥ ८८ ॥ और थूक व श्लेष्म इन सबको घर से दूर में बहावे व दिनों रात वेद पाठ शौच आचार सेवन और विना वैरकी बुद्धिसे ब्राह्मण पूर्वजन्मकी सुधि [illegible]
करताहै ॥ ८९ ॥ व जिससे नाड़ियों के नवानेवाला होकर बड़े यत्नसे बूढ़े लोगोंकी बन्दनाकरे तदनन्तर उनको अपना आसन देवे उससे उनके पीछे चले ॥ ९० ॥ वैसे उस[illegible]
ब्राह्मण देव राजा साधु तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियों की निन्दाको कभी न करे ॥ ९१ ॥ व मनुष्यों की स्तुति को न करे याने देवों की स्तुतिको करे व अपना अपमान
करावे व सामने उद्यतहुयेको न प्रेरे और के मर्मभेदी वचनोंको न बोले ॥ ९२ ॥ व अधर्म से पहले बढ़ताहै और शत्रुओंको भी जीतताहै तदनन्तर सबओर से कल्या[illegible]

को प्राप्त होकर भी पीछे से कुटुम्ब समेत नष्ट होजाताहै इससे अधर्म्म को बरावे ॥ ९३ ॥ व पराये खनाये जलाशयमें पांच पिण्डमाटीको निकालकर स्नान करे क्योंकि
माटीको न निकालकर उस जलाशय कर्त्ता के पाप के चतुर्थांशको भजता होताहै ॥ ९४ ॥ सुदेश और सुकालमें सुपात्रको पासमें पाकर श्रद्धासे विधि पूर्वक जो कुछ
धन दियाजाताहै वह अनंतताके लिये कल्पित होताहै अर्थात् उसका महाफल कहागयाहै ॥ ९५ ॥ भूमि दाता खण्डमण्डलेश्वर होताहै व अन्न देनेवाले लोग सुखी होते
हैं व जलदाताजन सदा तृप्त रहता है और रूप्य दाता रूपवान् होता है ॥ ९६ ॥ व दीपदाता निर्मल नेत्रवाला होताहै व गोदाता सूर्य्यलोक का सेवी होता है व स्वर्ण

र्जयेत ॥ सर्वतोभद्रमाप्यापिततोनश्येच्चसान्वयः ॥ ९३ ॥ उद्धृत्यपञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ॥ अनुद्धृत्यचत
त्कर्तुरेनसःस्यात्तुरीयभाक् ॥ ९४ ॥ श्रद्धयापात्रमासाद्ययत्किञ्चिद्दीयतेवसु ॥ देशेकालेचविधिनातदानन्त्यायकल्प
ते ॥ ९५ ॥ भूप्रदोमण्डलाधीशःसर्वत्रसुखिनोऽन्नदाः ॥ तोयदातासदातृप्तोरूपवान्रूप्यदोभवेत ॥ ९६ ॥ प्रदीपदोनि
र्मलाक्षोगोदाताऽर्यमलोकभाक् ॥ स्वर्णदाताचदीर्घायुस्तिलदःस्यात्सुप्रजाः ॥ ९७ ॥ वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशोवस्त्रदश्च
न्द्रलोकभाक् ॥ हयप्रदोदिव्ययानोलक्ष्मीवान्वृषभप्रदः ॥ ९८ ॥ सुभार्यःशिबिकादातासुपर्यङ्कप्रदोपिच ॥ धान्यैः
समृद्धिमान्नित्यमभयप्रदईशिता ॥ ९९ ॥ ब्रह्मदोब्रह्मलोकेज्योब्रह्मदःसर्वदोमतः ॥ उपायेनापियोब्रह्मदापयेत्सोपितत्
समः ॥ १०० ॥ श्रद्धयाप्रतिगृह्णातिश्रद्धयायःप्रयच्छति ॥ स्वर्गिणौतावुभौस्यातांपततोऽश्रद्धयात्यधः ॥ १ ॥ अनृतेन

दाता दीर्घायु होताहै और तिलदाता सुपुत्रवाला होताहै ॥ ९७ ॥ व गृहदाता अधिक ऊंचे महलोंका स्वामी होताहै व वस्त्रदाता चन्द्रलोक का भागी है व घोड़ा
दाता दिव्य यानवाला होताहै व बैलका दाता लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ९८ ॥ और पीनस पालकी आदि का दाता अच्छी स्त्री वाला व पलंगका दाता धान्यों से समृद्धिमान् व
अभय दाता सदैव स्वामी होताहै ॥ ९९ ॥ वेददाता ब्रह्मलोकमें पूजापाताहै व वेददाताही सब देनेवाला मानागयाहै इससे जोकि उपाय से वेदपाठ दिलाताहै वह भी
उसके समान होताहै ॥ १०० ॥ जोकि श्रद्धासे देताहै और जो श्रद्धासे लेताहै वे दोनों स्वर्गवासी होते हैं व अश्रद्धासे नीचे गिरते हैं ॥ १ ॥ और असत्य से यज्ञ च्युत होता है

व विस्मयसे तपस्या चूजावे व कहनेसे दान चुवे और ब्राह्मणमें दोष लगाने से आयु घटजाती है ॥ २ ॥ सुगन्ध फूल कुश शय्या साग मांस दूध दही मणि मछली और अन्न ये सब जो समीपमें प्राप्त होवें तो लेने योग्यहैं ॥ ३ ॥ व सहत जल फल मूल ईंधन व अभयदान ये सब सम्मुख उद्यत होवें तो निकृष्ट जातिके जन... लेनाचाहिये ॥ ४ ॥ व दास नाऊ गोप कुलमित्र और आधे हलवाले ये शूद्र वर्ग में भोज्यान्नहै अर्थात् इनके अन्न खाने योग्य हैं वैसेही आत्मनिवेदन कर... भोज्यान्न मानागयाहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार से देवऋषि और पितरों के ऋण से आनृण्य को प्राप्त होकर पुत्रको सब ओरसे भार (कारबार) सौंपकर घर में ...

रेद्यज्ञस्तपोविस्मयतःक्षरेत ॥ क्षरेत्कीर्तनतोदानमायुर्विप्रापवादतः ॥ २ ॥ गन्धपुष्पकुशाञ्छय्यांशाकंमांसं... धि ॥ मणिमत्स्यगृहंधान्यंग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ ३ ॥ मधूदकंफलंमूलमेधांस्यभयदक्षिणा ॥ अभ्युद्यतानिग्राह्याणि... तान्यपिनिकृष्टतः ॥ ४ ॥ दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाःशूद्रवर्गेमीतथात्मविनिवेदकः ॥ ५ ... इत्थमानृण्यमासाद्यदेवर्षिपितृजादृणात् ॥ माध्यस्थ्यमाश्रयेद्गेहेसुतेविष्वग्विसृज्यच ॥ ६ ॥ गेहेपिज्ञानमभ्यस्येत्का... शींवाथसमाश्रयेत ॥ सम्यग्ज्ञानेनवामुक्तिःकिंवाविश्वेशवेश्मनि ॥ ७ ॥ सम्यग्ज्ञानम्भवेत्पुंसांकुतएकेनजन्मना ॥ वाराणस्यान्ध्रुवामुक्तिःशरीरत्यागमात्रतः ॥ ८ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवाकालाद्वाथपरःशतात् ॥ सत्वरोगत्वरोदेहःका... श्याञ्चेदमृतीभवेत ॥ ९ ॥ साचवाराणसीलभ्यासदाचारवतासदा ॥ मनसापिसदाचारमतोविद्वान्नलङ्घयेत् ॥ १० ॥ आ... कर्ण्यैतिततोगस्त्यःपुनःप्राहषडाननम् ॥ पुनःकाशींसमाचक्ष्वसदाचारेणयाप्यते ॥ ११ ॥ कानिकानिचलिङ्गानिस्क...

आश्रयकरे ॥ ६ ॥ व घर मेंही ज्ञान का अभ्यास राखे अथवा काशीको सेवे क्योंकि सम्यग्ज्ञान से याकि विश्वनाथ की पुरी में मुक्ति होती है ॥ ७ ॥ परन्तु एक जन्म... लोगों का अच्छा ज्ञान कैसे होवेगा और काशीमें मरण मात्र से मुक्ति निश्चित होती है ॥ ८ ॥ आज व काल्ह व परसों व नरसों अथवा सैकड़ों बरसों के बाद कालमें क... मरना अवश्य होताहै इससे जो वेग समेत देह काशी में चलनेवाली होवे तो मुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥ जिससे वह काशी पुरी भी सदैव अच्छे आचारवालेको मिलती ... इससे सुजानजन मनसे भी सदाचार को न उल्लंघन करे ॥ १० ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर अगस्त्यजी षट् मुखसे फिर बोले कि जो सदाचार से मिलती है उस काशीके...

फिर कहो ॥ ११ ॥ हे स्कन्दजी ! काशीमें कौन कौन लिंग ज्ञान दाताहैं उनको सब ओर पूछतेहुये मुझसे तुम सब ओर से बतावो ॥ १२ ॥ हे षडानन ! काशी विना मेरी प्रीति कहीं नहीं है व काशी विना मेरा सनेह नहींहै और काशी विना मैं चित्रपटके पुतलाके समानहूं ॥ १३ ॥ व न सोताहूं न जागताहूं न अन्न खाताहूं न पानी पीताहूं क्योंकि केवल काशी दो अक्षररूप अमृतकोही पीताहूं ॥ १४ ॥ इस प्रकार से अगस्त्यजी के वचनको सुनकर श्रीकार्तिकेयजीने काशी माहात्म्य के कहने को प्रारम्भ किया ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

न्दज्ञानप्रदानिच ॥ वाराणस्याम्परिब्रूहितानिमेपरिपृच्छतः ॥ १२ ॥ विनाकाशींनमेप्रीतिर्विनाकाशींनमेरतिः ॥ चित्रपुत्रकवच्चास्मिविनाकाशींषडानन ॥ १३ ॥ ननिद्रामिनजागर्मिनाश्नामिनपिबाम्यपः ॥ काशीद्व्यक्षरपीयूषंपिबामिहिचकेवलम् ॥ १४ ॥ इतिश्रुत्वावचःस्कन्दोमैत्रावरुणिभाषितम् ॥ अविमुक्तस्यमाहात्म्यंवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्द उवाच ॥ शृण्वगस्त्यमहाभागकथाम्पापप्रणाशिनीम् ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोहेतुमविमुक्तसमाश्रयाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मयदाम्नातंनिष्प्रपञ्चंनिरात्मकम् ॥ निर्विकल्पंनिराकारमव्यक्तंस्थूलसूक्ष्मवत् ॥ २ ॥ तदेतत्क्षेत्रमापूर्यस्थितंसर्वगप्यहो ॥ किमन्यत्रनशक्तोसौजन्तून्मोचयितुम्भवात् ॥ ३ ॥ भवोध्रुवंयदत्रैवमोचयेत्तंनिशामय ॥ महत्यायोगयुक्त्या

दोहा ॥ उनतालिस अध्यायमें वाराणसी बखान । अविमुक्तेश महात्म्य अरु दिवोदास आख्यान ॥ श्रीस्कन्दजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! मुक्तिकारिणी व पापहारिणी अविमुक्त क्षेत्रको भलीभांति आश्रय करनेवाली कथाको तुम सुनो ॥ १ ॥ जोकि दो भांति की देह से रहित व प्रपंचहीन व निर्भेद व अव्यक्त और कार्य्य कारण रूप परब्रह्म वेदान्तमें जाना गयाहै ॥ २ ॥ वह सर्वग होकर भी इस क्षेत्रको सब ओर से पूरणकर टिकाहै यही आश्चर्य्य है क्या अन्यत्र जन्तुओं को संसारसे छुड़ाने को वह समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ परन्तु जिससे महादेवजी निश्चय से यहांहीं छुड़ाते हैं उस कारण को सुनो कि बड़ी योगयुक्ति से

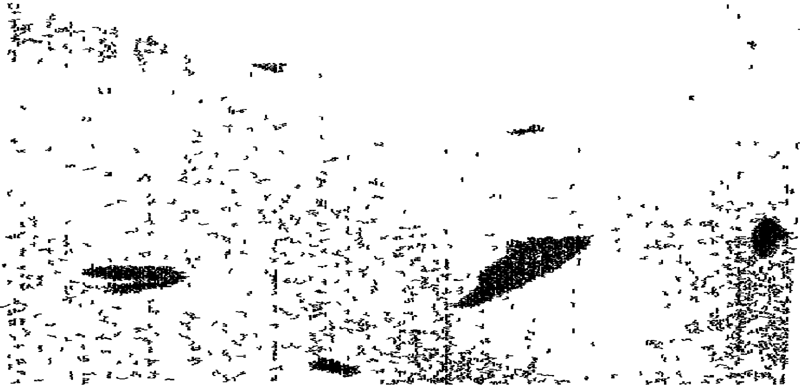

निष्काम महादान ॥ ४ ॥ और अच्छी भारी तपस्यासेभी शिवजी अन्यत्र मुक्तिदेते हैं व बड़ी योगयुक्तिको नहीं व महान् दानोंको नहीं ॥ ५ ॥ और बहुत भारी तपस्या
कोभी काशीमें मुक्तिकेलिये शिवजी नहीं प्रार्थते हैं क्योंकि जो बड़ी पीड़ामें भी काशी से बिलग नहीं होताहै ॥ ६ ॥ यही यहां महायोगहै और अन्ययोग उपयोगहै इस
नियमसे श्री विश्वनाथजीके लिये पत्र पुष्प फल जल ॥ ७ ॥ और अन्य जो कुछ मनकी सुवृत्ति से दियागया वह यहां महादानही है व मुक्तिमण्डपमें जो क्षणभर
से टिका जाताहै ॥ ८ ॥ व श्रीगंगाजीके शुद्ध जलमें नहाकर यही यहां उत्तम तपस्या है और काशी में सत्कारकर भिक्षुकको जो भिक्षा सबओरसे दीजाती मणि मछली

महादानैरकामिकैः ॥ ४ ॥ सुमहद्भिस्तपोभिर्वाशिवोन्यत्रविमोचयेत् ॥ योगयुक्तिंनमहतींनदानानिमहान्तिच ॥ ५ ॥
पांस्यतिदीर्घाणिकाश्याम्मुक्त्यैशिवोर्थयेत् ॥ वियुनक्तिनयत्काश्याउपसर्गेमहत्यपि ॥ ६ ॥ अयमेवमहायोगउपयो
स्विहापरः ॥ नियमेनतुविश्वेशेपुष्पम्पत्रंफलंजलम् ॥ ७ ॥ यद्दत्तंसुमनोवृत्त्यामहादानन्तदत्रवै ॥ मुक्तिमण्डपिका
चक्षणंयत्स्थिरमास्यते ॥ ८ ॥ स्नात्वागङ्गामृतेशुद्धेतपएतदिहोत्तमम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षायत्काश्याम्परिदीयते
तुलापुरुषएतस्याःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ ९ ॥ हृदिसंचिन्त्यविश्वेशंक्षणंयद्विनिमील्यते ॥ देवस्यदक्षिणेभागेमहायो
गोयमुत्तमः ॥ १० ॥ इदमेवतपोत्युग्रंयदिन्द्रियविलोलताम् ॥ निषिध्यस्थीयतेकाश्यांक्षुत्तापाद्यवमन्यच ॥ ११ ॥
मासिमासियदाप्येतव्रताच्चान्द्रायणात्फलम् ॥ अन्यत्रतदिहाप्येतभूतायांनक्तभोजनात् ॥ १२ ॥ मासोपवासादन्यत्र
यत्फलंसमुपार्ज्यते ॥ श्रद्धयैकोपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १३ ॥ चातुर्मास्यव्रतात्प्रोक्तंयदन्यत्रमहाफलम् ॥

सोलहीं कलाकी समताकेलिये तुला पुरुष दानभी समर्थ नहीं होसक्ताहै ॥ ९ ॥ व देवके दक्षिण भागमें बैठकर हृदयमें विश्वनाथ का ध्यानधर क्षणभर जो पलक ढां
जाती है यही यहां उत्तम महायोगहै ॥ १० ॥ व जोकि भूँख व प्यासको अनादरकर और इन्द्रियोंकी चञ्चलताको रोंककर काशीमें टिकाजाता है यही बड़ी घोर तपस्य
है ॥ ११ ॥ और अन्यत्र चान्द्रायण व्रतसे मास मासमें जो फल मिले वह यहां चतुर्दशी में रात्रिके भोजन से प्राप्तहोवे है ॥ १२ ॥ व अन्यत्र मासभर उपाससे जो फल
भलीभांति बटोराजाता है वह काशीमें श्रद्धाकेसाथ एक उपास से निस्सन्देह होताहै ॥ १३ ॥ व अन्यत्र चातुर्मास्यव्रतसे जो महाफल कहागयाहै वह काशीमें एकादशी व जो

उपासते ... ॥ कल छं

के उपास से होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ व अन्यत्र छःमासतक अन्नत्यागनेसे ।ज... ...हुये विधाता १६ ॥ वै अन्यत्र मास मासमें कुशा... अन्यत्र वर्षभर उपासोंको कर व्रतवाला जिस फलको पावै वह सम्पूर्ण फल काशीमें त्रिरात्रसे ... जहां मृत्युचाहै जन्तुके है वह काशीमें उत्तरवाहिनी गङ्गाके एक चुल्लू जलसे मिलता है ॥ १७ ॥ इससे काशीकी अनन्त महिमा है उसके कहने को कौनसमर्थ है जहां मृत्युचाहै जन्तुके हिने कानमें जपनेवाले शिवजी विद्यमान हैं ॥ १८ ॥ और जहां शङ्करजी मरतेहुये देहधारी के कानमें किसी अक्षरको जपते हैं जिसको सुनकर मराहुआ भी मोक्ष

षण्मासान्नपरित्यागाद्यदन्यत्रफलंलभेत् ॥ शिवरात्र्युपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १४ ॥ एकादश्युपवासेनतत्काश्यामविकलंमुने ॥ १६ ॥ तत्फलंस्यात्रिरात्रेणकाश्यामविकलंमुने ॥ १६ ॥ वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्रयद्व्रती ॥ १५ ॥ काश्याञ्जायतेध्रुवम् ॥ १५ ॥ वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्रयद्व्रती ॥ तत्फलंस्यात्रिरात्रेणकाश्यामविकलंमुने ॥ १६ ॥ मासिमासिकुशाग्राम्बुपानादन्यत्रयत्फलम् ॥ काश्यामुत्तरवाहिन्यामेकेनचुलुकेनतत् ॥ १७ ॥ अनन्तोमहिमाकाश्याःकस्तंवर्णयितुम्प्रभुः ॥ विपत्तिमिच्छतोजन्तोर्यत्रकर्णेजपःशिवः ॥ १८ ॥ शम्भुस्तत्किञ्चिदाचष्टेम्रियमाणस्यजन्मिनः ॥ कर्णेऽक्षरंयदाकर्ण्यमृतोप्यमृततांव्रजेत् ॥ १९ ॥ स्मारंस्मारंस्मररिपोःपुरींत्वमिवशङ्करः ॥ अद्रुनोन्मन्दरंयातोबहुशस्तदवाप्तये ॥ २० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ स्वकार्यनिपुणैःस्वामिन्गीर्वाणैरतिदारुणैः ॥ त्याजितोहम्पुरीङ्काशिकांसोऽत्यजत्कस्मान्निर्वाणमपिहरोत्याचक्षीत्कुतःप्रभुः ॥ २१ ॥ पराधीनोहमिवकिन्देवदेवःपिनाकवान् ॥ तत्याजचयथास्थाणुःकाशींविद्धिकाम् ॥ २२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणसम्भूतकथयामिकथामिमाम् ॥

प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ हे अगस्त्यजी ! मन्दराचल को गयेहुये महादेवजी भी तुम्हारी नाईं शिवपुरी काशीको सुमिर सुमिरकर उसकी प्राप्तिके लिये ब... याने उपतप्त हुये थे ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि,हे स्वामिन् ! अपने कार्य्य में कुशल बड़े दारुण देवोंने मुझसे काशीका त्यागकराया और समर्थ शिव... लिये त्यागाथा ॥ २१ ॥ क्या पिनाक धनुवान् महादेवजी मेरे समान पराधीन हैं उन्होंने मुक्तिमणि राशीकाशी को क्यों त्यागाथा उस कारणका क...

स्कन्दजी बोले कि, हे मित्रावरुण से उत्पन्न अगस्त्यमुने! जैसे महादेवने ब्रह्माकी प्रार्थनासे काशीको त्यागा है वसे मैं इस कथाको कहताहूं ॥ २३ ॥ हे मुने, मछली
पकार के लिये तुम देवोंसे प्रार्थगयेहो वैसे अपने भक्तोंकी रक्षामें चतुर रुद्रजी भी ब्रह्मासे प्रार्थितहुये हैं ॥ २४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख! जातिके जन
व कृपाके समुद्र रुद्रजी कैसे व किस लिये ब्रह्मासे प्रार्थेगये हैं उसको तुम मुझसे कहो ॥२५॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि, हे विप्र! पूर्वकालमें जब पाद्मना कर
था तब स्वायम्भुव मनुके अन्तरमें सब भूतोंके कंपानेवाली अनावृष्टि हुईथी ॥ २६ ॥ उस साठिबरस के सूखासे सम्पूर्ण प्राणी पीड़ितहुये थे व कोई

तः ॥ २३ ॥ प्रार्थितस्त्वंयथालेखैःपरोपकृतयेमुने ॥ द्रुहिणेनतथारुद्रःस्वरक्षणविचक्षणः ॥ २४ ॥ अगस्त्यउ
कथंसभगवान्रुद्रोद्रुहिणेनकृपाम्बुधिः ॥ प्रार्थितोभूत्किमर्थञ्चतन्मेब्रूहिषडानन ॥ २५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पाद्मेकल्पे
वृत्तेमनोःस्वायम्भुवेन्तरे ॥ अनावृष्टिरभूद्विप्रसर्वभूतप्रकम्पिनी ॥ २६ ॥ तयातुषष्टिहायिन्यापीडिताःप्राणिनोऽखि
लाः ॥ केचिदम्बुधितीरेषुगिरिद्रोणीषुकेचन ॥ २७ ॥ महानिम्नेषुकच्छेषुमुनिवृत्त्याजनाःस्थिताः ॥ अरण्यान्यवनि
र्जाताग्रामखर्वटवर्जिता ॥ २८ ॥ क्रव्यादाएवसर्वेषुनगरेषुपुरेषुच ॥ आसन्नभ्रंलिहावृक्षाःसर्वत्रक्षोणिमण्डले ॥ २९ ॥
चौराएवमहाचौरैर्लुण्ठ्यन्तइतस्ततः॥मांसवृत्त्योपजीवन्तिप्राणिनःप्राणरक्षिणः॥३०॥अराजकेसमुत्पन्नेलोकेऽत्याहि
तशंसिनि ॥ प्रयत्नोविफलस्त्वासीत्स्रष्टुःसृष्टिकृतस्तदा ॥ ३१ ॥ चिन्तामवापमहतींजगद्योनिःप्रजाक्षयात ॥ प्रजाः

कोई पर्वतोंकी कन्दराओं में ॥ २७ ॥ व कोई बड़ेगहरे भूमिभागोंमें और कोई जन पर्वतोंके प्रान्तोंमें मुनियों की वृत्ति याने फल और मूलादि भोजन से टिके थे
समयमें ग्राम और खर्वटों से हीनभई भूमि वन होगईथी जिसमें चारोवर्ण बसें वह ग्रामहै व जोकि ग्राम और नगरके बीचमें या नदी व पर्वतके किनारे में हो
बस्तीको खर्वट कहते हैं ॥ २८ ॥ व नगर और पुरों में तब सब लोग मांस भक्षी होगये व सब ओर भूमिमण्डल में मेघपर्य्यन्त ऊंचे जे वृक्षभये थे वे भी सूखे
थे ॥ २९ ॥ व चोर भी ऐसी वैसी महाचोरों से लूटेजाते थे और प्राणोंकी रक्षा करतेहुये प्राणी [illegible] स वृत्तिसे जीवते थे ॥ ३० ॥ और अतिशय अनि
से हीनहुये लोकमें तब ब्रह्माका सृष्टिके किये प्रयत्न विफल होगया ॥ ३१ ॥ व प्रजाओं [illegible] को पहुंचे कि प्रजाओंका क्षय

(Margin fragments from adjacent page: ०खं०, पा०ख० ३८, न, कि, व जं, की सुध, ॥ और, मान उस, काशीक, ल्या)

दिक क्रियायें क्षीण होगई हैं ॥ ३२ ॥ और उनके घटतेही सब देवतालोग भी हीनहुयेहैं तदनन्तर चिन्ता करतेहुये विधाताने राजर्षि [illegible]मको देखा ॥ ३३ ॥ जोकि अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें तपस्या करताहुवा मनुके वंशमें उत्पन्न व बड़ा वीर और अडोल इन्द्रियवाला होकर क्षत्रियों के धर्मकी नाईं उदित था ॥ ३४ ॥ और जोकि शत्रुपुरी के जीतनेवाला राजा रिपुञ्जय इस नामसे कहागया सया प्र[illegible] था उसके पासमें जाकर अनन्तर ब्रह्माजीने गौरवपूर्वक ॥ ३५ ॥ वचनको कहा [illegible] ते रिपुञ्जय राजन् भूपाल! तुम समुद्रपर्वत और वनसमेत पृथिवी को पालो ॥ ३६ ॥ व नागोंका राजा वासुकी स्त्रीके अर्थ तुम्हारे लिये शील सम्पन्न अ[illegible] नाम

क्षीयमाणासुक्षीणायज्ञादिकाःक्रियाः ॥ ३२ ॥ तासुक्षीणासुसंक्षीणाःसर्वेयज्ञभुजोऽभवन् ॥ ततश्चिन्तयतास्त्रष्ट्राद्दष्टो राजर्षिसत्तमः ॥ ३३ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेतपस्यन्निश्चलेन्द्रियः ॥ मनोरन्वयजोवीरःक्षात्रोधर्मइवोदितः ॥ ३४ ॥ रिपुञ्जयइतिख्यातोराजापरपुरञ्जयः ॥ अथब्रह्मातमासाद्यबहुगौरवपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ उवाचवचनंराजन्रिपुञ्जयमहामते ॥ इलां पालयभूपालससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ३६ ॥ नागकन्यांनागराजःपत्न्यर्थन्तेप्रदास्यति ॥ अनङ्गमोहिनींनाम्नावासुकिः शीलभूषणाम् ॥ ३७ ॥ दिवोपिदेवादास्यन्तिरत्नानिकुसुमानिच ॥ प्रजापालनसन्तुष्टामहाराजप्रतिक्षणम् ॥ ३८ ॥ दिवोदासइतिख्यातमतोनामत्वमाप्स्यसि ॥ मत्प्रभावाच्चनृपतेदिव्यंसामर्थ्यमस्तुते ॥ ३९ ॥ परमेष्ठिवचःश्रुत्वाततो सोराजसत्तमः ॥ वेधसंबहुशःस्तुत्वावाक्यंचेदमुवाचह ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ [illegible]हमहाप्राज्ञजनाकीर्णेमहीतले ॥ कथंतान्येचराजानोमांकथंकथ्यतेत्वया ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयिराज्यं[illegible]स्यति ॥ पापनिष्ठेचवैरा

नाग कन्या को देवेगा ॥ ३७ ॥ हे महाराज! प्रतिक्षण प्रजापालन से संतुष्ट देवता लोग भी स्वर्ग से [illegible] ॥ ३८ ॥ हे नरेश! इससे तुम दिवोदास नामको प्राप्त होवोगे और हमारी प्रसन्नता से तुम्हारी दिव्यशक्ति (सामर्थ्य) होवेगी ॥ ३९ ॥ तदनन्तर विधाताका वचन सुनकर उस राजसत्तमने ब्रह्माजी की बहुत स्तुतिकर हर्षसे इस वाक्यकोकहा ॥ ४० ॥ राजा बोला कि, हे महाप्राज्ञ, पितामह! जनोंसे युक्त भूमण्डलमें क्या अन्य राजा लोग नहींहैं और आपकरके मुझसे

किस लिये कहा जाताहै ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, पापनिष्ठ राजाके होतेही देव फिर नहीं बरसता है व जब तुम राज्य करोगे तब देव बरसा को करेगा ॥ ४२ ॥ राजा बोला कि, हे त्रिलोक रचने में समर्थ,महामान्य,पितामह ! यह आपका महाप्रसादहै इससे मैं आपकी आज्ञाको शिरमें लेताहूं ॥ ४३ ॥ परन्तु मैं कुछ विज्ञापना करनेको चाहताहूं जो आप उस मेरे अर्थको करो तो मैं भूमें अकण्टक राज्यको करूं ॥ ४४ ॥ब्रह्माजी बोले कि, हे महाबाहो, राजन् ! जो तुम्हारे मनमें है उसको शीघ्रही कहो और कियाहुआ मानो क्योंकि तुमको कुछ भी अदेय नहींहै ॥ ४५ ॥ राजा बोला, कि हे सर्वलोक पितामह ! जो मैं भूपालहूं तो स्वर्गवासी देवलोग स्वर्ग में टिकें भूमिमें मत

त्रिनदेवोवर्षतेपुनः ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ पितामहमहामान्यत्रिलोकीकरणक्षम ॥ महाप्रसादइत्याज्ञांत्वदीयांमूर्द्धन्युपा ददे ॥ ४३ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोहंतन्मदर्थङ्करोषिचेत् ॥ ततःकरोम्यहंराज्यंपृथिव्यामसपत्नवत् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविलम्बेनतद्ब्रूहिकृतंमन्यस्वपार्थिव ॥ यत्तेहृदिमहाबाहोतवादेयंनकिञ्चन ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ यद्यहंपृथिवीनाथः सर्वलोकपितामह ॥ तदादिविषदोदेवादिवितिष्ठन्तुमाभुवि ॥ ४६ ॥ देवेषुदिवितिष्ठत्सुमयितिष्ठतिभूतले ॥ असपत्नेन राज्येनप्रजासौख्यमवाप्स्यति ॥ ४७ ॥ तथेतिविश्वसृक्प्रोक्तोदिवोदासोनरेश्वरः ॥ पटहङ्घोषयाञ्चक्रेदिवन्देवाव्रज न्त्विति ॥ ४८ ॥ मागच्छन्त्विहवैनागानराःस्वस्थाभवन्त्वितः ॥ मयिप्रशासतिक्षोणींसुराःस्वस्थाभवन्त्विति ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्माविश्वेशम्प्रणिपत्यह ॥ यावद्विज्ञप्तुकामोभूत्तावदीशोब्रवीद्विधिम् ॥ ५० ॥ लोकेश्वरसमायाहिमन्द रोनामभूधरः ॥ कुशद्वीपादिहागत्यतपस्तप्येतदुष्करम् ॥ ५१ ॥ यावत्तस्मैवरन्दातुंबहुकालंतपस्यते ॥ इत्युक्त्वापा

आवें ॥ ४६ ॥ जब देवलोग स्वर्ग में बसेंगे और मैं भूतल में टिकोंगा तब अकंटक राज्यसे प्रजासमूह भी सौख्यको प्राप्त होवेगा ॥ ४७ ॥ और वैसे होवे ऐसे ब्रह्माके कहेहुये दिवोदास नरेशने देशमें ऐसे ढक्काको बजवाया कि देवतालोग स्वर्गकोजावें ॥४८॥ और नाग भी यहां मतआवें क्योंकि भूमिमें मेरे राज्य करतेही इस लोकमें मनुष्य स्वस्थ होवें व स्वर्गवासी देव और ऐसेही पातालवासी नाग भी स्वस्थ होवें ॥ ४९ ॥ इसी अन्तर में आनन्द से विश्वनाथके प्रणामकर ब्रह्माजी जबतक विज्ञापना करने की इच्छावाले हुये तबतक महेशजीने ब्रह्माजी से कहा कि ॥ ५० ॥ हे लोकेश्वर ! तुम भलीभांति से आवो क्योंकि मंदरनामक पर्वत कुशद्वीपसे यहां आकर बड़ी

दुष्कर तपस्याको करता है ॥ ५१ ॥ इससे बहुत कालसे तप करतेहुये उसके लिये यथावत वर देने योग्यहै इस भांतिसे कहकर नंदी और भृंगी आदि गणों के आगे चढ़नेवाले पार्वतीके नाथ ॥ ५२ ॥ बैलपर चढ़कर तहांगये जहां मंदराचल टिका था और देवोंके देव वृषध्वज महादेवजी प्रसन्न मन होकर बोले ॥ ५३ ॥ कि, हे पर्वतोत्तम ! तुम उठो उठो तुम्हारा कल्याण होवे व वाञ्छित वरको मांगो तदनन्तर त्रिनेत्र देव देवको सुनकर उस ॥ ५४ ॥ पर्वतने बहुतसे प्रणामकर यह विज्ञापना किया कि, हे लीलाशरीरधर, प्रणतों के लिये मुख्य कृपानिधान शंकर ॥ ५५ ॥ हे सब वृत्तान्तों के पण्डित शरणागतरक्षक ! सर्वज्ञ नामसे प्रसिद्ध भी आप मेरे मनो-

र्वतीनाथोनन्दिभृङ्गिपुरोगमः ॥ ५२ ॥ जगामवृषमारुह्यमन्दरोयत्रतिष्ठति ॥ उवाचचप्रसन्नात्मादेवदेवोवृषध्वजः ॥ ५३ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेवरम्ब्रूहिधरोत्तम ॥ सोथश्रुत्वामहेशानंदेवदेवंत्रिलोचनम् ॥ ५४ ॥ प्रणम्यबहुशोभूमान्द्रिस्तद्व्यजिज्ञपत ॥ लीलाविग्रहभृच्छम्भोप्रणतैककृपानिधे ॥ ५५ ॥ सर्वज्ञोपिकथंनामनवेत्थममवाञ्छितम् ॥ शरणागतसन्त्राणसर्ववृत्तान्तकोविद ॥ ५६ ॥ सर्वेषांहृदयानन्दशर्वसर्वगसर्वकृत ॥ यदिदेयोवरोमह्यंस्वभावाद्दृषदात्मने ॥ ५७ ॥ याचकायातिशोच्यायप्रणतार्तिप्रभञ्जक ॥ ततोऽविमुक्तक्षेत्रस्यसाम्यंह्यभिलषाम्यहम् ॥ ५८ ॥ कुशद्वीपउमासार्धंनाथाद्यसपरिच्छदः ॥ मन्मौलौविहितावासःप्रयात्वेषवरोमम ॥ ५९ ॥ सर्वेषांसर्वदःशम्भुःक्षणंयावद्विचिन्तयेत ॥ विज्ञातावसरोब्रह्मातावच्छम्भुंव्यजिज्ञपत ॥ प्रणम्याग्रेसरोभूत्वामौलौबद्धकरद्वयः ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वेश

रचनाको कैसे नहीं जानतेहो ॥ ५६ ॥ हे सर्वगत सर्वकृत् सबके हृदयके आनन्ददायक पार्वतीनायक ! जो स्वभावसेही जड़ पत्थररूप मेरेलिये वर देने योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो हे भक्तार्तिभंजन ! जोकि मैं अतिशय शोचने योग्य याचकहूं वह मैं काशी की समताको चाहताहूं ॥ ५८ ॥ हे नाथ ! यही मेरा वरदान लेनाहै कि पार्वती के साथ सब सामग्री समेत आप मेरे माथपर निवास करनेवाले होकर आज कुशद्वीप को चलो ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनकर सबके सब कुछ देनेवारे शंकरजी जबतक क्षणभर विचार करतेरहे तबतक जानागयाहै अवसर जिनकरके उन ब्रह्माने विज्ञापना किया जोकि अग्रगामी होकर प्रणामकर माथमें दोनों हाथ जोड़ेहुये खड़े थे वह ॥ ६० ॥

श्रीब्रह्माजी बोले, कि हे विश्वेश्वर, जगन्नाथ विभो! प्रसन्नहुये स्वामी से मैं चार भांतिकी सृष्टिकरनेको व्यापार कराया गयाहूं ॥ ६१ ॥ इससे आपकी आज्ञासे मैंने यत्नपूर्वक जिस सृष्टिको सिरजाहै वह साठि वर्षकी अनावृष्टि से प्रजाओं से हीनहोकर उस भूमिमें नष्ट होगई है ॥ ६२ ॥ और विना राजाका यह जगत बहुतही दुःस्थित हुवाहै उससे मनुवंश में उत्पन्न रिपुञ्जयनामक ॥ ६३ ॥ राजर्षिको प्रजापालने के लिये मैंने अभिषेक कियाहै और उस महा तपस्वी, बड़े वीर्य्यवान्ने भी समय कियाहै ॥ ६४ ॥ कि जो तुम्हारी आज्ञासे सब देवता स्वर्ग में तथा नाग भी पाताल में टिकेंगे तो मैं राज्यको करूंगा ॥ ६५ ॥ और वैसे होगा यह वह मेरा कहाहुवा वचन प्रमाण

जगतांनाथपत्याव्यापारितोस्म्यहम् ॥ कृतप्रसादेनविभोसृष्टिङ्कर्तुञ्चतुर्विधाम् ॥ ६१ ॥ प्रयत्नेनमयासृष्टासासृष्टिस्त्वदनुज्ञया ॥ अवृष्ट्याषष्टिहायिन्यातत्रनष्टाऽप्रजाभुवि ॥ ६२ ॥ अराजकंमहच्चासीद्दुरवस्थमभूज्जगत् ॥ ततोरिपुञ्जयोनामराजर्षिर्मनुवंशजः ॥ ६३ ॥ मयाभिषिक्तोराजर्षिःप्रजाःपातुंनरेश्वरः ॥ चकारसमयंसोपिमहावीर्योमहातपाः ॥ ६४ ॥ तवाज्ञयाचेत्स्थास्यन्तिसर्वेदिविषदोदिवि ॥ नागलोकेतथानागास्ततोराज्यंकरोम्यहम् ॥ ६५ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तंप्रमाणीक्रियतान्तुतत् ॥ मन्दरायवरोदत्तोभवेदेवंकृपानिधे ॥ ६६ ॥ तस्यराज्ञःप्रजात्रातुम्भूयाच्चैषमनोरथः ॥ ममनाडीद्वयंराज्यंतस्यापिचशतक्रतोः ॥ ६७ ॥ मर्त्यानाङ्गणनाकेहनिमेषार्धनिमेषिणाम् ॥ देवोपिनिर्मलंमत्वामन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ ६८ ॥ विधेश्चगौरवंरक्षंस्तथोरीकृतवान्हरः ॥ जम्बूद्वीपेयथाकाशीनिर्वाणपददासदा ॥ ६९ ॥ तथाबहुतिथंकालंद्वीपेभूत्सोपिमन्दरः ॥ यियासुनाचदेवेनमन्दरश्चित्रकन्दरम् ॥ ७० ॥ निजमूर्तिमयंलिङ्गमविज्ञातंविधेरपि ॥

कियाजावे हे कृपानिधान! आपने भी मन्दराचलको वरदान दियाहै इससे ऐसेही होवे अर्थात् देव शिरोमणि आप भी इस समय काशी को छोड़कर मन्दर पर्वतपर कुशद्वीप में निवासकरो ॥ ६६ ॥ तब प्रजापालने के लिये उस राजाका यह मनोरथ भी सिद्ध होजावेगा व मेरे दो दण्डतक उस इन्द्रकी राज्य रहेगी ॥ ६७ ॥ और इस लोकमें आधे निमेष पर्य्यंत पलक भांजनेवाले मनुष्यों की गणना कहीहै तब मन्दराचलको सुन्दर कन्दरावाला मानकर महादेव भी ॥ ६८ ॥ जोकि भक्तोंकी भवभीति को हरते हैं वह ब्रह्माकी गुरुताको राखतेहुये वैसेही अंगीकार करते भये व जैसे जम्बूद्वीप में काशीपुरी सदा मोक्षदाहै ॥ ६९ ॥ वैसे बहुत कालतक वह मन्दराचल

और कुशद्वीप भी मुक्तिदाता होगया परन्तु विचित्र कन्दरावाले मन्दराचलमें जाना चाहतेहुये महादेवजीने ॥ ७० ॥ जोकि ब्रह्माका भी न जाना था उस अपने मूर्ति-मय लिंगको काशीमें स्थापित किया क्योंकि भक्तोंका सब सिद्धि देनेके लिये ॥ ७१ ॥ व मरे जन्तुवों को मुक्ति सम्पत्ति देने के लिये व वहां टिके सब सदाचारियों और क्षेत्रकी रक्षाकरने के लिये यह लिंग थापा गयाहै ॥ ७२ ॥ व जिससे मन्दराचलको गये भी महादेवने लिंगरूप से इस क्षेत्रको नहीं त्यागा इससे यह अविमुक्त नामसे कहाजाताहै ॥ ७३ ॥ आगे यह क्षेत्र आनन्दवन नाम कहागया था परन्तु तबसे लगाकर पृथिवी में इसका अविमुक्त नाम प्रसिद्धहै ॥७४॥ इस भांतिसे क्षेत्र और लिंगका

स्थापितंसर्वसिद्धीनांस्थापकेभ्यःसमर्पितुम् ॥ ७१ ॥ विपन्नानाञ्चजन्तूनांदातुंनैःश्रेयसींश्रियम् ॥ सर्वेषामिहसंस्थानां क्षेत्रंचैवाभिरक्षितुम् ॥ ७२ ॥ मन्दराद्रिङ्गतेनापिक्षेत्रंनैतत्पिनाकिना ॥ विमुक्तंलिङ्गरूपेणअविमुक्तमतःस्मृतम् ॥ ७३ ॥ पुरानन्दवनंनामक्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अविमुक्तंतदारभ्यनामास्यप्रथितम्भुवि ॥ ७४ ॥ नामाविमुक्तमभवदुभयोःक्षेत्रलिङ्गयोः ॥ एतद्द्वयंसमासाद्यनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥७५॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वाक्षेत्रेऽविमुक्तके ॥ विमुक्तएवभवतिसर्वस्मात्कर्मबन्धनात् ॥७६॥ अर्चन्तिविश्वेविश्वेशंविश्वेशोर्चतिविश्वकृत् ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंभुविमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७७ ॥ पुरानस्थापितंलिङ्गंकस्यचित्केनचित्कचित् ॥ किमाकृतिभवेल्लिङ्गंनैतद्वेत्त्यपिकश्चन ॥ ७८ ॥ आकारमविमुक्तस्यदृष्ट्वाब्रह्माच्युतादयः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासुर्वसिष्ठाद्यास्तथर्षयः ॥ ७९ ॥ आदिलिङ्गमिदम्प्रोक्तमविमुक्तेश्वर

भी अविमुक्त नाम भयाहै इससे इन दोनोंके पासमें पहुंचकर फिर गर्भसेवी न होवे ॥ ७५ ॥ जिससे अविमुक्त क्षेत्र याने काशीमें अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर सबकर्मबन्धन से विमुक्तही होताहै ॥ ७६ ॥ व सबलोग विश्वनाथको पूजते हैं और जगतकर्त्ता विश्वनाथजी भूमिमें मुक्तिदायक अविमुक्तेश्वरनामक लिंगको पूजते हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु पहले किसीकरके किसीका कोई लिंग नहीं थापागया और यह भी न कोई जानता था कि वह लिंग किसआकारका होताहै ॥ ७८ ॥ परन्तु अविमुक्तेश्वरके आकारको देखकर ब्रह्मा विष्णु और वसिष्ठादि ऋषियोंने भी लिंगोंका स्थापन कियाहै ॥ ७९ ॥ इससे सबसे बड़ा यह अविमुक्तेश्वरनामक लिंग आदि लिंग कहागयाहै

उसके बाद भूमण्डलमें अन्य अनेक लिंग प्रकट हुयेहैं ॥ ८० ॥ और अविमुक्तेश्वरका नाम भी सुनकर मनुष्य क्षणभरमें जन्मके कमाये पापसे विमुक्त होवेहै इसमें वि-चारणा न करना चाहिये ॥ ८१ ॥ व दूर देशवासी भी काशीमें अविमुक्तेश्वर लिंगका स्मरणकर क्षणभर में दो जन्मके किये पापसे छूटजाताहै ॥ ८२ ॥ व अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें अविमुक्तेश्वरको देखकर तीन जन्मों के उत्पन्न पापको त्यागकर पुण्यमय होताहै ॥ ८३ ॥ व ज्ञानके नाशसे पांच जन्मोंमें जो पाप कियागयाहै वह अविमु-क्तेश्वरके संस्पर्श से नष्ट होवे है यह अन्यथा नहीं है ॥ ८४ ॥ व अविमुक्तेश्वर महालिंगकी पूजाकर मनुष्यकृतार्थ होवै और फिर इस संसारमें जन्मधारी कभी न हो-

स्महत ॥ ततोलिङ्गान्तराण्यत्रजातानिक्षितिमण्डले ॥ ८० ॥ अविमुक्तेशनामापिश्रुत्वाजन्मार्जितादघात् ॥ क्षणान्मुक्तोभवेन्मर्त्योनात्रकार्याविचारणा ॥ ८१ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंस्मृत्वादूरगतोपिच ॥ जन्मद्वयकृतात्पापात्क्षणादेवविमुच्यते ॥ ८२ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽविमुक्तमवलोक्यच ॥ त्रिजन्मजनितंपापंहित्वापुण्यमयोभवेत् ॥ ८३ ॥ यत्कृतंज्ञानविभ्रंशादेनःपञ्चसुजन्मसु ॥ अविमुक्तेशसंस्पर्शात्तत्क्षयेदेवनान्यथा ॥ ८४ ॥ अर्चयित्वामहालिङ्गमविमुक्तेश्वरंनरः ॥ कृतकृत्योभवेदत्रनचस्याज्जन्मभाक्कुतः ॥ ८५ ॥ स्तुत्वानत्वार्चयित्वाचयथाशक्तियथामति ॥ अविमुक्तेविमुक्तेशंस्तूयतेनम्यतेऽर्च्यते ॥ ८६ ॥ अनादिमदिदंलिङ्गंस्वयंविश्वेश्वरार्चितम् ॥ काश्याम्प्रयत्नतःसेव्यमविमुक्तंविमुक्तये ॥ ८७ ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानिपुण्येष्वायतनेषुच ॥ आयान्तितानिलिङ्गानिमाघींप्राप्यचतुर्दशीम् ॥ ८८ ॥ कृष्णायांमाघभूतायामविमुक्तेशजागरात् ॥ सदाविगतनिद्रस्ययोगिनोगतिभाग्भवेत् ॥ ८९ ॥ नानायतनलिङ्गानिच

गा ॥ ८५ ॥ व यथाशक्ति यथामति याने अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार काशीमें अविमुक्तेश्वरकीस्तुतिकर व नमस्कारकर व पूजाकर लोकमें प्रशंसाजाता व प्रणमाजाता और पूजाजाताहै ॥ ८६ ॥ जोकि स्वयं विश्वनाथसे पूजित अविमुक्तेश्वरनामक यह अनादिवाला लिंग काशीमें है वह मोक्षके लिये प्रयत्न से सेवने योग्यहै ॥८७॥ व जे अनेक लिंग पुण्य स्थानों में हैं वे सब लिंग माघकी चतुर्दशीको प्राप्तहोकर इसमेंही आते हैं ॥ ८८ ॥ इससे यहां मनुष्य माघबदी चतुर्दशी में जागरण करने से सदा जागतेहुये योगीकी गतिका भागी होताहै ॥८९॥ क्योंकि अर्थ धर्म काम और मोक्षनामक चतुर्वर्गदायक भी अनेक स्थानोंके लिंग माघबदी चतुर्दशी में अविमुक्तेश्वर की

उपासना करते हैं ॥ ९० ॥ और जो धीर मनुष्य अविमुक्तेश्वर लिंगकी भक्तिरूप वज्रको धरताहै तो पाप पर्वत से क्यों डरता है ॥ ९१ ॥ कहां चतुर्वर्ग फलके उदय करनेवाला अविमुक्तेश्वर महालिंग और कहां बहुत थोड़ा पापीका पाप पर्वत याने उसके आगे यह क्याहै जोकि नाम स्मरण सेही नष्ट होजाताहै ॥ ९२ ॥ जोकि अविमुक्तेश्वरनामक उत्तम लिंग काशी में विश्वनाथ से अधिक होकर टिकाहै उसको जिन्होंने नहीं देखा वे विशेष मूढ़हैं ॥ ९३ ॥ व अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर्त्ता को देखकर दोनों हाथ जोड़े दण्डधारी यमराजजी दूरसेही प्रणाम करते हैं ॥ ९४ ॥ और जो जिनसे अविमुक्तेश्वरको देखता है व जिनसे छूताहै उसके उन नेत्रोंका निर्माण धन्यहै और वे

तुर्वर्गप्रदान्यपि ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यामविमुक्तमुपासते ॥ ९० ॥ किंबिभेतिनरोधीरः कृतादघशिलोच्चयात् ॥ अविमुक्तेशलिङ्गस्यभक्तिवज्रधरोयदि ॥ ९१ ॥ क्वाविमुक्तंमहालिङ्गंचतुर्वर्गफलोदयम् ॥ क्वपापिपापशैलोऽल्पोयःक्षयेन्नाम्निसंस्मृते ॥ ९२ ॥ अविमुक्तेमहात्तेत्रेविश्वेशसमधिष्ठिते ॥ यैर्नदृष्टंविमूढास्तेऽविमुक्तंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९३ ॥ द्रष्टारमविमुक्तस्यदृष्ट्वादण्डधरोयमः ॥ दूरादेवप्रणमतिप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९४ ॥ धन्यन्तन्नेत्रनिर्माणंकृतकृत्यौतुतौकरौ ॥ अविमुक्तेश्वरंयेनयाभ्यामेवस्पृष्टयःस्पृशेत ॥ ९५ ॥ त्रिसन्ध्यमविमुक्तेशंयोजपेन्नियतःशुचिः ॥ दूरदेशविपन्नोपिकाशीमृतफलंलभेत ॥ ९६ ॥ अविमुक्तंमहालिङ्गंदृष्ट्वाग्रामान्तरंव्रजेत् ॥ लब्ध्वाशुकार्यसंसिद्धिंक्षेमेणप्रविशेद्गृहम् ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽविमुक्तेशाविर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंवर्णितन्तेग्रतोमया ॥ अथोकिमसिशुश्रूषुःकथयिष्यामितत्पुनः ॥ १ ॥ अगस्त्य

हाथ भी कृतार्थ हैं ॥ ९५ ॥ जोकि नियमवाला पवित्र मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में अविमुक्तेश्वरको जपे वह दूर देशमें मराहुवा भी काशी में मरेका फल पावे ॥ ९६ ॥ और जो अविमुक्तेश्वर महालिंगका दर्शनकर दूसरे ग्रामकोजावे तो शीघ्रही कार्य्य की सिद्धि पाकर कुशल से आकर अपने घरमें प्रवेशकरे ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषानन्दसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितअविमुक्तेश्वरलिंगप्रादुर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालिसयें अध्यायमें बुद्धि शुद्धि मिति मानि। विधि निषेध गोचर गृही धर्म निरूपण जानि ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि मैंने तुम्हारे आगे अविमुक्तेश्वरके माहात्म्य को

कहा अब क्या सुना चाहतेहो उसको फिर कहूंगा ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि मेरे कान अविमुक्तेशकी महिमाको सुन सुनकर शोभन श्रवणवाले हुये तो भी मैं तृप्त नहीं होताहूँ ॥ २ ॥ हे षण्मुख ! अविमुक्तेश्वर लिंग और काशी क्षेत्र इन दोनों की प्राप्ति कैसे होतीहै उसको कहो ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महामते अगस्त्य ! जैसे इस लोकमें मुक्तिदाता इस अविमुक्तकी प्राप्ति होवै वैसे मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ ४ ॥ हे विप्र ! पापसमूह से वाञ्छित अर्थकी सिद्धि मिलती है और वह पुण्य वेद मार्गके सेवनसे होतीहै ॥ ५ ॥ हे मुने ! सदा पापके अवसर को प्राप्त होकर जोकि कलि और काल ये दोनों प्राणियोंको नाशना चाहते हैं वे वेदमार्ग सेवी पुरुषके संस्पर्श से नष्ट

उवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंश्रावंश्रावंश्रुतीमम ॥ अतीवसुश्रुतेजातेतथापिनधिनोम्यहम् ॥ २ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गं क्षेत्रंचाप्यविमुक्तकम् ॥ एतयोस्तुकथंप्राप्तिर्भवेत्षण्मुखतद्वद ॥ ३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणुकुम्भजवक्ष्यामियथाप्राप्तिर्भवेदिह ॥ स्वश्रेयोदातुरेतस्याविमुक्तस्यमहामते ॥ ४ ॥ समीहितार्थसंसिद्धिर्लभ्यतेपुण्यभारतः ॥ तच्चपुण्यम्भवेद्विप्रश्रुतिवर्त्मसभाजनात् ॥ ५ ॥ श्रुतिवर्त्मजुषःपुंसःसंस्पर्शान्नश्यतोमुने॥कलिकालावपिसदाछिद्रंप्राप्यजिघांसतः ॥ ६॥ वर्जितस्यविधानेनप्रोक्तस्याकरणेनवै ॥ कलिकालावपिहतोब्राह्मणंरन्ध्रदर्शनात् ॥ ७ ॥ निषिद्धाचरणन्तस्मात्कथयिष्येतवाग्रतः ॥ तद्दूरतःपरित्यज्यनरोननिरयीभवेत् ॥ ८ ॥ पलाण्डुंविड्वराहञ्चशेलुंलशुनगृञ्जने ॥ गोपीयूषन्तण्डुलीयंवर्ज्यञ्चकवकंसदा ॥९॥ व्रश्चनान्वृक्षनिर्यासान्पायसापूपशष्कुलीः ॥ अदेवपित्र्यंपललमवत्सागोपयस्त्यजेत् ॥ १० ॥ पयएकशफंहेयंतथाकामेलकाविकम् ॥ रात्रौनदधिभोक्तव्यंदिवाननवनीतकम् ॥ ११ ॥ टिट्टिभङ्कलविङ्कञ्चहंसं

होजाते हैं ॥ ६ ॥ व निषिद्ध कर्मके करने और वेदोक्तके न करनेसेही छिद्र देखनेसे कलि और काल भी ये दोनों ब्राह्मणको नाशते हैं ॥ ७ ॥ उससे आपके आगे निषिद्ध आचरणको कहताहूं जिससे उसको दूरसे त्यागकर मनुष्य नरकवासी न होवै ॥ ८ ॥ प्याज ग्राम सूकर लसोढ़ाका फल लहसुन गाजर व दश दिनके भीतर में ब्यानी गऊका दूध व विष्ठामें उपजी चौराई और धरतीका फूल सदा सबको बराना चाहिये ॥ ९ ॥ व छेदने से उपजी वृक्षोंकी गाद व देवता और पितरों के लिये समर्पे विना खीर पुवा सुहारी व मांस और विना बछड़की गऊके दूधको भी त्यागदेवै ॥ १० ॥ एक खुरके पशुका तथा ऊंटका व भेड़का दूध बराने योग्यहै व दिनमें नैनू

सोरठा—जय प्रभु जगदाधार, करुणानिधि करुणायतन । भक्तहेत तन धार, हरत भूमिको भार तुम ॥ जय वृंदावनईश, जय यदुपति जय श्यामघन । जय जय जय जगदीश, चरणशरण मुहिं राखिये ॥ हे वृन्दावनचन्द्र, श्रीगोविन्द सुखकन्द हरि । हरहु सकल दुख द्वंद, काटे गजके फंद जिमि ॥ शिव अज सनत्कुमार नारद, शारद शेष शशि । राखो नाम तुम्हार, शरणागतवत्सल प्रभु ॥ करहु कृपा तुम आज, मूषक वाहन गजवदन । जय गणेश गणराज, कहौं चतुर्थस्कंध अब ॥ दोहा—इसी चतुर्थ स्कंधमें, हैं इकतिस अध्याय । तिनकी भाषा रचत हौं, सुमिरौं श्री यदुराय ॥ कहौं प्रथम अध्यायमें, मनुपुत्रिनको वंश । यज्ञरूप अवतार धर, करें असुरविध्वंस ॥ मैत्रेयजी बोले कि, मनुजीने शतरूपानारीमें विख्यातआकूति, देवहूति, प्रसूति नाम तीन पुत्री और दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ यद्यपि रुचिप्रजापति आकूतिका भाई

श्रीकृष्णाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ॥ स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

अर्थात् मनुका पुत्र था, परन्तु तो भी मनुने शतरूपाकी सम्मतिसे रुचिप्रजापतिके साथ पुत्रिकाधर्मका आश्रय लेकर उसका विवाह कर दिया, पुत्रिकाधर्म उसको कहते हैं कि " यह कन्या विना भाईकी अलंकृत भूषित तुमको देता हूं, इससे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा मैं लूंगा" ॥ २ ॥ ब्रह्मतेजस्वी श्रीभगवान् रुचिप्रजापतिने परमसमाधिसे उसमें एक जोड़ा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जो उनमें पुरुष हुआ वह साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूपधारी थे और जो स्त्री वह नित्य श्रीनारायणके संग रहनेवाली दक्षिणा हुई, यह लक्ष्मीजीका अंशरूप थी ॥ ४ ॥ उस महाप्रकाश अपनी पुत्रीके पुत्रको अत्यन्त प्रसन्नतासे स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और रुचिप्रजापतिने आनन्दसहित दक्षिणाको अपने पास रख लिया ॥ ५ ॥ दक्षिणा जब कामकी इच्छाके योग्य हुई, तब भगवान् यज्ञपतिने उसके साथ विवाह किया और अत्यन्त

प्रसन्न होकर उस दक्षिणामें बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव, रोचन ॥ ७ ॥ यह स्वायम्भुवमन्वन्तरमें तुषित नामके देव हुए, मरीचि आदि ऋषि हुए और यज्ञ सुरगण ईश्वर इन्द्र हुए, श्रीभगवान्जीके छः प्रकारके अवतार ये भी हैं ॥ ८ ॥ राजा मनुके महाबली और अतिपराक्रमी प्रियव्रत, उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए; उनके पुत्र पौत्र नातियोंके वंशमें मन्वन्तर अत्यन्त भर गया ॥ ९ ॥ हे तात! मनुने देवहूतिका विवाह तो कर्दमजीके साथ कर दिया, उसकी कथा तो मैं प्रथम ही आपसे कह आया हूँ ॥ १० ॥ अब भगवान् मनुजीने ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको प्रसूति नाम कन्या विवाह दी, जिस प्रसूतिके

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७ ॥ तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥ १० ॥ दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥ पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमाऽसूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥

वंशका विस्तार संसारमें ऐसा बढ़ा कि जिसका यश आजतक त्रिलोकीमें छा रहा है ॥ ११ ॥ और जो कर्दमजीकी नौ पुत्रियें थीं वे ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियाँ हुईं। उनमेंसे प्रसूतिके जो सन्तान हुईं उनका वृत्तांत मुझसे सुनिये ॥ १२ ॥ मरीचिकी पत्नी कर्दमकी कन्या कलाने कश्यप व पूर्णिमा दो पुत्र उत्पन्न किये उन दोनोंके वंशसे यह सब संसार परिपूर्ण हो गया ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन! पूर्णिमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, विरज व विश्वग। इनके अतिरिक्त देवकुल्यानामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो नारायणके चरण नित्यप्रति प्रेमसे धोती थी और उन्हींके प्रतापसे जन्मान्तरमें आकाशगंगा अर्थात् सुरसरिता हुई ॥ १४ ॥ अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाके सुन्दर यशकर्ता तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो विष्णु

शिवके अंशसे दत्तात्रेय, दुर्वासा, सोम ये तीनों महातेजस्वी हुए ॥ १६ ॥ विदुरजी बोले कि हे गुरो ! अत्रि ऋषिके भवनमें देवताओंमें श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता इन तीनोंने किस कारण आकर अवतार लिया ? सो कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि अत्रिऋषिको ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समझकर ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके लिये प्रेरणा की. उस समय अत्रिऋषि अपनी भार्याको संग ले कुलाचलपर्वतपर ऋक्षनामक तीर्थमें जाकर तप करने लगे ॥ १७ ॥ जहां पुष्पोंके गुच्छे अशोक व पलाशके वृक्षोंमें लाल लाल लटक

विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो॥१६॥मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥ २० ॥ तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥

रहे हैं, उनकी अद्भुत शोभा व निर्विन्ध्या नदीके चारों ओर झरनोंके जलका शब्द हो रहा है ॥ १८ ॥ उस मनोहर स्थानमें सुखदुःखको समान समझकर प्राणायामसे चित्तको रोक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़े हो पवनको भक्ष्य बना तप करने लगे ॥ १९ ॥ और इस प्रकार वे वारवार चिंतन करते थे कि जगदीश्वर जगत्का स्वामी जो है मैं उसकी शरणागत हूँ, वह जैसा आप है इसी प्रकारकी सन्तान मुझको दे ❋ ॥ २० ॥ प्राणायामकी बढ़ी हुई अग्नि जो ऋषीश्वरके शीशमें प्रकट हुई उससे त्रिभुवन तपने लगा, उस समय तीनों देवता अर्थात्

❋ शङ्का–ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिसे कहा कि जो संकल्प आपने अपने मनमें करके तप किया है उसी संकल्पकी सिद्धि होनेके लिये हम तीनों आपके सम्मुख आये हैं, अत्रिमुनिने अपने मनमें जो संकल्प करके तप किया था वह क्या संकल्प था ? जिसको अत्रिमुनिने भी गुप्त रक्खा और ब्रह्मा, विष्णु, महेशने भी गुप्त रक्खा.

उत्तर–अत्रिमुनिने ॐकार अक्षरको ब्रह्मा, विष्णु, शिव समरूप समझकर और ॐकारका रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिवको अपना पुत्र होनेके लिये ॐकारअक्षरका जप किया । ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिके हृदयका गूढार्थ विचार कर तीनों देव अत्रिमुनिके पुत्र हुए, दत्तात्रेयजी, दुर्वासा मुनि और चन्द्रमा ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥ २१ ॥ अत्रिमुनिके स्थानपर गये, जाकर देखा तो अप्सरा, मुनि, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग ये सब देवता अत्रि मुनिके यशका गान करते हैं ॥ २२ ॥ इन तीनों देवताओंके प्रकट होनेसे मुनिका मन चकित हो गया, परन्तु तो भी एकपांवसे खड़े होकर मुनिने श्रेष्ठदेवोत्तमोंका दर्शन किया ॥ २३ ॥ और पुष्पादिक अञ्जलिमें लेकर, प्रसन्न मनसे दण्डवत् प्रणाम कर वृष, हंस, गरुड़पर बैठे और अपने अपने त्रिशूल, कमण्डलु, चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित तीनों देवताओंका पूजन किया ॥ २४ ॥ अनुग्रहकी दृष्टि व मुसकाते मुखसे प्रसन्न जानकर और उनकी सुशोभित कांतिसे मिचे हुए नेत्रोंको मल ॥ २५ ॥ दोनों हाथ जोड़, उनमें ही अपने मनको लगा

अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददृशे विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैस्स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥ कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥ २७ ॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥

कोमल मधुर मनोहर वाणीसे त्रिलोकीनाथोंकी स्तुति कर ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि युगयुगमें सृष्टि, उत्पत्ति, पालन व संहार करनेके लिये विभाग किये हुए मायाके गुणोंसे जिन्होंने देह धारण किये हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो सो आप तीनोंको मैं बारबार नमस्कार करता हूँ, इन तीनोंमेंसे आप कौन हैं ? मैंने तो एकको बुलाया था. इस बातको आप मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ मैंने यहां विविध विधान व अनेक प्रकारके उपचार करके संतान होनेके लिये केवल एक भगवान्का ध्यान किया था, आप तीनों देव कृपा करके यहां कैसे आये क्योंकि आप शरीरधारियोंके मनसे भी दूर हो अर्थात् मनमें नहीं आ सकते ऐसे आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए यह बड़ा आश्चर्य है ॥ २८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि वे तीनों देवश्रेष्ठ इस प्रकार मुनीश्वरके वचन सुनकर कोमलवाणीसे हँसकर कहने लगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जैसा संकल्प आपने किया था, उसी प्रकार हम आये इसमें किंचिन्मात्र भी अंतर नहीं हुआ, आपने हम सबका ही ध्यान किया था ॥ ३० ॥ हे मुने ! इसलिये हम तीनोंके अंशसे जगत्-विख्यात आपके तीन पुत्र होंगे और सब संसारमें आपके यशका विस्तार करेंगे, उसीसे आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे तीनों सुरेश्वर मनोवांछित वर देकर और मुनिसे आदर पाकर उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके सम्मुखमे अपने अपने स्थानको गये ॥ ३२ ॥ कुछ कालोपरान्त ब्रह्माके अंशसे सोम सुत हुआ और विष्णुके अंशसे

मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्त आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥ ३१ ॥ एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥ श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ॥ सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षाद् ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥

योगवेत्ता दत्तात्रेयजी प्रकट हुए और शिवके अंशसे महा ऋषि दुर्वासा उत्पन्न हुए। अब अंगिराऋषिके वंशका वृत्तान्त सुनो ॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धा नाम पत्नीमें चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं—सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति ॥ ३४ ॥ उनके दो पुत्र और हुए, जो स्वायंभुवमन्वन्तरमें विख्यात हैं. एक तो साक्षात भगवान् उतथ्य हुए और दूसरे ब्रह्मज्ञानी सुरगुरु बृहस्पतिजी ॥ ३५ ॥ और पुलस्त्यजीके हविर्भू नाम पत्नीमें अगस्त्यजी उत्पन्न हुए, जो दूसरे जन्ममें जठराग्निरूप हुए और उनके दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा हुआ ॥३६॥

विश्रवाके इडविडाभार्यामें यक्षपति देवता कुबेर हुआ, केशिनी नाम भार्यामें रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र हुए, * ॥ ३७ ॥ हे महामुने ! पुलहकी गति नाम सती स्त्रीमें तीन पुत्र उत्पन्न हुए. कर्मश्रेष्ठ, वरीयान्, सहिष्णु ॥ ३८ ॥ और क्रतुकी क्रियानाम भार्याने ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान साठ सहस्र वालखिल्यादि ऋषि उत्पन्न किये ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! वसिष्ठजीकी ऊर्जा नाम स्त्रीमें चित्रकेतुआदि

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च तथाऽन्यस्यां विभीषणः ॥३७॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यान सूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥ ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्रएव च ॥ उल्वणो वसुभृद्यानो द्युमाञ्छक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥४२॥ भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥

निर्मल ब्रह्मऋषि सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, द्युमान् और दूसरी भार्यामें शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ और अथर्वणकी चिति नाम पत्नीमें धृतव्रत, अश्वशिरा, दध्यंच् नाम पुत्र उत्पन्न हुए । अब हमसे भृगुमुनिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! ख्यातिनाम भार्यामें भृगुजीने धाता विधाता नाम दो पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रील

---

* एक थोड़े पढ़े लिखे पंडित थे, परन्तु बात बनानेमें पहिले सिरके चतुर थे, वे एकदिन किसी शास्त्री पंडितके स्थानपर गये शास्त्रीजीने बड़े आदरसत्कारसे अपने निकट बैठाकर पूछा कि, आप कहांसे आये हैं ? तब पंडितजी बोले कि, श्रीगंगाजीके किनारे मधुसूदनजीके मंदिरमें रामायणकी कथा होती है वहां गया था, शास्त्रीजी बोले कि, कौनसा काण्ड होता है, और आज क्या कथा हुई थी ? पंडितजी बोले कि लङ्काकाण्ड होता है और आज पंडितजीने रामायणका युद्ध इस प्रकार वर्णन किया कि, सब श्रोता पंडितजीको वारंवार धन्यवाद देते थे, शास्त्रीजी बोले कि, आप पंडित होकर [illegible] शब्द बोलते हो (राभण) शब्द नहीं है, रावण है, पंडितजी बोले कि, कुम्भकर्ण, विभीषण, दोनोंके नाममें तो दूसरा अक्षर (भ) है फिर रावणमें भी दूसरा अक्षर (भ) [illegible] चाहिये क्योंकि वह तो सबसे बड़ा था, उसके नाममें दूसरा अक्षर (व) किसी प्रकार नहीं बन सकता, वरन् इसीकी साक्षीमें किसी महात्माने यह श्लोक भी कहा है—

श्लोक—"[illegible]कुम्भकर्णेऽस्ति भकारोऽस्ति विभीषणे । तयोर्ज्येष्ठवरिष्ठे च भकारो न कथं भवेत् ॥

लक्ष्मीजीको उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति, नियति दोनों पुत्री धाता, विधाताको विवाह दीं, धाताके आयति नाम पत्नीमें मृकंड नाम सुत हुआ और विधाताके नियतिनाम भार्यामें प्राण नाम पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥ और मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राणके सुत वेदशिरा मुनि हुए और भृगुके पुत्र भगवान् उशना नाम शुक्राचार्य्य हुए ॥ ४५ ॥ हे विदुर ! मुनीश्वरोंने सृष्टि रचकर इस प्रकार लोकोंकी वृद्धि की ऐसे कर्दमकन्याकी संतति मैंने तुम्हारे प्रति कही है यह श्रद्धासे सुननेवालोंके पापोंको नष्ट करती है ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसूति नाम कन्याके संग विवाह किया ॥४७॥ और उसमें निर्मल कांतिवाली चन्द्रवदनी सोलह पुत्रियें

आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥ मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशनाः सुतः ॥४५॥ त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ ४६ ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ ४७ ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ ४८ ॥ श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ ४९ ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥ शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ ५० ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ॥ ५२ ॥

उत्पन्न कीं, उनमेंसे तेरह तो धर्मको विवाह दीं, एक अग्निको एक पितृगणोंको और एक संसारनाशक शिवजीको विवाह दी. ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति ॥ ४९ ॥ बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति ये तेरह धर्मकी दारा हुईं, श्रद्धाने शुभ नाम पुत्र उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय, शांतिने सुख, तुष्टिने मुद और पुष्टिने गर्व पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प बुद्धिने अर्थ, मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, ह्रीने प्रश्रय पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ और मूर्तिके यहां सब गुणोंके उत्पादक नर नारायण नाम

दो ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके जन्मके समय यह विश्व परमानंदित हुआ ॥ ५२ ॥ और मन, दशों दिशा, वायु, सरित् और सब पर्वत अत्यंत प्रसन्न हुए और स्वर्गमें दुन्दुभि आदि उत्तम उत्तम बाजे बजने लगे, देवता पुष्पोंकी बर्षा करने लगे ॥ ५३ ॥ ऋषीश्वर प्रसन्न हो स्तुति करने लगे, गन्धर्व, किन्नर, मधुर मधुर स्वरोंसे गाने लगे, देवांगना नृत्य करने लगीं, ब्रह्मादिक देवता स्तोत्र पढ़ पढ़ स्तुति करने लगे, इस प्रकार सब संसारमें परम मंगल हो गया ॥ ५४ ॥ सब देवता कहने लगे कि जो भगवान् अपनी मायामें आकाशरूपकी नाईं अपनी आत्माको प्रकाश करनेके लिये आज धर्मके मंदिरमें आद्यऋषि मूर्तिरूप हो प्रकट हुए, उन आद्यपुरुष महात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥

मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ५३ ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत् परममङ्गलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५५ ॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ॥ दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् ॥ ५६ ॥ एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥ ५७ ॥ ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५८ ॥ स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ५९ ॥

॥ ५५ ॥ अपने विचारके बलसे देवता जिनके तत्त्वका अनुमान करते हैं, सो भगवान् जगतकी उत्पत्ति, पालन, और नाशके लिये सत्त्वगुणसे रचित लक्ष्मीके निवासभूत कमलका भी तिरस्कारकर्ता अपने जनोंके सम्मुख करुणायुक्त दृष्टिसे देखें ॥ ५६ ॥ हे विदुर ! इस प्रकार जब देवताओंने प्रार्थना की तब भगवान् नर नारायण देवताओंकी ओर निहार अपनी पूजा अंगीकार कर गन्धमादन पर्वतको चले गये ॥ ५७ ॥ सो ये उन्हीं दोनोंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यहां अवतार धारण किया है । इनमें नरके अंशसे तो कुरुकुलमें अर्जुन उत्पन्न हुआ और साक्षात् नारायणने यदुकुलमें श्रीकृष्णरूप धारण किया ॥ ५८ ॥ अग्निकी पत्नी स्वाहाने महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न किये पावक,

पवमान, शुचि ये उनके नाम हैं ॥ ५९ ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस (४५) अग्नि उत्पन्न हुए, इस प्रकार प्रपिता, पितामह, पिता, पुत्र मिल कर उनचास (४९) अग्नि हुए ॥ ६० ॥ वैदिक कर्मरूप यज्ञमें ब्राह्मण जिनका नाम लेलेकर अग्निदेवताको आहुति देते हैं वे सब अग्नि ये है ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण हैं इनमें कोई साग्नि हैं और कोई अनग्नि हैं। इन सबकी पत्नी केवल एक दक्षपुत्री स्वधा है ॥ ६२ ॥ पितरोंसे स्वधामें दो कन्या उत्पन्न हुई यमुना और धारिणी, वे दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान, विज्ञानमें परायण हुई ॥ ६३ ॥ शिवजीकी पत्नी सती, शिवजीकी सेवा करने लगी, परन्तु सतीको आपके समान गुणवान्, शीलवान् पुत्र प्राप्त

तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ त एवैकोनपञ्चाशत् साकं पितृपितामहैः ॥ ६० ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६२ ॥ तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६३ ॥ भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६४ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥ इति श्री०भ०चतुर्थस्कन्धे मनुकन्यान्वये नरनारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत् कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥

नहीं हुआ ॥ ६४ ॥ दक्षप्रजापतिने शिवजीको सती विवाही; परन्तु अपने समान नहीं समझा और शिवजीके प्रतिकूल चला, तब सतीने रोष करके युवा अवस्था न देखी, छोटी ही अवस्थामें योगाभ्यास करके निर्मल बुद्धिसे अपनी देहका त्याग कर दिया ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मनुकन्यान्वये नर-नारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—कहीं द्वितीय अध्यायमें, प्रजापतिनको यज्ञ । कियो वैर जिमि शंभुसे, दक्षप्रजापति अज्ञ ॥ सुनि मित्रासुतके वचन, विदुर परमसुख पाय । जोरी युगल करकंज पुनि, विनय करत परि पाय ॥ विदुरजी बोले कि शीलवानोंमें शीलसिंधु शिवसे दुहितृवत्सल दक्षप्रजापतिने किसलिये

विद्वेष किया और अपनी कन्या सतीका अनादर क्यों किया ॥ १ ॥ शान्तिरूप, चराचरके स्वामी, द्वेषरहित, जगतपूज्य, त्रिलोकीनाथ, आत्माराम, सुराधीश, ऐसे भोलेभाले, शिवसे दक्षने क्यों विरोध किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जामाता और ससुरमें ऐसा भारी वैर कैसे पड़ गया ? जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको भी त्याग दिया यह सब कथा भिन्न भिन्न कर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि विश्व रचनेवाले मरीचिके यज्ञमें वसिष्ठ नारदादि बड़े बड़े ऋषीश्वर, मुनीश्वर अपने अपने अनुगामियोंसहित देवगण मुनि और अग्नि

कस्ते चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥२॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् जामातुः श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान् सती॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिञ्चिं शर्वं च तद्भासाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधुसत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥

सब इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ उस महासभाका अंधकार अपने तेजकी कांतिसे दूर करते हुए सूर्यके समान प्रकाशवान् दक्षको आता देखकर ॥ ५ ॥ सब सभासद् अपने अपने स्थानोंसे अग्निसमेत उठ खड़े हुए, क्योंकि उसके तेजके प्रभावसे सबके हृदयमें घबड़ाहट उत्पन्न हो गया, परन्तु ब्रह्मा और महादेवजी आसनसे न उठे ॥ ६ ॥ और सब सभासदोंने दक्षप्रजापतिका अत्यन्त आदर सम्मान किया, तब

१ शंका-शास्त्रोंमें लिखा है कि श्वशुरको पिताके समान मानना चाहिये, ऐसी मर्यादाके रक्षण करनेवाले महादेवजी ब्रह्माकी सभामें दक्ष जो सतीके पिता थे और शिवजीके श्वशुर थे उनको देखकर अपने आसनसे क्यों नहीं उठे ? यह बड़ी शंका है,

उत्तर-जब बड़ा राज्य दक्षप्रजापतिको प्राप्त हुआ तब दक्ष सब सज्जन महात्माओंकी निन्दा रात दिन करने लगा और बड़ा अभिमान हो गया, तब सब सज्जनमहात्माओंने दक्षका अभिमान नाश करनेके लिये शिवजीकी प्रार्थना की, तब शिवजी दक्षका मानभंग करनेके लिये बीज उत्पत्ति करनेके वास्ते सभामें आये, उस समय दक्षको देखकर शिवजी नहीं उठे, शिवजीने विचार किया कि उसको देखकर हमको अपने आसनसे उठना चाहिये हम नहीं उठेंगे तो यह महाअभिमानी हमको क्रोधसे कटु वचन कहेगा तब उसके अभिमानका हम नाश करेंगे ॥

[illegible] लोकगुरु ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठ गया ॥ ७ ॥ अपने आनेसे पहिले शिवको बैठा देखा और अपने मनमें समझा कि शंकरने मेरा अनादर किया, क्योंकि मुझको देखकर न उठे, इस बातको न सह सका और कोपदृष्टिसे तिरछे नेत्र कर बोला कि ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मर्षियो ! हे देवताओ ! ! हे अग्निसहित सब जनो ! ! ! सुनो महात्मापुरुषोंका जो उत्तमाचार है, सो कहता हूँ, कुछ अज्ञान और मत्सरसे नहीं कहता ॥ ९ ॥ शिवको कुछ लज्जा नहीं यह लोकपालोंके यशका नाश करनेवाला है, इस अभिमानीने अपने अभिमानसे सज्जनोंके चलाये हुए मार्ग और आचरणोंको दूषित कर दिया ॥ १० ॥ यह मेरा जामाता मेरे शिष्यभावको प्राप्त है, ब्राह्मण और

प्राक् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत् तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्त नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥

अग्निके सम्मुख, गायत्रीसम मेरी पुत्रीका साधुकी नाईं पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और इस मर्कटसम नेत्रवालेने मेरी मृगछौनासी नेत्रवाली भोलीभाली कन्याका पाणिग्रहण करके इसको उचित था कि औरोंके समान उठकर मुझको प्रणाम करता, परंतु इसने वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ इसीलिये मैं अपनी कन्याका इस क्रियारहित, अशुचि, अनाचारी, महाअभिमानी, मर्य्यादाहीनके साथ विवाह करना नहीं चाहता था, परंतु मैंने अपनी मूर्खतासे विना इच्छाके बेटी विवाह दी, जैसे कोई शूद्रको वेदलक्षण सुन्दरवाणी सिखाता है ॥ १३ ॥ यह घोर मर्घटका निवासी, भूत, प्रेत, पिशाचोंके संग रहनेवाला, उन्मत्तके तुल्य, नंगा, शिरके बाल खोले, कभी

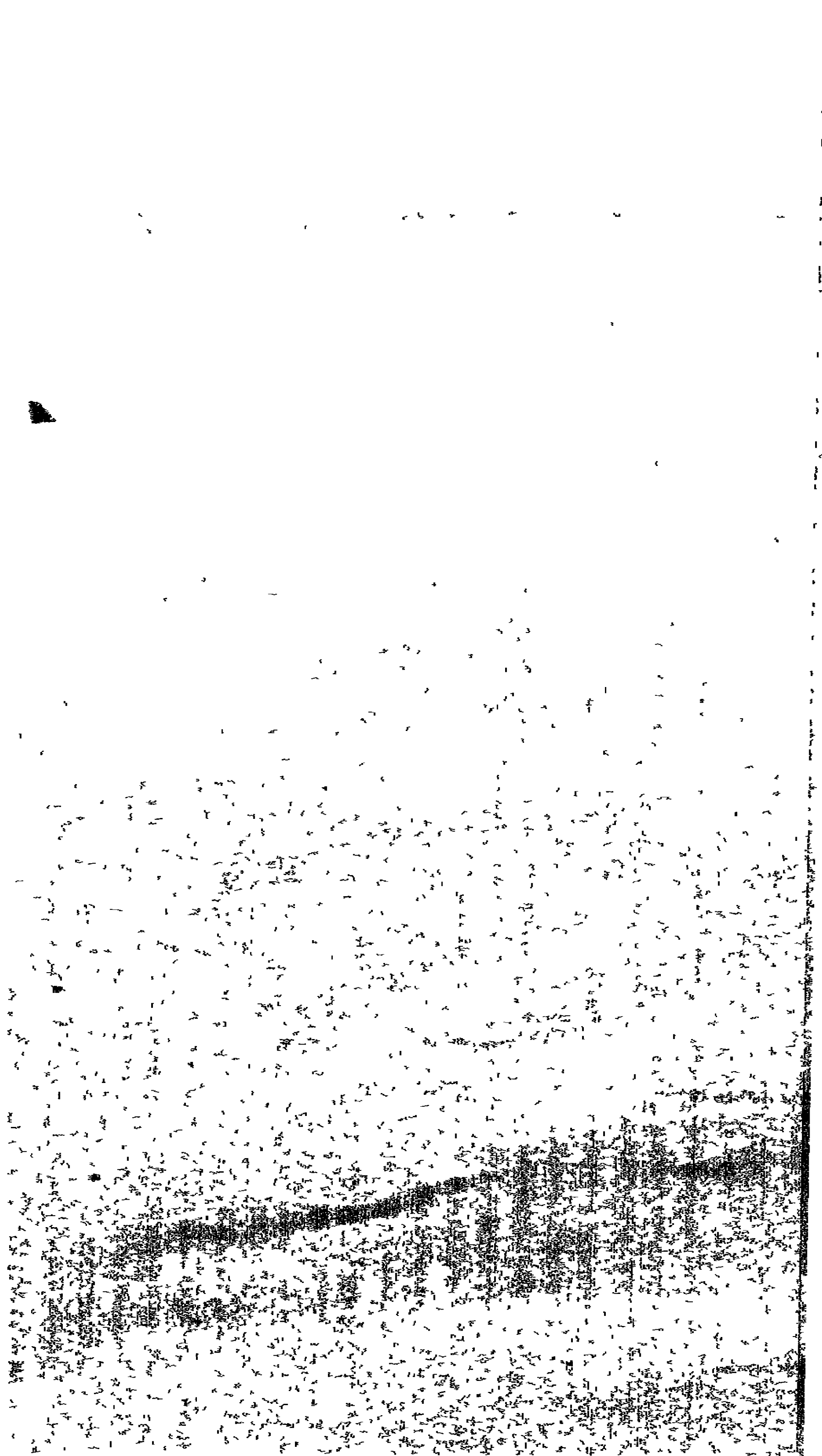

हँसता, कभी रोता फिरा करता है* ॥ १४ ॥ चिताके भस्मको सदा शरीरमें लगाता है, प्रेतोंके मुँड़ोंकी माला सदा कण्ठमें पहनता है, हड्डियोंके गहने पहने श्मशानमें विचरता है, नाम तो लोगोंने इसका शिव रख दिया है, परन्तु निरा अमंगलकी खानि है और उन्मत्त लोगोंमें इसकी प्रीति है. प्रमथ भूतोंका पति यह है इस भूतनाथ, भ्रष्टाचरण, दुष्टहृदय, कठोरचित्त शिवको ब्रह्माके कहनेसे अपनी महामीर्थीसाध्वी सती इस अज्ञानीको विवाह दी. मुझे यह बड़ा भारी खेद है ॥ १५ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने अप्रतिकुल बैठे शिवकी इस प्रकार निन्दा करके वह क्रोधी दक्ष जलका आचमन कर शिवको शाप देने लगा ॥ १७ ॥ कि यह शिव देवताओंके यज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु,

चिताभस्मकृतस्नानः प्रतस्रङ्न्नस्थिभूषणः॥शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥ अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ ॥२०॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१ ॥

देवताओंके संगमें भागका अधिकारी न हो, क्योंकि देवगणोंमें यह अधम है ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! सब सभासदोंमें जो मुखिया थे उन्होंने भी अत्यन्त निषेध किया, तो भी दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर, वहांसे उठ अपने स्थानको चला गया ॥ १९ ॥ शिवजीके गणोंमें प्रधान नंदीश्वरने जब शिवके शाप देनेका समाचार सुना, उस समय महारोषमें भर लाल लाल नेत्र कर महादारुण शाप दिया और जिन ब्राह्मणोंने शाप देनेके समय दक्षकी बढ़ाई की थी, उनको भी शाप दिया ॥ २० ॥ श्रीभगवान् महादेवजी समदर्शी हैं किसीसे द्रोह नहीं

* कवित्त-वेष जगसे निराला पिये भांग भर प्याला, रहैं मतवाला साथी भूतन बनाये हैं । गळ सोहै मुंडमाला कर डमरू विशाला, सदा ओढें मृगछाला चिता, भस्म तनु हैं ॥ एक लाये मसबैल पाला आर्त होत अतिपाला, नाम धरो है अकाला जटा शिर बढ़ाये हैं । ऐसा हृदयका काला कहीं नहीं देखा भाला, वरै नेत्रोंमें ज्वरला व्याल तनु लिपटाये हैं ॥

रखते, ऐसे प्रभुसे द्रोह करके अज्ञानी पृथक् दृष्टिवाला तत्त्वसे विमुख हो ॥२१॥ जो कपटकर्ममें परम प्रवीण गृहोंमें संसारके सुखकी इच्छासे आसक्त हैं, वेदवादियोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य धर्म मानते हैं ॥ २२ ॥ देहको जीवको ईश्वर माननेवाली बुद्धिसे पशुवत् ईश्वर की गति भूल स्त्रीकामी दक्षका थोड़े ही समयमें बकरेकासा मुख हो जाय ॥ २३ ॥ विद्या, बुद्धि, कर्ममयी अविद्यामें यह जड़ हो और यहां जो लोग शिवजीका अपमान करनेवाले हैं और जो उनके साथी हैं वे सदा संसारमें जन्मते मरते रहें ॥ २४ ॥ जिसकी मीठी वाणी पुष्पके समान खिली हुई बहुत सुगंध देनेवाली केवल चित्तको प्रसन्न करनेवाली है, ऐसी वेदवाणीके मोह करानेवाले मधुरवचनसे

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः॥२२॥ बुद्ध्यापराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥२३॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥२४॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥ २६ ॥ तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥ भवव्रतधरा ये च येच तान् समनुव्रताः ॥ पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥

मूर्खोंके मनमथित हो रहे हैं, वे हरद्वेषी सदा मोहको प्राप्त हों ॥ २५ ॥ और ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्य विचाररहित हों, सबके घर भोजन करें, केवल उदरपोषणके ही लिये विद्या, तप, व्रत करें और धन शरीरके सुखके लिये संसारमें याचक बनें और घर घर मांगते फिरें ॥ २६ ॥ द्विजकुलको नंदीने जब इस प्रकार शाप दिया, यह शाप सुन भृगुजीसे न रहा गया और महाकठोर शाप दिया ॥ २७ ॥ जो कोई शिवका व्रत धारण करेगा और उनका अनुवर्ती होकर चलेगा, वह पाखंडी हो सत्शास्त्रोंमें भ्रष्ट होगा ॥ २८ ॥ नष्टाचरण, मूढमति, जटाभस्मधारी, हड्डियोंकी माला पहने, शिवकी दीक्षामें वे लोग प्रवेश करें, जिन्होंने मद्य मांस ही देवताओंके समान पूज्यवर मान रखा है ॥ २९ ॥

ब्रह्म ब्राह्मणोंकी जो तुम निंदा करते हो, यह पुरुषोंकी मर्यादा स्थापक हैं, इसलिये जो शिवके गण हैं, वे सब पाखण्डके आश्रित होंगे ॥ ३० ॥ सनातनधर्मका श्रेष्ठ मार्ग लोगोंका यही है, ऋषीश्वर, मुनीश्वर इसीपर आरूढ़ थे, क्योंकि वेदमार्ग सदा कल्याणदायक है, इसमें भगवान् वासुदेव प्रमाण हैं ॥ ३१ ॥ सो वह ब्रह्म परमशुद्ध महात्माजनोंका सनातन मार्ग है, सो उनकी तुम निंदा करते हो, इसलिये पाखण्डी हो और वहाँ रहो जहाँ भूतेश्वर तुम्हारे देवता हैं ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भृगुजीके मुखसे इस प्रकारका शाप सुना, तब महादेव कुछ विमनसे होकर अपने गणोंसमेत वहांसे उठकर कैलासको चले गये ॥ ३३ ॥ हे विदुरजी ! उन प्रजापति विश्व रचनेवालोंने सहस्र वर्षतक यज्ञ

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ॥ सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥ ३० ॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्यैवं ददतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥ तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयाऽन्विता ॥ विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाऽभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ २ ॥

करके सब श्रेष्ठ पूजनीय विष्णु भगवान्का पूजन किया ॥ ३४ ॥ फिर तीर्थ गंगा यमुनाके संगममें यज्ञान्त स्नान कर, निर्मल चित्त हो, अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥ दोहा-सती तृतीय अध्यायमें, सुनेउ पितागृह यज्ञ । बिन न्यौते लागी चलन, बर्जेउ शिव सर्वज्ञ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सदा इसी प्रकार वैरभाव करते महादेवजीको और दक्षको महान् काल व्यतीत हो गया ॥१॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका अधीश बनाना

नियत किया तो उसको बड़ा गर्व हुआ ॥ २ ॥ तब दक्षने वाजपेययज्ञ कर अपने अभिमानसे ब्रह्मिष्ठोंका निरादर कर सब यज्ञोंमें उत्तम बृहस्पतिसव नामक यज्ञका आरंभ किया ॥ ३ ॥ उस समय यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता, सब अपनी अपनी भार्याओंको शृंगार करा कर अपने अपने संग लाये ॥ ४ ॥ आकाशमें देवगणोंको परस्पर बातें करते जाते देख उनके मुखसे सती दाक्षायणीने अपने पिताके यज्ञका महोत्सव सुना ॥ ५ ॥ और सब दिशाओंसे देवताओंकी स्त्रियें अपने अपने पतियोंको लिये विमानोंमें बैठी पदक कण्ठमें पहने अमूल्य वस्त्र धारण किये जाती हुई ॥ ६ ॥ अपने आश्रमके निकट चञ्चलाक्षी उज्ज्वल रत्नजटित कुण्डलोंसे देदीप्यमान सुन्दर सुन्दर

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ॥ बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥ व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ॥८॥ तस्मिन् भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन् भवताऽभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥९॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥

युवतियोंको निहार उत्कंठित हो अपने पति महादेवसे कहा ॥ ७ ॥ सती बोली कि हे नाथ ! आपके श्वशुर दक्षप्रजापतिके यहां यज्ञ महोत्सवका आरंभ है. हे वाम ! जो आपकी इच्छा हो तो मुझको लेकर आप भी वहां चलिये, अभी वहां यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ है क्योंकि अभी सब देवता बराबर चले जाते हैं ॥ ८ ॥ उस यज्ञमें अपने पतियों समेत मेरी बहिनें भी निश्चय सुहृदोंके देखनेको और उनसे मिलनेको जावेंगी, इससे मेरी भी अभिलाषा है कि आपके साथ चलकर मैं भी अपने मातापितासे मिलूं और उनके दिये वस्त्र आभूषण ले अपने मनकी आशा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे प्राणपते ! मुझको निश्चय है कि अपने भर्ताओं समेत मेरी बहिनें पिताकी बहिनें माताकी बहिनें अवश्य

आवेंगी, सो स्नेह रखनेवाली कोमलचित्तवाली अपनी माताको देखूंगी, क्योंकि मुझको बहुत कालसे उनक देखनेकी उत्कण्ठा है और महा ऋषियोंने जो उत्तम यज्ञ आरंभ कियाहै, उसके देखनेकी भी लालसा है ॥ १० ॥ यद्यपि यह आश्चर्यमय आपकी मायासे निर्मित, त्रिगुणात्मक आपमें जगत् प्रकाश कर रहा है इस लिये आपको तो इस बातका कुछ कौतूहल नहीं, परन्तु मैं जो दीन स्त्रीजाति तुम्हारे तत्त्वको नहीं जान सकती, ऐसी मैं अबला अपनी जन्मभूमिको देखना चाहती हूं, सो हे नाथ! आप मेरे साथ चलिये ॥ ११ ॥ हे संसारनिवर्तक ! हे शितिकण्ठ ! ! और भी तो स्त्रियां पतियोंके संग जा रही हैं, उनको देखो तो कैसे कैसे मनोहर हंसवत श्वेतविमानोंपर

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥ पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकंठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥१२॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ॥ अनाहुता अप्यभियंति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्यवाञ्छितं कर्तुं भवान् कारुणिको बतार्हति ॥ त्वयाऽऽत्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून् यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥

बैठी हुई मेरे पिताके घरको जाती हैं, जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है ॥ १२ ॥ हे मरणधर्मरहित ! पिताके घर कौतुक सुनकर बेटीका चित्त किस प्रकार चलायमान न होगा; पति, गुरु, पिता, मित्र, सुहृद, सम्बन्धी इनके घर तो विना बुलाये भी जानेमें कुछ दोष नहीं है ॥ १३ ॥ हे देव ! सो मेरे ऊपर आप कृपा करके यह मेरी मनोवांछा पूरी करो, आप परमज्ञानी हैं, तो भी मुझपर अनुग्रह करके मुझे दिव्यचक्षु करके आपने अपने अर्द्धांगमें धारण किया है, इस लिये मैं आपसे वारंवार विनय करती हूँ, कि इस समय मुझपर अनुग्रह करना ही उचित है ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब इस प्रकार सतीने शिवजीसे विनय की, तब विश्व रचनेवालोंके सन्मुख दक्षने जो मर्मभेदी कटुवचन

रूपी बाण मारे थे, उनका स्मरण कर सबके सुहृद महादेवजीने अपनी प्रिया सतीसे हँसकर कहा ॥ १५ ॥ शिवजी बोले कि हे शोभने ! यह तेरा कहना बहुत ठीक है कि विना बुलाये बन्धुओंके घर जाय, परन्तु कब ? कि जब जो अपने मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करे तो जानेमें कुछ अपराध नहीं ॥ १६ ॥ और जब विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, कुल ये छः जो सत्पुरुषोंके गुण हैं उनके द्वारा जब असत्तम अतिधूर्तोंसे प्रेरित होते हैं तब उनकी बुद्धि विनष्ट हो जाती है और अभिमान बढ़ जाता है, उस समय मदांध हो महात्माजनोंके

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ॥ स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥ येऽभ्यागतान् वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथाऽरिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥ १९ ॥

पराक्रमको नहीं देखते ॥ १७ ॥ जिनके चित्त ऐसे असावधान हैं, उन असज्जनोंके घरकी ओरको दृष्टि उठाकर देखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि वह कुटिलबुद्धि अपने घर आये हुओंको महाक्रोधसे भ्रुकुटि चढ़ाय तिरछी दृष्टिसे देखा करते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे अभिमानी कुटिल कुटुम्बियोंके दुर्वाक्योंसे जैसी कठिन पीड़ा होती है, ऐसी वैरियोंके शराघातसे शरीर छिन्न भिन्न भी हो गया हो तो भी नहीं होती, क्योंकि जिसके हृदयको शर फाड़कर पार भी निकल जाय उसको भी किसी समय निद्रा आ जाती है, परन्तु दुष्टसंबन्धियोंके दुर्वा

१ शंका–सतीसे शिवजीने कहा कि जो प्राणी अभिमान करके अभ्यागतोंसे द्रोह करता है उसका त्याग करना ही उचित है और उससे बोलना बंद करके सब कामोंमें उस दुष्टको त्याग देना चाहिये, जिन महात्मा और अभ्यागतोंका ऐसा उत्तम माहात्म्य है, वे अभ्यागत कौनसे हैं ?

उत्तर–जो प्राणी कभी भी देहके सुखदुःखको नहीं जानते और भजन करनेमें अत्यंत चतुर हैं ऐसे पुरुषोंकी अभ्यागत संज्ञा है ये ही अभ्यागतलोग त्रिभुवनको पवित्र करते हैं ।

क्योंसे जिसका मर्मस्थान वेधा जाता है, वह दग्धहृदय दिन रात दहता ही रहता है ॥ १९ ॥ हे शुभानने ! यह मैं भलीभांति जानता हूँ कि तुम दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंमें सबसे अधिक प्यारी हो, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं, तो भी उस पिता से तुमको आदर सन्मान प्राप्त न होगा, क्योंकि मेरे नामसे दक्षके हृदयमें ताप आता है ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्ति और यश इसको दुष्टजन उनकी श्लाघा और उच्चपदवीको पहुँच नहीं सकते, वे पापीहृदयवाले कुजन अपने मनमें जलकर उनसे द्वेष करते हैं, जैसे राक्षस हरिसे वैर करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! जो सज्जन पुरुष आपसे बड़ेको देखकर परस्पर उठ खड़े होते हैं, प्रणाम करते हैं, दण्डवत करते हैं यह मर्यादा

व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियाऽऽत्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥ पापच्यमानेन हृदाऽऽतुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथासुरा हरिम् ॥२१॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२॥ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥ २३ ॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥

परमोत्तम है । वे लोग अपने अन्तःकरणसे सर्वान्तर्यामी, परमपुरुष, गुहाशय, ईश्वरका मान करते हैं, कुछ देहाभिमानियोंको नहीं करते सो हम उस समय करते हैं ॥२२॥ विशुद्धसत्त्व वासुदेव शब्द हैं, आवरणरहित पुरुष वासुदेव प्रकाशता है, इससे सब जीवमात्रमें शुद्धसत्त्व भगवान् वासुदेव विराजमान हैं, इससे ऐसे अन्तःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इंद्रियोंसे अगोचर हैं, मैं उनकी प्रणाम द्वारा सेवा करता हूँ ॥२३॥ हे वरारोहे ! यद्यपि दक्षप्रजापति तुम्हारा देहकर्त्ता पिता है, परन्तु तोभी मेरा द्रोही है, तुमको उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसके अनुचर भी मुझसे वैर रखते हैं सब देवता जानते हैं कि मेरा कुछ अपराध नहीं था, फिर भी दक्षने विश्व रचने

वाले प्रजापतियोंके यज्ञमें मुझको दुर्वचन कहकर मेरा अपमान किया ॥ २४ ॥ अतः जो मेरे वचनका उल्लंघन कर दक्षके घर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा; क्योंकि अतिप्रशंसितका अपने सुजनोंसे जो तिरस्कार हो तो मरणके तुल्य होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां उमाशिवसंवादो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ दोहा—हर तज चतुराध्यायमें, सती गई पितु गेह। शंभु भाग देखेउ नहीं, तुरत उठी जर देह ॥ मैत्रेयजी बोले कि शिवजी तो यह बात कहकर चुप होगये, परन्तु मनमें कहने लगे कि सतीके तनुका दोनों ओरसे विनाश हुआ और सती पिताके देखनेकी इच्छा कर महादेवके भयसे कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात् पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० महापु० चतुर्थ० उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन्॥सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रमती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदन्त्यश्रुकुलातिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥ ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात् स्त्रैणविमूढधीर्गृहान् प्रेम्णाऽऽत्मनोयोऽर्धमदात् सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥ ४ ॥ तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥ ५ ॥

आती थी, दुबधामें मन था ॥१॥ सुहृदोंके दर्शनकी इच्छाके नाशसे विमन हो प्रेमके वशीभूत हो रोने लगी और आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली, सती क्रोधमें आकर कांपने लगी और ऐसी विह्वल हुई कि उनके समान दूसरा कोई नहीं था, इस प्रकार भवने भवानीको देखा मानो अभी भस्म कर देगी ॥२॥ फिर वहांसे कठिन श्वास लेती घरसे निकल, शिवको त्याग शोक और क्रोधसे व्यथित हो हृदयमें दुःख मान, स्त्रीस्वभावसे मूढमति सती कि जिनको महात्माजनोंके प्यारे श्रीविश्वनाथ शिवने प्रेमसे अपना आधा अङ्ग बांट दिया, ऐसे भोलेनाथका साथ छोड़ पिताके घरको चल दीं ॥ ३ ॥ तब सतीको शिवके गण नन्दीश्वर आदि चढ़ाय, मैना, गेंद, दर्पण कमल, श्वेतछत्र,

पंखा, माला आदि लिये गाते और दुंदुभी, शंख, वीणा, बांसुरी बजाते प्रसन्न होकर चले ॥ ४ ॥ ५ ॥ चारों ओरसे ब्राह्मण वेदध्वनि करके यज्ञसम्बन्धी पशुको मार रहे हैं, ब्राह्मण पूजन कर रहे हैं, चारों ओर देवता विराजमान हैं, मृतिका, काष्ठ, लोहा, सुवर्ण, कुश और चर्म इनके बनाये हुए पात्र जहां यज्ञशालामें धरे थे उस यज्ञमें सती पहुँची ॥ ६ ॥ परन्तु यज्ञकर्ता दक्षके भयसे माता और भगिनियोंके अतिरिक्त और किसी देव, मुनि, नगरनिवासीने कुशल क्षेम न पूछा और उसकी ओर न देखा, क्योंकि उसके पिताने उसका सम्मान नहीं किया, केवल एक माता और बहिन तो स्नेहके आंसू भर गद्गद कण्ठसे प्रीतिसहित आनंदसे मिलीं ॥७॥ पिताके अनादर और अवज्ञासे

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥ ६ ॥ तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सौदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्त्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ आनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह सामर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान् निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥

माता और मौसियोंके उत्तम आसनका देना और निरादरसे शुश्रूषाका करना सतीने कुछ स्वीकार न किया और बहिनोंने कुछ रीति प्रीतिकी बातें कीं; परन्तु सतीने उनका कुछ ध्यान न किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस यज्ञमें कहीं शिवजीका भाग नहीं देखा, तो समझा कि विश्वेश्वर विभुका विना अपराध निरादर किया, ऐसे अभिमानीके यज्ञको देख भुवनेश्वरी भवानी महाक्रोधमें भर गयीं, मानो अभी त्रिलोकीको भस्म कर देंगी, इस प्रकार यज्ञशालामें सतीने रोष किया ॥ ९ ॥ तब भूतगण दक्षके मारनेको दौड़े उस समय अपने तेजसे

१ शंका–दक्षने अपने यज्ञमें शिवकी निन्दा करनेके लिये क्या चिन्ह कर रक्खा था, जिस चिन्हको देखकर सती भस्म हो गयी?
उत्तर–दक्षने अपनी यज्ञशालाके एक खम्भेमें अपने हाथसे ऐसा लिखकर लगा दिया था कि सबके लिये सूचना की जाती है कि इस हमारे यज्ञमें जो कोई प्राणी शिवका नाम मुखसे–

शिवगणोंको रोककर शिवद्रोही कर्ममार्ग करनेसे जिसको अभिमान हुआ, उस अभिमानी और अज्ञानी दक्षको सब सभाके सम्मुख गम्भीर वाणीसे धिक्कार देकर ॥ १० ॥ सती बोली—सब शरीरधारियोंके प्रिय आत्मा, अचिन्त्यरूप, चिदानन्द, ऐसे भोले भाले शिवजी, न तो कोई इनसे बड़ा न किसीके शत्रु, सबके आत्मा, उनसे तेरे बिना कौन शत्रुता करे ? ॥ ११ ॥ हे द्विज ! औरोंके गुणोंमें साधु दोष ग्रहण नहीं करते हैं, तुम सरीखे निंदक. खोटे मनुष्य दूसरेके गुणोंमें दोषोंको ही ग्रहण करते हैं वे अधम हैं और महापुरुषगण परायेके थोड़े गुणोंको बहुत करते हैं और मध्यस्थ पुरुष अपने ज्ञानसे यथावस्थित गुणदोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं, वे केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, दोषोंपर

श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायिनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥ दोषान् परेषां हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विजः॥गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु ॥ सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजस्सु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यद्व्द्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ॥ पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्य शासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥

ध्यान नहीं देते, वरन् थोड़ेसे गुणोंको अधिक करके मानते हैं, अरे शठ ! ऐसे सज्जन पुरुषोंका तूने अपमान किया है ॥ १२ ॥ शरीरको ही आत्मा माननेवाले नीचलोग सदा ईर्षासे महत्पुरुषोंकी निन्दा करते हैं, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, क्योंकि महात्माजनोंके चरणारविंदोंकी रजसे और प्रतापसे शठ और दुष्टजनोंके लिये निन्दा ही शुभ है ॥ १३ ॥ शिव यह जो दो अक्षरका नाम है, जो कोई किसी प्रकारसे एक वार भी यह नाम अपने मुखसे लेता है, उसके पापोंका तत्क्षण ही विनाश हो जाता है, ऐसे आनन्दस्वरूप जिनकी

—उच्चारण करेगा वह प्राणी उसी समय यज्ञशालासे बाहर निकाल दिया जायगा जो कदापि हमारा पिता ब्रह्मा भी इस यज्ञमें शिवका नाम लेगा तो वह भी यज्ञसे बाहर निकाल दिया जायगा और दूसरे प्राणीकी क्या सामर्थ्य है ? भावीके वशीभूत होकर सब मुनि भी दक्षके त्राससे डर गये, इसीलिये दक्षको उत्तर नहीं दिया कि यह दुष्ट क्या अन्याय करता है जो खम्भेमें शंकरकी ऐसी निन्दा लिखी है उसी निन्दाको खम्भेमें लिखी हुई देखकर सतीको क्रोध हुआ और दक्षके यज्ञकी अग्निमें जलकर भस्म हो गयी.

आज्ञा संसारमें कोई उल्लंघन न कर सके, तू ऐसे सर्वशक्तिमान् शिवजीका द्रोह करता है, तेरा कल्याण कभी न होगा ॥ १४ ॥ अरे ! जिन कैलासपति महादेवजीके पदपंकजकी रज ब्रह्मरजसे मिली हुई मकरंदकी इच्छावालोंके मनरूपी भ्रमरोंसे सेवित सब लोकोंके मनकी कामना पूर्ण करनेवाले विश्वबंधुसे तूने द्वेष किया है ॥ १५ ॥ जिन शिवको तू अशिव कहता है, क्या तेरे अतिरिक्त ब्रह्मादिक उनको नहीं जानते ! श्मशानमें जटा फैलाये, चिताभस्म शरीरसे लगाये, मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण किये, भूतगणोंको साथ लिये, पिशाचोंमें वास करते हैं, तो भी उनके चरणकमलकी रज ब्रह्मादिक अपने मस्तकपर धरते हैं ॥ १६ ॥ धर्मके रक्षक ईशकी निरंकुश होकर जहां लोक

यत्पादपद्मं महतां मनोलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥ १५ ॥ किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाश्मशाने ॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत् पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥ १६ ॥ कर्णौ पिधाय निरियाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥ १७ ॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥ न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ॥ तथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत् स्थितः ॥ १९ ॥

निन्दा करते हों और वहां अपनी कुछ पार न बसाय, तो कान बंद करके वहांसे उठ जाय और जो निन्दकके मारनेका सामर्थ्य हो, तो जैसे बने वैसे उसकी जिह्वा काट कर खंडखंड कर डाले; फिर अंतको अपने प्राण त्याग कर दे यह सनातन धर्म है ॥ १७ ॥ हे नीलकण्ठके निंदक ! तेरे शरीरसे जो यह मेरा देह उत्पन्न है, इस देहको नहीं रखूंगी, क्योंकि जो कोई भूलसे अशुद्ध अन्नका भोजन कर ले, वह वमन कर नेसे ही शुद्ध होता है ॥ १८ ॥ अपने आत्मस्वरूपमें रत रहनेवाले महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें प्रीति नहीं करती, जैसे देवता और मनुष्योंकी गति अलग अलग है, एक संग नहीं हो सकती, इस लिये प्रवृत्तिमार्ग हो अथवा निवृत्ति मार्ग हो, परन्तु अपने धर्ममें स्थित

होकर किसीकी निंदा करनी उचित नहीं ॥ १९ ॥ मुनियोंने दोनों मार्ग सत्य कहे हैं, प्रवृत्ति कर्ममें अग्निहोत्रादिक करना चाहिये और निवृत्तिकर्ममें शम, दमादि, सत्य भाषण, राग और वैराग्य, इन दोनों चिह्नोंका आश्रय करना चाहिये, यह सब वेदने बहुत विचार करके कहा है और जो मनुष्य इन दोनों कर्मोंको एक ही समय करे तो यह परस्पर विरोधी हो जाते हैं और शिव तो परब्रह्म ईश्वर हैं, वे चाहे ईश्वरकी आज्ञा मानें, चाहे न मानें उसपर वेदकी आज्ञा नहीं है ॥ २० ॥ हे पितः ! जो पदवी हमको प्राप्त है वह तुमको कभी नहीं मिल सकती, क्योंकि हमारी इच्छामात्रसे अणिमा, महिमादिक सिद्धियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिनका बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, जो अन्न

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ॥ विरोधि तद्योगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥ २० ॥ मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥ २१ ॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत् कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥२२॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥ २४ ॥

खानेवाले प्राणपोषी, यज्ञशालामें हवन कर धूममार्ग करके जो सेवन करते हैं उनको प्राप्त नहीं होती, हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रकट हैं, अवधूत लोग जिनकी सेवा करते हैं ॥ २१ ॥ अरे शिव-अपराधी ! तुझसे जो यह मेरा देह उत्पन्न हुआ है इस देहसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं, तुझसरीखे कुमति दुर्जनके नामसे मुझे लाज आती है, उसके जन्मको धिक्कार है, जो महात्माओंका निंदक है ॥ २२ ॥ भगवान् शिव वृषध्वज हाँसीसे भी कभी पुकारेंगे हे दक्षसुते ! उस समय मुझे महाक्लेश होगा और मुसकान मान तज लज्जित होना पड़ेगा, इस लिये वह अधम शरीर जो तुझसे उत्पन्न हुआ है उसका मैं अभी त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे शत्रुहन् ! इस प्रकारकी

बातें सती दक्षसे कह मौन हो उत्तरकी ओरको मुख करके बैठ गयीं और आचमन कर, पीतवसन धार, नेत्र मूंदकर, योगमार्गका साधन करने लगीं ॥ २४ ॥ और आसनको जीत प्राण, अपान पवनको नाभिचक्रमें समान कर वहांसे उदानवायुको उठा, बुद्धिके साथ हृदयमें स्थित कर अनिन्दित होकर कंठमार्गसे भ्रुकुटीके मध्यमें लाकर स्थापित किया ॥ २५ ॥ इस प्रकार महात्माजनोंके परमपूज्य सदाशिवने जिसको आदरसम्मानसे गोदीमें रखा ऐसे अपने कोमल शरीरको त्यागती हुई दक्षप्रजापतिपर क्रोध कर मनस्विनी सतीने अपने शरीरमें पवन और अग्निकी धारणाको धारण किया ॥ २६ ॥ और जगद्गुरु शिवजी अपने पतिके चरणकमलका चिंतन करने लगी, उस निर्दोप

कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥ २५ ॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥ २६ ॥ ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ॥ ददर्श देहं हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥२७॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ॥ हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥२८॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजा ॥ जहावसून् यद्विमताऽऽत्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥ वदत्येव जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥

सतीने औरको नहीं देखा और पापरहित हो समाधिके अनलसे अपने गात्रको भस्म कर दिया ॥ २७ ॥ उस समय देखनेवालोंका पृथ्वी और आकाशमें महाभयानक हाहाकार शब्द हुआ, कि खेद है कि शिवजीकी प्रिया सतीने दक्षके निरादरसे क्रोधित होकर अपना तनु त्याग दिया ॥ २८ ॥ अहो प्रजाओ ! इस महादुरात्मा चराचरके प्रजापतिकी घोर दुष्टता तो देखो, जिसके अनादर करनेसे अनेक प्रकारके मान करने योग्य निष्पाप सतीने अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ २९ ॥ सो यह अत्यन्त क्रोधी, कठोरहृदय, शिवद्रोही, लोकमें बड़ी दुर्नामताको प्राप्त होगा, क्योंकि जिसने अपने अपराधसे मरती हुई पुत्रीको नहीं बचाया ॥ ३० ॥ इस प्रकार परस्पर लोग बातें कर रहे थे,

उसी समय अद्भुत सतीका देहत्याग देखके महादेवके पार्षद आयुध ले लेकर दक्षके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ गणोंके आनेका वेग सुनकर भगवान् भृगुजी यज्ञके नाशकोंके नाशक यजुर्वेदमंत्रकी आहुतिसे दक्षिण अग्निमें होम करने लगे ॥ ३२ ॥ भृगुजीके हवन करनेसे और अपने तपके बलसे अमृत पिये हुए सहस्रों ऋभु नामक देवता बड़े वेगके साथ वेदीसे उठकर निकल पड़े ॥३३॥ वे हवनकी अधजली लकड़ी हाथमें लिये सुन्दर ब्रह्मतेजसे बढ़े हुए ऋभुनामक देव गणोंको मारने लगे, सो सब प्रथम गुह्यक शिवके पार्षद यक्षोंसमेत भूत प्रेत सब दिशाओंको भागने लगे ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां सतीदेहत्यागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभाग०म०चतुर्थ०सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरैर्भुभिर्वि द्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धस्सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसो त्थितोहसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन् दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥

दोहा–इस पंचम अध्यायमें, सतीमरण सुन ईश । वीरभद्र भेजो तुरत, हरो दक्षको शीश ॥ मैत्रेयजी बोले कि दक्षप्रजापतिके निरादरसे सतीके तनुका त्याग और अपने पार्षदोंकी सेनाका ऋभु नामक देवताओंसे विद्रावण शिवजीने जो नारदके मुखसे सुना तो महादेव जीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ और क्रोधित होकर दांतोंसे होठोंके पुट दबा धूर्जटि रुद्रने झट उठकर भयंकर रूपमे अट्टहासके साथ महाघोर नाद कर बिजलीकी अग्निके समान बालोंकी उग्रकांतिवाली जटाको उखाड़कर पृथ्वीपर दे मारी ॥ २ ॥ जटाको धरणीपर पटकते ही उसमेंसे एक वीरभद्रनामक पुरुष प्रकट हुआ । महादेहधारी, स्वर्गतक लम्बा शरीर, सहस्रभुजा, मेघवत वर्ण, तीन सूर्यके समान

लाल लाल नेत्र, महाविकराल डाढ़ें, प्रज्वलित अग्निसदृश बाल, कपालमाला धारण किये अनेक प्रकारके उठे हुए आयुध हाथोंसे लिये श्रीभूतनाथके सम्मुख हाथ जोड़कर विनती करने लगा ॥ ३ ॥ कि हे नाथ ! मैं क्या करूँ मेरे लिये क्या आज्ञा है ? इस प्रकार वीरभद्रको हाथ जोड़े खड़ा देख भगवान् भूतेश्वर बोले, कि हे रुद्र ! हे भट ! तू मेरे सब भटोंमें अग्रणी हो, क्योंकि तू मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है, अभी दक्षका नाश कर, तुझ विना दक्षको और कोई नहीं मार सकेगा ॥ ४ ॥ हे विदुर ! अत्यन्त क्रुद्ध श्रीमहादेवजीकी आज्ञा पा वीरभद्र देवोंके देव, सर्वसमर्थ शिवजीकी परिक्रमा करके उस समय अप्रतिमवेगसे वह अपने आपको महाबलियोंका बल विनाश करनेको बलवान् जानता

तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥ ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदाऽऽत्मानप्रसङ्गरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः सह रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥७॥ वाता न वान्ति नहि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ॥ गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥

था ॥ ५ ॥ अत्यन्त गम्भीर नाद करनेवाले रुद्रपार्षदोंको संग ले वीरभद्रने महाभयंकर शब्द कर, मृत्युका नाश करनेवाला, त्रिशूल हाथमें ले जिसके चरणोंके घुँघरुओंके शब्दसे दिग्गजोंको शब्दायमान करता, वीरोंका मान हरता, धरणीको धमकाता, पर्वतोंको गिराता, दक्षके देशकी ओरको धाया ॥ ६ ॥ जब दक्षका मख पांच योजन रहा तब ऋत्विज, यजमान, सभापति, ब्राह्मण, उत्तर दिशाकी ओर धूल उडती और महा धुंधकार देख परस्पर विचार करने लगे कि आज उत्तरकी ओर यह कैसा अंधकार है ? अरे ! यह धूल कहांसे आयी ? ॥ ७ ॥ ऐसी तीव्र पवन भी नहीं चलती ? चोर भी नहीं हैं उनका उग्र दंडदाता राजा प्राचीनबर्हि अभी जीता है और गौवोंके आनेका भी यह

समय नहीं है, तो फिर यह धूल कहांसे आती है? आज सब संसारकी प्रलय तो नहीं हो जायगी? यह आश्चर्य देख सब चकित हो रहे थे ॥ ८ ॥ प्रसूति आदि सब स्त्रियें उद्विग्न मन कर बोलीं-अरी! यह वही अपराध है, जो सब बेटियोंके देखते देखते निरपराधिनी अपनी सुता सतीका दक्ष अन्यार्यीने अनादर किया ॥ ९ ॥ जो भूतेश्वर त्रिभुवननायक शिव अंतकालमें जटाजूट फैला अपने त्रिशूलके अग्रभागमे दिग्गजोंको निर्मूल करते हैं और जब अस्त्रोंको उठाकर भुजारूपी ध्वजाओंको फैलाकर और उच्चाट्टहाससे गर्जनशब्द करके दशों दिशाओंके दिग्गजोंको विदीर्ण कर नाचते हैं ॥ १० ॥ क्रोधका तेज जिनका सहा नहीं जाय उन महाक्रोधीकी क्रोधभरी भ्रुकुटीसे और कठिन

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥ यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥ यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्निरीक्ष्यं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः॥११॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥ तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥

कराल दाढ़ोंसे बिखेर दिया है सर्वत्र नक्षत्रमंडल जिन्होंने और प्रलयकालकी ज्वालावत् लाल लाल तीन नेत्र हैं विशाल जिनके, ऐसे प्रचण्ड अखण्ड तेजवान् शिव शूलपाणिके कोपसे ब्रह्माभी सुख नहीं पासकता॥११॥इस प्रकार महात्मा दक्षके यज्ञमें उद्विग्न दृष्टि कर परस्पर वार्ता कर रहे थे, इतनेमें अनेक भांतिके सहस्रों उत्पात महाभयदायक पृथ्वी और आकाशमें होने लगे ॥१२॥ हे विदुर! इतनेमें अनेकप्रकारके अस्त्रशस्त्रलिये, काले पीले वेष किये, मगरके समान जिनके उन्नत मुख, वामन आदि अनेक शंकरकिंकर, रुद्रगणोंने दक्षके यज्ञको चारों ओरसे घेर लिया * ॥१३॥

१ शंका-दक्षके यज्ञकी ब्राह्मणोंने वेदके मंत्रोंसे रक्षा की थी और जब वीरभद्रने यज्ञका विध्वंस कर डाला तब उन वेदके मंत्रोंने देवरूप होकर यज्ञकी रक्षा क्यों नहीं की?

उत्तर-जब यज्ञके हवनकुंडमें सती जलकर भस्म हो गई तब सतीके शरीरको देखकर भविष्यके जाननेवाले मुनियोंने जान लिया कि यज्ञ अब बहुत शीघ्र भ्रष्ट होगा देर नहीं है, ऐसा जानकर बहुत शीघ्र वेदके मंत्रोंको विसर्जन कर दिया,

किसीने यज्ञशालाके पूर्वपश्चिम स्तंभके समीप पश्चिमको जो देवशाला प्राग्वंश था उसको तोड़ा, किसी गणने यज्ञशालाके पश्चिम और पत्नीशाला थी उसको फोड़ा, यज्ञशालाके आगे स्थित सभा मंडप था किसीने उसको तोड़ा, सभाके आगे अग्नि धरनेकी शाला थी किसीने उसको तोड़ा, किसीने यजमानोंके घर तोड़े किसीने पाक भोजनशाला तोड़ डाली ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड़ कलश फोड़ दिये, किसीने अग्नि बुझा दी, किसीने कुंडमें मूत दिया, किसीने वेदी और मेखलाका भेदन कर दिया ॥१५॥ कोई कोई मुनियोंको मारने लगे, कोई स्त्रियोंको भयानक वेष दिखाकर डराने लगे, किसीने देवताओंको खड़ा देखकर पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमानने भृगुको बांध लिया, वीरभद्रने दक्षको घेर लिया, चंडीशने पूषादेवको पकड़ा, नंदीश्वरने भगदेवको पकड़ा ॥ १७ ॥ शिवके

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथा परे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ॥ भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसत् श्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥ भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्यरुषा भुवि ॥ उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥ पूषणश्चापातयद्दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन् दतः ॥ २१ ॥

गणोंने और पार्षदोंने उनके तक तककर ऐसे पत्थर मारे कि जिससे ऋत्विज, सभासद, सब देवता, अत्यन्त पीड़ित होकर चारों ओरको भाग गये ॥ १८ ॥ हाथमें स्रुवा लिये जो हवन कर रहे थे उन भृगुजीकी दाढ़ी मूंछें पकड़कर वीरभद्रने उखाड़ डालीं, क्योंकि शिवशापके समय भृगु मूछोंपर हाथ फेरकर हँसे थे ॥ १९ ॥ भगवान् वीरभद्रने भगदेवताकी आँखें निकाल लीं क्योंकि शापके समय दक्षको उसने सभामें सूचना की थी ॥ २० ॥ और पूषाकी गर्दन पकड़कर उसके दांत उखाड़ डाले, जैसे बलदेवजीने कलिंग देशके राजाके दांत तोड़ डाले थे; इसी प्रकार पूषाके दांत झाड़ दिये, क्योंकि यह भी शिवजीको शाप देते समय दांत दिखाकर ठट्टे मार मार कर हँसा था ॥ २१ ॥

दक्षकी छातीपर चढ़कर वीरभद्र महातीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसका शिर काटनेको उद्यत हुए, तो भी काटनेको समर्थ न हुए॥२२॥जब अस्त्रशस्त्रोंसे उसकी त्वचा न कट सकी तब वीरभद्रको बड़ा विस्मय हुआ और पशुपतिको मनमें धार बहुत कालतक विचार करता रहा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति वीरभद्रने उस यज्ञमें कंठ घोटकर मारनेका उपाय देखकर यजमान, पशुरूप दक्षका शिर पराक्रम करके देहसे मरोड़कर उखाड़ लिया ॥ २४ ॥ बहुत अच्छा हुआ, यह उसके कर्मकी जहाँ तहाँ भूत-प्रेत-पिशाचोंमें प्रशंसा हुई और दक्षके पक्षमें महाशोक संताप हुआ ॥ २५ ॥ उस समय वीरभद्रने अत्यन्त कोधित होकर दक्षका शीश दक्षिणाग्निमें हवन कर दिया और यज्ञस्थानको विध्वंस कर फूंक पजार

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् त्र्यम्बकस्तदा ॥२२॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन् दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥२६॥ इति श्रीभा० म० चतु० वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ उच्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥

अपनी भूतसेनाको संग ले कैलासको चले गये ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा-इसी षष्ठ अध्यायमें, ब्रह्मादिक सब देव । दक्ष जिवावन हेतु सब, गये जहां महादेव ॥ १ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब सब देवगण शिवकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश, निस्त्रिंश, गदा, परिघ, मुद्गर इत्यादिसे मारे गये तब टूटे, कटे अंगभंग सब देवताओंने डरके मारे अत्यन्त व्याकुल होकर ऋत्विक् और सभापतियोंको संग ले ब्रह्माके समीप जा नमस्कार कर सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २ ॥ परन्तु इस भविष्यवृत्तान्तको कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण पहलेसे ही जानते थे,

इसी लिये वे दोनों दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ देवताओंकी दुहाई सुनकर ब्रह्माजी बोले कि तेजवंतोंका अपराध किया हो और दूसरा उस अपराधका बदला चाहे, तो उसका मनोरथ उसको फलदायक न होगा ॥ ४ ॥ यद्यपि उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा भी किया, तो भी तुम सब उनके अपराधी हो, क्योंकि सदा यज्ञमें शिवको भाग मिलता रहा और आज शिवका भाग नहीं निकला; अब तुम शीघ्र चित्त शुद्ध कर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवके चरण पकड़कर उनको प्रसन्न करो, तो वे तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे ॥ ५ ॥ मैं यह चाहता हूँ कि, दक्ष उठें और यज्ञ फिर हो, जिन महादेवके कोपसे लोक पालसहित लोक नष्ट हो जाते हैं, उन सदाशिवके पास जाकर शीघ्र निवेदन करो, जो कि

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृत किल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥५॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥७॥ स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥ ८ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥ नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मनानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥

दुष्टदक्षके दुर्वाक्योंके बाणोंसे उनका हृदय विंध रहा है ॥ ६ ॥ और उन स्वाधीन शिवके तत्त्व और पुरुषार्थके प्रमाण और बलवीर्यको न तो मैंने जाना और न विष्णु भगवान् जान सकते हैं, न तुम लोग जान सकते हो और दूसरे पुरुषका तो क्या सामर्थ्य है ? ॥ ७ ॥ फिर ऐसे अब सरपर क्या उपाय बन सकता है ? ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओंको समझा बुझा पितरोंको और प्रजापतियोंको संग ले अपने स्थानसे जहां त्रिपुरारी शिवजीके रहनेका परम श्रेष्ठ आश्रम जो पर्वतोत्तम कैलास है वहांको चले ॥ ८ ॥ जहां जन्म, ओषधि, तप मंत्र और योगकी सिद्धि रहती हैं और किन्नर, गधर्व, अप्सरा नित्य वसते हैं ॥ ९ ॥ नाना प्रकारके मणिमय शृङ्गवाले गेरूआदि धातुओंसे और

चित्र विचित्र रंगोंसे शोभा हो रही थी और भांति भांतिके वृक्ष, लता, गुल्म, फूल फलोंसे भरे लटक रहे थे, नानाप्रकारके मृगोंके समूह जहां तहां दौड़ते फिरते थे ॥ १० ॥ नानाप्रकारके निर्मल झरने झर रहे थे, अनेक प्रकारकी कंदरा और शिखर शोभा दे रहे थे, उनमें सिद्धलोगोंकी युवतियें अपने अपने पतियोंके संग अत्युत्तम रीत् प्रीतिसे विहार कर रही थीं, मयूर अपनी मयूरनियोंके संग उमंगमें भर मधुरवाणी बोल रहे थे,कामांध भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गुंजार रही थीं,॥ ११ ॥रक्तनेत्रवाली कोकिला कुहू कुहू शब्द उच्चार रही थीं और अनेक प्रकारके पक्षी अपनी अपनी मनोहर बोलियां बोल रहे थे ॥ १२ ॥ मनकी अभिलाषाके पूर्ण फलदायक वृक्षोंकी शाखा ऊंचे

नानामलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ॥ रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुत मदान्धालिविमूर्च्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥१५॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वीरवेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥ पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ॥१७॥

ऊंचे पर्वतोंपर पवनके झकोरोंसे ऐसे झूम रही थीं मानो हाथ उठा उठाकर पर्वत पक्षियोंको बुला रहे हैं; मंद मंद गति हाथियोंकी ऐसी दृष्टि आती थी मानो पर्वत चल रहे हैं, झरनोंकी ध्वनि ऐसी सुनायी आती थी मानो भूधर परस्पर बातें कर रहे हैं ॥ १३ ॥ और वहां मंदारपारिजात, सरल, ताल, तमाल, शाल, कोविदार, असन, अर्जुन ॥ १४ ॥ आम, नीम, कदंब, पुन्नाग, नागकेसर, चंपक, गुलाब, अशोक, बकुल, कुंद, कुरबक, ॥ १५ ॥ स्वर्णपर्ण, शतपत्र, अनेक प्रकारकी बांसी, कुब्जक, मल्लिका, माधवीलताकी न्यारी ही शोभा थी ॥१६॥ पनस, पलाश, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, वट, हींग, भोजपत्र, ओषधी, सुपारी, मोटी सुपारी, जामन ॥ १७ ॥ राजपूग, खजूर,

आम्रातक, आमले, प्रियाल, मधुक, इंगुदी, हिंगौट आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंकी शोभा हो रही थी ॥ १८ ॥ और भी अनेक जातिके वृक्ष और वेणु कीचकोंसे शोभायमान थे। कहीं तालोंमें कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतपत्र जातिकी कमलिनी खिल रही थीं, सरोवरोंमें मनोहर पक्षियोंके वृन्दोंकी कलकल ध्वनि मनको मोह लेती थी। मृग, शाखामृग, मर्कट, सिंह, सूकर, ऋक्ष, सेही, ॥ १९ ॥ गवय, रोझ, कस्तूरीमृग, भेड़िये और महिषादिक पशु जहां तहां घूम रहे थे, कर्णोंमें आंतवाले पशु, एक पगके जीव, घुड़मुहे पशु, वृक, कस्तूरीमृग और केलेके समूहोंसे ढकी हुई कमलनियोंकी शोभा हो रही थी ॥ २० ॥ आगे बढ़कर देखा तो नंदानाम गंगा चारों ओर बह रही है, तटके

द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥१८॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैरृक्षशल्यकैः ॥१९॥ गवयैर्नाभिभिर्व्याघ्रैर्निर्जुष्टं महिषादिभिः ॥ कदलीषण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ २० ॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥२१॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ॥ वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नामपङ्कजम् ॥२२॥ नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ॥ तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥ २३ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥ २४ ॥

निकट जल चला जाता है और सतीजीके स्नानकी सुगंधिसे पुण्य रूप हो रही है और जहां तहां पुलिन कदलीबनसे घिरे हुए ऐसे सुन्दर शोभायमान शिवजीके परमोत्तम कैलासपर्वतको देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २१ ॥ और उसके निकट अतिरमणीक अलकानाम्नी कुबेरकी पुरीको देखा और सौगंधिक नामक कमलोंका वन दृष्टि आया ॥ २२ ॥ श्रीपति भगवान् वासुदेवके पदपंकजकी रेणुसे परमपवित्र नंदा और अलकनंदा नगरसे बाहर दो सरिता बह रही हैं ॥ २३ ॥ हे विदुर ! उन सरिताओंमें नित्यप्रति देवताओंकी कुलांगना रतिकी इच्छावाली अपने अपने विमानोंसे उतरकर विहार करती हैं और अपने भर्ताओंके अतिसूक्ष्म शरीरधारी

पुरुषोंपर नीर छिड़क उनका श्रम हरती हैं ॥ २४ ॥ देवरमणी जो उन सरिताओंमें मज्जन करती हैं और कुचोंसे कुंकुम धुलधुलकर जो जलमें बहती है उससे तो उन सरिताओंका सलिल पीतवर्ण और सुगंधित हो रहा है, उसी सुगंधके कारण विना ही प्यास उस जलको हाथी पीते हैं और अपनी हथिनियोंको पिला पिलाकर मुदित करते हैं ॥ २५ ॥ वे देवांगना चांदीसोनेके अमूल्य रत्नोंसे जटित सैकड़ों विमानोंमें बैठी कैसी शोभा दे रही थीं, जैसे गगनमंडलोंके बादलोंमें बिजली चमकती हैं ऐसे ॥ २६ ॥ कुबेरकी पुरीसे निकलकर सौगंधिक वनमें पहुँचे, जहां परम सुखदायक चित्र विचित्र सुमन, मनोवांछित मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान सहस्रों वृक्ष शोभायमान

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ॥ वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भ पाययन्तो गजा गजीः ॥ २५ ॥ तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २६ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्य चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २७ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठंखरदण्डजलाशयम् ॥२८॥ वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ॥ अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः॥२९॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥ प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३० ॥ स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३१ ॥

थे ॥ २७ ॥ लाल कंठवाली कोकिलाओंके वृन्दके वृन्द मृदुल वाणीसे जहाँ तहाँ कोलाहल कर रहे थे, भ्रमरोंका मनोहर शब्द हो रहा था, कमलयुक्त जलाशय देदीप्यमानथे; कलहंसादिक जलविहंग निजपत्नियोंके संग विचर रहे थे ॥ २८ ॥ वनके बलवान् हाथियोंके गमनसे, हरिचंदनके वृक्षोंमें रगड़से, सुगंधयुक्त पवनके प्रभावसे यक्षोंकी रमणियोंका मन मन्मथ वारंवार मथ रहा था ॥२९॥ प्रवाल रत्नकी सोपानवाली बावडियें कमलमालासे शोभायमान दृष्टि आती थीं और किंपुरुष वहां विहार कर रहे थे, सौगंधिक वनकी ऐसी अनुपम शोभा देखते हुए आगे बढ़े, तो निकट ही एक वटवृक्ष दृष्टि आया ॥ ३० ॥ वह वटका तरुवर चारसौ कोश ऊंचा और तीनसौ कोशमें उसका विस्तार था

चारों ओर उसके सघन छाया आठों प्रहर रहती थी और न किसी पक्षीका उसमें घोंसला था और ताप और धूप तो वहाँ देखनेको भी नहीं थी ॥ ३१ ॥ उस वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षु जनोंके रक्षक सदाशिव विराजमान थे, मानो क्रोध तजकर अंतक बैठा है, इस प्रकार देवताओंने महादेवजीको बैठा देखा ॥ ३२ ॥ शांत शरीरवाले सनंदन आदि महासिद्ध शांतस्वरूप शिवजीकी सेवा कर रहे थे और यक्षराज राक्षसोंका अधीश और शिवका सखा कुबेर मस्तक नवाये चरणारविन्दोंकी ओर तक ज्ञान वैराग्य और आनंदका रस छक रहा था ॥ ३३ ॥ सो शिवजी महाराज विद्या, तप, योगमार्गमें स्थित, सबके ईश्वर, विश्वके सुहृद् और वत्सलतासे सब लोकोंके मंगल करने

तस्मिन् महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ३३ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३४ ॥ लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ॥ अङ्गेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३५ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३६॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥३७॥ तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३८॥

वाले ॥ ३४ ॥ और अतीव सुहावन और मनभावन तपस्वी वेष धारण किये हैं, शीशपर जटा बढ़ाये, मृगचर्म ओढ़े, अंगमें विभूति लगाये, हाथमें दंड लिये, संध्याकालके मेघपंक्तिकी कांतिके समान अपने मस्तकपर चंद्ररेखा धारण कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ दोहा–कुश आसन आसीन प्रभु, लसत भालविधु बाल । जेहि दरसत सब जननके, मिटत सकल जंजाल ॥ इस प्रकार आसनपर बैठे हैं और नारदजी जो कुछ उनसे पूछते हैं, उनको सब सज्जनोंके सम्मुख सनातन परब्रह्मका ज्ञान सुना रहे हैं ॥ ३६ ॥ बांये चरणको दहिने ऊरूपर धर और बाँई जानुपर अपना कर धरकर दाहिने बाहुके प्रकोष्ठपर अक्षमाला सहित तर्कमुद्रा धारण किये बैठे हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मसुखकी समाधिमें

[०च० १७ ॥

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः॥उत्थाय चक्रे शिरसाऽभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥३९॥ तथाऽपरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनुनीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४१॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४२॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४३॥ त्वं कर्मणां मङ्गल मङ्गलानां कर्तुः स्म लोके तनुषे स्वः परं वा ॥ अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४४ ॥

स्थित, सबसे विरक्त, गिरीश, योगज्ञानी, सब मनुओंके आद्यमनु महादेवजीको हाथ जोड़कर सब लोकपाल मुनिलोगोंने प्रणाम किया ॥३८॥ सुर असुर जिनके चरणकमलको नित्यप्रति दंडवत करते हैं, सो महादेव देवताओं सहित चतुराननको आता देखकर शीघ्र उठ खड़े हुए और जैसे सर्वपूज्य विष्णु वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था उसी प्रकार शिवजीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया ॥ ३९ ॥ और जो सिद्धगण महर्षियोंसहित शशिशेखर शिवजीके समीप उपस्थित थे, उन लोगोंने भी उसी भाँति ब्रह्माजीको प्रणाम किया, इस प्रकार जिन ब्रह्माजीको सबने नमस्कार किया सो ब्रह्माजी चंद्रचूड महादेवजीसे हँसकर बोले ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले, कि हे ईश ! तुमको मैं भलीभाँति जानता हूं कि तुम विश्वरूप जगत्की योनि, बीज, शक्ति, प्रकृति पुरुषके ईश, भेदरहित, निर्विकार, परब्रह्म, निरंतर ईश, सर्वान्तर्यामीश्वर हो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! स्वरूपधारी, शिव शक्तिरूप, प्रकृति पुरुषमें विहार करते हुए तुम ही मकरीकी नाईं इस सृष्टिको रचते हो, पालते हो और फिर अपने आपमें लीन कर लेते हो, तुम्हारी गतिका कोई पार नहीं पा सकता ॥ ४२ ॥ धर्म,अर्थ पूर्ण करनेको और वेदकी रक्षाके लिये निमित्तमात्र दक्षने यज्ञ किया था और सब संसारकी मर्यादाभी आपकी ही बाँधी हुई है, जिन मर्यादाओंको व्रतधारी ऋषिलोग श्रद्धासहित आजतक पालन किये जाते हैं ॥ ४३ ॥ हे मंगलरूप ! शुभ कर्म करनेवालोंको तुमस्वर्ग परलोकदायक हो और अशुभ

कर्म करनेवालोंको भयंकर नरक अंधतामिस्र वासके देनेवाले हो,तो फिर किसी कारण किसी पुरुषको इन मर्यादाओंके प्रतिकूल फल प्राप्त होता है॥४४॥तुम्हारे पादारविन्दोंमें जिनके मन आत्मा अर्पित हैं और सर्वजीवमात्रमें आपको ही देखते हैं और सब जीवोंमें ईश्वरको देखते हैं, आत्म सब जीवमें देखनेवाले महात्माजनोंको कभी क्रोध नहीं आ सकता और आपका तो कहना ही क्या है ?॥४५॥ पृथक् जिनकी बुद्धि, कर्मोंपर दृष्टि, दुष्टहृदय,दूसरोंके प्रतापसे रात्रिदिन दुःखानेवाले, दुर्वाक्योंसे औरोंके मर्मभेदन करनेवाले दैवसे भ्रष्ट,अनेक कर्मोंके मारे,आपसरीखे महा त्माओंका धर्म है कि उनको न मारें,क्योंकि वे अपने कर्मोंके मारे हैं ॥ ४६ ॥ जिस देशमें जिस समय नारायणकी दुस्तर मायासे पृथक्

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवे यथा पशुम् ॥४५॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मा वधीद्दैववधान् भवद्विधः ॥४६॥ यस्मिन् यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वन्ति तत्र ह्यनुक म्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४७॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४८ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनोः प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ४९ ॥ जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥ ५० ॥

दृष्टिवाले अभिमानी मोहित होकर सज्जनोंसे विरोध करते हैं, परंतु तो भी वहां साधुजन अपनी नम्रतासे, परमेश्वरकी इच्छा ऐसे ही थी, यह विचार कर , उन लोगोंपर कृपा करते हैं, परंतु उनको मारते नहीं॥४७॥आप तो परमपुरुषकी कठिन मायासे लिप्त नहीं हो,अतएव समस्त जगत्के द्रष्टा हो, हे प्रभो ! उस मायासे जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है अतः जो सदा कर्मोंके बंधनमें बँधे हैं, उनपर आप कृपा करने योग्य हो॥४८॥ हे रुद्र ! आपके ही विना दक्षका यज्ञ समाप्त न हुआ, अब आप मरे हुए दक्षप्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो, जहां कुत्सित होम करनेवालोंने आपको भाग नहीं दिया उसका फल तत्काल अपनी आंखोंसे देख लिया ॥ ४९ ॥ अब इतना अनुग्रह कीजिये कि यह हमारा यजमान

तो जी जाय और भगदेवको नेत्र दिये जायँ, भृगुकी मूछें निकल आवें और पूषाके दांत पहलेकेसे हो जायँ ॥ ५० ॥ हे मन्यो! देवताओंके और ऋत्विजोंके अंग जो आयुध और पाषाणोंसे टूट गये हैं, उनपर अनुग्रह करके आप सबको आरोग्य करो ॥ ५१ ॥ हे कल्याणरूप! हे यज्ञविध्वंसक!! जो कुछ इस यज्ञमें शेषभाग बचा है वह सब आपका भाग है, इस प्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, अब आप कृपा करके यह कह दीजिये कि, यज्ञहन रुद्रके भागसे यह तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो; इस लिये इन सब देवता आपके पास यह कहने

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः॥ भवताऽनुगृहीतानामाशु मन्योस्त्वनातुरम् ॥५१॥ एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन्॥५२॥ इति श्रीभा॰म॰चतुर्थ॰रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥ श्री महादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ॥ देवमायाभिभूतानांदण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

आये हैं[1] ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, प्रकट भये भगवान । शिव ब्रह्मादिक देव सब, स्तुतिको करत बखान ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे महाबाहो विदुर! जब ब्रह्माने इस प्रकार शिवजीकी स्तुति की, तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो हँसकर बोले कि हे कमण्डलुपाणे! सुनिये ॥१॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे प्रजेश! इन अज्ञानियोंके अपराधको मैं अपने मुखसे कुछ नहीं कह सकता हूँ और न कुछ चिंतन करता हूं क्योंकि ये मूर्ख लोग देवकी मायासे मोहित

---

१ शङ्का–ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा कि हे पार्वतीनाथ! यज्ञमें जो वस्तु सबके खाने भोगनेसे बचे वह आपका भाग है, ऐसी घृणित वस्तु शिव जगत्पति होकर क्यों ग्रहण करते ह?

उत्तर–व्याकरणशास्त्रके प्रमाणसे उच्छिष्टशब्दका अर्थ जूठका नहीं है, उच्छिष्टशब्दका यह अर्थ है कि तीन लोक चौदह भुवनमें जो चराचर जीव हैं सबका नाश हुए पीछे जो वस्तु शेष रहे, अपनी आत्मामें आनन्दरूप ब्रह्म जो है उसकी उच्छिष्ट संज्ञा है, उस आनन्दरूपब्रह्मको उच्छिष्ट जानो और भजन करनेमें जिसका स्वभाव है उसको यज्ञ कहना, यज्ञ नाम संसारका है, उस यज्ञरूप संसारका नाश होनेके पीछे जो ब्रह्मानन्द शेष रहता है वह भाग शिवका है, ब्रह्माने कहा कि हे भूतेश्वर! आप ब्रह्मानन्द हो, मूर्खोंके कर्मका स्मरण करना नहीं चाहिए.

* कवित्त– अहो मुण्डमाली बलशाली को तुम्हैं समान, बार बार विनै करै आपको मनायकै। ज्ञान ध्यान ज्ञाता तुम संपतिके दाता तुम, छोड़ो मत नाता तुम लीजै अपनायकै ॥ ऐसे समै महिमा बखानै को न शालिग्राम, आज करामात सब विश्वको दिखायकै। सांकरेमें शंकर सहाय करो शीघ्र जाय, जगमाहिं लीजै यश दक्षको जिवायकै ॥

हो रहे हैं, इस लिये मैंने इनको उचित दण्ड दिया है ॥ २ ॥ दक्ष प्रजापतिका शिर तो जला दिया, इसलिये बकरेका मुख उसके धड़पर लगा दिया जाय और भगदेव मित्रदेवताके नेत्रोंसे अपने यज्ञसम्बन्धी भागको देखें ॥ ३ ॥ पिसा हुआ अन्न पूषा यजमानोंके दांतोंसे भक्षण किया करे और जिन देवताओंने मुझको यज्ञका उच्छिष्ट दिया है, उनके सर्वांग पूर्ण हो जायँगे ॥ ४ ॥ वे अध्वर्यु और ऋत्विज कि जिनके अंग सर्वथा नष्ट हो गये हैं, उनकी भुजाओंका काम अश्विनी कुमारकी भुजाओंसे होगा और हाथोंका काम पूषाके हाथोंसे हुआ करेगा और भृगुकी दाढ़ी मूंछ बकरेकी मूंछकी होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! शिवजीके स्नेहभरे वचन सुनकर भूतमात्र

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवन्त्वध्वर्यवश्चान्य बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्ममिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥७॥ विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान् भवः ॥ संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥ ८ ॥

और देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न हो साधु साधु कह धन्यवाद देने लगे ॥ ६ ॥ फिर सब देवता और मुनियोंने जब शिवजीकी विनय की कि कृपा करके आप वहां चलिये और सब कार्य पूर्ण कीजिये, तब देवताओंकी आज्ञा शिरपर धर शिवजी ब्रह्मा और ऋषियोंसहित देवताओंको साथ ले उस देवयज्ञशालामें पहुँचे ॥ ७ ॥ और सम्पूर्णतासे यज्ञ कराय जो कुछ शिवजीने कहा, उसी भांति यज्ञमें पशुका

१ शङ्का—ब्रह्माने शिवजीसे कहा कि हे ब्रह्मार्णी ! मूर्खोंके कर्मोंका हम चिन्तन नहीं करते, उत्तम, मध्यम कर्म जो नीच हमारे लिये करते हैं उन सबको हम सह लेते हैं, फिर दक्षका नीच कर्म समझकर उसके यज्ञका विध्वंस क्यों किया ?

उत्तर—शिवजीने विचार किया कि दक्ष महापापी है और बड़ा अभिमानी है, जो सब प्राणीमात्रकी रक्षाकरता है वह दक्ष ऐसा दुष्ट हो रहा है जो यह दण्ड न पावेगा तो ब्रह्मकर्म छोड़ राक्षस हो जायगा, अतः अनुग्रह करके शिवने दक्षके यज्ञका नाश करके उसको दण्ड दिया, दक्षका नीचकर्म समझकर उनके यज्ञका नाश नहीं किया.

शिर काटकर दक्षके धड़पर धरकर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ शीश जोड़कर शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखा दृष्टिके पड़ते ही दक्षप्रजापति ऐसे उठकर बैठ गया मानो निद्रासे अभी जागा है और नेत्र खोलकर देखा तो शिवजी सम्मुख खड़े हैं ॥ ९ ॥ यद्यपि शिवजीके द्वेषसे उसका चित्त दूषित हो रहा था, परन्तु शशिशेखरका दर्शन करते ही सब वैरभाव मिट गया और शरत कालके तड़ागके तुल्य दक्षका मन निर्मल हो गया ॥ १० ॥ और वारंवार मनमें यह विचार करता था, कि दीनदयालु भूतेश्वर महादेवजीकी स्तुति करूं, परन्तु अनुरागवश हो कुछ मनसे नहीं उचार सका और अपनी मरी हुई दुहिता सतीका स्मरण कर उत्कठामे आँखोंमें आंसूभर आया ॥ ११ ॥

संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥ ९ ॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥ ११ ॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितस्सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥ दक्ष उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्माऽऽत्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ॥ तद्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥ १४ ॥

और जैसे तैसे बड़ी कठिनाईसे मनको रोककर प्रेमसे व्याकुल हो वह सुबुद्धि दक्ष कपटभावको हृदयसे त्यागकर शिवजीकी स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ दक्ष बोला कि हे भगवन्! मैंने तो आपका निरस्कार किया था तो भी आपने उस अपमानका ध्यान त्याग करके मुझको दण्ड दिया, यह आपने मुझ दीनपर बड़ी दया की, जो अधम ब्राह्मण तिरस्कार योग्य हैं, आप और विष्णु भगवान्, जब उन्हीं ब्राह्मणोंका निरादर नहीं करते, तब तपव्रतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी अवज्ञा आपसे कब हो सकती है ॥ १३ ॥ हे प्रभो! अपने विद्यातप व्रतधारी ब्राह्मणोंको वेदमार्गकी रक्षा करनेके लिये प्रथम आपने मुखसे प्रकट किया है, इसलिये हे विभो! आप सब विपत्तियोंमें ब्राह्मणका सदा पालन करते

हो, जैसे पशुपालक दण्ड हाथमें लेकर पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ आपके तत्त्वज्ञानको मैंने न जानकर सुरसभाके मध्य दुर्वाक्य रूप शरोंसे आपको दुःखित किया था, तो भी आपने उस दोषको नहीं माना और मुझ प्रतिष्ठित जनोंकी निन्दा करनेके कारण नरकमें पड़ते हुएको क्षमादृष्टिसे बचा लिया, हे नाथ! अपने किये हुए उपकारसे आप ही सन्तुष्ट होओ, मेरा सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं आपको दे सकूं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस भांति दक्षने शिवजीसे अपना अपराध क्षमा करा चतुराननकी सम्मतिसे उपाध्याय ऋत्विज अग्निसहित यज्ञ कर्म सुन्दरतासे विस्तार कराया ॥ १६ ॥ तीन कपालका पुरोडाश विष्णुके निमित्त, यज्ञ सम्पूर्ण करनेके हेतु प्रमथादिक

योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ॥ अर्वाक् पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपाद्दृष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं समीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ॥ कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥१६॥ वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥ पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्गशुद्धये ॥ १७ ॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशां पते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ॥ मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ॥ कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥

वीरोंकी शुद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने होम दिया ॥ १७ ॥ हे विदुर! अध्वर्युने जब हवि हाथमें लेकर यजमानसे विशुद्धबुद्धिसे हवन कर श्रीवासुदेव भगवान्का ध्यान किया, उसी समय श्रीभगवान् आकर प्रकट हुए ॥ १८ ॥ जिस गरुड़के पंखोंसे सामवेदके मंत्रोंकी ध्वनि निकलती है, उसपर विराजमान होकर श्रीभगवान् आये, उस समय उनके तेजके सम्मुख सबका तेज मन्द विदित होता था और दशों दिशा उनके तेजसे प्रकाशमान हो रही थीं ॥ १९ ॥ श्यामवर्ण पीताम्बरधारी सूर्य समान किरीट शिरधारे, नील अलकें भ्रमरवत् शोभित मुखवाले, श्रवणोंमें कुण्डल लटकाये, नानाप्रकारके आभूषण पहिरे, भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, शर, चाप, खड्ग, ढाल धारण किये,

कनेरके पुष्पवत् श्रीभगवान् देदीप्यमान विदित होते थे ॥ २० ॥ वक्षस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान, वनमाला पहरे, उदार हांसीयुक्त अवलोकनकी कलासे विश्वको रमण कराते. पार्श्वमें घूमते हुए व्यजन, चमर, राजहंसवत् दोनों ओर डुल रहे थे और ऊपरकी ओर पूर्ण शशिसम श्वेत छत्र अत्यन्त शोभाको बढ़ा रहा था ॥ २१ ॥ उन भगवान्को ब्रह्मा, इन्द्र, शिव और सब देवगणादिकने आता देख उठकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन श्रीवासुदेव भगवान्के तेजके प्रकाशसे सबकी कांति मलिन हो गयी. ऐसे वे पुरुष अञ्जलियोंके संपुट शिरपर करके मोहसे संभ्रम हो गद्गदवाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ तब ब्रह्मादिक देवताओंकी मनवाणीकी सब वृत्तियां

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥ अप्यवाग्वृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ॥ सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवान परिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥

बिसर गयीं; भगवान्की महिमाको नहीं पहुँच सकीं तो भी उन्होंने कृपा करनेके लिये निज स्वरूप धारण कर अपने निकट आये हुए भगवान्की यथामति अनुसार सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञाधीश, विश्वके रचनेवाले, ब्रह्मादिकोंके परमगुरु और नन्द सुनन्द आदि पार्षदों सहित भगवान्के समीप जाकर प्रजापति दक्षने पूजाकी सामग्री समर्पण की, तब श्रीनारायणने वह पूजाके द्रव्यका पात्र अपने हस्तकमलसे ग्रहण किया, तब दक्षने प्रसन्न हो, हाथ जोड़ बड़ी सावधानीसे भगवान्की स्तुति की, ॥ २५ ॥ दक्ष बोला कि जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे रहित, अपने रूपमें स्थित, पवित्र, चैतन्यस्वरूप, अद्वितीय, केवल एक आप ही हो. आप मायाका तिरस्कार कर स्वा-

धीन होनेपर भी फिर उसीमें स्थित होकर पुरुषरूप बन मायारूपी नाटक रचते हो, तब उस मायामें रहनेसे ऐसा विदित होता है कि राग द्वेषादिक कर्म आपमें भी आ गये हैं, परन्तु यह मेरी दृष्टिका भेद है और आप तो निर्लेप और निर्विकार हैं ॥ २६ ॥ सब ऋत्विज बोले कि हे निरञ्जन ! हे उपाधिरहित ! ! हे भगवन् ! ! ! हम लोग रुद्रकेशापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह रखने वाले हैं। परन्तु आपके तत्त्वको नहीं जान सकते, धर्मका उपलक्षण वेदत्रयीप्रतिपाद्य यह यज्ञ है, ऐसे जानकर हम यज्ञ करते हैं, जिससे अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ये तीनों अवस्था दूर होती हैं ॥ २७ ॥ सभासद् बोले कि हे शरणागतवत्सल ! इस उत्पत्तिके कालरूपी संसारका महा कठिन पंथ है, जिसमें कोई विश्रामका स्थान दृष्टि नहीं आता, न कोई रक्षक है और हैं तो अनेक क्लेशदायक विषमस्थान हैं, मृत्युरूप उग्रसर्प फण उठाये फुङ्कार

ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात् कर्मण्यवग्रहधियो भगवान् विदामः ॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदो व्यवस्थाः ॥२७॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ॥ द्वंद्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माऽविद्यलोकोऽपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥

रहा है, सुखदुःखादिकरूप नानाप्रकारके अनेक गम्भीर गढ़े हैं, मृग रूपीघातक दुष्टपुरुष प्राणियोंके भयदायक हैं, मोहरूपी नदी नाले हैं और शोकरूपी दावाग्नि भड़क रही है, तृष्णा और कामनासे दुःखित हो उस मार्गमें जाता है, विषयमार्ग तृष्णावश अज्ञानको साथ लिये भ्रमके भारको शिरपर धरे शीघ्र चलता है, फिर यह कामव्याप्त जीव कब आपके चरणरूपी मंदिरको प्राप्त हो सकता है ? ॥ २८ ॥ रुद्र बोले कि हे वरद ! सर्व विषयोंमें वैराग्यवाले सत्अर्थदायक ! असक्त मुनियोंके आदरभावसे पूजनीय ! तुम्हारे चरणकमलमें रचित बुद्धिवाला, अविद्याकामसे लोकमें विंधा हुआ, आपकी पूर्ण प्रेमभरी दयादृष्टिसे मैं अपने मनको लगा रहा हूँ, उसको मूर्ख लोग आचार

श्ववशयनामशान्तमेधं यज्ञात्मन् नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥

यह ऊँचे उठे हुए आयुधवाला अष्टभुजी सुन्दर स्वरूप भी आपका योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ पत्नियें बोलीं कि हे यज्ञरूप ! हे रमेश !! यह केवल तुम्हारे ही यजनके लिये दक्षप्रजापतिने रचा था, उस पशुपति महादेवने आज दक्षपर कोप करके विध्वस्त कर दिया सो हे कमल नयन ! हे शांतबुद्ध !! हे यज्ञात्मक !!! यह यज्ञ उत्सवरहित श्मशानवत् महा अशुचि हो गया है, आप अपनी कमलवत् पावन दृष्टिसे इसको पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि हे भगवन् ! आपकी माया बड़ी दुरंत है, किसीसे जानी नहीं जाती, जिस रूपसे आप विचरते हो उसमें लिप्त नहीं होते, जिस हेतुसे ऐश्वर्यके लिये ईश्वरी लक्ष्मीजीकी उपासना ब्रह्मादिक करते हैं, वह लक्ष्मी आठ पहर आपके चरणारविंदोंकी और

तकती रहती है, तो भी आप उसको आदर नहीं देते ॥२४॥ सिद्धलोग बोले कि क्लेशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुआ, प्याससे पीड़ित हो, यह हमारा मातंगरूपी मन आपकी कथारूपी उज्ज्वल अमृतकी नदीमें स्नान करनेसे और शीतल जल पीनेसे फिर जगद्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता और उस नदीमेंसे बाहर नहीं निकला चाहता। अब हमको ऐसा विदित होता है कि परब्रह्मके संग एक रंग हो गया ॥ २५ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति बोली कि हे रमापते ! हे श्रीनिवास !! हे परमात्मन् !!! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, श्रीसहित हमारी रक्षा करो, हे अधीश ! तुम्हारे बिना यह यज्ञ शोभा नहीं देता था, जैसे शिरहीन कबंध शोभा नहीं देता ॥ २६ ॥ लोकपाल बोले कि हे भूमन् ! विज्ञानरूप, ज्ञान

सिद्धा ऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः॥तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥२५॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः॥त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥२६॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन् यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥ २७ ॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान् न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥

गुण प्रकाशक, दृश्यमात्रको जाननेवाले, प्रत्यगात्मरूप, सर्वद्रष्टा आप हो, यह असत् पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इंद्रियें तुम्हारा स्वरूप देख नहीं सकतीं, क्योंकि इस पंचभूतात्मक शरीरमें जो छठे जीवरूपसे आप विदित होते हो, वही आपकी माया है ॥ २७ ॥ योगेश्वर बोले कि हे प्रभो ! हे ईश !! हे वत्सल !!! तर्क करते हैं कि आप विश्वात्मा हैं, आपसे जीव अपनी आत्माको भिन्न नहीं समझता, उससे अधिक प्यारा और आपको कोई नहीं है, यद्यपि ऐसे हैं तो भी अनन्यभक्तिसे जो आपकी उपासना करते हैं उनपर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ दैवसे जगत्‌की उत्पत्ति और लयमें जीवके अदृष्टके कारण जिसके गुणोंका नाना प्रकारसे भेद होता है, ऐसी आपकी अद्भुत मायाने जिनके

स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि भिन्न भिन्न भेद रचे हैं, परंतु स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदभाव दूर करनेसे उसका कारण कुछ भी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि सत्त्वावच्छिन्न, चैतन्य स्वरूपधारी धर्मादिकोंके उत्पन्न करनेवाले और जिनके गुणतत्त्वको न तो मैं जानता हूँ और न कोई दूसरा जानता है; ऐसे निर्गुण निर्विकारको वारंवार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अग्नि बोले कि आपके तेजसे जो मुझमें प्रकाश है इसीसे उत्तम उत्तम यज्ञोंमें टपकते हुए घृतका हव्य मैं धारण करता हूँ और सब देवताओंको पहुँचाता हूँ, उन यज्ञोंके रक्षक और यज्ञरूप पांचप्रकारसे पंच यजुमंत्रसे सुन्दर यज्ञ किये जाते हैं सो हे यज्ञमूर्ते

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च॥४०अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धत्तेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ॥ तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥ ४१ ॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ॥ पुमान् शेषे सिद्धहृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य भूमं स्तस्मै नित्य नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥

भगवन्! हम वारंवार आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि पहले आप महाप्रलयमें रचे हुए विश्वको अपने उदरमें धरकर आप ही आद्यपुरुष उस जलमें शेषशय्यापर सोये थे, सिद्धोंने अपने हृदयमें जिनकी अध्यात्मपदवी विचारी है, सो वह भगवान् आज हम लोगोंके नेत्रगोचर हुए, यह आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, आप सदा दासोंका ऐसे ही पालन किया करते हैं ॥ ४२ ॥ गंधर्व बोले कि हे देव! मरीचि आदि ऋषि, ब्रह्मा, इन्द्रादिक देवगण, रुद्र जिनमें मुखिया हैं, सब आपके अंशके अंश भाग हैं और यह सब संसार आपके विहार करनेका खिलौना है। हे भूमन्! हे नाथ!! हे दीनबंधो!!! ऐसे जो आप हैं उन आपको हम निरंतर नमस्कार

* पांच यज्ञ ऐतरेय उपनिषद्की श्रुतिमें हैं—" स एष यज्ञः पंचविधः–अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः सोम इति । " तथाच श्रुतिः–आश्रवयेति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् । ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कारः ॥ अर्थ–आश्रावय अस्तु श्रौषट्, यज ये यजामहे, वषट्, इत्यर्थः "

करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर बोले कि ऐसा पराक्रमी और पुरुषार्थी देह पाकर जो पुरुष आपकी मायाके अधिकारमें हो, अभिमानमें आकर कोई कोई मनुष्य कहने लगता है कि मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसे वचन कह उलटे मार्गमें चलने लगता है, अपने कुटुम्बियोंके अनादर करनेपर भी मूर्खतासे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा रखता है, वह आत्माका भी मोह तुम्हारी कथामृतके सेवन करनेसे सब नष्ट हो जाता है ॥४४॥ ब्राह्मण बोले कि यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता; अग्निहोत्र, स्वधा, सोम वल्ली, लता घृत, दुग्ध और यज्ञपशु सब आप ही हो, इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे त्रयीगात्र ! आप पहले महासूकर रूप

विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्मायथाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन् कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥४४॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च त्वं सदस्यार्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्ररुद्राभिमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञ भावने ॥ ४८ ॥ भगवान् स्वेन भावेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥

धारण कर योगीजनोंके स्तुति करनेसे महागम्भीर शब्द कर वसुधाको डाढ़पर रखकर रसातलसे ऐसे ले आये, जैसे गजेन्द्र लीलापूर्वक पद्मिनीको ले आता है। हे प्रभो! यज्ञ और क्रतुरूप आप ही हो ॥ ४६ ॥ तुम हम लोगोंपर प्रसन्न होओ सत्कर्मसे परिभ्रष्ट हो जो तुम्हारे दर्शन की चाहनावाले हैं, उनपर अनुग्रह करके उनको अपना दर्शन दो, हे यज्ञेश! जब यज्ञमें लोग आपके नामका उच्चारण करते हैं, उसी समय यज्ञके सब विघ्न क्षय हो जाते हैं। हे विघ्नविनाशन! आपके अर्थ नमस्कार है ॥४७॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर! इस प्रकार सब देवगण ऋषिलोगोंने हृषीकेश भगवान्‌की स्तुति की तब कवि, दक्ष, रुद्र, वीरभद्रके विनाशितयज्ञको फिर प्रवृत्त किया ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा

सब भागके भोक्ता, यज्ञभावन भगवान् अपना भाग ले प्रसन्न हो दक्षप्रजापतिसे बोले ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् बोले—जगत्का परमकारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश; उपाधिरहित जो मैं हूँ, वही ब्रह्मा और शिव जगत्के आदिकारण हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज ! मैं ही त्रिगुणात्मक अपनी गुणमयी मायाको धारण कर विश्वकी स्थिति करनेके लिये उन उन कार्योंके योग्य पृथक् पृथक् किया; योग, संज्ञाधारण करता हूँ ॥ ५१ ॥ केवल अद्वितीय परमात्मा, परब्रह्म जो मैं हूँ सो अज्ञानी लोग ब्रह्मा, शिव और जीवमें भेदकर समझकर भिन्न भिन्न रीतिसे देखते हैं ॥५२॥ जैसे पुरुष अपने शिर हाथ चरण आदि अपने अंगोंमेंसे किसी अंगको दूसरेका नहीं जानता, इसीप्रकार महात्मा पुरुष सब प्राणियों

श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मश्वेर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयींद्विज ॥ सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥५२॥ यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम्॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत् समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ ५६ ॥

में मेरा ही रूप मानते हैं ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रका आत्मा और अद्वितीय केवल मैं हूँ। जो पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंको एकभाव समझता है और भेदबुद्धिसे नहीं देखता, वह शांतिको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार हृषीकेश भगवान्ने जब दक्ष प्रजापतिको उपदेश किया, तब प्रजापतियोंके पति दक्षने अपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजन कर फिर दूसरे देवताओंका पूजन किया ॥ ५५ ॥ फिर चित्तको सावधान करके यज्ञके अवशेष भागसे संपूर्ण कर्म पूर्ण करनेवाले महादेवजीका पूजन करके कर्मसे समाप्तिके देनेवाले दूसरे जो अमृतपान करनेवाले देवता हैं उनको भाग दिया ॥५६॥ फिर सब कर्मको समाप्त करके स्तुति

करने लगे, ऋत्विजोंको साथ लेकर उसने सबका भाग दे पीछे यज्ञांतस्नान किया और विप्रोंके लिये दक्षिणा देकर यथासुख विहार करने लगा ॥ ५६ ॥ भगवान्‌की कृपासे दक्षको अपने ही प्रभावसे सब सिद्धियां प्राप्त हो गयी थीं, तो भी धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर सब देवता सुरपुरको चले गये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्षसुत सतीने अपने पूर्वतनुको त्यागकर पीछे हिमाचलकी भार्या मेना नाम्नी रानीमें जन्म लिया, यह बात हम सबने सुनी है ॥ ५८ ॥ वह हिमाचलकी पुत्री अम्बिका भवानी पार्वती प्रलयकालमें सोई हुई शक्ति जैसे आद्य पुरुषको प्राप्त होती है, इसी प्रकार फिर दूसरी वार भी उन्हीं शिवजीको प्राप्त हुई, जो एक वृत्तिसे भक्तोंके मुख्य आश्रयरूप

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥ तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ५९ ॥ एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्या दुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६० ॥ इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनु कीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हैं ॥ ५९ ॥ दक्षप्रजापतिके यज्ञविनाशक भगवान् शिवजीका यह कर्म भागवत बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुना था, सो आपको सुना दिया ॥ ६० ॥ पापपुञ्जका हर्ता और कोटिकष्टविनाशकर्ता, यश और आयुका बढ़ानेवाला तेजका चमकानेवाला, यह अत्यन्त पवित्र शिवजीका चरित्र है, जो मनुष्य प्रेम प्रीतिसे सुने और सुनावे वह प्राणी शिवकी भक्तिके प्रतापसे सब पापसे छूट जाता है, * ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

* भजन शङ्कर सुख करन सदा, संतन सुखदाई ॥ सेवत सुर नर मुनीश, आद्यरूप जगत ईश । सोहत नित गंग शीश, भस्म अङ्ग छाई ॥ १ ॥ पंचवदन अति विशाल सोहत दृग लाल लाल । बालचन्द्र लसत भाल, शोभा अधिकाई ॥ २ ॥ पूरण आनंदकन्द, मेट सकल द्वन्द्व फन्द । बैठे निर्द्वन्द्व मन्द, मैनको जराई ॥३॥ ज्ञान भक्ति मुक्ति धाम, रटत रहत अष्टयाम । राम राम राम राम रघुपति रघुराई ॥ ४ ॥

दोहा—ध्रुव अष्टम अध्यायमें, मात वचन सुनि कान। गये विपिन तप करनको, मिले आन भगवान ॥ मैत्रेयजी बोले कि सनकादिक, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं किया, ऊर्ध्वरेता हुए ॥ १ ॥ हे शत्रुदमन ! अधर्म भी ब्रह्माजीका पुत्र है इस लिये उसके वंशका भी वर्णन करते हैं, अधर्मकी मृषा नाम पत्नीमें दंभ नामक और पुत्र माया नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, सो मृत्युके पुत्र नहीं था, इसलिये उन दोनोंको अपने घर उसने रख लिया ॥ २ ॥ हे महामते ! दंभकी माया नामभार्यामें लोभ नामक पुत्र और निष्कृति नाम पुत्री हुई, लोभकी निष्कृति नाम स्त्रीमें क्रोध नामक सुत और हिंसा नाम्नी सुता

मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यवसन्नूर्ध्वरेतसः ॥१॥ मृषाऽधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायांच शत्रुहन् ॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥२॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥ दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥ संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिः श्रुत्वैतत् पुमान् पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥ अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥ ७ ॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥ ८ ॥

उत्पन्न हुई, क्रोधके हिंसा नाम्नी पत्नीमें कलि नाम तनय और दुरुक्ति नाम्नी तनया प्रकट हुई ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! कलिकी दुरुक्ति नाम स्त्रीमें भय नाम पुत्र और मृत्यु नाम दुहिता प्राप्त हुई, भयकी मृत्यु नामक स्त्रीमें निरय नामक बेटा और यातना नाम्नी बेटी हुई ॥ ४ ॥ हे अनघ ! संक्षेपसे मैंने यह सर्ग वर्णन किया जो पुरुष तीन बार इस अधर्मवंशावलीको सुने उसके शरीरके सब मलका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! पुण्यकीर्तिवाले श्रीभगवान्के अंशसे जिनका जन्म हुआ उन स्वायंभुवमनुका वंश वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति मनुके भगवान् वासुदेवकी कलासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए और जगत्की रक्षामें स्थिर रहने लगे ॥७॥ राजा उत्तानपादकी

दो रानियां थीं, सुनीति और सुरुचि सो उसमें सुरुचिपर राजाका अधिक प्रेम था और सुनीति जो ध्रुवजीकी माता थी; वह राजाको प्यारी नहीं थी ॥ ८ ॥ एक दिन वह राजा सुरुचिके पुत्रको गोदमें बिठाकर खिला रहा था, उसका नाम 'उत्तम' था, उसी समय ध्रुवजीभी कहींसे आगये और जब पिताकी गोदीमें बैठनेको उपस्थित हुए, तब पिताने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ९ ॥ और आरोहण करनेकी इच्छा करते हुए अपनी सौतके पुत्र ध्रुवजीको सुनाय सुरुचिने राजाके सम्मुख ईर्षासे अभिमानके वचन कहे ॥ १० ॥ सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! आप राजकुमार हो तो भी राजसिंहासनके बैठनेयोग्य नहीं हो; क्योंकि तुमने मेरी कुक्षिमें जन्म नहीं लिया है ॥ ११ ॥ अरे

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥ ९ ॥ तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥ १० ॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥ बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥ नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ॥ हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बालम् ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या ॥ १५ ॥

अभी तू बालक है इसी लिये तुझे इस बातका कुछ ज्ञान नहीं, कि मैं दूसरी स्त्रीके गर्भमें जन्मा हूँ । जो चेष्टा तू करता है, वह मनोरथ तेरा बहुत दुर्लभ है ॥ १२ ॥ यदि तू राजसिंहासनकी इच्छा करता है, तो तपसे आदिपुरुष परमात्माका आराधन कर । जब उनकी कृपासे मेरे गर्भमें जन्म लेगा, तब राज्यसिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करना ॥१३॥ मैत्रेयजी बोले कि सौतेली माताके दुर्वाक्योंकि कठिन बाणोंसे बिंधा हुआ वह ध्रुव रोषसे श्वास लेता, दंडवत् उरगके सदृश, मौन साधे देखता हुआ, पिताके पाससे रोता हुआ; माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे अधर होठ जिसके फड़क रहे थे, अपने पुत्र ध्रुवको गंभीर श्वास लेता हुआ देखकर उसकी माता सुनीतिने

दौड़कर उसको गोदीमें उठा लिया और जो कुछ उसको सौतने कहा था वह बात पुरवासियोंके मुखसे सुनके अत्यन्त पीडित हुई ॥ १५ ॥ और धैर्यको त्याग शोक दावाग्निके मध्यमें स्थित लताकी नाईं कुँभलाकर वह अबला विलाप करने लगी और सौतके वचनोंको स्मरण कर करके वह कमलाक्षी कमलवत् लजीले नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी ॥ १६ ॥ लंबे लंबे श्वास भरती, दुःखके पारको न पाती वह अबला अपने बालकसे बोली कि हे पुत्र ! औरोंका अपराध मत मानों, जो पहले दूसरेको दुःख देता है; उसको उसका फल निःसन्देह भोगना पडता है ॥ १७ ॥ सुरुचिने जो कहा सब सत्य है, क्यों कि एक तो तूने मुझ भाग्यहीनके उदरमें जन्म लिया, दूसरे मेरे स्तनोंका दूध

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥ दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ माऽमङ्गलं तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत् परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥१९॥ यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्ववि भावनायात्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥ २० ॥ तथा मनुर्वो भगवान् पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥२१॥

पीकर इतना बड़ा हुआ, राजा मुझको भार्या कहते तो हैं, परन्तु मनमें अत्यन्त लज्जित होते हैं ॥ १८ ॥ हे वत्स ! ईर्षा छोड़कर निष्कपट होकर जो सत्य वचन तेरी विमाताने कहा है, उसको तू स्वीकार करके श्रीवासुदेव भगवान्के चरणारविन्दोंका आराधन कर, जो उत्तमकी नाईं राज्यसिंहासनकी इच्छा हो तो ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणी जिन भगवान् वासुदेवके संसारके पालनेके लिये आत्मा श्वास जीतनेवाले जिनकी वंदना करते हैं ऐसे चरणकमलकी सेवा कर, ब्रह्माजी निश्चय ही ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥२०॥ उसी भाँति तुम्हारे पितामह भगवान् मनुने जिन आदि पुरुष अविनाशी अंतर्यामीका एकाग्र बुद्धिसे उत्तम दक्षिणावाले यज्ञद्वारा पूजन करके और उपायसे नहीं मिले, ऐसे

भूमिके और स्वर्गके सुखके साथ साथ मुक्तिके सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! जिन भक्तवत्सल श्रीनारायणके चरणारविन्दोंके पथको मुमुक्षु लोग खोज रहे हैं, तुम भी उन भगवान्का आश्रय लो और दूसरा भाव न हो, ऐसे निजधर्मसुशोभित मनमें आद्यपुरुषको स्थित कर श्रीभगवान् वासुदेवका भजन करो ॥ २२ ॥ विना कमलनयन भगवान्के तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला मुझको कोई नहीं दिखायी देता, हे वत्स ! ब्रह्मादिक सब देवता जिनकी खोजसे रहते हैं और लक्ष्मीजी कोमलकमलसे हाथमें कमल लिये जिनकी चाहना करती हैं, उनके चरणारविन्दकी उपासना करो ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे मनोवांछित माताके मधुर वचन सुन अपनी मातासे और छोटे छोटे अपने

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ॥ अनन्यभावे निजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ संनियम्यात्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥२६॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाऽप्यपमानं ते सम्मानं वाऽपि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥२७॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ ॥

संगके खेलनेवाले बालकोंसे यह बात कह और वासुदेव भगवान्को अपना हितू जान, पिताके पुरसे चल दिया ॥ २४ ॥ भगवान्के परम भक्त पापनाशक नारदजी इस बातको सुनकर उसके मनका पूर्ण दृढव्रत जान अपना हस्तकमल उसके शिरपर धरकर विस्मित हो मनही मनमें कहने लगे ॥ २५ ॥ अहो ! क्षत्रियोंका तेज ऐसा उग्र है कि यह अपने मानभङ्गको किंचिन्मात्र भी सहन न कर सका, यह बालक है तो भी विमाताके दुर्वाक्योंको हृदयमें धारण नहीं कर सका ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि हे कुमार ! खेल, खिलौने आदिकोंमें आसक्त बालकोंका कोई अपमान करे, वा संमान करे तो उसमें हम कुछ बुरा भला नहीं देखते ॥२७॥ जो तुमको मान अपमानका ज्ञान है, तो सन्तोषके हेतु ये भिन्न

नहीं है क्योंकि संसारमें पुरुषको मोहसे ही सुख दुःख होते हैं और किसी प्रकारसे नहीं होते ॥२८॥ हे तात ! इस लिये जब ईश्वर सहया होते हैं तो कार्य भी सिद्ध होते हैं, इस बातको निश्चय कर परमात्मासे जो कुछ प्राप्त हो, उतनेमें ही मनुष्यको चाहिये कि अपने मनमें सन्तोष कर ले ॥२९॥ और तू माताके कहे हुए योग करनेके योग्य है, जिनका प्रसन्न होना पुरुषोंपर बहुत कठिन है, दुःखसे आराधन करने योग्य है, यह मेरी भी सम्मति है ॥ ३० ॥ मुनिलोग सबका संग तजकर तीव्रयोगसमाधिसे अनेक जन्मोंसे उनकी पदवीका अनुसरण करते हैं, तो भी जान नहीं सकते ॥३१॥ इस लिये इस हटको छोड़ दे, क्योंकि यह तेरी हठ अच्छी नहीं है और अभी फलदायक भी नहीं होगी, जब

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥२९॥ अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम॥३०॥ मुनयः पदवीं यस्य निस्सङ्गेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥ अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥ ३३ ॥ गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥३४॥ ध्रुव उवाच ॥ सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥

योगसाधनका समय वृद्धावस्था आ जायगी, तब इसके लिये भी प्रयत्न करना ॥३२॥ दैवने जिसके भाग्यमें जो लिखा है, उसको उचित है कि सुखसे दुःखसे उतनेमें ही अपने मनको प्रसन्न रखे, क्योंकि जो उतनेमें ही अपनी आत्माको सन्तुष्ट रखता है वह पुरुष निःसंदेह मोक्षका भागी होता है ॥३३॥ जो आपसे गुणमें अधिक हो तो उसको देखकर आनंदित होना चाहिये, उसकी निन्दा न करें और जो आपसे हीन हो तो उसपर अनुग्रह रखना चाहिये, उसका अनादर न करे और जो अपने समान हो तो उससे मित्रभाव रखना चाहिये परन्तु उससे अपनी उन्नति न चाहे । जो पुरुष इस रीतिसे चलता है, उसका किसी प्रकारके तापसे विनाश नहीं होता ॥३४॥ ध्रुवजी बोले कि अपने सुख दुःखसे

नष्ट मनवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान्‌ने यह शांतिका उपाय दिखाया है,पर हम सरीखे मतिमंद मनुष्योंको दर्शन भी नहीं हो सका॥३५॥ तो भी घोर क्षत्रियस्वभावको धारण किये मुझ अवनीत अभागेके हृदयमें यह आपका उपदेश ठहर नहीं सकता, क्योंकि सुरुचिके दुर्वाक्य रूपी शरोंसे मेरा हृदय विंधा पड़ा है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! संसारमें जो उत्तम पद है उसको कोई नहीं पा सकता; जिस पदको हमारे पिता पितामह और कोई दूसरा भी उस पदवीको नहीं पहुँचा हो; ऐसे त्रिभुवनके उत्तम पदको जीतनेका मेरा मनोरथ है, सो उपाय कृपा करके मुझे बताओ ॥ ३७ ॥ आप साक्षात् भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हो और वीणा हाथमें लिये जगत्‌के हितके हेतु मार्तण्डकी नाई खण्ड खण्डमें

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधुवर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥ नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान् नारदस्तथा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥ नारद उवाच ॥ जनन्याऽभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥

घूमते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि नारद ध्रुवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्य वाक्योंसे उस बालकपर परम स्नेह किया ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि तेरी जननीने जो तेरे अभिप्रायका पंथ बताया है, वह निश्चय मोक्षदायक और वासुदेव भगवान्‌से मिलानेवाला है, इस लिये मनको सावधान करके उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अपना सुख चाहे तो वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके निमित्त श्रीमन्नारायणके चरणारविंदका आराधन करे, क्योंकि प्रधान कल्याणका कारण वही है ॥ ४१ ॥ इस लिये हे पुत्र ! श्रीयमुनाजीके तटपर अत्यन्त रमणीक मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां श्रीकृष्णचन्द्र आनंद कन्द सदा विराजते हैं, वहां तू जा, निश्चय तेरा

कल्याण होगा ॥ ४२ ॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर नित्य यमुनाजीके अमृतरूपी जलमें त्रिकाल स्नान कर, अपने नित्यकृत्यसे निश्चिन्त हो, दृढ़ आसन जमाकर वहां तू रहना ॥४३॥ पूरक, रेचक, कुम्भक, यह तीन प्रकारकी जिसकी वृत्ति हैं, ऐसे प्राणायामसे धीरे धीरे प्राण इंद्रिय मनके मलको दूर करके धीरमनसे गुरुरूप कृष्ण भगवान्‌का ध्यान कर ॥ ४४ ॥ जनोंके ऊपर प्रसन्न होनेमें सुमुख, निरंतर प्रसन्नवदन, सुन्दर नेत्र, सुन्दर नासिका, सुन्दर भ्रुकुटी, सुन्दर कपोल, देवताओंमें सुन्दर ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ तरुण अवस्था, रमणीय अंग, अरुण होठ, देखने योग्य बिम्बवत् अधर, नम्रीभूत आश्रितोंके सुख दायक, शरण्यरूप, करुणानिधान ॥४६॥ श्रीवत्सका चिह्न धारण किये, मेघवत् श्यामवर्ण,

स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥ तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥ ४६ ॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्॥शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम्॥४७॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवनमालिनम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥४९॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम्॥५०॥ स्मयमानमभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निर्वृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥५२॥

वनमाली, अन्तर्यामी, शंख, चक्र, गदा पद्मसे शोभित चतुर्भुज हैं ॥४७॥ किरीट, कुण्डल, केयूर कङ्कणसे देदीप्यमान, कौस्तुभमणि और आभरण, ग्रीवामें देदीप्यमान पीताम्बर पहरे ॥ ४८ ॥ कटिमें क्षुद्रघंटिका धारण किये, कञ्चनके नूपुर चरणारविन्दोंमें सजाये, अत्यन्त दर्शन योग्य, शांतचित्त, मन और नेत्रोंके आनंदवर्द्धक ॥ ४९ ॥ नख मणिपंक्तिसे शोभित, पूजित चरण, हृदयकमलकी कलियोंपर विराजमान, जीवात्मामें स्थित हैं ॥५०॥ मंद मंद मुसकाते, प्रेमसहित अवलोकन, वरदायकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका पहिले धारणामें दृढ़ हुए एकाग्र मनसे ध्यान कर ॥ ५१ ॥ इस प्रकार मंगलदायक श्रीयदुनायकके स्वरूपका जो ध्यान करता है, उस पुरुषका मन तुरंत परमानंदित

हो अन्यविषयोंसे निवृत्त हो जाता है ॥ ५२ ॥ हे नृपनंदन ! परमगुह्य जो जपने योग्य मंत्र है सो सुन, जिसको सात रात्रि मनुष्य जपे तो आकाशके सब देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं ॥५३॥ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" उत्पत्ति पालन, संहारकर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीव जिनमें निवास करें, उनके लिये नमस्कार है, सज्जन पुरुषोंको उचित है कि इस मन्त्रसे भगवान् वासुदेवका नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे देशकालके विभागको जानकर द्रव्यमयी पूजन करे ॥ ५४ ॥ पवित्र जल वनके फल फूल आदिक सुन्दर अंकुर, वस्त्र, तुलसीदलसहित भगवान् वासुदेवका पूजन करे ॥ ५५ ॥ शालग्रामशिलादिककी मूर्ति बनाकर द्रव्यमय पूजा करे, अर्चाका पृथिवी जलआदिकसे पूजन करे, इंद्रियोंको जीत, मनको शांत कर, मौन बन, वनके कन्द मूल खाय ॥ ५६ ॥ और अपनी इच्छा जो अवतार

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान् पश्यति खेचरान्॥५३॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥ सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥ ५५ ॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वार्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥ ५७ ॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥ ५८ ॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥ ६० ॥

धारण करते हैं, उनका चिन्तन करे और विष्णु भगवान् फिर अपनी अचिंत्य मायाकरके अवतार ले सुन्दर सुन्दर लीला करेंगे, इस प्रकार हृदयमें ईश्वरका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ पहिले ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने भगवान् वासुदेवकी परिचर्य्या जिस प्रकार की है उन्हीं विधानोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रका उच्चारण करके मन्त्रमूर्तिके अर्थ प्रयोग करे ॥ ५८ ॥ उस प्रकार मन, वचन, शरीरसे मनोगत ईश्वरकी परिचर्य्या करे; इस भांतिकी सेवा करनेसे भगवान् भक्ति करनेवालेको मनोवांछित फल देते हैं ॥ ५९ ॥ निष्कपट भजन करनेसे पुरुषोंको भाववर्द्धन करनेवाले भगवान् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ और जो मन अभिलषित धन पुत्रादिक फल चाहते हैं, उसी समय उसको देते हैं ॥ ६० ॥

जो भक्त मुक्ति होनेकी इच्छा करे वह विरक्त होकर भक्तियोगके दृढ़ किये हुए साक्षात् निरन्तर भावसे भजन करे ॥ ६१ ॥ नारदजीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवजीने उनकी परिक्रमा दे प्रणाम कर भक्तिरूप हरिचरणारविंदसे शोभित मथुराके निकट मधुवनको गमन किया ॥६२॥ ध्रुवजीके वनके जानेके उपरान्त नारदजी राजा उत्तानपादके अन्तःपुरमें पहुँचे, राजाने नारदजीको आता देख अर्घ्य दे बड़े आदरसत्कारसे पूजन कर आसन दिया; उसपर आनन्दपूर्वक विराजमान होकर ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपका मन मलिन तन छीन हो रहा है; ऐसी क्या चिन्ता है ? आपका धर्म, अर्थ, कर्मसहित नष्ट तो नहीं हो गया ॥ ६४ ॥ राजा

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तपोवन गते तस्मिन् प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ॥ किं वा करिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ॥ ६४ ॥ राजोवाच ॥ सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान् कविः ॥ ६५ ॥ अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मा स्मादन्त्यर्भकं वृकाः ॥ श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ॥ ६६ ॥ अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ॥ योऽङ्कं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशां पते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥ ६८ ॥

बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्त्रीके विवश होकर निर्दयपनसे सकल सुलक्षणधाम महात्मा अपने पांच वर्षके बालक पुत्रको उसकी माता समेत घरसे निकाल दिया ।॥ ६५ ॥ हे नारदजी ! जिसका कोमल मुखारविन्द कुम्हला रहा है, ऐसे अनाथ भूखे थके हुए सोते बालकको कहीं भेड़िया न खा जाय, क्योंकि वनमें अकेला होगा ॥६६॥ हाय ! मुझ दुरात्मा दुर्जन दुर्भागी स्त्रीजितकी ओर तो देखो, वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढ़ता था और मुझ महानीचने नारीविवश हो उसको गोदीमें न लिया ॥ ६७ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपने अपने

पुत्रकी महिमाको नहीं जाना, वह बड़ा प्रतापी है और भगवान् उसके रक्षक हैं इस लिये ऐसे सुतका सोच तुम न करो, क्योंकि "जिसका राम रक्षक उसका कौन भक्षक" ॥ ६८ ॥ जो लोकपालोंसे भी न हो सके; ऐसे ऐसे महाकठिन कर्म करके वह ध्रुव तुम्हारा यश विस्तार करता हुआ बहुत शीघ्र आवेगा ॥६९॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुनकर पुत्रका सोच करने लगे और राज्यलक्ष्मीको किंचिन्मात्र भी आदर न किया ॥ ७० ॥ ध्रुवजीने देवर्षिकी आज्ञानुसार मथुराजीमें आ यमुनाजीमें स्नान कर वहां एक

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ एष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव ॥ ६९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥ ७० ॥ तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन् हरिम् ॥७२॥ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत् समाधिना ॥७४॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन् देवमधारयत् ॥ ७५ ॥

रात्रि उपवास किया, फिर सावधान हो एकान्तचित्त कर भगवान्का ध्यान करने लगा ॥ ७१॥ तीन तीन रात्रिके अंतमें कैथ और बेरोंके [1] आहारसे अपने शरीरकी स्थितिके अनुसार एक मास व्यतीत किया, और अत्यन्त प्रीति बढ़ाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरणारविन्दका ध्यान किया ॥७२॥ दूसरे मासमें ध्रुवजीने छठे छठे दिन आपसे आप गिरे हुए तृण और पत्तोंको खा खाकर उदरपूर्ति की और हरिका भजन किया ॥७३॥ तीसरे मासमें नौ नौ दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोक ईश्वरका समाधिसे पूजन किया ॥ ७४ ॥ चौथे महीनेमें

---

१ शङ्का—कठल, बदरीफल, सूखे पत्र, जल, वायु इन भोजनोंसे ध्रुवकी भूख भी नहीं गयी और उपवासका व्रत भी भ्रष्ट हो गया, तब इन फलोंको छोड़कर केवल उपवास ही करके ध्रुवजीने तप क्यों नहीं किया?

उत्तर—यह वचन धर्मशास्त्रमें लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जो यज्ञोपवीत नहीं लेने पावें; और बालपनमें ही वनको चला जाय तो विना जनेऊके तप करना चाहिये, परन्तु विना आहार किये उस तपकी सिद्धि न होगी, बड़े बुद्धिमान हुवने ऐसा जान फल और पत्ते खाकर तप किया, ऐसा भोजन करनेपर उपवास भी नहीं हुआ और तृप्ति भी नहीं हुई।

बारहवें दिनमें श्वासको जीतकर वायु भक्षण कर श्रीगोविन्दके चरणारविंदका ध्यान किया ॥ ७५ ॥ जब पांचवे मासका प्रारंभ हुआ तब नृपनंदन ध्रुवजी श्वासको जीत खम्भकी नाईं एक चरणसे खड़े होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे ॥७६॥ इसके अनन्तर सब ओरसे पञ्चभूत अर्थात् शब्दादि विषय और इंद्रियोंके धारक मनको खींचकर हृदयमें भगवत्के रूपका ध्यान करने लगे, ऐसे कृष्णमय हो गये कि जहां देखो वहां कृष्ण ही कृष्ण दिखायी देते थे ॥ ७७ ॥ जब महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वरकी उसने इस प्रकार धारणा की तब एकाएकी तीनों लोक कांप उठे ॥ ७८ जब वह नृपकुमार एक चरणके आधारसे खड़ा रहा तब धरणी उसके अँगूठेसे दबी तो झुकने

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ॥ ध्यायन् भगवतो रूपं नाद्राक्षीत् किंचनापरम् ॥ ७७ ॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥ ७८ ॥ यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ॥ ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥८०॥ देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥८१॥

लगी, जैसे गजेन्द्रके एक पग दक्षिण और वाममें धरनेसे पद पद पर नौका झुक जाती है, ऐसे थोड़ीसी एक ओरको झुक गयी ॥ ७९ ॥ अनन्य मन प्राण जीत दशों द्वारोंको रोककर आत्माके साथ अभेददृष्टिसे विश्वात्मा विष्णु भगवान्‌का जब उसने ध्यान किया तब श्वासके रोकनेसे सब विश्वका श्वास रुका और लोकोंका दम घुटने लगा, तब लोकपाल और सब देवता महादुःखी हुए और इस भेदको न जान भगवान्‌की शरणमें गये ॥ ८० ॥ देवता बोले कि हे भगवन् ! सर्वान्तर्यामी चराचरलोकके प्राण क्यों रुक गये, इसका कारण हम नहीं जानते, हे शरणागतवत्सल ! हम सब आपकी शरण हैं, इस महाविपत्तिसे हमें बचाओ ॥ ८१ ॥

श्रीभगवान् बोले कि तुम कुछ भय मत करो, एक बालकने तप किया है, सो उसको मैं अभी जाकर निवृत्त करूँगा तुम अपने अपने स्थानको जाओ उत्तानपादका पुत्र ध्रुव तप करनेसे मुझमें उसकी आत्मा सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हुई है * ॥८२॥ इति श्रीमद्भा० महा० भा० टी० ध्रुवस्य मधुवनसमागमवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ दोहा—इस नवमें अध्यायमें; ध्रुव हरिसों वर पाय । आय भवन सबसे मिले, मात चरण शिर नाय ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब वन देवताओंका भय दूर हो गया, तब सब भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके सुरपुरको चले गये और श्रीभगवान् गरुड़पर चढ़कर अपने भृत्यके देखनेके लिये मधुवनमें आये ॥१॥ ध्रुवजी नेत्र बंद किये अपने ध्यानमें मग्न थे, योगसे पकी

श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥८२॥ इति श्रीभा०म०चतुर्थ०ध्रुवोपाख्याने मधुवनसमागमनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ त एवमुच्छिन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ॥ दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकः पिबन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥ ३ ॥

हुई तीव्र बुद्धि करके हृदयकमलके कोशमें प्रकाशित चपलासम चमकवाले भगवत्के चतुर्भुजी स्वरूपको जब हृदयमें न देखा तो एकाएकी चौंक उठे और आंख खोलकर चारों ओरको देखा तो वही सुन्दर सुहावनी मनभावनी मूर्ति जिनका हृदयमें ध्यान कर रहे वेही भगवान् सम्मुख विराजमान हैं ॥ २ ॥ उनका दर्शन करके विस्मयको प्राप्त हो, देहको पृथ्वीमें नवा दण्डवत् की और ऐसा जान पड़ा कि मानो मनोहर छबिके रसको नेत्रोंसे पियेंगे, मुखसे चुम्बन करेंगे, भुजाओंसे मिलेंगे, इस प्रकार ध्रुवजीने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया ॥३॥

* राग भैरवी-भक्त हैं मेरे जीवन प्रान ॥ जब जब भीर परत भक्तनपर धरत हमारो ध्यान । उसी समय सुधि लेत गरुड़ चढ़ त्याग खान अरु पान ॥ १ ॥ भक्त० ॥ भक्तहेतु अवतार लेत हूं भूमण्डलमें आन । हम भक्तनके भक्त हमारे करत सदा सम्मान ॥२॥ भक्त० ॥ जो कोइ मेरी शरण लेत हैं मुझको अपनो जान । मेरे हृदय बसत सो निशिदिन सज्जन सुजन सुजान ॥ ३ ॥ भक्त० ॥ मैं अपने प्रण भक्तोंको देत हृदय सुस्थान । शालिगराम नामसे बढ़कर और कौनसो दान ॥ ४ ॥ भक्त० ॥

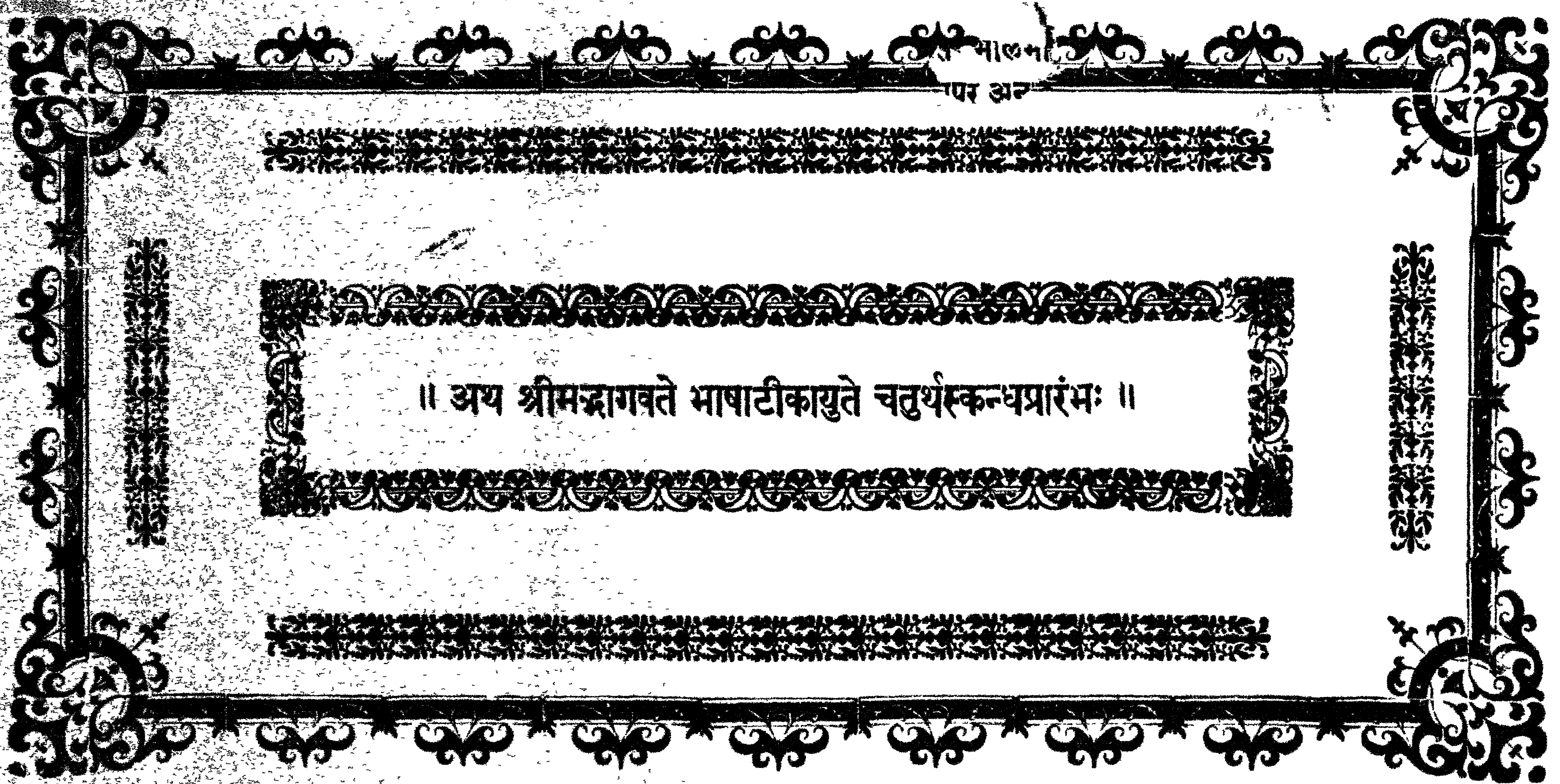

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धप्रारंभः ॥

चतुर्थस्कंधः

पृथुराजा

विदुर.
मैत्रेय.

आकुतीः

रुद्र
ऋषि

प्रसूतिः
दक्षादि

वीरभद्र
यज्ञ

पुण्यजन

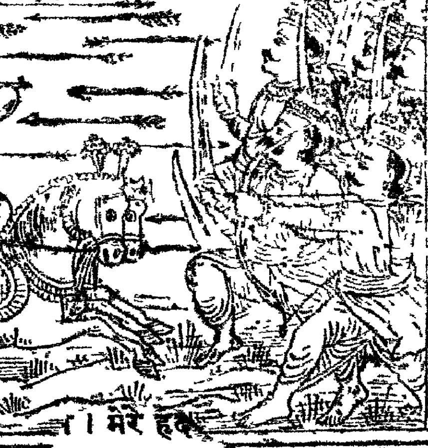

प्राचीनबर्हि
नारद

और कुछ भगवान्की स्तुति करनेकी इच्छा थी, परंतु कुछ कहना नहीं जानता था, सो [illegible] हृदयमें वासकरनेवाले भगवान् वासुदेवने उसके मनकी भावना जान हाथ जोड़ खड़ा देख, उसपर अनुग्रह करके पांचजन्य शंख उसके कपोलोंसे छुवा दिया ॥४॥ सो ध्रुवजी उसी समय देववाणीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे जीव और ईश्वरके निर्णयको जान ज्ञान, विज्ञान और भक्तिभावसे सब प्रकार प्रकट है प्रताप जिनका ऐसे ध्रुव स्थान निवासी भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ ध्रुवजी बोले कि जो अखिल

स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः॥कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः॥तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परि श्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥ ध्रुव उवाच ॥ योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥

शक्तिधारक मेरे भीतर प्रवेश कर, मेरी सोयी हुई वाणीको और हाथ, पांव, कर्ण, त्वचा, प्राणादिकोंको सर्वशक्ति धारी अपने तेजसे जिलाते हैं, उन भगवान् पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है॥ ६ ॥ हे नाथ ! यद्यपि तुम एक हो, अपनी मायारूप अनेक गुणवाली शक्तिसे महदादिक; सब यह जगत् रचकर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस मायाके असत् गुणोंमें नानारूप होकर प्रकाशित होते हो, जैसे काष्ठमेंअग्नि नानारूप

१ शङ्का-ध्रुवने पहिले भगवान्को अपने हृदयमें देखकर फिर तुरत अपने सन्मुख भगवान्को खड़ा देखकर फिर जानबूझकर मूर्ख क्यों हुए, भगवान्का किंचिन्मात्र नाम लेनेसे मनुष्य परमज्ञानी हो जाते हैं और ध्रुवजीने तो दर्शन किया फिर पीछे मूर्ख क्यों हुए?

उत्तर-पांच वर्षकी अवस्थामें ध्रुवको पिताने त्याग दिया, इसलिये रातदिन ध्रुव दुःखी होते हुए और भगवान्को देखकर प्रेम से ध्रुवकी आंखोंसे जल बहने लगा और कंठ गद्गद हो गया, शरीर पुलकायमानहो गया, इस कारण ध्रुवसे बोला नहीं गया, उसी कारण भगवान्की स्तुति भी ध्रुवसे नहीं हो सकी।

होकर प्रकाश करती है ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! शरणागत ब्रह्माने आपके दिये हुये ज्ञानसे जैसे सोता हुआ उठता है ऐसे इस विश्वको देखा, अतः हे आर्तबन्धो ! आपके किये उपकारोंका जाननेवाला, मुक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले आपके पादमूलको किस प्रकार भूल सकता है ? ॥ ८ ॥ जन्म मरणसे मोक्ष देनेवाले आपको जो पुरुष विषयादिक कर्मोंके लिये भजते हैं, निःसन्देह वे आपकी मायामें भ्रष्टमति हैं, क्योंकि कल्प वृक्षके सदृश आपको पूजकर वे पुरुष मृतककी नाईं, शरीर करके उपभोगकी चाहना करते हैं, हाय ! अरे मूर्खों ! विषयजन्य सुख तो प्राणियोंको नरकमें भी प्राप्त हो सकता है ॥ ९ ॥ हे नाथ ! शरीरधारियोंको जो सुख आपके चरणारविन्दके ध्यानसे अथवा आपके

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तः प्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृत विदा कथमार्तबन्धो ॥ ८ ॥ नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥ या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्या नाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किं त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमा नात् ॥ १० ॥ भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ॥ येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥ ११ ॥ ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृ हवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्धलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ १२ ॥

वैष्णवजन ब्राह्मणोंकी कथा श्रवणसे होता है, वह आनन्द अपनी महिमामें और ब्रह्ममें तो है ही नहीं, फिर यमराजके खड्गरूप कालसे मरनेवाले, विमानसे गिरनेवाले सुरपुरवासियोंको कहां मिल सकता है ॥ १० ॥ हे अनन्त ! सदा आपकी निरंतर भक्तिकरनेवाले, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरणवाले महात्मा जनोंका सदा सत्संग बना रहे, जिन सज्जनोंके मुखसे आपके गुणोंकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे उन्मत्त हो इस महादुःखदायी संसारको विना प्रयास उल्लंघन करूंगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! हे कमलनाभ ! जो पुरुष आपके चरणकमलकी सुगंधिके लोभी हृदयवालोंका सत्संग करते हैं, वे लोग न तो अतिशय प्रिय अपनी देहको समझते हैं और न

सुत, सुहृद्, भवन, धन, स्त्री इत्यादिका अनुसंधान करते हैं ॥ १२ ॥ हे ईश ! हे परम !! पशु, पक्षी, पन्नग, द्विज, सर्प, देव, [illegible] आदि असत् विशेषसमेत महदादि अनेक कारणवाले आपके केवल इस विराट्‌रूपको तो मैं जानता हूँ परन्तु इससे परे उस परमेश्वर स्वरूपको नहीं जानता, जहां कोई वादविवाद न कर सके और शब्दका भी सञ्चार नहीं है ॥ १३ ॥ महाप्रलयके समय इस विश्वको उदरमें रखकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीको गोदमें एक पुरुषरूप शयन करते हो, जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न हुए सुवर्णमय लोककमलकी कर्णिकामें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उन भगवान्‌को मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ तुम नित्यमुक्त हो, सब ओरसे विशुद्ध हो, सदा ज्ञानवान् हो, सर्वव्यापक

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥ कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णञ्छेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ॥ यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविशुद्ध आत्मा कूटस्थ आदि पुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥

हो, सर्वान्तर्यामी हो, आदिपुरुष हो, भगवान् हो, त्रिगुणोंके ईश्वर हो जो बुद्धिकी अवस्था हैं उन्हें अखंडित अपनी दृष्टिसे देखते हो, विश्वकी स्थितिमें अतिपूज्य हो, सबसे पृथक् होकर तुम रहते हो ॥ १५ ॥ जिसमें विरुद्ध गतिवाले विद्यादिक सर्व शक्तियां क्रमसे निरन्तर होती हैं, उस विश्वके उत्पन्न करनेवाले अनन्त, अखण्ड, अनादि, निर्विकार, आनन्दमय परब्रह्मके मैं शरण हूँ ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! पुरुषार्थमूर्तिके तुम्हारे चरणकमलके भजन करनेवालोंके आशीर्वादसे सब सत्य आशिष (परमार्थफल) निश्चित होते हैं, हे श्रेष्ठ ! यह वार्ता ऐसे है, तथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछड़ेको दूध पिलाकर सिंहादिकसे रक्षा करती है, उसीकी नाईं आप अनुग्रहयुक्त करुणारससे कातर होकर

मुझसरीखे दीनोंकी सब ओरसे रक्षा करते हो ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सत्यसंकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने जब इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तानुरागी भक्तवत्सल भगवान्‌ने आनंदित होकर यह वचन कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजपुत्र,! तेरे मनका विचार मैं जानता हूं, उसे मैं देता हूं, हे सुव्रत ! तेरा मंगल हो, हे ध्रुव ! वह पद और दूसरे मनुष्यको आजतक दुःखसे भी नहीं मिला ॥ १९ ॥ हे भद्र ! जो प्रकाशमान ध्रुवस्थान है, वहां और कोई स्थित नहीं है, जिसमें ग्रह, नक्षत्र, ताराओंका ज्योतिश्चक्र अर्पित है ॥ २० ॥ उसी ज्योतिश्चक्रकी * मेढीमें लगे हुए वृषभचक्रवत् स्थित है और ऊपरके कल्पवासियोंसे अधिक स्थायी है अर्थात्

मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवं क्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम्॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शक्रो मुनयो ये वनौकसः॥ चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः॥२१॥ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ २२ ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २३ ॥ इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥

त्रिलोकीका लय होनेपर भी उसका लय नहीं होता, धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक, वनवासी मुनि अर्थात् सप्तऋषि तारामण्डलसहित जिसकी परिक्रमा करके विचरते रहते हैं, हे ध्रुव ! वह सबमें सिद्ध ध्रुवस्थान मैंने तुझको दिया ॥ २१ ॥ अब तू अपने नगरको जा, तेरा पिता तुझको राज्यतिलक देकर बनको जायगा और तू गन्धर्वोंसे युद्ध कर अपना मनोरथ पूज धर्मानुसार छत्तीस सहस्र वर्षपर्यन्त भूमण्डलकी रक्षा करेगा ॥ २२ ॥ तेरा भाई उत्तम आखेटको जायगा और वहां उसका प्राण नष्ट होगा, तब अपने पुत्रके ढूंढनेके लिये उसकी जननी वनमें जायगी और वहां जब वह न मिलेगा, तो उसीके ध्यानमें दावानलमें जलकर मर जायगी ॥ २३ ॥ तब तू महाचक्रवर्ती हो, यज्ञ

करेगा और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा दे इन्द्रसेभी अधिक विभूतिको प्राप्त करेगा और बहुतसे यज्ञ करके और सब सत्य आशीर्वाद यहां भोग अन्तमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ फिर सब लोक जिसको प्रणाम करते हैं, सप्तऋषियोंमे भी ऊपर उस मेरे स्थानको जायगा और ऋषि तेरी स्तुति करेंगे, जहांका गया फिर लौटकर यहां नहीं आसकता ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार पूजित हो, अपना स्थान दिखा उस बालकके देखते देखते गरुड़ध्वज भगवान्‌ने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ २६ ॥ यद्यपि वह ध्रुव विष्णु भगवान्‌के पादारविन्दकी सेवामें लब्धसंकल्प मोक्षरूप अपनी मनःकामनाको प्राप्त हो गया था, तो भी अपने मनमें प्रसन्न न

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्चितम् ॥ लब्ध्वाऽप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥

हुआ; क्योंकि श्रीपति भगवान्‌के दर्शनका वियोग विचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओरको चला ॥ २७ ॥ विदुरजी बोले कि जो विष्णु भगवान्‌का परमपद सकाम पुरुषोंको महादुर्लभ है, सो भगवत्‌के पदार्चनसे उस सिद्धिको एक ही जन्ममें प्राप्त होकर उसने अपने आपको निष्फलसा क्यों समझा ! ध्रुव तो सब अर्थवेत्ता थे ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि विमाताके वाक्यरूपी बाणोंसे बिंधे हुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यान बना रहा, और मुक्तिपति भगवान्‌से मुक्ति नहीं मांगी, राज्यका ही अनुराग मनमें लगा रहा इसीसे राज्य मांगा परंतु उसको पश्चात् बहुत ताप हुआ ॥ २९ ॥ तब ध्रुवजी बोले कि अनेक जन्मोंमे समाधि लगाकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदनादिकोंने

जिस पदको नहीं पाया, सो मैं छः मासमें अव्यक्त भगवान्‌की पादछायाको प्राप्त होकर, हाय ! मैं भिन्नमति फिर संसारका संसारमें रहा ॥ ३० ॥ अहो ! मंदभागी मेरी दुरात्माका भाव तो देखो, संसारनाशक भगवत्‌के चरणकमलको प्राप्त होकर नाशवान् पदार्थको मांगा ॥ ३१ ॥ मेरे वरदानको सुनकर देवतालोग सहन न कर सके, उन देवताओंने मेरी मति हर ली, हाय ! मेरी मति मंद होनेका कारण यही है, जो मुझ दुरात्माने नारदजीका वचन न माना ॥ ३२ ॥ जगत्‌में कोई दूसरा मेरा विरोधी नहीं था तो भी दैवी मायाके अधीन होकर जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें द्वितीय अनेक असत् वस्तु देखता है वैसे ही व्यर्थ भाईका ही जो हृदयमें शत्रुभाव लग रहा है, उस क्लेशसे

अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥ ३१ ॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥ ३२ ॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥

वृथा संतापको प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥ जैसे आयुक्षीणकी चिकित्सा करना वृथा है इसी प्रकार मैंने जो यह मांगा है, सो सब वृथा है क्योंकि मुझ कर्महीन अभागेने विश्वात्मा विश्वाधार जो अनेक जन्म तप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्रसन्न होते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को प्रसन्न करके फिर इस नाशवान् संसारको ही मांगा, धिक्कार है धिक्कार है मेरी इस अज्ञानताको, सब ठौर भाग्य बलवान् है, न तप है न विद्या है ॥ ३४ ॥ भगवान् तो मुझको परमधाम देते थे और अपने समान बनाते थे, परंतु मुझ भाग्य हीनने अपनी शठतासे शठ बन मान मांगा, जैसे निर्धन पुरुष चक्रवर्ती राजाको प्रसन्न करके धनधान्यको छोड़ धानोंका तुष मांगे, इस प्रकार मैंने मान मांगा * ॥ ३५ ॥

* एक दृष्टांत स्मरण हुआ "चार पंडित रोजगारके लिये अपने घरसे परदेशको चले, उनमें एक ज्योतिषी, दूसरा नैयायिक, तीसरा वैयाकरण, चौथा वेदान्ती था, वे एक नगरमें पहुँचे और सबने यह विचार किया कि राजासे मिलना चाहिये ज्योतिषीजीसे कहा कि कोई श्रेष्ठ मुहूर्त विचारो, ज्योतिषीजीने कहा कि आधीरातका मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है, यह विचार चारों आधीरातके समय राजभवनको चल दिये, वहांका दरवाजा बन्द हो गया था, बहुत सोच विचार किया कि अब क्या करें ? निदान परनालेके मार्ग होकर प्रवेश किया, देखा तो वहां एक धानकी भूसीका--

मैत्रेयजी बोले कि हे तात ! आपके समान जो भगवान् वासुदेवके चरणमूलके सेवा करनेवाले दास हैं, वे दास्यभावके विना और पदार्थकी इच्छा नहीं करते क्योंकि मानकी समृद्धि तो यदृच्छासे ही प्राप्त हो जाती है ॥ ३६ ॥ नगरके निकट जब ध्रुव आया तो दूतोंने राजासे कहा कि महाराज ! आपका पुत्र ध्रुव आता है, पुत्रका आना सुन राजाको विश्वास न आया, जैसे मरे हुएके आनेका वृत्तान्त सुनकर कोई विश्वास नहीं करता है ऐसे ही पुत्रका आना सुन राजाने श्रद्धा न की और कहा कि मुझ अमांगलिकके मंगल कहांसे आया ? ॥ ३७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ॥ वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनस्समृद्धयः ॥ ३६ ॥ आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथाऽऽगतम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३७ ॥ श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ३८ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ३९ ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥

फिर नारदजीके वाक्योंमें विश्वास करके आनन्दके वेगसे धर्षित हो, ध्रुवजीके आनेका समाचार सुन दूतोंको बहुत धन और हार दिये ॥ ३८ ॥ सुन्दर सुन्दर सुवर्णके रथ उत्तम उत्तम वस्त्रोंसे मढ़े जिनमें श्यामकर्ण घोड़े जुते, ऐसे ऐसे सुहावने मनभावने रथोंपर बैठ बैठकर, ब्राह्मण, गुरु, कुलवृद्ध, मंत्री, सज्जन बंधुजनोंको साथ लिया ॥ ३९ ॥ और शंख, दुन्दुभी, बाँमरीबजाते, ब्राह्मण वेदध्वनि करते हैं । इन सबके साथ पुत्रके दर्शकी उत्कण्ठासे राजा शीघ्र पुरसे चला ॥ ४० ॥ सुनीति और सुरुचि दोनों राजा उत्तानपादकी स्त्री सुंदर शृंगार

—हेद्पड़ा है, सब बोले कि इसीको ले चलो, हमारी भैंसकी सानीके ही काम आवे, यह धीरोंने भूसी बांधी ' व्याकरणशास्त्री बोले कि राजासे भेट हुईही नहीं. भाई ! राजासे भेंट कर लो जाकर देखा तो राजा पलंगपर सो रहे हैं, इनको निहार राजा पुकार उठा कि चोर हैं ' चोर हैं ! पकड़ लो, यह बोले कि चोर नहीं हैं, हम पंडित हैं, आपके दर्शन करनेके लिये आये हैं, तब राजाने दण्डवत् करके कहा कि आपने बड़े कुसमय शुभागमन किया ? पंडित बोले महाराज मुहूर्त इसी समयका था. फिर राजाने कहा कि आपकी जो इच्छा हो सो माँगो. पंडितोंने कहा केवल आपके दर्शनोंकी ही आकांक्षा थी और लेनेके लिये तो पहले ही भूसीकी गठरियें बांध चुके, राजाने कहा तुम्हारी इच्छा, मार्गमें आकर बड़ा पश्चात्ताप चारोंने किया. ' मोरि गति अवणीकी हुई ॥

कर कर, सुवर्णकी पालकियोंमें बैठ बैठ उत्तम कुमारको संग ले ध्रुवकी अगवानीको चलीं ॥ ४१ ॥ उपवनके समीप ध्रुवको आता देख राजा शीघ्र स्यन्दनसे उतरकर प्रेमविवश पुलकायमान हो पुत्रके पास गया ॥ ४२ ॥ और मनमें अत्यन्त उत्कलित होनेके कारण श्वास लेता हुआ भगवत्के चरणस्पर्शसे जिस ध्रुवके सब पाप नष्ट हो गये थे, उस अपने सुतसे भुजा पसारकर मिले ॥ ४३ ॥ वारंवार उसका शिर सूंघकर राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे सुतको स्नान कराया और राजा उत्तानपादके मनके सब मनोरथ सफल हुए ॥ ४४ ॥ फिर ध्रुवने पिताके चरणोंको दण्डवत प्रणाम किया, राजाने बहुत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, फिर विमाताके पदोंमें मस्तक नवाकर

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वला ॥४२॥ परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥ ४३ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ४४ ॥ अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ॥ ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४६ ॥ यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥४७॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अङ्कसङ्गाद्धृतपुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥४८॥ सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥

प्रणाम किया जो ध्रुव सज्जनोंमें अग्रणीय और आदर सम्मान पाने वाला था ॥ ४५ ॥ अपने पावोंमें उस ध्रुवको उठा हृदयसे लगाकर नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! युग युग जिओ ॥ ४६ ॥ जो सुरुचिने ध्रुवमें अत्यन्त प्रेमप्रीतिभरी बातें कीं तो क्या आश्चर्य्य ! जिसके ऊपर स्वयं हरि भगवान् मैत्रीआदि गुणोंमे प्रसन्न होते हैं, उसको सब प्राणीमात्र नमस्कार करते हैं, जैसे जल आपसे आप नीची ओरको ढला चला जाता है ॥ ४७ ॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमविवश परस्पर मिलनेसे रोमांचित हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे ॥ ४८ ॥ फिर सुनीति ध्रुवकी जननीने अपने प्राणोंसे भी प्यारे सुतसे मिलकर हृदयके दाहको शीतल किया और अंगके

स्पर्शसे परमानन्द हो सब विषाद मनसे त्याग दिया ॥ ४९ ॥ हे विदुर ! उस समय सुनीतिके स्तनोंसे तो दूध टपकने लगा और नेत्रोंसे निर्मल जलकी धारा बहने लगी, उस समय वीरपुत्रको जननी दोनों धाराओंसे वारंवार सींच रही थी ॥ ५० ॥ उस सुनीतिकी सब लोग सराहना करने लगे कि बहुत अच्छा हुआ, जो भक्तोंका दुःख हरनेवाला, समस्त भूमंडलका रक्षक, पांच वर्षका तेरा पुत्र जो नगरसे निकल गया था, सो धरणी और धर्मका आधार कुशलपूर्वक तुझको मिला ॥ ५१ ॥ निश्चय होता है कि भगवान् वासुदेव प्रणतोंके दुःखभंजन, भक्तमनरंजन, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दका तूने भलीभांति आराधन किया है, जिनके ध्यान करनेवाले वीरपुरुष महाकठिन मृत्युको भी जीत लेते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार जिस ध्रुव कुमारको वारंवार लाड़लड़ाते और देख

पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजः सलिलैः शिवैः ॥ तदाऽभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५० ॥ तां शशंसु नेरा राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्त्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥ तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासस्स्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥

देख सुख पाते थे, उस ध्रुवको उत्तम कुमार समेत हथिनी पर चढ़ाकर राजा आनंदपूर्वक नगरकी ओरको चले और सब लोग आगे आगे स्तुति करते हुए चले ॥ ५३ ॥ उस नगरमें जहां तहां मरकतमणि लस रहे थे, तोरण, बंदनवार द्वार द्वार पर विराज रही थीं समूहके समूह केलेके खंभोंके जहां तहां, वैसे ही श्रीफल सुपारीके छोटे छोटे वृक्ष शोभा दे रहे थे ॥ ५४ ॥ आम्रपल्लव वस्त्रमाला और मोतियोंके लम्बे लम्बे हार जिनमें लटक रहे थे, द्वार द्वार पर दीपोंकी जगमग ज्योति हो रही थी, उनके प्रकाशसे सुवर्णके कलश कलशियां बिजलीसी झमझमा रही थीं, ॥५५॥ नगरकोट, कोटद्वार, गोपुर मंदिर मंदिरपर सुन्दर सुन्दर सुवर्णकी सामग्री सुशोभित और सब ओरसे

श्रीमत् विमानशिखरोंकी कांतिसे देदीप्यमान थे ॥ ५६ ॥ जहां सुन्दर सुन्दर चौवटियां, बीथी, [illegible], अटारी और मार्ग सेवतीके जलसे छिड़का हुआ, चंदनसे चर्चित, खीलें, चावल, पुष्प, फल, तंदुल, लौंग, बखेर रहे हैं और भेंट धरी हैं ॥ ५७ ॥ दधि, दूर्वा, सरसों, फल, अक्षत, थालोंमें धरकर पुरकी स्त्रियें दौड़ दौड़कर ध्रुवसे मिलनेको आती थी ॥ ५८ ॥ और अत्यन्त स्नेहसे सत्य आशीर्वाद देती थीं, उन कोकिलकंठियोंके मनोहर गीतोंको सुनते हुए ध्रुवजी पिताके भवनमें चले गये ॥५९॥ महामणियोंके समूहयुक्त उस परमोत्तम मंदिरमें पिताने बहुत लालन किया, स्वर्गमें देवता जैसे वास करते हैं ऐसे पिताके भवनमें ध्रुवजी निवास करने लगे ॥ ६० ॥ जिसमें

मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ॥ लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५७॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥ ५८ ॥ उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥ ५९ ॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥६०॥ पयः फेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ॥ ६१ ॥ यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६४ ॥

हाथीदांतके पायोंका पलंग, सुवर्णकी सामग्री, दूधके फेनके समान शय्या बिछी हुई थी, बहुमूल्य आसनोंकी शोभा हो रही थी और सब कर्मकी सामग्री ठौर ठौर धरी थी ॥६१॥ बिल्लौरकी भीतें जिनमें महामरकतमणिके आले बने हुए, उनमें मणियोंके दीपक जहां तहां धरे जगमगा रहे हैं और स्त्रीरत्न जहां बहुत इकट्ठे हैं ॥ ६२ ॥ अत्यन्त रमणीक जहां बाग लग रहे हैं वहां विचित्र कल्पद्रुमसमान वृक्षों पर रंग रंगके पक्षियोंके जोड़े अपनी अपनी मनोहर बोलियें बोल रहे थे, और मतवाले भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥ ६३ ॥ कनकमयी बावड़ी तडागोंमें निर्मल नीर झकोल रहे थे, वैदूर्यमणियोंकी सुन्दर शोभायमान सोपान चारों ओर बन रहीथीं, पद्म, कंज,

उत्पल, कल्हार जिसमें चार प्रकारके कमल फूल रहे थे और हंस, सारस, बक, चकवे, चकवियोंके समूहके समूह किलोलें कर रहे थे। सुरेन्द्र, नागेन्द्र और किसी नरेन्द्रके जो विभूति आजतक नहीं हुई सो सब ऐश्वर्य भगवानकी कृपासे ध्रुवजीके नगरमें उपस्थित था ॥ ६४ ॥ राजर्षि उत्तानपाद अपने पुत्रका अद्भुत प्रभाव कानोंसे सुनकर और नेत्रोंसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ६५ ॥ ध्रुवजीको हरिभक्त जानकर और अपनी वृद्धावस्था देखकर प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि अधिकार तो उत्तम कुमारका है, क्योंकि वह ज्येष्ठ पुत्र है परन्तु मेरे मनमें यह विचार है कि राज्यपद ध्रुवजीको दूँ, क्योंकि ध्रुवमें सब गुण हैं सचिव और प्रजागण एकबार पुकार उठे कि हे पृथ्वीनाथ! आपने ठीक विचार विचारा ध्रुवजीको ही राज्याभिषेक देना चाहिये। प्रजाओंकी सम्मतिसे सबको अनुरागी देख

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः ॥ वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७॥ इति श्रीभा०म०च०ध्रुवोपाख्याने नवमोऽध्यायः॥९॥ मैत्रेय उवाच प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥

राजाने राज्याधिकार दे पृथ्वीका पति ध्रुवको किया ॥ ६६ ॥ और राजा उत्तानपाद अपना देह वृद्ध जानकर सबसे विरक्त हो अपनी आत्माकी गति विचार करके तप करनेके लिये वनको चल दिया ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां ध्रुवस्य भगवत्कृपया पुना राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—इस दशमें अध्यायमें, ध्रुव अलकापुर जाय। जिन्मे मारे यक्ष सब, अति वीरता दिखाय मैत्रेयजी बोले कि शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमी नाम्नी कन्यासे ध्रुवजीने विवाह करके उसमें 'कल्प' और 'वत्सर' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१॥ दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला नाम्नीसे महाबली ध्रुवजीने 'उत्कल' नामक पुत्र उत्पन्न किया और

उसी रानीसे एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ उत्तम कुमारने विवाह ही नहीं किया था । वह पहले ही हिमालयपर्वतके भीतर आखेट खेलनेको गया था, वहां एक बलवान यक्षने उनको मार डाला और उसकी माता भी उसके समान गतिको पाकर मर गयी ॥ ३ ॥ जब ध्रुवजीको मालूम हुआ कि उत्तमकुमार यक्षोंके हाथसे मारा गया, तब कोप अमर्प शोकमें मग्न हो जयदायक रथमें बैठ कर अकेले ही पुण्यजनोंके निवासस्थल (अलकपुर) पर चढ़ाई की ॥ ४ ॥ रुद्रके अनुचर जिसमें वास करते हैं ऐसी उत्तर दिशामें जाकर

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥ ३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचाऽर्पितः ॥ जत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेवि ताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम्॥५॥ दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः॥ असहन्तस्तं निनादमभिपेतुरुदायुधाः॥७॥

हिमालय की गुफामें ध्रुवजीने अलकापुरी देखी[*]॥५॥ तब बड़ी बाहुवाले ध्रुवने शंखध्वनि, की जिसके शब्दसे आकाश और दशों दिशायें गूँज उठीं; मानो वज्रपात हुआ, हे विदुर ! उद्विग्नमन करके यक्षोंकी स्त्रियें अत्यन्त भयभीत हुई ॥ ६ ॥ तब शंखनाद सुनकर कुबेरके महाबली उपदेव, महाभट, गुह्यक, राक्षस, गंधर्वोंने प्रथम तो पृथ्वी और पर्वतोंकी ओर देखा; जब कुछ दृष्टि न आया तो क्रोधवंत हो कुबेर बोला कि ऐसा कौन बली है, जो हमसे युद्ध करने आया और शंख बजाया ? यह कह हथियार उठाये ध्रुवजीके सम्मुख आये ॥७॥

१ शङ्का–ध्रुवने अपने भ्राता उत्तमकुमारके मरनेका वृत्तान्त सुनकर बड़ा भारी युद्ध मूर्खोंके सदृश क्यों किया ? भगवानका प्यारा होकर विचारसे हीन काम करना यह बड़े आश्चर्यकी बात है और राज्यके लिये क्षत्रियोंको युद्ध करना यह बड़ी शोभा है, विना प्रयोजन युद्ध करना यह अत्यन्त मूर्खपन है ?

उत्तर–भाईके मरणका कारण सुनकर क्षत्रियोंको निंदित है ऐसा ध्रुवजी जानते रहे तो भी लोककी निन्दासे डरे कि, सब जगतमें दुर्नामता होगी कि ध्रुवके भाईको यक्षोंने मार डाला और ध्रुवने कुछ भी उनसे बदला नहीं किया और यक्षोंको त्रास नहीं दिया, यह कायरपन क्षत्रियोंको नहीं करना चाहिये, इस लोकनिन्दाके भयसे भगवान्के प्यारे ध्रुवजीने यक्षोंके साथ युद्ध किया।

ध्रुवजी प्रचण्ड कोदण्ड हाथमें लेकर सारथीसे बोले कि शीघ्र रथको ले शत्रुसेनाकी ओरको चल, आज इस शत्रुदलको मारकर मनकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा। नृपनंदनके गम्भीर वचन सुन सूतने रथको ऐसे दौड़ाया कि पवन भी मनमें लज्जित होता था, जाते ही धनुष टंकार कर मारमार मचा दी और रथको ऐसा दौड़ाता फिरता था, जैसे घनमें दामिनी दौड़ती है, कभी यहां कभी वहां बाणोंसे चारों ओर ऐसा अंधकार छा गया कि वीरोंको दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रहा, कि कहां है पूर्व और कहां है पश्चिम? एक एक यक्षके तीन तीन बाण एक संग मारे ॥ ८ ॥ जब उनके मस्तकोंमें तीक्ष्ण बाणोंके घाव लगे तब सब अपने आत्माको पराजय मानकर ध्रुवके पराक्रम और वीरताकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ परंतु ध्रुवजीकी धीरता और वीरता यक्षोंसे सही नहीं गयी, जैसे भुजङ्गके अङ्गमें पांव लगनेसे वह उसका सहन नहीं

स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥ तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शरैरविध्यन्युगपद्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥११॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥

कर सकता, इसी प्रकार यक्षोंके हृदयमें कोधकी दावानल भड़की और महाक्रोधवन्त हो ध्रुवसे द्विगुण बाण चलाने लगे क्योंकि इनको तो अपना बदला लेना था ॥ १० ॥ परिघ, निस्त्रिंश, पाश, शूल, खड्ग, परशु, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी और विचित्र पक्षोंवाले विशिख वर्षाने लगे ॥११॥ एक लक्ष तीस सहस्र १३०००० यक्षोंने ध्रुवजीको चारों ओरसे आकर घेर लिया और अपने अपने रथोंपर बैठे अत्यन्त कुपित हो बाण चला रहे थे ॥१२॥ उस समय उत्तानपादका पुत्र बहुत शस्त्रोंसे ऐसे ढक गया जैसे अधिक वर्षा होनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिप जाता है ॥ १३ ॥ जो सिद्ध लोग आकाशमें विमानोंपर बैठे देख रहे थे, उनमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ कि हाय! आज सर्वनाश हो गया,

आज मनुवंशका मार्तंड पुण्यजनरूपी सागरमें डूब गया ॥ १४ ॥ जय चाहनेवाले यातुधान जब युद्धस्थलमें जय जय शब्द उच्चारण करने लगे उस समय ध्रुवके रथका एक ऐसा प्रकाश हुआ जैसे कुहरामेंसे सूर्य निकलता है और दशों दिशाओंमें प्रकाश होजाता है ॥ १५ ॥ उस समय ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार कर द्वेष और खेदके उत्पन्न करनेवाले शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको अपने तीव्र बाणोंसे काटकर ऐसे बखेर दिया, जैसे पवन मेघोंके समूहको खण्ड खण्ड कर देता है ॥ १६ ॥ ध्रुवके धनुषसे जो बाणोंके निकर निकलते थे, वे यक्षोंके कवचोंको भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुस जाते थे जैसे वज्र पर्वतको तोड़कर भीतर प्रवेश करता है, एक एक बाण दश दश राक्षसोंके हृदयको विदीर्ण कर निकल जाता था, ऐसे लक्षों बाण ध्रुवने यक्षोंको मारे ॥१७॥ कंचनके कुण्डल जिनमें झलक रहे ऐसे ऐसे सहस्रों शिर

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संच्छिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥१९॥ हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥२०॥ अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥

शिरोंसे छिदे हुए हैं और हेमतालसम जंघा, कंकण, भुजबंद, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काट डालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगड़ियोंसे ढकी हुई संग्रामभूमि योद्धाओंका मन मोहनेवाली ऐसी अनुपम शोभा दिखायी देती थी मानो नये नये शृंगार किये आनंदमें मग्न हैं ॥ १९ ॥ क्षत्रियवंशउजागर जो ध्रुवजी हैं,उनके तीक्ष्ण बाणोंसे जिनके अंग कट गये थे ऐसे वीरपुरुष रणस्थलमें पड़े थे और जो मरनेसे बच रहे थे वे संग्रामांगणसे ऐसे भाग गये, जैसे पंचाननको देखते ही हाथियोंके यूथके यूथ पलायित होजाते हैं ॥ २० ॥ मनुकुलभूषण ध्रुवजीने जब उस महासंग्राममें किसी शस्त्रधारीको खड़ा न देखा तो शत्रुकी पुरीमें जानेका विचार किया; फिर मन ही मनमें

विचारा कि यह गुह्यक लोग बड़े मायावी होते हैं, न जानिये क्या उपद्रव कर बैठें ? इनके कर्तव्यको मैं नहीं जान सकता। हे सारथी ! तेरी क्या इच्छा है ? मैं नगरमें जाऊं वा न जाऊं ? सारथी बोला कि हे नाथ ! कदापि भूलकर भी नगरमें पैसार न कीजिये, क्योंकि माया रचनेमें ये यक्ष लोग बड़े छली और बड़े बली हैं, कोई न कोई छल अवश्य करेंगे तो फिर जीती हुई बाजी हाथसे जाती रहेगी और सदा पश्चात्ताप मनमें बना रहेगा ॥ २१ ॥ ध्रुव विचित्ररथी अपने सारथीसे यह बातें कर रहे थे और वैरियोंके पुनरुद्योगकी शङ्कासे विचार पूर्वक रथको रोके हुए खड़े थे, कि इतनेमें आश्रित समुद्रके गर्जनेकेसा शब्द सुनायी पड़ा और चारों ओरसे आंधीकेसी धूरि उड़ती दृष्टि पड़ी, पवन ऐसे वेगसे चलने लगी, मानो आज ही सब भूमिके भूधरोंको उखाड़कर फेंक देगी ॥ २२ ॥ एक क्षणमात्रमें सब गगनमंडल

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यतः परेषां प्रतियोगशङ्कितः॥ शुश्राव शब्दं जलधाविवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयँस्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥ अहयोऽशनिनिश्श्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाऽक्षिभिः ॥ अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥

मेघसमूहोंसे व्याप्त हो गया संसारमें अन्धकार छा गया, चारों ओर अनेक प्रकारकी दामिनी दमकने लगी, महाभयानक वज्रपात होने लगा और बादलके गर्जनेका ऐसा महाघोर शब्द होता था, मानो आज ही प्रलय हो जायगी ॥ २३ ॥ हे पापरहित विदुर ! क्षणमात्र पश्चात् आकाशसे रक्तकी धारा वर्षने लगी । फिर पुरीष, पीब, मूत्र, चर्बी, मांसादिक अधम पदार्थोंकी वृष्टि होने लगी और ध्रुवके आगे आकर कबन्ध गिरने लगे ॥ २४ ॥ फिर आकाशमें एक बड़ा लम्बा चौड़ा पहाड़ दिखायी दिया, मानो चारों दिशाओंमें एक वितान तान दिया है, और फिर उसमेंसे लाखों पाषाण गिरने लगे, फिर अखण्ड वृक्षोंकी वर्षा होने लगीः फिर अत्यन्त भयानक अग्निके अंगारके अङ्गारे आने लगे, फिर दशों दिशाओंसे गदा, परिघ, मुशल, खड्ग और महाकठोर कुठार गिरने लगे ॥ २५ ॥ फिर कुपित हो वज्रसमान श्वास लेने

हुए सहस्रों सर्प फण उठाये फुंकारते कुपित हो आंखोंसे अग्निसी लपटें निकालते ध्रुवपर धाये, फिर मतवाले मतंग, सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष, श्वानोंके समूहके समूह चारों ओर दौड़ने लगे, फिर दो दो शिरवाले, पांच पांच शिरवाले, दश दश शिरवाले, पांच भुजावाले, दश भुजावाले, वीस भुजावाले, तीन चरणवाले, छः चरणवाले, नौ चरणवाले, अनेक अनेक भांतिके भूत, प्रेत, वेताल आने लगे और ध्रुवजीको भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ फिर समुद्र भयंकर लहरें लेता चारों ओरसे भूमिको डुबाता भूधरोंको गिराता चला आता है और प्रलयकालके समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानकरूपसे ध्रुवजीके समीप आ गया ॥ २७ ॥ कायरोंको ऐसे अनेक प्रकारके तीक्ष्णत्रास दिखानेके

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥२८॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ॥ निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥२९॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥ ३० ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थस्कन्धे ध्रुवोपाख्याने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

लिये असुरोंने अपनी आसुरी माया रची ॥ २८ ॥ असुरोंने जब ध्रुवजीपर अत्यन्त दुस्तर मायाओंका प्रयोग किया, तब ऋषीश्वर और मुनीश्वर अत्यन्त कृष्णभक्त ध्रुवको दुःखी देखकर आकाशसे पुकार पुकार मंगलवाची शब्द कहने लगे ॥ २९ ॥ सप्तऋषि बोले कि हे ध्रुव ! हे उत्तानपादके कुमार ! ! कुछ शंका न कीजिये श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका ध्यान लगाओ वह शार्ङ्गधन्वा धरनहारे भृत्योंका भयहरनहारे, वासुदेव भगवान् शरणागत प्रतिपालक तुम्हारे शत्रुओंका शीघ्र नाश करेंगे, हे ध्रुव ! जिनका नाम लेने सुननेसे विना परिश्रम, विना उपाय इस संसारसे पार हो जाते हैं ❋ ॥३०॥ इति श्रीम० म० च० भाषाटीकायां ध्रुवस्य यक्षैः सह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

❋ भजन–श्रीगोविन्द परमानन्द सन्तन हितकारी ॥ दीनबन्धु दामोदर मधुसूदन मुरलीधर । विश्वनाथ विश्वंभर व्रजपति बनवारी ॥ १ ॥ जनपर जब परत भीर, तुरत धरत नरशरीर । क्षण भरमें हरत पीर, सांवरे बिहारी ॥२॥ हरि हरि जब टेरो गज, धाये झट खगपति तज । धन धन गरुड़ध्वज, भक्तनभयहारी ॥ ३ ॥ करुणाकर कष्ट हरण, वीरोत्तम धीरधरण । अब तो हूं चरण शरण, हे प्रभु तुम्हारी ॥ ४ ॥ दुःशासन दुष्टराज, नग्न करन चहत आज । देख रह्यो सब समाज, लाज सब बिसारी ॥ ५ ॥ वेग आय लो बचाय, नातो सब लाज जाय, फिर तुम—

दोहा—एकादश अध्यायमें, देख यक्षसंहार। मनुने वर्जा ध्रुवको, हे सुन इनहि न मार ॥ मैत्रेयजी बोले कि सप्तऋषियोंका यह वचन सुनते ही ध्रुवजीने आचमन करके धनुषमें नारायणास्त्रका सन्धान किया ॥ १ ॥ हे विदुर! नारायणास्त्रका सन्धान करते ही यक्षोंकी रची हुई माया क्षणमात्रमें ऐसे विनष्ट हो गयी, जैसे ज्ञानका उदय होते ही सब क्लेश दूर हो जाते हैं ॥२॥ जब ध्रुवजीने नारायणास्त्रका प्रयोग किया उस समय सुवर्णके अन्तभागवाले मनोहर हंसोंके पंखरूपी बाण धनुषसे निकल निकलकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश करने लगे जैसे भयंकर शब्दवाले मोर

मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥१॥ संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥ तस्यार्षमस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः ॥ विनिस्सृता निर्विविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥ ३ ॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ॥ तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः॥४॥ स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ॥ निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥५॥

वनमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ कठिन धारवाले शरोंसे मारेहुए पुण्यजन संग्राममें अत्यंत कुपित हो शस्त्र उठा उठाकर चारों ओरसे ध्रुवजीपर झपटे जैसे गरुड़के सम्मुख सर्प फण उठाकर दौड़ता है ॥४॥ ध्रुवके बाणोंसे रणस्थलमें जिनके बाहु, ऊरु, जङ्घा, शीश, अधर कन्धे, उदर, कट गये थे उनको सूर्यमण्डलसे परे जो परमधाम है वहां पहुँचा दिया, जहां भक्तजन सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं ॥ ५ ॥ *

—तुम कहा करहु आप, जब न रहै सारी ॥ ६ ॥ हे गोविन्द हे गिरिधर, हे यदुपति हे श्रीधर। [illegible] द्रौपदी पुकारी ॥ ७ ॥ [illegible] हो सवार, धाये यशुदाकुमार, बढ़ाइये पट अपार, झटपट असुरारी ॥ ८ ॥ धन धन ध्रुव ज्ञानवान, भक्तनमें अतिसुजान, जगमें को तुम समान, धर्मध्वजा धारी ॥ ९ ॥ जो जन है परमभगत, हरि हरि दिनरात जपत, तिनको नहि देख सकत एक क्षण दुखारी ॥ १० ॥

* शंका—ध्रुवने यक्षोंको मारकर योगियोंके लोकको क्यों भिजवाया जो पुरुष युद्धमें मारे जाते हैं, उनको स्वर्ग प्राप्त होता है परन्तु ब्रह्माण्डमें प्राणोंके चढ़ानेवाले ब्रह्माण्डको फोड़कर परम पदको जानेवाले मुनियोंके लोकको युद्धमें मरेहुए प्राणी कभी भी नहीं जासकेंगे ध्रुवने यक्षोंको कैसे उस लोक को भिजवादिया?

उत्तर—ध्रुवने यक्षोंको नारायणास्त्र मारा और नारायणास्त्र यक्षोंके शरीरमें लगया, नारायणास्त्रके मारनेसे अथवा उसी अस्त्रको छूके वा भगवानके दास ध्रुवको देखकर यक्षोंने अपने प्राणोंको छोड़दिया इसलिये यक्ष परमपदको प्राप्त हुए।

महाबाहु ध्रुवके हाथसे निरपराधी बहुत गुह्यकोंको मरे हुए देखकर करुणासागर मनुजी ध्रुवके पितामह सप्तऋषियों सहित ध्रुवजीके समीप आकर॥६॥ मनुजी बोले कि हे पुत्र ! यह क्रोध पापका रूप और नरकका देनेवाला है, इसको छोड़ दे वृथा रोष करके इन पुण्यजनोंको तुमने मारा ॥७॥ हे वत्स ! हमारे कुलके योग्य यह कर्म तुम्हारा नहीं है, निरपराधी यक्षोंका मारना इस कर्मकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं ॥८॥ एक यक्षके अपराध करनेसे तूने सहस्रों यक्ष मार डाले । हे भ्रातृवत्सल ! हे अंग ! ! एक भाईका वध होनेसे तुमने कुपित होकर सब यक्षकुलका विध्वंस कर दिया ॥९॥ हृषीकेश भगवान्‌के भक्तोंका यह मार्ग नहीं है, जो उत्तम शरीर पाकर आत्मज्ञानी होकर पशुओंके समान जीवोंकी हिंसा

तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औतानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥ ६ ॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ॥ ७ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाऽङ्ग भ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ॥ यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥१२॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥

करते हो ॥१०॥ सब जीवमात्रमें अपने समान भाव जानकर सब जीव जिसमें वसते हैं, ऐसे हरिका आराधन करनेके प्रतापसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और तूने भगवान्‌का ध्यान भी किया है और श्रीवैष्णवोंमें श्रेष्ठ भी है और महात्मा-पुरुषोंके वृत्तकी शिक्षा भी पायी है, फिर यह निंदित कर्म क्यों किया ? ॥१२॥ सहनशीलता, मैत्री, दया, क्षमा सब जीवमात्रमें करनी योग्य है, क्योंकि सबमें समताका भाव रखनेसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जब भगवान् वासुदेव जिसपर प्रसन्न होते हैं, तब प्राकृत

गुणोंसे वह छूटकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्मके आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और पंचभूतसे यह सब स्त्रीपुरुष जन्म लेते हैं और सब जानते हैं कि स्त्रीपुरुषके ही मैथुनकर्म करनेसे इस जगत्‌में नर नारी उत्पन्न होते हैं, फिर पिता, भ्राता, पुत्रादिक संबंध सब वृथा हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! परमात्माकी विचित्र मायाकरके गुणोंके उलटे पुलटे होनेसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता रहता है ॥ १६ ॥ इसमें निर्गुणपुरुष श्रेष्ठ ईश्वर तो केवल निमित्त मात्र है, उसमें कोई गुण नहीं; जैसे चुम्बक पत्थरके निमित्तसे लोहा घूमता है, इसी प्रकार यह कार्य्यकारणात्मक संसार घूमता रहता है ॥ १७ ॥ संसार करके जिनके वीर्यका विभाग किया गया है वह भगवान् अपनी कालशक्तिसे आप अकर्ता है, तो भी इस संसारको वारंवार रचता है और आप अहंता होनेपर भी इस संसारका वारंवार संहार करता है, निश्चय है

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥१६॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनाऽन्तकम् ॥ १९ ॥ न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसंघाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःखस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥

कि सर्वशक्तिमान भगवान्‌की चेष्टा कोई जान नहीं सकता। चौपाई–"हरिचरित्र को जाननहारा। कहाकहत जो करत विचारा" ॥ १८ ॥ सो अनंत अंत करनेवाला काल अनादि सबकी आदि करनेवाला है, सो जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युसे कालरूप होकर मारता है ॥ १९ ॥ वह परमात्मा प्रजाको समान भावसे देखता है, उस मृत्युरूप परमेश्वर कालरूपके न तो कोई अपना है न कोई पराया है। असमर्थ, अनाथ होकर यह सब जीवसमूह कर्मोंके वश होकर कालके दौड़नेसे उसके पीछे दौड़ते हुए चले जाते हैं, जैसे पवनके प्रसंगसे रजके कण उड़े चले जाते हैं ॥ २० ॥ जीवकी आयुकी हानि और रक्षा यह दोनों बातें कर्माधीन हैं और परमात्मा तो स्वयं इच्छाचारी है उसके

केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नाना शक्त्युदयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ॥ विसर्गादनयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ॥ अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥ यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥

तो न कभी क्षति है, न कभी वृद्धि है । कभी स्वस्थ, कभी असवस्थ ऐसे जीवका भगवान् विधान करते रहते हे ॥ २१ ॥ हे नृप इन संसारकी अद्भुत रीति है, कोई आचार्य तो कर्मको ईश्वर कहते हैं, कोई स्वभावको ईश्वर कहते हैं, कोई कालको ईश्वर कहते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं और वात्स्यायनादि ऋषि कामदेवको ईश्वर कहते हैं ॥२२॥ उस अप्रमेय, अव्यक्त, शान्तरूप, महत्तत्त्वादि अनंत शक्तियोंके उत्पन्नकर्ता भगवान्की इच्छाको कोई नहीं जान सकता तो फिर उनके जन्मकर्मका भेद कैसे जान सकता है ? ॥ २३ ॥ हे वत्स ! इन कुबेरके यक्षोंने तुम्हारे भ्राताको नहीं मारा है । हे तात ! जन्म मरण तो पुरुषके भाग्यसे होता है ॥ २४ ॥ वही विश्वका रचनेवाला है, वही पालन करनेवाला है और वही नाश करनेवाला है । यद्यपि ऐसा है तो भी अहंकारके त्यागनेसे गुण कर्ममें लिप्त नहीं होता ॥२५॥ वही कालरूप ईश्वर भूतात्मा भूतोंका ईश, सबका पालक, अपनी माया शक्तिसे युक्त होकर सब जीवोंको रचता है, पालता है, संहार करता है ॥२६॥ हे तात ! जो अभक्तोंको मृत्युरूप, भक्तोंको अमृतरूप है, उस जगत्परायण सर्वात्माकी शरणमें तू जा, जिसको विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजी भी बलि देते हैं, जैसे नथनोंमें पोई हुई रस्सीके वशीभूत हो "बैल" सब स्थानोंमें घूमता फिरता है ॥२७॥ जब तू पांच वर्षका था, तब तूने अपनी माताको त्याग विमाताके मर्म भेदी वचनोंसे मर्मस्थानमें छिद्र होनेके कारण वनमें जाकर परमात्माके चरणारविन्दका आरा

[illegible]न कर साक्षात् दर्शन किया और त्रिलोकीके मस्तकपर जो सर्वोत्तम स्थान है वह उच्चपद लिया ॥ २८ ॥ हे अंग ! आत्मामें विरोधको दूर करके आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षरको आत्माविमुक्त आत्मदर्शीका अनुसरण कर, जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होता है ॥२९॥ जब तू दिव्य दृष्टि करके परमात्माका अनुसरण करेगा उस समय पृथक् आत्मरूप, अनंत, आनंदमात्र, व्यापक सर्वशक्ति जिसमें प्राप्त ऐसे पर आत्मामें पराभक्ति होगी, फिर पीछे धीरे "मम" "अहंकार" जो अविद्याकी ग्रंथि है वह कट जायगी * ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! जैसे औष

तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् आत्मानमन्विच्छ विमुक्त आत्मदृक् यस्मिन्निदम्भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपसन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥

धिके सेवन करनेसे रोग शान्त हो जाता है, इसी प्रकार भगवत्-भजनसे इस क्रोधको शान्त कर, जिससे तेरा कल्याण हो। यह क्रोध अमंगलकी मूल है, अनेक शास्त्रोंके सुननेका यही फल है कि चित्त जिसमें शान्त हो जाय ॥३१॥ और जो पुरुष क्रोधके वशमें हो जाता है, उसको ज्ञान नहीं रहता, सबको डराता है, इसलिये जो अपने आत्माका अभय चाहे तो वह प्राणी क्रोधसे बचा रहे, क्योंकि क्रोध बुद्धिका विनाशक है ॥३२॥ शिवके भ्राता कुबेरका तुमने अपमान किया और यह समझकर यक्षोंका वध किया कि मेरे भाईको मार डाला है ॥३३॥

* राग भैरवी–इस प्राणीको कृष्णभजन ही. परमानन्द दिखाता है रे। बिना किये हरिभक्ति जगतमें, मुक्ति न कोई पाता है रे ॥ १ ॥ धन दौलत अरु [illegible] काम न [illegible] है रे। सब अपने अपने स्वारथके. सुख देखेका नाता है रे ॥ २ ॥ दारापुत्र पौत्रके ऊपर, फूला नहीं समाता है रे। माया मोह लोभके वश हो, वृथा जन्म गवाता है रे ॥ ३ ॥ अब भी [illegible] अज्ञानी, कहै जिन्हे तू भ्राता है रे। अन्तसमय कोइ काम न आवै, आप अकेला जाता है रे ॥ ४ ॥ काल आय जब शिरपर गाजत कफ घटमें घिर आता है रे। [illegible] शिर धुनि धुनि पछताता है रे ॥ ५ ॥ हरि हरि भज राजस तामस तज, जो तेरा सुखदाता है रे। वोही सर्व जगतका स्वामी सब दुखद्वंद्व मिटाता है रे ॥ ६ ॥ [illegible] हरिगुण गाता है रे। "शालिग्राम" वही इस जगमें. पूरण भक्त कहाता है रे ॥ ७ ॥

हे वत्स! अब नम्रतासे मीठे वचनोंसे उनको प्रसन्न करो, क्यों कि महात्मा पुरुषोंके तेजसे हमारे वंशका नाश न हो जाय॥३४॥ इस प्रकार स्वायंभुवमनुने अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा कर उसकी वन्दनाको स्वीकार करके सप्तऋषियोंको साथ ले अपने भवनको गमन किया ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० चतुर्थ० भा० टी० मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥ दोहा–द्वादशमाहिं कुबेरने, ध्रुवयश कियो बखान। तब ध्रुव निजपुर जायके, कीने यज्ञ महान ॥ मैत्रेयजी बोले ध्रुवजीको हिंसा करनेसे निवृत्त देख और क्रोधमें विगत हुआ जान भगवान् कुबेरने चारण, यक्ष, किन्नरोंके साथ हाथ जोड़े स्तुति करता ध्रुवजीको देखकर ॥ १ ॥ कुबेर बोले

तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ॥ तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥ इति श्रीभा०म०चतु०एकादशोऽध्यायः ॥११॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान् धनेश्वरः ॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥ धनद उवाच ॥ भोभोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥३॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ ६ ॥

कि हे क्षत्रियनन्दन! हे पापरहित! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं, क्योंकि तूने अपने दादाकी आज्ञा मानकर दुस्त्यज वैरको त्याग दिया ॥२॥ न तो तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, सब प्राणियोंके जीवन मरणका कारण काल ही है॥३॥ "मैं" और "तू" यह बुद्धि पुरुषकी अज्ञानसे होती है, सो सब स्वप्नवत् है. जैसे असत्पदार्थके ध्यान करनेसे स्वप्नद्रष्टाको सत् ही भासता है, यही बंध मोक्षका कारण है ॥ ४ ॥ हे ध्रुव! तुम्हारा मङ्गल हो! तुम अपने स्थानको जाओ और भगवान् अधोक्षज सर्व भूतात्मविग्रह परमेश्वरको सर्व भावसे प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ जिनके चरणकमल भजनीय, संसारके नाशक शक्तियुक्त, गुणमयी आत्ममायासे रहित परमात्माको संसार

निवृत्तिके लिये तुम भजो ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन ! जो तुम्हारे मनमें इच्छा तो निशङ्क होकर वही वर मांगो, क्योंकि तुम वरदानके योग्य हो और हमने यह भी सुना है कि तुम भगवान् कमलनाभके चरणारविन्दके आश्रित हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजाओंके राजा कुवेरने जब परमात्माके परमभक्त महाविद्वान् ध्रुवजीसे कहा कि वर मांगो, तब महाभागवत ध्रुवने यह वर मांगा, कि मेरा मन हरिमेंसे कभी चलायमान न हो, ऐसी ही स्तुति सदा भगवत्की भक्तिमें बनी रहे; जिससे यह पुरुष इस दुरत्यय अंधकारसे विनायत्न किये पार होजाते हैं ॥ ८ ॥ इडाबिड़ाके पुत्र कुबेर प्रसन्नमनसे ध्रुवको यह वरदान दे ध्रुवजीके सम्मुखसे अंतर्धान हो गये और ध्रुवजी अपने

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ॥ वरं वराहोंऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥

नगरको चल दिये ॥ ९ ॥ फिर जिसमें अनेक प्रकारकी दक्षिणा दी जाती है ऐसे यज्ञोंसे यज्ञेशका पूजन कर द्रव्य क्रिया और देवता संबन्धी कर्म करके साध्य जो फलरूप कर्म है उसके फलदायक यज्ञपति विष्णु भगवान्‌का यजन किया । १० ॥ और सबके आत्मा, सर्वत्र व्यापक अच्युत भगवान्‌की तीव्र वेगवाली भक्ति करते करते अपने आत्मामें और सब जीवोंमें स्थित एक सर्वसमर्थ भगवान्‌को देखने लगे ॥ ११ ॥ और शीलसिंधु, ब्रह्मण्य, दीनदयालु, धर्मकी सीमाके रक्षक, सर्व शास्त्र और श्रुतियोंके ज्ञाता उस ध्रुवको सब प्रजा पिताके समान मानने लगी ॥ १२ ॥ इसी प्रकार छत्तीस ३६००० सहस्र वर्षतक भूमंडलमें राज्य किया, भोगोंसे पुण्यको और अभोगोंसे

अशुभ पापको क्षय करते रहे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार बहुत कालतक जितेंद्रिय हो त्रिवर्गको व्यतीत कर अपने पुत्रको राज्यतिलक दे दिया ॥ १४ ॥ इस संसारको मायारचित मानकर अविद्यारचित स्वप्न व गंधर्वनगरसमान जानने लगे ॥ १५ ॥ तन, धन, स्त्री, पुत्र, सुहृद, सेना, ऋद्धि, भंडार, अंतःपुर, रमणीक विहारकी भूमि और समुद्रपर्यन्त भूमंडलका राज्य इन सबको कालसे नष्टवान् मानकर ध्रुवजी बदरिकाश्रमको चले गये ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर सर्वेन्द्रिय विशुद्ध शुद्धचित्त हो, कल्याणरूप जलमें स्नान कर, आसन लगाके पवन, मन, सब इंद्रियें जीत, भगवान्के स्थल विराट्स्वरूपमें मनको लगाया। फिर बहुत कालतक उस स्वरूपका ध्यान करते करते अभेद

एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितं स्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मास्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाञ्चिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः ॥ विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ॥ स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥ २० ॥

हो, समाधिमें स्थितप्रज्ञ हो, स्थूलस्वरूपको भी तज ब्रह्मरूप हो गये ॥ १७ ॥ श्रीहरि भगवान्की निरंतर भक्ति करते करते यह गति हो गयी कि आनंदके बाष्पबिन्दुओंके प्रवाहसे वारंवार पीड़ित हो हृदय द्रवीभूत होगया, देह पुलकायमान होगया; लिंगशरीरके त्यागनेसे उसे अपने आत्माका भी स्मरण न रहा ॥ १८ ॥ उस समय आकाशसे उतरता हुआ एक अनुपम विमान ध्रुवजीको दिखायी दिया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा दशों दिशाओंको प्रकाशित करता है इसी प्रकार सब दिशाओंमें प्रकाश हो गया ॥ १९ ॥ उसमें देवश्रेष्ठ भगवान्के दो पार्षद नंद सुनंद नामक बैठे देखे। वे चतुर्भुजी, श्यामवर्ण, किशोर वय, अरुणांबुज समान नेत्र, पीतपट धारण किये, किरीट, हार, भुज

बंद, मकराकृत कुण्डल पहने, गदा हाथमें लिये खड़े थे ॥२०॥ उनको विष्णु भगवान्के पार्षद जानकर शीघ्र उठ खड़ा हुआ और चित्तमें संमोह होजानेके कारण पूजाके क्रमकी विस्मृति हो गयी और भगवान्के मुख्य पार्षद समझ भगवत्के नाम लेता हुआ दोनों हाथ जोड़कर दंडवत् प्रणाम करने लगा ॥२१॥ भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दमें जिसका मन लग गया है उस नम्रतापूर्वक कन्धा नीचेको किये, हाथ जोड़े ध्रुवको खड़ा देखा, तब सुनंद नंद उसके निकट आकर मंदमंद मुसकाय भगवान् कमलनाभके परमसंमत पार्षदोंने कहा ॥ २२ ॥ सुनंद नंद बोले, कि हे महाराज! तुम्हारा कल्याण हो, सावधान होकर हमारी वाणी सुनो—आपने पांच वर्षकी छोटी अवस्थामें महा कठिन

विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विपः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥ तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ॥ सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥ २२ ॥ सुनन्दनन्दावूचतुः ॥ भोभो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥

तप करके देवताओंको तृप्त करनेवाले भगवान्को प्रसन्न किया है ॥ २३ ॥ उन सब जगत्के धारण पोषण करनेवाले धनुषधारी श्रीनारायणके हम पार्षद हैं, तुमको भगवान्के परमधामको लेजानेके लिये हम यहाँ आये हैं ॥ २४ ॥ जो महाऋषियोंसे न जीता गया आजतक विचार ही कर रहे हैं, उस विष्णुपदको तुमने जीता है, जिसके प्राप्त होनेके लिये बड़े बड़े विवेकी खड़े सोच विचार कर रहे हैं, उस स्थानपर चलकर तुम विराजमान हो, जहां सूर्य चन्द्रमादिक ग्रह, नक्षत्र, तारागण आपकी प्रदक्षिणा दिया करेंगे॥२५॥ हे ध्रुव! आजतक जिस स्थानमें न तो कोई आपका पुरुष पहुँचा, न कोई और प्राणी पहुँचा, वहाँ उस जगतवंद्य विष्णु भगवान्का परमपद है, उसमें तुम निवास करो ॥ २६ ॥

इसलिये परमोत्तम विमान देवताओंके शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान्ने तुम्हारे लिये भेजा है सो हे आयुष्मन्! आप इसपर चढ़ो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि उरुगाय भगवान्के प्यारे ध्रुवने भगवान्के परम अधिकारी पार्षदोंके सुधारूप वचन सुन स्नान कर, नित्यकृत्यसे निश्चिंत हो, मांगलिक अलंकार पहन, मुनियोंको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लिया ॥ २८ ॥ फिर उसी विमानकी प्रदक्षिणाकर पूजनके पश्चात् पार्षदोंके चरणोंकी वंदना कर हिरण्यमय स्वरूप धारण करके उस उत्तम विमानपर बैठनेकी इच्छा की ॥ २९ ॥ उसी समय मृत्यु आकर

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमः प्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परेत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ॥ गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥

उपस्थित हुआ और ध्रुवजीको प्रणाम करके बोला कि कृपानाथ! मुझे अंगीकार करो, तब ध्रुवजी बोले कि तू आगया, यह बहुत अच्छा किया, परंतु थोड़ी देर विलम्ब कर इस प्रकार उसे बैठाय उसके शीशपर चरण धर उस अद्भुत विमानपर बैठे[1] ॥ ३० ॥ उस समय मृदंग, दुंदुभी, ढोल इत्यादिक अनेक अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे, बड़े बड़े मुखिया गंधर्वलोग गीत गाने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी

---

१ शङ्का—त्रिलोकीमें अनेक प्रकारके भगवद्भक्त हुए परन्तु कोई भक्त ऐसा नहीं हुआ कि जिसने कालके मस्तकको पांवोंमें दबाकर श्रीविष्णुभगवानके लोकको गया हो? और कल्पकल्पान्त तप करते मुनियोंको व्यतीत हो गये हैं परन्तु कालके मस्तकको पांवसे छुवाकर कोई मुनि भी परमपदको आज तक नहीं गया और ध्रुवने बड़ा आश्चर्य किया कि थोड़े ही दिनतप करके कालके मस्तकको पगमें दाबकर भगवान्के लोकको गया, यह बडे भारी सन्देहकी बात है?

उत्तर—तपस्वियोंमें ध्रुवजी कुछ बडे तपस्वी नहीं हैं और बहुत तपस्या भी ध्रुवने नहीं की परन्तु भगवान् कृपाके सागर हैं और ध्रुवको समझा कि यह अत्यन्त बालक है, इसके पिताने घरसे निकाल दिया है अब इसके पिता हम ही हैं, ऐसा जानकर ध्रुवपर भगवान्ने अनुग्रह किया, इसीके प्रभावसे ध्रुव कालके मस्तकको चरणसे दाबकर भगवान्के परमपदको गया।

वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥ जब ध्रुव ध्रुवलोकको जाने लगा तब उसको अपनी विमाता सुनीतिका स्मरण हुआ तब उसका अपराध क्षमा कर बोला कि यह सब सुनीतिका ही प्रभाव है, इस दीन अबलाको अकेला छोड़कर कैसे मैं स्वर्गको जाऊँ ? ॥ ३२ ॥ यह ध्रुवजीका निश्चय जान देवश्रेष्ठ सुनंद नंदने विमानमें बैठी आगे जाती सुनीतिको दिखाया ॥ ३३ ॥ जहां तहां मार्गमें विमानोंपर बैठे देवता ध्रुवजीकी प्रशंसा करते थे और क्रम क्रमसे सब ग्रह और देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ देवपथसे त्रिलोकीको उल्लंघन कर सप्त ऋषियोंको उल्लंघन किया, फिर सबसे परे अचल गतिवाले विष्णुपदको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ जो विष्णुधाम अपनी कांतिसे ही देदीप्यमान

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरोयानेन गच्छतीम् ॥३३॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिःपथि वैमानिकैः सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ॥ यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति ये निशम् ॥३६॥ शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ॥ यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥ गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥

है, उसीके प्रकाशसे यह तीनों लोक प्रकाशते हैं और जो मनुष्य मनुष्योंपर दया नहीं करते हैं वे वहां नहीं जा सकते क्योंकि दिन रात शुभकर्म करनेवाले वहां जाते हैं ॥ ३६ ॥ और जिनके स्वभाव शांत हैं, समदृष्टि हैं, शुद्धचित्त हैं, सब जीवोंकी रक्षा करते हैं, अच्युत भगवान्को ही अपना प्रिय बांधव मानते हैं, वे लोग जिस लोकमें जाते हैं, वही लोक ध्रुवजीको प्राप्त हुआ ॥३७॥ इस प्रकार उत्तानपादका तनय ध्रुव भगवत्परायण होनेसे त्रिभुवनका निर्मल चूड़ामणि हुआ ॥ ३८ ॥ हे विदुर ! गम्भीर वेग आलस्यरहित ज्योतिषचक्र जिसमें लग रहा है, वह इस प्रकार घूम रहा है कि जैसे मेढ़ीमें बैलोंका समूह भ्रमण करता है, वैसे पदको ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥

नारदजीने ध्रुवजीकी महिमा देखकर वीणा बजाते प्रचेताके यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गानेके समय ध्रुवजीका चरित्र तीन श्लोकोंमें बनाकर गाया ॥ ४० ॥ श्रीनारदजी बोले कि पतिव्रता सुनीतिके सुत ध्रुवजीको तपके प्रभावसे जो पदवी मिली उस परमपदवीको भगवद्धार्मिक वेदवादी लोग अनेक यत्न करनेसे भी नहीं पासकते, तो और नरेशोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४१ ॥ जिस ध्रुवने पांच वर्षकी अवस्थामें अपनी विमाताकी वाणीरूप बाणोंसे बिंधे हुए हृदयसे वनमें जाकर जो भगवान् विजयी होकर भक्तोंके गुणोंसे पराजित हो जाते हैं उन विश्वविजयी भगवान्को अपने वशमें कर लिया ॥ ४२ ॥ और जो क्षत्रबंधु भूमिमें उस पदवीको अनेक वर्ष तप करके भी नहीं प्राप्त कर सकते,

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदञ्श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥४०॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥ यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्छरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥४२॥ यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥४४॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥

सो पांच छः ही वर्षकी अवस्थामें थोड़े दिनोंमें तप करके ध्रुवजी भगवान्को प्रसन्न कर उनके परमपदको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि महाप्रतापी, कीर्तिमान् महात्मा पुरुषोंका प्रिय ध्रुवजीका चरित्र जो आपने मुझसे पूछा, वह सब वृत्तांत मैने आपके सम्मुख यथावत् वर्णन कर दिया ॥ ४४ ॥ यह ध्रुवचरित्र धन, यश, पुण्य, आयु, मंगल, स्वर्ग और ध्रुवपदका देने वाला, आत्माको पवित्र करने वाला, प्रशंसाको बढ़ानेवाला और सब पापोंका नाशक है ॥ ४५ ॥ जो कोई इस भगवान्के प्रिय मनोहर चरित्रको वारंवार श्रद्धासे सुनता है उसको भक्ति प्राप्त होती है, जिससे सब क्लेशोंके समूहोंका नाश हो जाता है ॥४६॥ इस चरित्रके सुननेवाले अपनी मनःकामनाको प्राप्त

होते हैं, बड़ाईवालेको बड़प्पन, शीलवालेको शीलता, तेजकी इच्छावालेको तेज और मनस्वियोंको मानका देनेवाला है ॥ ४७ ॥ परमपवित्र है आत्मा जिसकी ऐसे ध्रुवजीका यह उत्तम चरित्र प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके ब्राह्मणोंमें बैठकर सावधानतासे वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ पूर्णमासी, अमावास्या, द्वादशीमिश्रित एकादशी, श्रवणादि नक्षत्रमें व्यतीपातयोगमें, संक्रांतिमें और रविवारको जो पुरुष निष्काम होकर भगवान्की भक्तिसहित ॥ ४९ ॥ श्रद्धा धारण करनेवाले सज्जन पुरुषोंको यह चरित्र सुनावे, उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती, वह आप अपने स्वरूपमें ही सिद्धिको पाकर सिद्ध हो जाता है॥५०॥ और जो पुरुष अज्ञानियोंको भगवान्के सन्मार्गका

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥ पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि च ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनाऽऽत्मानं संतुष्ट इति सिद्ध्यति ॥ ५० ॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वाऽर्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

प्रदान करता है और ज्ञान देता है उस कृपालु और दीनोंके उद्धारक मनुष्यपर देवता सदा अनुग्रह करते रहते हैं॥५१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! जिस ध्रुवजीके पवित्र कर्म आजतक प्रसिद्ध हैं, उसका यह चरित्र तुम्हारे आगे वर्णन किया, कि जो ध्रुव बालकपनमें ही खेल खिलौने और अपनी माताके घरको त्यागकर भगवत्के चरणारविन्दकी शरण गया था, सो उन भगवान्के चरण सदा भक्तोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले और सब संशयके मिटानेवाले हैं॥५२॥ ❀ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

❀ भजन–हरियश सब दुख काटन हारा ॥ यह संसार स्वप्नकी, माया, जिसको सत्य विचारा ॥ यहां कोई अपना नहिं, दीखे, झूठा द्वन्द पसारा ॥ १ ॥ भाई बंधु और कुटम्ब कबीला मात पिता सुत दारा । येही तेरे परम शत्रु हैं, जिन्हें कहै तू प्यारा ॥ २ ॥ बिन ब्रजचन्द्र मुकुन्द नंदसुत, कोई नहीं हमारा । जिनके चरणकमलसे निकली श्रीगङ्गाकी धारा ॥ ३ ॥ तीन लोककी पावनकरनी, सगरवंश विस्तारा । "शालग्राम" भक्तमनरंजन, क्यों हरिनाम बिसारा ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पृथुसुत अंग सुजान। देखि पुत्रकी दुष्टता, वनको कीन पयान ॥ सूतजी बोले कि पांच अध्यायोंमें तो ध्रुव चरित्र वर्णन किया और अब ग्यारह अध्यायोंमें राजा पृथुका चरित्र वर्णन करेंगे। ध्रुवजीके विष्णुपद प्राप्त होनेका वृत्तांत मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान् अधोक्षजमें भाव उत्पन्न होनेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना प्रारंभ किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे सुवृत्ति! प्रचेता कौन थे, उनका क्या नाम था? किसके कुलमें विख्यात हुए? किसके पुत्र थे? और किस स्थानपर यज्ञ किया? सो भिन्न भिन्न सब मुझसे कहो ॥ २ ॥ देवताओंके समान जिनका दर्शन उन नारदजीको मैं महाभागवत मानता हूं, जिन्होंने भगवत्‌की परिचर्या विधि

सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुन स्तं विदुरः प्रचक्रमे॥१॥विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥२॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः॥३॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम्॥ सार्व भौमश्रियं नच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशान्तात्मा निस्सङ्गः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमा त्मानं लोकमात्मनि ॥७॥ आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसंततम् ॥ ८ ॥

योगक्रियाकी रीति "पञ्चरात्र" ग्रंथमें कही है ॥ ३ ॥ स्वधर्मपालक प्रचेतासे पूजित यज्ञपुरुष भगवान्‌का वर्णन भगवान् नारद मुनिने किया है ॥४॥ सो हे ब्रह्मन्! जो कुछ वहां नारदजीने भगवत्‌की कथा वर्णन की है वह मेरे आगे वर्णन करो, क्योंकि भगवत्कथा सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है॥५॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने पुत्र उत्कलको ध्रुवजी जब राज्य दे वनको चले गये, तब उत्कलने पिताकी सब भूमि और राजलक्ष्मीके लेनेकी इच्छा नहीं की ॥६॥ वह जन्मसे शांतात्मा, संगरहित, समदर्शी और अपनी आत्माको सब लोकमें पूर्ण और जगदात्माको अपनेमें मानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मसुखमें शांतहो अपने देहको भूल गया और ज्ञानरसमें निमग्न, आनन्दमय और मोक्षरूप परब्रह्म

परमात्माको जानता था ॥ ८ ॥ और अखंडित योगाग्निसे उसके सब पाप और अन्तःकरणकी भावना जलकर भस्म हो गयी थी, अपने स्वरूपका अनुसन्धान कर अपनेसे भिन्न और किसीको नहीं देखता था ॥ ९ ॥ वह आत्मज्ञानी अकेला नगरसे निकलकर चल दिया, राखमें दबी अग्निसमान वह तेजोधारी उत्कल मार्गमें जाता हुआ जड़, अन्ध, बधिर, उन्मत्त, मूककेसी आकृति किये बालकोंको दृष्टि आता था॥१०॥ सचिव और कुलके वृद्धपुरुषोंने उत्कलको उन्मत्त और जड़ समझकर उससे कनिष्ठ भ्रमिके सुत वत्सरको राज्याधिकार दे दिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी बड़ी स्त्री स्वर्वीथिके पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा और

अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडान्धबधिरोन्मत्त मूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥ प्रदोषो निशिथो व्युष्टः इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुस्सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं धृतव्रतम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १७ ॥

दोषा नाम दो पत्नी थीं; उनमेंसे प्रभाके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, प्रातर, मध्यंदिन और सायं ॥ १३ ॥ तीन पुत्र दोषाने उत्पन्न किये प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट और व्युष्टने पुष्करणी नाम भार्यामें सर्वतेजस नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥१४॥ और सर्वतेजसकी आकृति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम मनु पुत्र हुआ, मनुकी पटरानी नड्वलामें ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ पुरु १, कुत्स २, त्रित, ३, द्युम्न ४, सत्यवान् ५, धृतव्रत ६, अग्निष्टोम ७, अतिरात्र ८, प्रद्युम्न ९, शिबि १० और उल्मुक ११ ॥ १६ ॥ उल्मुकके पुष्करिणी नाम भार्यामें छः पुत्र उत्पन्न हुए-

अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिग और गय ॥ १७ ॥ अंगकी सुनीथा नाम पत्नीमें, महाभयंकर वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, कि जिसकी दुष्टतासे राजर्षि अंग वैरागी होकर नगरसे निकल गया ॥ १८ ॥ हे विदुर ! वेनके महापाप कर्म देखकर मुनियोंने वाग्वज्ररूपी शाप दिया, शापके देनेसे उस वेनका प्राणान्त हो गया, तब मुनीश्वरोंने वेनकी दाहिनी भुजाको मथा ॥ १९ ॥ जब पृथ्वीपर कोई राजा नहीं रहा तो प्रजा चोरोंके भयसे अत्यन्त दुःखी हो गयी, तब मुनियोंने वेनके दाहिने हाथको मथा जिससे नारायणके अंशसे आद्यराज पृथुने पृथ्वीश्वर अवतार धारण किया ॥ २० ॥ विदुरजी बोले कि महाशीलवान्, साधु, ब्रह्मण्य, सज्जनोंके सम्मान करनेवाले महात्माअंगके ऐसा अन्धकारी दुष्टरूप पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ ? कि जिसका अन्याय देखकर राजा विमन हो वनको चला गया ॥ २१ ॥ और राजा वेनका

सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥२१॥ किं वाऽहो वेनमुद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ॥ दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः॥२५॥

क्या ऐसा पाप देखा जो मुनीश्वरोंने ऐसे दण्डधारी राजाको महाघोर शाप दिया ? ॥ २२ ॥ उत्तम रीति तो यह है कि प्रजापालक पापात्मा भी हो तो भी प्रजाको उसका अनादर करना योग्य नहीं क्योंकि राजामें आठ लोकपालका अंश होता है और अपनी सामर्थ्यसे लोकपाल देवताओंकी शक्ति धारण करता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मण्य ! राजा वेनका चरित्र सम्पूर्ण मुझसे कहो, क्योंकि इस चरित्रके सुननेकी मुझको परम अभिलाषा है और मैं तुम्हारा भक्त हूँ ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजर्षि अंग राजाने महाअश्वमेध यज्ञ किया, उसमें वेदवादी विप्रोंके आह्वान करनेसे देवता लोग नहीं आये, तब आश्चर्यमय होकर ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि ॥ २५ ॥

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ॥ छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वय मण्वपि ॥ यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः॥ तद्द्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया॥२९॥ नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह॥सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम्॥३०॥ सदसस्पतय ऊचुः॥नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक्स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्वमप्रजः॥३१॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

हे राजन् ! आप श्रद्धासहित जो यज्ञके उत्तमोत्तम पदार्थ देते हो, तो भी तुम्हारा हवि हवनदेवता ग्रहण नहीं करते ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह हवन योग्य जो है सो सब बहुत शुद्ध है और श्रद्धाविधियुक्त देते हैं, वेदमन्त्रोंका आजतक सार गया नहीं है, फिर हविपदार्थका अनादर देवताओंने कभी नहीं किया, न जानिये यह क्या कारण है, कुछ हमारी समझमें नहीं आता ? ॥ २७ ॥ कर्मके साक्षी देवता लोग जो अपना भाग नहीं लेते हैं ऐसा तो किंचिन्मात्र भी यहां कोई हमसे उनका अपमान भी नहीं हुआ ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब ब्राह्मणोंने यह वचन कहे तो अंगराजाने अति उदास हो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मौन वृत्तिको तजकर सभासदोंमें पूछा ॥ २९ ॥ कि हे सभासदो ! न तो देवता बुलायेसे आते हैं और न अपना भाग लेते हैं, सो ऐसा मैंने देवताओंका क्या अपराध किया है ? और मुझमें क्या व्यतिक्रम हुआ, सो मुझको समझाकर कहो ॥ ३० ॥ सभासदोंने कहा कि हे नरोत्तम ! इस जन्ममें तो आपने कोई पाप किया नहीं है परन्तु यह कोई पूर्व जन्मका पाप है, जिससे आप पुत्रहीन हो. * ॥३१॥ इसलिये आप पुत्र होनेका कोई उपाय करो और इसी मनोरथमें आप

* कहीं ऐसा भी लिखा है—एक समय राजा अंग बालकपनमें मानससरोवरके निकट क्रीड़ा करनेको गये थे सो वहां पर किसी राजहंसके बच्चे घोंसलेमें रहते थे और हंस कहीं वनमें चले गये थे. उनमेंसे एक बच्चेको राजाने बालकपनकी चञ्चलतासे पकड़कर मुट्ठीमें दबा लिया और वह बच्चा दबनेके कारणसे मर गया। जब हंस हंसिनी वहां आये और बच्चेका नहीं देखा, तब तो अत्यन्त व्याकुल हो नेत्रोंसे आंसु भरकर बोले कि हाय ! हमारे प्यारे बच्चेको कौन ले गया? हंस हंसिनीकी ऐसी दशा देख [illegible] राजा अंगने मार डाला, यह वृत्तांत सुन हंस बोला कि राजा अंगने जैसा निर्वंश किया है इसी प्रकार राजा अङ्ग भी निर्वंश हो जायगा। हंसिनी [illegible] स्वामी ! हम पक्षीओंसे क्या होना है? राजासे तो अनेक प्राणियोंका पालन होता है. आपको ऐसा कठिन शाप देना उचित नहीं था हमारे कर्ममें तो दुःख भोगना लिखा ही था. परन्तु राजाको [illegible] ऐसी मृदुल वाणी सुनकर हंसने वरदिया कि यज्ञपुरुषकी पूजा करनेसे राजाके पुत्र होगा, सो हे राजन् ! तुम यज्ञपुरुषका पूजन करो

यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन भी करो कि जिसमें यज्ञपुरुष भगवान् आपको पुत्र दें ॥ ३२ ॥ जब ऐसा हुआ तो अपने अपने भाग भी देवता ले लेंगे, क्योंकि पुत्रके अर्थ जो आप भगवान्‌का यजन करोगे तो उस यज्ञमें यज्ञपुरुष भगवान्‌के संग देवता आपसे आप आवेंगे ॥३३॥ पुरुष जिस जिस मनोरथके लिये भगवान्‌का यजन करता है, भगवान् उसकी आशा पूर्ण करते हैं, क्योंकि जो जिस भावनासे

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैषां तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपञ्छिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥

भगवत् आराधन करता है, परमेश्वर वैसा ही फल उसको देते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब सब ब्राह्मणोंने निश्चय किया तब राजाने पुत्रके होनेके लिये सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक विष्णु भगवान्‌के पुरोडाशका हवन किया । ❀ ॥३५॥ (पुरोडाश उसका नाम है कि, एक सुवामें इमरती सोमलताके अमृतमें भीजी हुई देनेसे सर्वेश्वर भगवान्प्रसन्न होते हैं) जब ऐसा पुरोडास विष्णु भगवान्‌ने पाया तब उस कुण्डसे

---

१ शंका–राजा अंगने अश्वमेध यज्ञ किया तब उसके यज्ञमें देवताओंने अपना अपना भाग ग्रहणनहीं किया, तब राजा अंगने बड़ा दुःख माना ! उस समय ब्राह्मणोने राजा अंगसे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र नहीं हैं इसलिये तुम्हारे यज्ञमें देवता भाग ग्रहण नहीं करते, क्योंकि अपुत्रके हाथका जल अन्न पितर और देवता ग्रहण नही करते फिर अनेक निर्वंशी राजाओंने यज्ञ किये तो उन राजाओंके यज्ञमें देवताओने अपना भाग क्यों ग्रहण किया ?

उत्तर–अंगसे दूसरे जितनीसे हीन जो और राजा थे वे अपने अपने कुलके धर्ममें निपुण थे और बड़े विवेकवान् थे इसलिये पुत्रहीन थे तो भी ज्ञानहीन नही थे, इस कारण देवता उनके यज्ञोंमें भाग लेते थे और राजा अंगकी सुनीथा स्त्री थी उसके संग रात दिन भोगकी इच्छासे अपने कुलके धर्मको भ्रष्ट कर दिया, नीचबुद्धि हो गया इस लिये अंगको पुत्रहीन जानकर अंगका दिया हुआ भाग देवताओंने ग्रहण नहीं किया ॥

सुवर्णकी माला पहने, श्वेतवस्त्र धारण किये, कंचनके एक बड़े भारी थालमें सुन्दर खीर लिये हुए एक पुरुष निकला, उसका सबने दर्शन किया ॥ ३६ ॥ सो राजाने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे वह खीर उस पुरुषके हाथमेंसे अपने हाथमें ले ली और उसे सूंघ उस उदारचित्त राजाने आनंदित होकर अपनी भार्याको दे दी ॥ ३७ ॥ उस पुत्र होनेवाली रानीने खीरको पाकर पतिके गर्भको धारण किया, जब समय पूर्ण हुआ तो पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥ ३८ ॥ वह बालक मृत्यु जो उसका नाना था उसके अनुसार हुआ। मृत्यु अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुआ था इस लिये वह अधार्मिक हुआ, उसके जन्मके समय बड़ा भयानक उत्पात हुआ और ब्राह्मणोंने इसका नाम वेन रक्खा, उसके सब आचरण

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यतौ पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हन्त्य साधुर्मृगान्दीनान्वे नोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥ ४१ ॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्याचतो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥

नानाकेसे थे ॥३९॥ वह धनुषबाण धारण किये, वनमें फिरता था और जो मृग, साधु, दीन सम्मुख आता था उसको कभी न छोड़ता था और सब ही कहते कि यह वेन निर्दय है ॥ ४० ॥ खेलनेके स्थानमें अपने समान क्रीड़ा करनेवाले बालकोंको अतिदारुण निर्दयी हठ करके अहेरीकी नाईं पकड़ पकड़कर मार डालता था ॥ ४१ ॥ उस महानीच पुत्रका अत्याचार देखकर राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, जब शिक्षा करनेका सामर्थ्य न रहा तो अत्यन्त दुःखित होकर आप ही आप कहने लगा ॥ ४२ ॥ कि जिन पुरुषोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने भगवान्का पूजन भलीभांति किया है क्योंकि उनको दुष्टसंतानका महाकठिन दुःख तो नहीं भोगना पड़ता है ॥ ४३ ॥ जिसमें

अपयश, अपकीर्ति, अधर्म मनुष्योंको होता है और सबको जिससे द्रोह और अनंत व्याधि होती हैं ॥ ४४ ॥ पुत्र आत्माको मोहित कर बंधन करनेवाला है, अतः कौन ऐसा पंडित है जो इससे अधिक मान करेगा, इसलिये अनेक क्लेशका देनेवाला घर है ॥ ४५ ॥ शोक देनेवाले सुपुत्रसे कुपुत्रको मैं अच्छा समझता हूँ क्योंकि कुपुत्रके घरमें रहनेसे पुरुषके मनमें वैराग्य हो जाता है और ग्लानि मानकर घर छोड़ देना पड़ता है॥ ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वैराग्ययुक्त हो आधीरातके समय उठकर फिर सोया नहीं, किसी मनुष्यने देखा नहीं अपनी पत्नी सुनीथाको सोती ही छोड़कर सर्वसमृद्धि सहित गृहको त्याग वनको अकेला चल दिया ॥ ४७ ॥ जब प्रातःकाल हुआ और राजा अंगको मंदिरमें न देखा, तब तो

कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ॥ पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरवभर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागव० म० चतुर्थ० वेनसुतदुःखादङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥

पुरोहित, सचिव, सुहृद्गण आदिकोंने अतिशोकसे कातर होकर सब पृथ्वीपर ढूँढा, परंतु राजा कहीं नहीं मिला, जैसे कुत्सित योगी हृदयके भीतर अंतर्यामी पुरुषका अनुसरण करते हैं और नहीं पाते ॥४७॥ जब राजा अंग इनको कहीं नहीं मिला तो सब उद्यमसे हार मान नगरमें आये, सबने इकट्ठे होकर ऋषियोंकी वंदना की । हे विदुर ! नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि राजा अंग आज कहीं घरसे चले गये, क्योंकि दुष्ट पुत्र सदैव दुःख देनेवाले होते हैं * ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां वेनसुतदुःखात् अङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ दोहा—इस चौदह अध्यायमें, अंग पुत्रभय मान । गये विपिन तब वेनको, दियो राज्य सन्मान ॥ मैत्रेयजी बोले

* सवैया-आपसु तातपिताकि न मानत, नीति तजै कुरीति बहावत । आपतो मानगुमान भरे, सतसंगिनहूंको गरुर गहावत ॥ एकहूं कामसरों न कभू, निर्लज्ज अथी लघु लोभ लहावत ॥ कारजकाज कुमारगगामि सुपेसो कुचाली कपूत कहावत ॥

कि भृगुआदि मुनिलोगोंने क्षेमचिंतक विना राजाकी पृथ्वीको देख मनुष्योंकी पशुसमान संज्ञा देखी ॥ १ ॥ उन ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रीलोगोंने वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सब प्रजाकी असंमतिसे वहांका राज्यतिलक वेनको दिया ❀ ॥ २ ॥ अतिउग्रशिक्षक वेनको नृपासनपर बैठा देखकर सर्पके भयसे जैसे मूसे छिप जाते हैं, ऐसे सब चोर बटमार जहाँ तहाँ छिप रहे ॥ ३ ॥ राज्यासनपर बैठ, आठ लोकपालोंकी विभूतिसे गर्वित, महाअहंकारी अपने आपको उत्तम बलवान् माननेवाला वह महाअभिमानी वेन महात्माओंका तिरस्कार

वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागान्स्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ॥ पर्यटन्रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥

करने लगा ॥४॥ और निरंकुश हाथीकी नाईं मदांध, अभिमानसे भरा हुआ पृथ्वी आकाशको मानो कम्पायमान कर रहा है, इस प्रकार रथमें बैठकर समस्त पृथ्वीपर विचरता था ॥ ५ ॥ और सब प्रजाके लिये यह आज्ञा करा दी कि कोई मनुष्य होम, यज्ञ, दान मत करो, नगरमें भेरी और धौंसा बजाकर धर्मका निवारण कर दिया ॥ ६ ॥ उस दुराचारी वेनका यह अत्याचार देखकर लोगोंको दुःखी जानकर दया करके सब मुनिलोग एकत्र हो विचार करने लगे ॥ ७ ॥ और परस्पर बोले कि अरे कष्ट ! तू दोनों ओरसे लोगोंको सताने लगा जैसे

❀ शङ्का-मुनियोंने वेनको दुष्ट जानकर भी राजा क्यों बनादिया फिर राजा बनाकर उसे भस्म क्यों किया यह तो बालकोंके सदृश कौतुक किया, जो कोई कहै कि, राज्य पाकर वेन सबको दुःख देनेहगा तो यह ठीक नहीं क्योंकि उसे दुख तो पहिलेही जानलिया था फिर मुनियोंने राज्य उसको क्यों दिया ?

उत्तर- ब्राह्मणोंने देसम विचार किया था कि, वेन राजा होजावेगा तो बडे बडे महात्मा पुरुषोंकी संगति पाकर परमज्ञानी और कर्तव बुद्धिमान परंतु वेनने राज्य पाकर महात्माओंकी आज्ञा नहीं मानी और सुखके बदले में उलटा दुःख देने लगा तब राज्य देनेवाले मुनियोंने वेनको शाप देकर भस्म करदिया.

दोनों ओरसे काष्ठमें अग्नि लग जाती है, तो बीचमें चीटियां मर जाती हैं वही दशा अब इस प्रजागणकी हो रही है, क्योंकि एक ओर तो चोरोंका भय और दूसरी ओर राजाका भय यह महाकठिन कष्ट इन लोगोंसे कैसे सहा जायगा ! ॥ ८ ॥ विना राजाके नगर सूना समझकर तो इस अयोग्यको हमने राज्यका भार सौंपा, अब इसकी ओरसे भी सब देहधारियोंको भय होता है फिर अब हम लोगोंका कल्याण कैसे होगा ! ॥ ९ ॥ जो भुजंगको दूध पिला पिलाकर पालता है वह अनर्थकारी सर्प प्रथम अपने पालनेवालेको ही काटता है, ऐसे ही यह महाक्रूरबुद्धि दुष्टस्वभाव वेन सुनीथाके गर्भमें जन्मा है ॥ १० ॥ हमने अच्छा समझकर प्रजापालक बनाया था, सो यह दुष्ट

अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥ निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ॥ तथाऽपि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥११॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥ लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः॥नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुश्श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १४ ॥

उलटा हमारा नाश करता है, क्या करें अब तो हमने इसको अपना राजा बना ही लिया, इसलिये उसको चलकर समझा दें फिर हमारे शिर कोई दोष न रहेगा ॥११॥ हमने जान बूझकर इस अत्याचारीको भूप बनाया है सो अब साम दामसे समझावेंगे और वह मंदभागी हमारे समझानेसे भी नहीं मानेगा तो जानेंगे कि यह बड़ा अधर्मी है ॥ १२ ॥ तब लोगोंके धिक्कारसे दग्ध हुए इस दुष्टको हमलोग अपनी शक्तिके तेजके प्रभावसे लेशमात्रमें जलाकर भस्म कर देंगे इस प्रकार परस्पर सोच विचारकर क्रोधको छिपाके सब ऋषि,मुनि और प्रजागण उसके पास गये और उसके निकट जाकर साम, दाम इत्यादिक उपायोंसे समझाया ॥ १३ ॥ सब मुनिलोग बोले कि हे राजन्

हे पुत्र ! ! हे नृपवर्य ! ! ! हम आपसे वह बात कहने आये हैं, जिसमें आपकी आयु, बल, कीर्ति और लक्ष्मी अधिक हो ॥ १३ ॥ पुरुषोंको उचित है कि तनसे, मनसे, वचनसे, बुद्धिसे धर्मके आचरण करते रहें, क्योंकि धर्मके आचरणसे शोकरहित लोककी प्राप्ति होती है जहां सर्व त्यागीलोग निवास करते हैं और सदा आनंद रहता है ॥ १५ ॥ हे वीर ! वहाँ प्रजाकी कुशलसे आपके धर्मका नाश नहीं होता, इस लिये धर्मका नाश होनेसे राजा धर्म ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! दुष्टमंत्री और चोरादिकोंसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा यथा वत करे और शास्त्रमर्यादाके अनुसार दंड ले तो राजाको इसलोकमें और परलोकमें परमानंद प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जिस राजाके

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५ ॥ स ते मा विन शेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥१७॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशा सने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २० ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम्॥यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥२१॥

राज्यमें, पुरमें भगवान् यज्ञरूप अपने वर्णाश्रम धर्मसे सदा पूजे जाते है ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! जो राजा अपनी निज शिक्षामें स्थित हैं, उन राजाओंके ऊपर भगवान् सर्वधर्मपालक विश्वात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ और जब जगतके राजाओंके भी महाराज जगदी श्वर श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्न हों तो उस प्राणीको कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? क्योंकि लोकपालसहित सब लोग उसके भयसे उसका आदरसम्मान कर उसको भेंट देते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सब लोक, देवता, यज्ञ जिसमें सदा निवास करते हैं उन वेदत्रयीमय, द्रव्यमय, तपोमय, ईश्वरको आपकी कुशलके अर्थ नानाविधिके विधानोंके विचित्र यज्ञोंसे सब प्रजा समृद्धिके लिये यजन करती है, सो आप उनके यज्ञोंमें सहाय करने

योग्य हो ॥ २१ ॥ हे वीर ! आपके देशमें ब्राह्मणलोगोंके यज्ञ करनेसे श्रीनारायणकी कला देवतालोग संतुष्ट होकर सबको मनोवांछित फल देवेंगे, इसलिये उन देवताओं की अवज्ञा आपको करनी नहीं चाहिये ॥ २२ ॥ वेन बोला कि तुम सब मूर्ख हो, जो अधर्मको धर्म करके मानते हो, क्योंकि जो सब समृद्धियोंका दाता है, उस पतिको त्यागकर जारपतिकी उपासना करते हो ॥ २३ ॥ जो मूढ नृपरूपी ईश्वरका अनादर करते हैं, वे प्रजागण इस लोकमें और परलोकमें कहीं सुख और कल्याण नहीं भोगते हैं ॥ २४ ॥ और वह यज्ञपुरुष भगवान् कौन है ? जिसमें तुम्हारी भक्ति है, अरे मूर्खो ! तुम लोग ऐसे हो, जैसे परकीया स्त्रियां अपने पतिको तजकर जारसे स्नेह करती हैं,

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कलाः हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीरचेष्टितुम् ॥२२॥ वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥२३॥ अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम्॥नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥ विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपां पतिः ॥२६॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक्पुमान् ॥२८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याञ्चां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥२९॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाञ्चायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥

इसी प्रकार तुम्हारी झूठी भक्ति है ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र उपेंद्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, चंद्र, पृथ्वी, अग्नि, सागर ॥ २६ ॥ यह और जो वर, शापदायक देवता हैं वे सब राजाकी देहमें वास करते हैं, क्योंकि सर्वदेवमय नरेश होता है ॥२७॥ इस लिये हे ब्राह्मणो ! ईर्षा, वैर त्यागकर सब कर्मोंमें मेरा पूजन करो और यज्ञरूप मैं हूँ मुझको बलिदान दो, मुझसे अधिक और कौन दूसरा यज्ञरूप पूजन करनेके योग्य है ? ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि उस प्रकार वह कुमार्गी, कुबुद्धि पापी, पाखंडमतमें स्थित सब मंगलोंसे भ्रष्ट वेनको बहुत समझाया, परन्तु उस दुष्ट नरेशने मुनियोंका उपदेश न माना ॥ २९ ॥ उस अभिमानी अपने आपको पंडित समझनेवाले वेनने

पर आये ब्राह्मणोंका जब अत्यन्त अनादर किया, तब हे विदुर ! ब्राह्मण अपना उपदेश व्यर्थ समझकर बड़े कोधित हुए ॥ ३० ॥ और उन मुनीश्वरोंने यह निश्चय किया कि इस पापीका स्वभाव महादारुण है इस लिये इसका मारना ही उचित है, क्योंकि जो यह चांडाल जीता रहेगा तो अवश्य सारे संसारको भस्म कर डालेगा ॥ ३१ ॥ यह अत्याचारी नरदेवोंके योग्य सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञ पुरुष भगवान्की निन्दा करके धर्मका विध्वंस करना चाहता है ॥३२॥ जिन भगवान्ने अपनी कृपा करके इसको इस प्रकार विभव और बड़ाई दी है, उन भगवान्की इस अशुभ वेनके विना दूसरा कौन निन्दा कर सकता है? ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कोधमें भरकर उन ऋषि

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः॥जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम्॥३१॥नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥३२॥ को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥३३॥ इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥३४॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥ हुत्वाग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३६ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयंकरान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥

योंने उस अच्युत भगवान्के निन्दा करनेवाले वेनको एक हुंकार शब्दसे मार दिया, क्योंकि यह हुंकारशब्द मारणप्रयोगमें आता है * ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे वेनको मारकर सब ऋषि मुनि अपने अपने स्थानको चले गये । तब उस शोकवती सुनीथाने मंत्र और औषधियोंके प्रयोगसे पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराकर उसको रख छोड़ा, क्योंकि वह योगविद्या ऋषियोंकी भलेप्रकार जानती थी ॥ ३५ ॥ एक समय सब मुनिजन सरस्वतीजीके जलमें स्नान कर अग्निमें हवनादिकसे निश्चित हो सरिताके तटपर बैठे हुए सत्कथा कह रहे थे ॥ ३६ ॥ संसारके भयदायक उत्पात दृष्टि आने लगे, उनको देखकर ऋषिलोगोंने विचारा कि इस समय पृथ्वीपर कोई प्रजापालक नहीं है,

* कवित्त—जाने हरि त्यागे ताहि त्यागे सब लोगनने, ऐसेही वेननृप डीगे नाहि पापसे । आपहीको ब्रह्मा शिव विश्वनाथ कहवायो, काहूको अधिक नाहि समझैहै आपसे ॥ सूर्य और चन्द्रमा मेरोही प्रकाश होत, देवतोंमें महातेज मेरे ही प्रतापसे । बुरो होत शालिग्राम विप्रनको दुःख देनो, वेनको विनाश भयो विप्रनके शापसे ॥

इस लिये हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भय है ॥३७॥ मुनिलोग यह विचार ही रहे थे कि इतनेमें चोरोंके दलके दल घिर आये और उनके घोड़ोंके दौड़नेसे चारों ओर धूरी उड़ती उनके देखनेमें आयी ॥ ३८ ॥ राजाके मर जानेसे लोगोंका सब धन चोर लूटकर ले गये और बड़ा भारी उपद्रव भी मचा, प्रजामें परस्पर मारपीट होने लगी, तब ऋषियोंने विचार किया ॥ ३९ ॥ यदि ऐसा ही उपद्रव रहा तो हम लोगोंको बड़ा दोष लगेगा, क्योंकि जो ब्राह्मण समदृष्टि और शांत होनेपर भी उन लोगोंकी रक्षा न करे तो उनका सब ब्रह्मतप क्षीण हो जाता है, जैसे फूटे पात्रमें दूध नहीं रहता इसी प्रकार उनका तेज नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यद्यपि आप इस उपद्रवको

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चौराणामपि लुम्पताम् ॥ ३८ ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥ चौरप्रायं जनपदं दिनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥ ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥ ४१ ॥ नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्तताम्रमूर्धजः ॥ ४४ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५ ॥

शांत कर सकते हैं तो भी राजर्षि अंगके वंशमें यह स्थिन होने योग्य नहीं है इस वंशमें सब राजा श्रीकृष्णाश्रय होनेवाले परमभक्त ही होते आये हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निश्चय कर सब ऋषिलोग मिलकर नगरमें आये और मरे हुए वेन महीपतिकी जंघा मंत्रोंसे शीघ्र मथने लगे, तब उसमेंसे एक छोटासा पुरुष प्रकट हुआ ॥ ४३ ॥ काकके सदृश काला, अत्यन्त छोटे छोटे हाथ पांव, ठोड़ी बड़ी गहरी नाभ, लम्बी नाक, लाल नेत्र और लाल ही शिरके बाल थे ॥ ४४ ॥ वह पुरुष नम्रीभूत दीनकी नाईं हाथ जोड़कर मुनियोंसे बोला कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ? हे विदुर ! तब मुनियोंने उससे कहा कि "निषीद,, अर्थात् बैठ जा; इस लिये इस पुरुषका नाम निषाद हुआ ॥ ४५ ॥

इसके वंशमें निषाद अर्थात् भील लोग हुए उस वेन दुष्टके शरीरमें महापाप भरा हुआ था।, वही पाप निषादरूप बनकर बाहर निकला और जिससे वेनके शरीरका कल्मष ग्रहण किया इसी लिये उसके वंशवालोंको नगरमें वास करनेका अधिकार नहीं है, पर्वतोंकी खोहोंमें रहते हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पंचदशो अध्यायमें, मथे वेणुके हाथ । ताते पृथु प्रकटो तुरत, भयो सो पृथ्वीनाथ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि फिर उस अपुत्र वेन महीपतिकी भुजा

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्ज्यायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥४६॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे पृथूपाख्याने निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः॥बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः॥ ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम्॥२॥ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतःकला भुवनपालिनी॥इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिःपुरुषस्यानपायिनी ॥३॥ अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥

ओंको मुनियोंने मथा, तो उसमें एक जोड़ा अर्थात् एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस जोड़ेको जन्मा देखकर वे ब्रह्मवेत्ता ऋषि भगवान्की कला जान अत्यन्त सन्तुष्ट हो बोले * ॥ २ ॥ ऋषि बोले कि यह परम पुरुष संसारकी रक्षाके लिये विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुआ है और यह देवी श्रीनारायणके हृदयमें नित्यप्रति वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे प्रकटी है ॥ ३ ॥ यह जो पुरुष है, सो सब राजाओंमें आदिराज बड़ा तेजस्वी और यशस्वी महाराज पृथुनामसे प्रसिद्ध होगा और सब संसारमें अपना यश

---

* शङ्का—ऐसे महादुष्ट वेनके देहसे श्रीलक्ष्मीनाथ नारायण क्यों प्रकट हुए और भूमिको दुःखी देखेविना भगवान् कभी अवतार नहीं लेते वेनके समयमें पृथ्वीका क्या दुःख हुआ जिस कारण शीघ्र आनकर भगवान् प्रकट हुए ?

उत्तर—वेनने जो प्रजाको दुःख दिया और उसका नाश किया उस प्रजाके दुःखको देखकर अथवा जीती प्रजाको महाक्लेशित देखकर दीनबन्धु दीनानाथ भक्तिमतर तन भक्तभयभञ्जन भगवान्ने भूमिके और प्रजाके ऊपर अनुग्रह करके शीघ्र प्रकट होनेकी इच्छा की तब भगवद्भक्त ब्राह्मणोंने परमात्माका विचार जानकर वेदोंके मन्त्रोंसे वेनकी देहका शुद्ध करने लगे तब उसी शुद्धशरीरसे भगवान् उत्पन्न हुए ।

विस्तार करेगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर सुदती देवी गुणभूषणोंसे भूषित वरारोहा, अर्चिनाम, छबिकी भी छबि बढ़ानेवाली, अपने पति पृथुकी सेवनीय होगी ॥ ५ ॥ और यह पृथु तो संसारकी रक्षाके लिये साक्षात् विष्णु भगवान्‌का अंश प्रकट हुआ है और यह श्रीनारायणके हृदयमें सदा वास करनेवाली, भगवत्परायण, श्रीलक्ष्मीजीने आकर अवतार लिया है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार ब्राह्मणलोग उनकी प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व यश गाने लगे, सिद्ध लोग पुष्पोंकी वर्षा बरसाने लगे और देवांगना नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ स्वर्गसे शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभी आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते देवता, ऋषि, पितृगण ॥ ८ ॥ सब लोकपाल शिवको साथ लेकर जगद्

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥५॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जाता लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी॥६॥मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधारा सिद्धा नृत्यन्ति स्वस्त्रियः ॥ ७ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितॄणां गणाः ॥८॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥ पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेःकलाम् ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥ तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥ सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥

गुरु ब्रह्माजी भी वहां आये और पृथुके दहिने हाथमें गदाधारी चक्रका चिह्न देखा ॥ ९ ॥ और दोनों पावोंमें कमलके चिह्न देखकर ब्रह्माजीने समझ लिया कि यह साक्षात् विष्णु भगवान्‌की कलासे उत्पन्न हुआ है, क्योंकि जिसके हाथोंमें दूसरी रेखाओंसे मिला हुआ रेखाका चक्र न हो उसको परमेश्वरका अंश जानना चाहिये ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकका आरंभ किया और सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ लोग लाने लगे ॥ ११ ॥ नदियें, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, नाग, गौ, खग, मृग, आकाश, पृथ्वी और सब जीवमात्र भेंट ले ले कर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ और महाराज पृथुने स्नान करके सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन अलंकृत अर्चिपत्नीसे शोभित मानो दूसरा अग्नि विरा

जमान है ऐसे देदीप्यमान दिखायी देने लगे ॥ १३ ॥ हे विदुर ! कंचनका सिंहासन तो कुबेरने उसके लिये दिया और वरुणने चन्द्रकांति समान छत्र समर्पण किया, जिसमेंसे सदा शीतल जल टपकता रहता है ॥ १४ ॥ और अत्यन्त विशाल दो चमर वायुने भेंट किये, धर्मने कीर्तिमय माया अर्पण की, इन्द्रने परमोत्तम किरीट दिया और यमराजने संयमन नाम दंड दिया, जो दुष्टोंका विनाश करनेवाला था ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार समर्पण किया, श्रीहरि चक्रधरने चक्र सुदर्शन अर्पण किया और श्रीलक्ष्मीजीने अखंडित ऐश्वर्य दिया ॥ १६ ॥ रुद्रने दशचन्द्र नाम खड्ग दिया, और शतचन्द्र नाम ढाल श्रीपार्वतीजीने दी, चन्द्रमाने अमृतमय

तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥ दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तदाऽम्बिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥१७॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥ नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम्॥१९॥ सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो वन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥२०॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

घोड़े दिये और अत्यन्त सुन्दर रथ त्वष्टाने दिया ॥ १७ ॥ अग्निने मेढ़े और बैलके सींगोंसे बना हुआ धनुष दिया, सूर्यने किरणमय शत्रुके भस्म करनेवाले बाण दिये, भूमिने योगमय पादुका दीं; कि जिनको पहनकर जहां चाहे वहां चले जाओ और आकाश सदा पुष्पोंका हार देता रहा ॥१८ ॥ और आकाशमें विचरनेवाले नभचर लोगोंने नाट्य, सुन्दर गीत, बाजे और अन्तर्धान होनेकी शक्ति दी, ऋषि मुनियोंने सत्य आशीर्वाद दिये, समुद्रने अपना पुत्र शङ्ख दिया ॥ १९ ॥ समुद्र, पर्वत, नदियोंने उस महात्माके रथको मार्ग दिया। सूत, मागध, बंदीजन उसकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उन स्तुति करनेवालोंको अपने समीप खड़ा देखकर महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघसमान गम्भीर वाणीसे

हँसकर यह वचन कहा ॥ २१ ॥ पृथु बोला कि हे सूत ! हे मागध ! हे सौम्य बन्दीजनो ! ! ! अभीतक लोकमें मेरे गुण प्रकट नहीं हैं तुम किस लिये मेरी स्तुति करते हो? संसारमें जिसके गुण विदित होते हैं, उसकी स्तुति करनी चाहिये, तुम्हारी वाणी मेरे लिये मिथ्या न होनी चाहिये, हे श्रेष्ठवाणीवाले पाठको ! इसलिये कालान्तरमें जब हमारे गुण प्रकट दीखने लगें ॥ २२ ॥ तब तुम भले प्रकार हमारे वंशकी प्रशंसा करना, यह तुम नहीं कह सकते कि हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करते हैं क्योंकि उत्तमश्लोक परमेश्वरके गुणानुवादके आगे और मनुष्यके गुण सभासद् नहीं गाते हैं ॥ २३ ॥ आत्माके महागुणके सम्मुख स्तावकोंसे असंतोंके गुणकी संभावनामात्रसे कौन स्तुति

पृथुरुवाच ॥ भोः सूत हे मागध सौम्य वन्दिँल्लोकेऽधुनाऽस्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ॥२२॥ तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कस्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ॥ तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४ ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यतिविश्रुताः ॥ ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० चतु० पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

करावे ? वे मूर्ख इस बातको नहीं जानते कि यह गुण मुझमें होंगे, इस बातसे वंचित होनेके कारण वे लोग मेरा उपहास करेंगे ॥ २४ ॥ जो सामर्थ्यवान् लज्जावान् और कीर्तिमान् पुरुष हैं वे अपनी स्तुति करानेमें भी निंदा समझते हैं, जैसे विक्रमी ब्राह्मणका वध आदि पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं ऐसे परम उदार पौरुषके सामने स्तुतिकी निन्दा करते हैं ॥ २५ ॥ हे सूतादिको ! हम श्रेष्ठ कर्म करके अभी लोकमें विख्यात नहीं हुए, फिर बालकके समान आपसे कैसे अपनी स्तुति करावें ? ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा—इस षोडश अध्यायमें, पृथुको अति सत्कार। लोकपाल अरु सूतगण, कीनो विविध प्रकार॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा पृथु तो इस प्रकार अपनी बड़ाईका उनसे निषेध करता ही रहा, परंतु मुनियोंकी प्रेरणासे पाठकगण और गायक अमृतरूपी वाणीसे उसकी सेवा और स्तुति प्रसन्न मन होकर करने लगे ॥१॥ जो आपने साक्षात् देववर्य मायासे अवतार लिया है और वेनके अंगसे उत्पन्न हुए हो, जब आपके पुरुषार्थोंमें बृहस्पत्यादिकोंकी भी बुद्धि भ्रमजालमें आ जाती है, तो फिर आपके चरित्र वर्णन करनेका हमारी क्या सामर्थ्य है ? ॥ २ ॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तो भी उदारयशी और भगवान् विष्णुकी कलावतार पृथुके कथामृतमें आदृत होकर मुनिलोगोंका जैसा उपदेश है

मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥ नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ॥ वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥ २ ॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलावतारस्य कथामृतादृताः ॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥४॥ एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ॥ काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥ ६ ॥

और उन्होंने अपने योगबलसे जैसा हमारे हृदयमें प्रकाश किया है, उसके अनुसार आपकी अनुपम महिमाका विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥ आप धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ हैं और लोगोंको धर्मके मार्गमें चलानेवाले हैं और धर्मकी सीमाकी रक्षाके लिये सेतु हो, धर्मकी मर्यादारूप सेतुके तोड़नेवालोंके नाशक हो ॥ ४ ॥ केवल आप ही अपनी देहसे तनु धारण करते हो, यही समय समयके यथाभाव होना, लोकका हित करते हैं, एक देहमें लोकपालोंके शरीर धारण करते हैं ॥ ५ ॥ उसी प्रकार लोकपालोंके शरीरका पालन पोषण और यह सुकालमें धन लेवेंगे और दुर्भिक्षकालमें धन देकर प्रजाकी सहायता करेंगे, सब जीवमात्रमें समान बर्ताव कर सब जीवमात्रपर समदृष्टि रखकर अपने प्रतापका

प्रकाश बढ़ावेंगे ॥ ६ ॥ जैसे वसुमती सर्व संसारका भार सहन करती है ऐसे ही यह कृपालु पृथु पृथ्वीकी गति धारण करके दीन दुःखी जन इसके ऊपर पग भी धर देंगे तो भी उनका अपराध क्षमा करेंगे ॥७॥ जो कभी इन्द्र वर्षा नहीं करेगा तो यह नरदेव देहधारी विना प्रयास श्रीहरि देव कृच्छ्र प्राणसे इन्द्रके सदृश वर्षा करके आर्तजनोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ चन्द्रवत् वदन, अमृतमूर्तिसे अनुरागी चितवनके देखनेसे मनोहर मन्द मुसकानसे सब संसारको तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ यह अप्रकट मार्ग होंगे जैसे वरुणके सब काम गुप्त हैं, ऐसे ही यह पृथ्वी नाथ गंभीरबुद्धि रक्षितचित्त होंगे, इनके गमनागमन मार्गको कोई नहीं जान सकेगा और न इनके परिणामकी किसीको सुधि होगी

तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ॥ भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेव वपुर्हरिः ॥ कृच्छ्रप्राणाः प्राजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागाव लोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥ अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः॥अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुःप्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥ अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥ नादण्ड्यं दण्डयंत्येष सुतमात्मद्विषामपि ॥ दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥

कि यह क्या करेंगे, और इनके प्रयोजनका भाव कोई नहीं जान सकेगा और यह अनन्त महात्माओंके गुणोंके एक धाम हैं, यह पृथु प्रचेताके समान जितेंद्रिय होंगे ॥ १० ॥ वेनरूप अरणिसे प्रकट हुए पृथुरूप अग्निका कोई शत्रु शीतल करनेवाला न होगा और सबके निकट रहनेपर भी शत्रुको ऐसे ज्ञात होंगे कि अत्यन्त दूर बैठा है और कोई पुरुष अपने पुरुषार्थसे इनको जीत न सकेगा ॥ ११ ॥ सब जीव मात्रके बाहर और भीतरके सब कर्मोंको चार द्वारा देखते हुए सब प्राणियोंका अधीश आत्मभूत वायुके समान उदासीन रहेंगे ॥ १२ ॥ धर्ममार्गमें ऐसे सत्यवादी होंगे कि अदण्ड्यको दण्ड कभी न देंगे, चाहे पुत्र हो, चाहे शत्रु, न्यायके समय किसीका पक्षपात न करेंगे, जो

दण्ड देनेके योग्य होगा उसीको दण्डका भागी करेंगे ॥ १३ ॥ इन पृथुका अखण्ड शासन मानसाचल पर्वतसे लेकर जहांतक भगवान् भास्कर अपनी किरणोंसे तपते हैं, वहांतक राज्य करेंगे ॥ १४ ॥ अपनी चेष्टा करके सब लोगोंको प्रसन्न करेंगे फिर मनके आनंदकारी मनोहर वाक्योंसे प्रजाको अत्यानंद करेंगे और प्रजा प्रसन्न होकर कहेगी कि हमारे महाराज दुःखभंजन हैं ॥ १५ ॥ दृढव्रत, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले, वृद्धजनोंके दास, शरणागतवत्सल, सब प्राणीमात्रके मानदाता, दीनदयालु होंगे ॥ १६ ॥ परस्त्रीको माताके

अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणः ॥१४॥ रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥१५॥ दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ॥ मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥

समान माननेवाले, अपनी भार्याको अपने अर्द्धांगसदृश जाननेवाले, प्रजामें पिताके समान प्रीति करनेवाले, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके किंकर होंगे ॥ १७ ॥ सब देहधारियोंको अपनी आत्माके समान प्रिय, सुहृदोंको आनंद बढ़ानेवाले, निःसंग पुरुषोंको संगतिवाले, दुष्टोंको दंड देनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ यह तो साक्षात् त्रिभुवननायक, निर्वैद भगवान्, त्रिगुणी मायाके अधीश सबमें रमे हैं आत्माकी कलासे अवतार

१ शङ्का–जो जो अवतार नारायणने धारण किये वे सब त्रिभुवनपति हुए परन्तु सूतलोगोंने ऐसा क्यों कहा कि जहां तक सूर्य प्रकाश होगा वहां तक राजा पृथु रक्षा करेंगे ॥
उत्तर–तीन लोकके पति ईश्वरने राजा वेनसे पृथ्वीको नष्ट हुई जानके और राजाओंकी सनातन मर्यादा हुई जानके अकेले पृथ्वीको सुख देनेके लिये पृथु भगवान प्रकट हुए इसलिये राजा पृथुको सूतोंने केवल भूपाल वर्णन किया ॥

धारण किया है, जिसमें अविचारचित निरर्थक नानाभांति प्रतीत होते हैं ऐसे दृष्टि आते हैं ॥ १९ ॥ यह नरदेवोंके नाथ, उदयाचलसे लेकर सब भूमण्डलको जैसे मार्तंड प्रदक्षिणा देते हैं, इसी प्रकार अकेले जयप्रद रथमें बैठ धनुषबाण लेकर समस्त भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ आठों लोकपाल सहित सब राजालोग जहां तहां इनके लिये भेट देंगे और उन आदिराज चक्रायुधकी स्त्रियें इन आदिराजको श्रीनारायणकी कला समझकर वारंवार यश उच्चारण करेंगी ॥ २१ ॥ यह अधिराज गोरूप धरणीको दुहेंगे और प्रजाकी प्रजापतिकी नाईं वृत्ति करेंगे और लीलाकरके अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोड़कर सब पृथ्वीको समान करेंगे, इन्द्रकी नाईं पर्वतोंको भेद

अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथाऽर्कः॥२०॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्रबलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः॥ मंस्यन्त एषांस्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधाञ्छतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहार्षीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥२४॥ एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ॥ आराध्य भक्त्याऽलभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥

कर चूर्ण करेंगे ॥ २२ ॥ जिस समय ये अपने आजगव धनुषका टंकार करके निर्द्वंद्व होकर संग्राममें विचरेंगे, जैसे पूंछ उठाकर पंचानन पृथ्वीपर घूमता है, इस प्रकार विचरेंगे, तब सब दिशाओंसे दुष्टलोग भाग जायँगे ॥ २३ ॥ जहां सरस्वती प्रकट हुई है, वहां ये सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करेंगे, जब सौ यज्ञ पूर्ण हो जायँगे तब अन्तमें वर्तमान होनेपर इन्द्र आकर इनका घोड़ा चुराकर ले जायगा ॥ २४ ॥ यह अपने स्थानके समीप उपवनमें भगवान् सनत्कुमारको इकेला पाकर श्रद्धापूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल वासुदेव भगवान्के ज्ञानको प्राप्त करेंगे, कि जिस ज्ञानके जाननेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ जहां तहां प्रजागण महापराक्रमी भूपतिका यश मधुर

वाणियोंसे गाकर विख्यात करेंगे, तब अपने पराक्रमकी कथा अपने कानोंसे सुनेंगे ॥ २६ ॥ और इनकी आज्ञाको कोई भंग न कर सकेगा, सब दिशाओंको जीतकर अपने तेजसे सब लोकके शूलोंको निकालकर सुर असुर, इन्द्र इनकी गाथाको गावेंगे और यह महानुभावी भूमिके पति होवेंगे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
दोहा—सत्रहमें सब अन्नको, धरणि बीज गइ खाय । जब पृथु कोपे धरणिपर, धरणि शरण ली आय ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब इस प्रकार उस भगवान् पृथुको गुणकर्मोंसे विख्यात किया, तब राजा पृथुने उनकी अत्यन्त सराहना कर प्रणाम किया, फिर उनका पूजन कर

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० सूतादिस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौराञ्जानपदाञ्छ्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत ॥ २ ॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥ ३ ॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥

आदरसत्कार सहित उनको संतुष्ट किया ॥ १ ॥ और ब्राह्मणादिक चारों वर्ण भृत्य, अमात्य, पुरोहित, पुरवासी सब प्रकृति प्रजाका राजा पूजन करने लगे ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि अनेक रूप धरनेवाली धरणीने क्यों गोरूप धारण किया ! और जब पृथुने उसको दुहा तो उस समय वत्स कौन था और दोहनी क्या थी ! ॥ ३ ॥ और स्वभावसे ऊँची नीची पृथ्वीको समान क्यों किया ! और उसके पवित्र यज्ञके घोड़ेको इन्द्रदेवता क्यों चुराकर ले गया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे वेदवादियोंमें श्रेष्ठ ! ! भगवान् सनत्कुमारसे परम ज्ञानको प्राप्त कर पूर्ण ज्ञानी हो वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ ! ॥ ५ ॥ और श्रीकृष्णचन्द आनंदकंद भगवान्का और भी जो कुछ सुन्दर विख्यात यश

पुण्यदायक भगवान् पृथुकी कथाके आश्रित हो सो आप वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ आपके चरणारविन्दअनुरागी भगवत्‌का भक्त जो मैं हूँ सो मुझसे आप कहो कि उस पृथुने वेनके अंगसे उत्पन्न होकर पृथ्वीको किस लिये दुहा ? ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि जब विदुरजीने वासुदेव भगवान्‌की कथाके लिये इस प्रकार प्रेरणा की तब उनकी प्रशंसा कर प्रसन्नमन होकर मैत्रेयजीने कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे अंग ! जब पृथुको राज्यतिलक ब्राह्मणोंने दिया और प्रजापालनका आमंत्रण किया, तब सब भूतल अन्नरहित हो गया और सब प्रजागण क्षुधार्त हो कृशशरीर हो गये, तब प्रजापतिके समीप जाकर बोले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हमको क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है, जैसे वृक्षमध्य

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ॥ प्रशस्य त प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाऽभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥ वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेव देव ॥ यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥

स्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं, ऐसे ही जठराग्निसे हम सब जल रहे हैं, हे शरणागतपालक ! हम तुम्हारी शरण हैं और ब्राह्मणोंने आपको हमारा अधिपति बनाया है, आप हमारी सब वृत्तियोंका साधन करो ॥ १० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारी रक्षा करो भूखोंके मारे हमारे प्राण पयान किया चाहते हैं, अन्न देनेके लिये आप कोई ऐसा यत्न करें कि जिससे हमको अन्न प्राप्त हो। हे नरदेव ! इतनी शीघ्रता करो जो अन्न विना हमारे प्राण न निकल जायँ, क्योंकि जब हमारा शरीर ही न रहा तो फिर अन्न हमारे किस कामका ? चौपाई—का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछताने ॥” आपको यह उपाय शीघ्र ही करना चाहिये, क्योंकि परमात्माने आपको जीविकाका पति

तत्त्वको भी बड़ी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥ ५५ ॥ ऋषिगणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्मा और श्रीभगवान्के कहे हुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथाको श्रवण करने लगा और उस कथाके श्रवण करनेसे कुछ संदेह भी हुआ ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजीराजा परीक्षित्से कहने लगे कि हे भारत! पहले प्रलयके अंतमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन मत्स्यरूपी भगवान्ने हयग्रीव असुरका संहार कर फिर सब वेद ब्रह्माजीको दे दिये ॥५७॥ और यह सत्यव्रत राजा भगवान्के प्रसादसे ज्ञानविज्ञान सम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वतमनु हुआ है ॥५८॥ हे राजन् परीक्षित! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतारका बड़ा

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमुपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ समाप्तोऽयमष्टमः स्कन्धः ॥

पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥५९॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिन प्रति दिन कहते सुनते हैं उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं और अन्तमें परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं ॥६०॥ अहो! प्रलय समुद्रके जलमें शयन करते हुए और शक्ति रहित विधाताके वदनसे निकले हुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण कर लिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तऋषियोंसे कहे थे, उन अखिलकारण मायामत्स्यरूपी भगवान्को हम वारंवार नमस्कार करते हैं * ॥६१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

* छप्पय-जय जय नटवर वेष तरणितनयातट लम्पट। जय जय अट पट लटक चटक भूषित वंशीवट। जय जय जटित सुहाटक घटित मुकुट धर ॥ जय जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर ॥ जयति चटुक तर पतिपट धर अघटित घटनाचरण ॥ जय जयति निपट पटु करण प्रभु मम इच्छा पूरण करण ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धप्रारंभः ॥

नवमस्कंधः

अश्विनीकुमारः
सुकन्या
च्यवनः
अंबरीष
सुदर्शन
कृत्या
दुर्वासा
कपिल
ऋषि पत्नी
सहस्रार्जुन
परशुराम
श्रीराम
हनुमान्
सीता
देवयानी
शर्मिष्ठा
ययाति
ययातिपुत्र

सोरठा—जयवृन्दावन चन्द, जय मुकुन्दगोविंद हरि ॥ जय प्रभु आनन्दकन्द, जगवन्दन दुष्टनदलन ॥ जय त्रिभुवन आधार, जय जय जीवन जगतपति ॥ मम उर करहु विहार, कर मुरली शिर मुकुट धर ॥ २ ॥ हे वृन्दावनचन्द, यह वर दीजे दयाकर ॥ श्रीव्रजको आनन्द, नित्य प्रति निरखत रहौं ॥३॥ शीश मुकुट उर माल; सँग राधा बाधा हरण ॥ इहि छबिसौं नँदलाल, बसहु सदा मेरे हिये॥४॥श्रीयमुनाके तीर, गाय चरावत सखन सँग ॥ ता छबिसों यदुवीर, वास करहु मेरे हृदय ॥५॥ अहो मदन गोपाल, रासरसिक राधारमण ॥ हरहु जगतजंजाल, करहु दया जन जानकर ॥६॥ कर त्रिशूल शशिभाल, शीश गंग मन्मथदहन ॥ गलमें गरल कराल; आठ पहर झलकत रहत ॥ ७ ॥ दोहा—स्कन्ध नवममें वंश द्वै, सूर्य सोम विस्तारि ॥ तेरहग्यारहसों भने, क्रम अध्याय विचारि ॥१॥ तहां प्रथम अध्यायमें, वैवस्वतसुत वंश ॥ मध्य भन्यौ

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन् वंशानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

सुद्युम्नके, श्रीत्त जासु विधुवंश ॥२॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित बोले कि हे भगवन ! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और मन्वन्तरोंमें अनन्त वीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्य प्रकाश किया; वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥ १ ॥ हे योगिन ! अतीतकल्पके अन्तमें द्रविड़ाधिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्‌की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसको भी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुए, उनका वृत्तान्त भी आप कह ही चुके हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक् पृथक् वंश और वंशोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ; सो कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इस वंशमें जो पुरुष हो गये हैं और जो आगे होंगे, जो अब वर्तमान हैं, पुण्यकीर्तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप

यथार्थ यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षित्ने जब इस प्रकारसे पूछा; तब परम धर्मज्ञश्रीशुकदेवजी कथाका आरम्भ करने लगे ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मनुके वंशका वृत्तान्त हम कहते हैं, तुम श्रवण करो परंतु इसका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रोंवर्षतक नहीं कह सकते ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो परम पुरुष पर अपर भूतोंके आत्मा हैं आगे केवल वही थे, कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें कुछ और वस्तु नहीं थी ॥ ८ ॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ । हे महाराज ! उस कमलसेचतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ इन ब्रह्माजीके मनसे मरीच जन्मे, उनके पुत्र

सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ॥ तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥

कश्यपजी हुए, इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी अदितिके गर्भमें कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे भारत ! इन सूर्यनारायणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुए । जन्मश्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि जिसके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११॥ उनके नाम यह हैं, यथा—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभगऔर कवि ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे इसलिये महर्षि वशिष्ठजीने उनसे मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मनुकी भार्याश्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूध ही पीकर नियमसहित होताके निकट गयी और उसने प्रणाम करके यह प्रार्थना की कि

हे प्रभो ! ऋषि, छन्द, देवता और विधिपूर्वक ध्यान कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले एक परम गुह्य गायत्रीकवच है जिसके पढ़ने और धारण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और सब कामनाओंको प्राप्तहो देवीरूप हो जाता है, इस गायत्री कवचके ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ ५ ॥ ऋषि हैं हे नारद ! ऋक, यजु, साम, अथर्व छन्द हैं, ब्रह्मरूपा देवता और गायत्री परमा कला है ॥ ६ ॥ तत् पदबीज, भर्गशक्ति धियः कीलक और मोक्षमें इसका विनियोग है ॥७॥ प्रथमके चार अक्षरोंसे हृदय, तीनसे शिर, चारसे शिखा, तीनसे कवच ॥ ८ ॥ फिर चारसे नेत्र और चार अक्षरोंसे अस्त्र किया करै, इस प्रकार २४ अक्षर हुए, अब साधकको सब अभीष्ट देनेवाला ध्यान कहते हैं

श्रीनारायण उवाच ॥ अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा ॥ पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते ॥ गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥ ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वश्छन्दांसि नारद॥ ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला ॥ ६ ॥ तद्बीजभर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥ कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम्॥७॥ चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ॥ चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम् ॥८॥ चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम् ॥ ९ ॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहंतीं भजे ॥१०॥ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ॥ ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ मोती, मूँगे,सुवर्ण,नीलमणि, उज्ज्वल छायायुक्त प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र ऐसे पांच मुखयुक्तरत्नके मुकुटमें चन्द्रमा धारण किये २४ तत्त्ववर्णस्वरूपिणी वरदायिनी ऊर्ध्व हाथोंमें दो कमल, उससे नीचेके करोंमें चक्र, शंख उससे नीचेकेमें रज्जु, कपाल उससे नीचेकेमें पाश, अंकुश,उससे नीचेके हाथोंमें अभयवर धारण किये गायत्री देवीको भजन करता हूं ॥ १० ॥ पूर्वसे गायत्री, दक्षिणसे सावित्री पीछेसे ब्रह्मा द्वारा आराधना की हुई संध्या,उत्तरसे सरस्वती रक्षा करै ॥ ११ ॥

अ.ान, व्यान, समान ॥ १२ ॥ यह क्रमसे सब वर्णोंके तत्त्व हैं अब क्रमसे वर्णोंकी मुद्रा कहते हैं ॥ १३ ॥ सन्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत एकमुख, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, ॥ १४ ॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजली, शकट, यमपाशक, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख, ॥१५॥ विलम्ब, मुष्टिके, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाकान्त, महाकान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १६ ॥ त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अंबुज (कमल) यह महा मुद्रा गायत्रीके चतुर्थ चरणरूप कही हैं ॥ १७ ॥ हे महामुने ! यह वर्णोंकी मुद्रा कही यह महा पापनाशिनी कीर्ति और

तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु॥अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ॥१३॥सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपंच मुखं तथा ॥ १४ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम्॥१५॥विलंबम्मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥१६॥ त्रिशूल-योनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥ इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने ॥ महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कांतिदा मुने ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो ॥ चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर ॥ १ ॥ मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत् ॥ देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥ २ ॥ कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम् ॥ ऋषिश्छंदोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवत्प्रभो ॥ ३ ॥

कान्ति देती हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले, हे स्वामिन् ! हे सब जगत्के प्रभो ! हे चौसठ कलाके ज्ञाता, योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! यह मुझको संदेह है कि पातकोंसे ॥ १ ॥ किस पुण्यसे छूटकर ब्रह्म हुआ जाता है देह देवतारूप और विशेष कर मंत्ररूप है ॥ २ ॥ उस कर्म और विधिपूर्वक न्यासके जाननेकी इच्छा करता

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्धप्रारंभः ॥

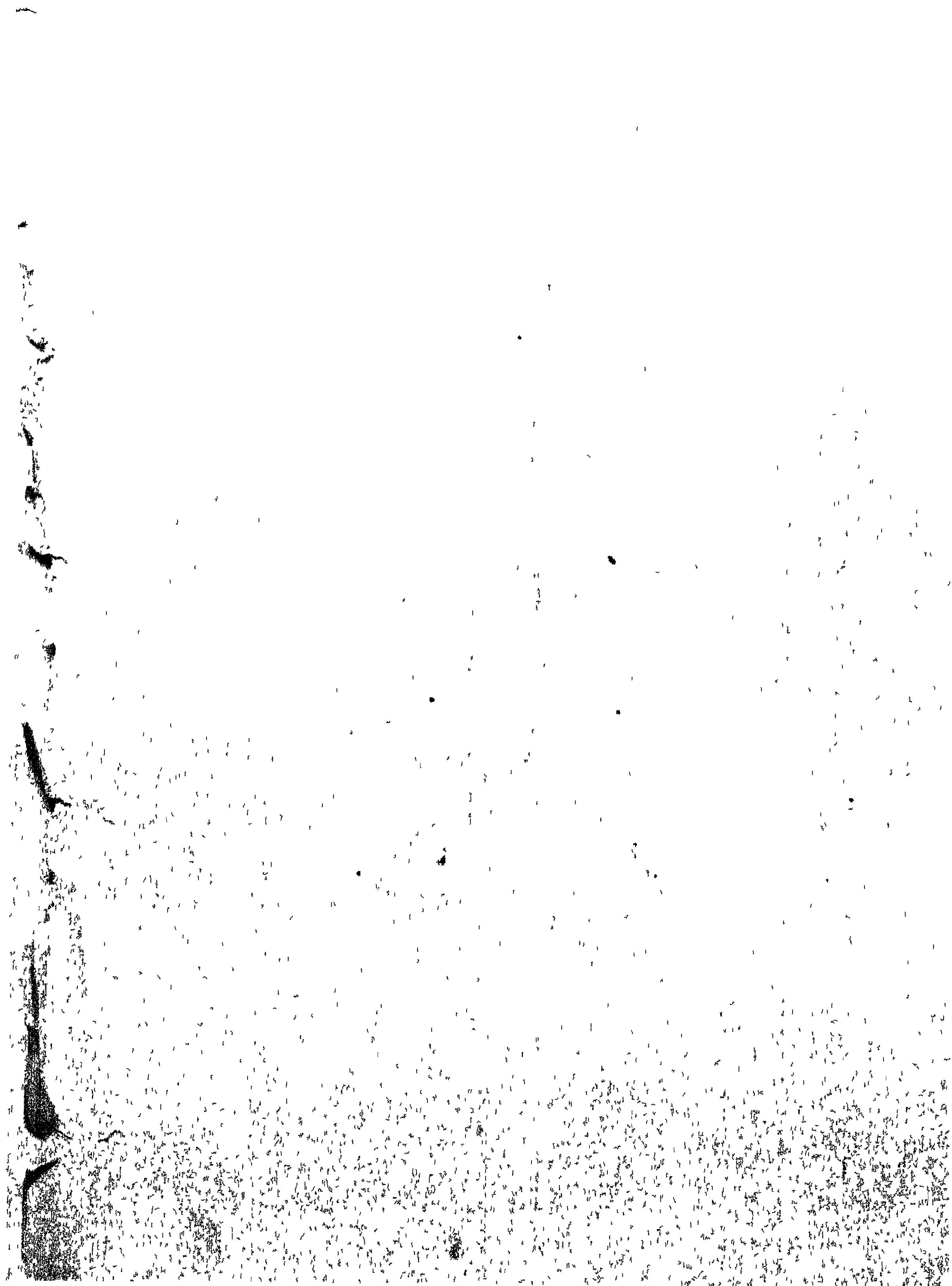

दशमस्कंध पूर्वार्धः

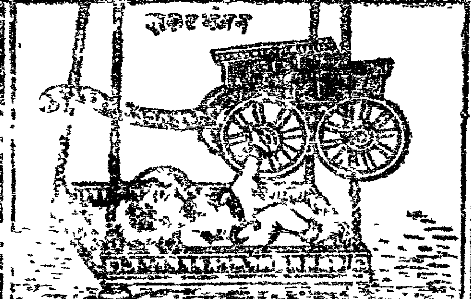

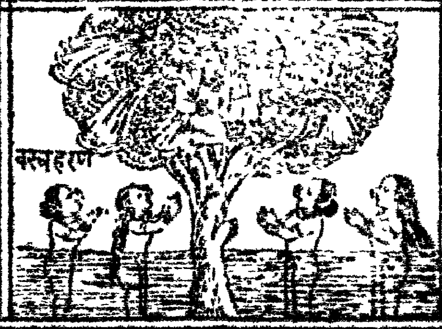

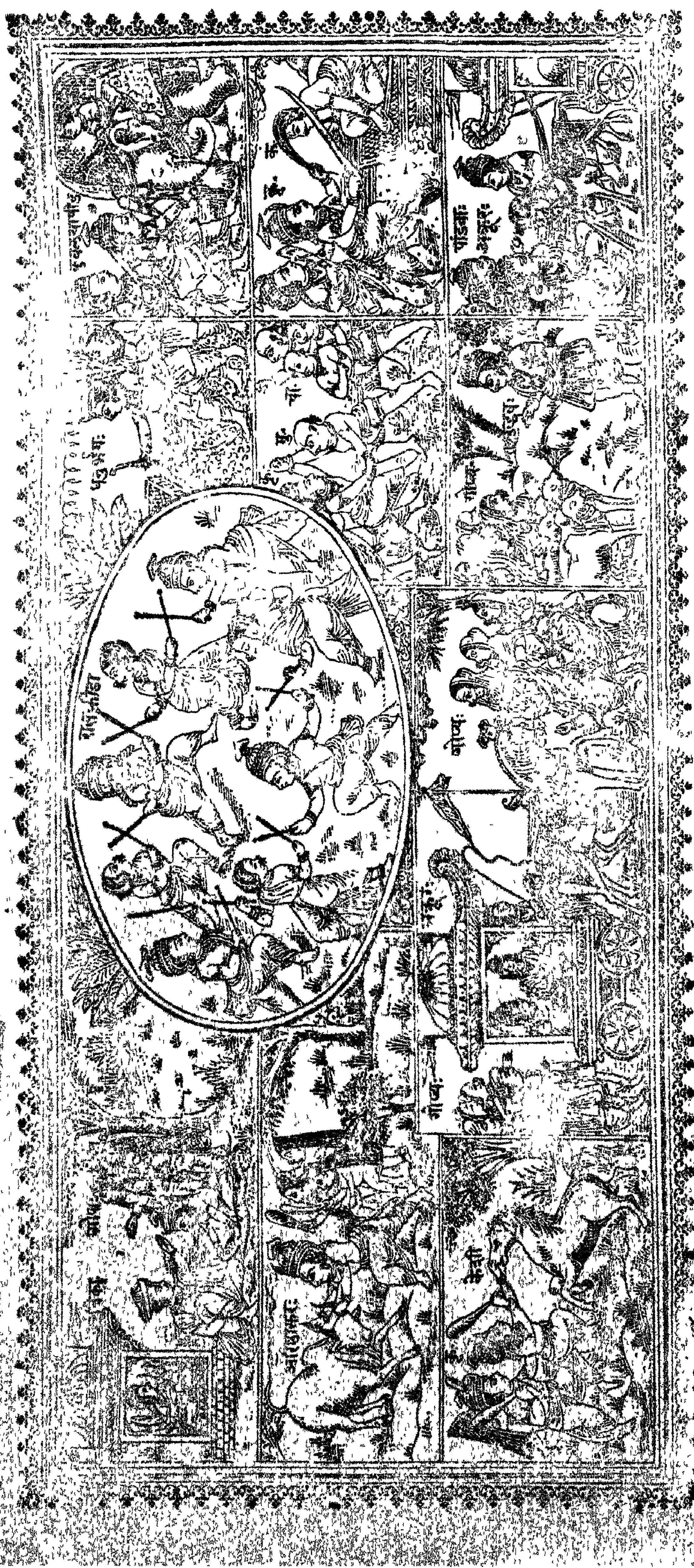

वह सर्व आनंदित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंके वारंवार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर वारंवार कोप करते थे ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया, उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये । वहांपर शत्रुओंका नाश कर व्रजवासियोंका अभिलाष पूर्ण कर धन सम्पत्तिको बढ़ाया । फिर बहुतसी सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये, फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीज आत्मान मात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥६६॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणामन्तस्समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशविदर्भान्यानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तोऽयं नवमस्कन्धः ॥

अनेक यज्ञोंको कर आपने अपनी ही पूजा की ॥ ६६ ॥ फिर इन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उत्पन्न कर पृथ्वीका भारी भार उतार दिया और दृष्टिसे ही युद्धभूमिमें खड़े हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया । फिर जब अर्जुनने रणमें जय पाया तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीको परमतत्त्वका उपदेश किया और अन्तसमय अपने उसी स्वरूपसे परम धामको चले गये । ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गल्ली खम्बाटा लैन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणागारेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् २०१२, शके १८७७.

होनेपर उसके द्वारा सृष्टिप्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वे ही जीवके मोक्ष होनेको कारण होते हैं ॥ ५८ ॥ हे परीक्षित् ! बहुतसी अक्षौहिणीके नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीको आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबा लेते हैं तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्का यह अवतार होता है क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग भी मनके द्वारा तर्क करके नहीं कर सकते भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलासे ही कर डालते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, यद्यपि वह संकल्प ही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे परंतु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रकट करनेके लिये दुःख; शोक और तमोगुणका नाशक यह पुण्ययश भगवान्ने विस्तारित किया है यह श्रेष्ठ यश साधुपुरुषोंके लिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है। केवल एकबार

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयानि मनसाऽपि सुरेश्वरैः ॥ सहसङ्कर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत् कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥ यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णं भ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम् ॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥

कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्म वासनाके त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दाशार्ह, कुरु, सृञ्जय और श्रेष्ठ पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं ॥६३॥ उन्हीं भगवान्ने सुन्दर मनोहर मुसकान, दर्शन, उदारवचन, विक्रमलीला और रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्यलोकको प्रमुदित किया था ॥ ६४ ॥ मकराकार कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानो उसमें लगी हुई थी, इसलिये मानो सदा ही उत्सव होता था, उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए अर्थात्

वत्सक ९ और वृक १० । हे राजन्! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उस समय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजाये थे * ॥ २९ ॥ इसी लिये इन वसुदेवजीका एक नाम 'आनकदुन्दुभि' था, क्योंकि ये भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके अतिरिक्त पृथा १, श्रुतदेवा २, श्रुतकीर्ति ३, श्रुतश्रवा ४ ॥३०॥ और राजाधिदेवी ५ नामक पांच कन्याएँ हुई। यह इन दश पुत्रोंकी बहनें थीं। राजा शूरसेनने अपने सखा कुंतिराजको निःसंतान देखकर अपनी पृथाकन्या उसको दे दी ॥३१॥ हे परीक्षित! किसी

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ॥ कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥ साऽपि दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥

समय दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भलीभांति सेवा कर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको देवाह्वानविद्या सिखा दी। इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्को बुलाया ॥ ३२ ॥ परंतु इन सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी—हे देव! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा

---

* शङ्का—मृत्युलोकमें मनुष्य जन्म जो लेते हैं परंतु किसीके जन्म होनेपर देवता दुन्दुभी नहीं बजाते और [illegible] पृथ्वीके जन्म लेनेपर देवता दुन्दुभी बजाते हैं, परन्तु वसुदेवके जन्म होनेपर देवताओंने दुन्दुभी क्यों बजाया? जो कोई कहे कि भगवान् वसुदेवके घर [illegible] तो दशरथ आदि लेकर बहुत जनोंके भगवान् पुत्र हुए तो दशरथ आदिके जन्मसमय देवताओंने दुन्दुभी क्यों नहीं बजाया?

उत्तर—जो मथुरामें वसुदेवजीने जन्म लिया तो उस समय दुन्दुभीके निकट चन्द्रमा खड़ा था. [illegible] प्रकाश करनेवाला यह होगा जानकर चन्द्रमाने दुन्दुभी बजाया. कुछ देवताओंने दुन्दुभी नहीं बजाया और दशरथके जन्मके समय [illegible] अपने अपने वंशकी वृद्धि देखकर सबको हर्ष होता है।

था, इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है, इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले कि हे देवि ! देव दर्शन व्यर्थ नहीं होता, हम तुममें गर्भाधान करेंगे। पृथा बोली कि मैं कन्या हूँ अतः ससारमें दूषित हूँगी। सूर्यनारायणने कहा कि तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो, हम ऐसा करेंगे कि जिस प्रकार तुम्हारी योनि दुष्ट नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चले गये। उसी समय दूसरे दिवाकरके समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको संदूकमें बन्दकर नदीमें बहा दिया। इसके उपरांत पृथाको देखकर तुम्हारे पर

अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं साऽत्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ॥ सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन् कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावन्त्यो जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥ शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥

दादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह करने के लिये ले गये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा परीक्षित्‌ ! शूरसेनकी कन्या श्रुतवेदा कुरुवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई। उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सतऋषि सनकादिके शापसे जन्म लिया ॥ ३७ ॥ और केकयवंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे बिंदु और अनुबिंदु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा ! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ, कि जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन कर चुके हैं। अब वसुदेवजीके भ्राताओंका वृत्तांत कहते हैं।

देवश्रवसकी भार्या कंसावतीके गर्भसे सुवीर और इषुमा
देवभागकी भार्या कंसाके चित्रकेतु और बृहद्बल ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ आनककी वनिता कंकासे सत्यजित और पुरुजित् ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४१ ॥ सृञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष, दुर्म्मर्षणादि उत्पन्न हुए । श्यामककी शरभूमि नामक भार्यासे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया ॥४२॥ वत्सकने मिश्रकेशी नामक अप्सरासे वृकादि पुत्र उत्पन्न किये । वृककी पत्नी दुर्वाक्षीसे तक्ष, पुष्कर, शालप्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥४३॥ शमीककी वनिता सुदामिनीने सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये । कंकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र

मिनीने सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये । कंकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कङ्कायामानकाज्जातौ सत्यजित् पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ॥ कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकीप्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विमलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वाशशाभवन् ॥ ४७ ॥ नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥

और देवकी आदि अनेक पत्नियें थीं ॥ ४५ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे ॥ ४७ ॥ मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए, भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशी नामक एक ही पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४८ ॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद प्रभृति जन्मे । और इलामें उरुव

उत्पन्न किये ॥ ४४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला

ल्कसे आदि लेके यदु जिनमें मुख्य थे ऐसे अनेक पुत्र हुए ॥ ४९ ॥ धृतदेवके वसुदेवासे विपृष्टने जन्म ग्रहण किया । शांतिदेवामें श्रम, प्रतिश्रुत आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥५०॥ इसी प्रकार उपदेवासे कल्प, वर्षादि दश पुत्र उत्पन्न हुए । श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंशादि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ देवरक्षिताके गदप्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए । जैसे साक्षात् धर्मने आठ वसु उत्पन्न किये वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवामें पुरु विश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये । इस प्रकार उनके देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुए, यथा—कीर्तिमान् १, सुषेण २, भद्रसेन ३, ऋजु४, संम्मर्दन ५, भद्र ६, संकर्षण ७ और अहीश्वर ८ यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे परीक्षित् । वसुदेव देवकीके अष्टम

विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ॥ शान्तिदेवात्मजा राजञ्छ्रमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥ देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥ अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥ ५५ ॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्यद्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

पुत्र स्वयं विष्णु भगवान् हुए और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसे ही उत्पन्न हुईं ॥५५॥ अधिक क्या कहें ? जिस जिस समय धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है, उसी उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार लिया करते हैं ॥५६॥ नहीं तो जो हरि, मायाके नियन्ता, संगविहीन, सर्वसाक्षी, सर्वगत हैं उनका मायाविनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु हो सकता है ॥ ५७ ॥ जिसकी मायाचेष्टा जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप हैं, क्योंकि यह माया ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है, इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्रह हैं फिर उनको कर्मादिके वश पड़कर जन्मादि सम्बंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण

आप ऐसा होम करें कि जिससे मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "यज्ञ करो" इस प्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो होताने हविके ग्रहण हो जाने पर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनुभार्याकी प्रार्थना को पूर्ण किया ॥१५॥ हे राजन् ! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इलानाम एक कन्या उत्पन्न हुई । पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ, इसलिये असंतुष्ट हो वशिष्ठजीसे बोले कि ॥१६॥ हे भगवन् ! आप ब्रह्मवादी हैं आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ ? हा ! कैसा कष्ट है ? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है ॥१७॥ आप लोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं, तपकी अग्निमें आपके

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥ एवं व्यवसितो राजन् भगवान् सुमहायशाः ॥ अस्तोषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३ ॥

अनन्त पाप भस्म हो गये हैं, देवता लोगोंमें अनृत (झूठ) के समान आप सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई ? ॥१८॥ हे राजन् ! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वशिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझ गये और मनुसे बोले कि ॥१९॥ हे वत्स ! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्यथाचरण किया है, तो भी हम तुमको सुन्दर पुत्र ही देंगे॥२०॥हे राजन ! वशिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदिपुरुषकी अस्तुति करने लगे ॥२१॥ वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और संतुष्ट हो वशिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया, उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्ननामक श्रेष्ठ पुत्र हो गयी ॥२२॥ हे महाराज ! यह सुद्युम्न

एक दिन सिंधुदेशके उत्पन्न हुए घोड़ेपर चढ़कर और कुछेक मंत्रियोंको साथ ले आखेटके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ़ बख्तर पहने हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौड़ता हुआ उत्तर दिशमें पहुँचा ॥ २४ ॥ वहां सुमेरुपर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहां भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा । उसने वहां पहुँचते ही अपने आपको स्त्री देखा और अपने घोड़ेको घोड़ीरूप पाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहारकर विस्मित हुए ॥२७॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ॥ अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगास्सर्व आत्मलिङ्गविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

पुरुषने इस स्थानको ऐसा कर दिया ? इस बातको सुनकर हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, सो आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषिलोग भगवान् गिरीश (महादेव) जीके दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अन्धकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते अर्थात् केवल अपना प्रभाव प्रकाशित करते हुए वनमें गये थे ॥ २९ ॥ उस समय भगवती अम्बिकादेवी विवसना अर्थात् वस्त्ररहित थीं, इसलिये मुनि लोगोंको देखकर अत्यन्त लज्जित हुईं और उन्होंने घबड़ाकर पतिकी गोदीसे उतर झटपट कटिवसन पहन लिये ॥३०॥ हरगौरीका विहार देखकर उन सब

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्धि पुरुषा वर्जयन्ति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥ ३४ ॥ साऽपि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥३५॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥

ऋषिगणोंका मन भी स्त्रीप्रसंगसे कलुषित हुआ और वे उसी समय वहांसे लौटकर नरनारायणके आश्रमको चले गये ॥ ३१ ॥ इसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारीका प्रिय कार्य करनेको समझाते बुझाते हुए बोले कि आजसे जो कोई इस स्थानमें आवेगा, वह उसी समय स्त्री हो जायगा ❋ हे राजन् ! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड़ दिया, कोई उस दिशाको भी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमारसुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके साथ उस सुद्युम्नको अपने आश्रमके समीप भ्रमणकरता हुआ भगवान बुधजीने देखा ॥ ३४ ॥ देखते ही बुधके मनमें कामदेवका सञ्चार हुआ और वह सुद्युम्न, जो कि मनोहर स्त्रीके रूपमें थे, चन्द्रमाके पुत्र बुधको देख उनको पति बनानेकी अभिलाषाकी ॥ ३५ ॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसकेगर्भसे बुधके पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! ऐसा सुना गया

❋ शंका–महादेवजी तो बड़े शीलवान और दयानिधान थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि हमारे स्थानके सामने जो कोई पुरुष आवेगा वह उसी समय स्त्री हो जावेगा । चौरासी लाख योनियोंमें किसी योनिका पुरुष क्यों न हो और तीन लोकमें जो चराचर प्राणी हैं वे सब अपने अपने कामकी सिद्धिके लिये शिवके समीप कैलाशको जाते हैं और वे लोग स्त्री नहीं होते क्या कारण है ?

उत्तर–जब शिवजी शाप दे चुके तो पीछे अपने मनमें विचारा कि अब क्या उपाय करना चाहिये ? तब उसी दिनसे कैलाशके चारों ओर अपने गण बैठा दिये, सो जो कोई प्राणी कैलाशको जाता है तो शिवगण एक कोश आगे उसको रोक लेते हैं और शिवजीसे पूछते हैं कि हे महाराज ! अमुक पुरुष आपके दर्शनके लिये आया है, तब महादेव आज्ञा देते हैं कि आने दो, तब उस मनुष्यको दूतगण कैलाशकी सीमाके अन्दर ले जाते हैं. इसलिये वे लोग स्त्री नहीं होते । कोसभरपर खड़े गणोंका कारण यही है कि जिस सीमाके भीतर आनेसे स्त्री होते हैं उस सीमाके दूर वह एक कोश भरपर खड़ा करते हैं ॥

है कि मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त हो अपने कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३७ ॥ स्मरण करते ही महर्षि वसिष्ठजी उनके समीप आये और उनकी यह दशा देख दयासिन्धु दयाके मारे अति दुःखित हुए और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वसिष्ठजीकीस्तुतिसे भगवान् उनके प्यारे कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोलेकि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न हुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा । इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे कुलाचार्य वसिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन्स्म तं प्रजाः ॥ ४० ॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इलोपाख्याने सुद्युम्नस्य स्त्रीपुंस्त्वयोः प्राप्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पाकर व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालनकरता था, परन्तु महीनेके महीने स्त्री हो जानेसे छिपकर सभामें नहीं आता था. इसलिये प्रजा उससे असंतुष्ट थी ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे; उत्कल, गय और विमल । ये तीनों धर्मपरायण थे और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठानपुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पास झूंसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न प्राप्त हुई वृद्धावस्थाको देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चला गया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—मनु है सुत वैराग्यसे, रहे अमुत वन जाय। करुषादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितिय अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि हे नृपोत्तम! जब सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप किया था ॥ १ ॥ इसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया, उस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये। इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे ॥ २ ॥ हे राजन्! मनुके पृषध्र नामक जो पुत्र हुआ था; उसको मनुजीने गोपालक बताया, इस लिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्ष रहा था कि उसी समय एक व्याघ्र आकर गोठमें घुस गया। उसके घुसते ही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकराकर इधर उधर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेप यमुनायां शतं समाः ॥१॥ ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥७॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥

गोठमें घुसा हुआ व्याघ्र अतिशय बलवान् था, वह एक गायको जब पकड़कर भागने लगा, तब वह गाय अति आर्त होकर पुकारी, उस गायका डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौड़ा ॥५॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी कि अपना देह भी नहीं दिखायी देता था दूसरे घनघोर घटासे और भी अन्धकार हो रहा था, कि जिससे कुछ नहीं दीखता था, इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे एक गायका शिर काट डाला ॥६॥ उस खड्गके चलानेसे व्याघ्रका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भाग गया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझा कि व्याघ्र मर गया, परंतु जब प्रभात हुआतो देखा कि कपिला मारी गयी, तब

बहुत ही दुःखित हुआ ॥८॥ हे राजन् ! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तो भी कुलपुरोहितने गायके शोकसे व्याकुल हो उसको यह शाप दिया कि रे पापिष्ठ ! तू क्षत्रियोंका बंधु भी नहीं हो सकेगा, बरन् इसी जन्ममें शूद्र होगा ❀ ॥९॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया, तब पृषध्रने हाथ जोड़कर उसको अंगीकार किया, फिर ब्रह्मचर्य धारणकर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥१०॥

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ॥ न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भविताऽमुना॥९॥एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः॥अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः॥यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥१२॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३ ॥

इसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त हो सर्व प्राणियोंका सुहृद् और सबको समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ । उसने संग छोड़ दिया, उसकी आत्मा शान्त हो गयी, इंद्रियें जिसके वशमें हो गयीं; संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करता था ॥११॥ १२ ॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो

❀ शंका–गौका वध करनेवाला राजा पृषध्र जो था, उसको वशिष्ठजीने यह शाप दिया कि गायका मारनेवाला तू इस दुष्ट कर्मके करनेसे शूद्र योनिको प्राप्त होगा, यही शाप उसको क्यों दिया, क्योंकि गायका वध करनेसे शूद्र नहीं किन्तु चाण्डाल होना चाहिये ।

उत्तर–सत्युगमें त्रिदण्डी नाम मुनि किसी समय बाज पक्षीका रूप धरकर संसारमें भ्रमण करते थे, एक दिन अपनी इच्छासे यमपुरीका कौतुक देखनेके लिये गये । यमपुरी मुनिका चरित्र जानकर कौतूहल करनेके लिये गौका रूप धरकर पक्षीरूप जो मुनि थे, उनको अपने शृंगोंसे मारनेके लिये दौड़ी तब मुनिने शाप दिया कि बारह १२ वर्ष तू गाय रूप रहेगी, इसलिये वह यमपुरीकी स्त्री गौ बनकर अयोध्याके राजाकी गायोंमें रहा करती थी । उसी गोरूप स्त्रीको पृषध्रने दैवयोगसे मार डाला, तब मुनिका शाप छूटकर पृषध्रकी मोक्ष होनेके लिये आशीर्वाद देकर अपने पतिके पास गयी । वशिष्ठजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया और दो काम विचारकर गायोंका माहात्म्य बढ़ानेके लिये,कि आगेको कोई ऐसा काम न करे और पृषध्रका मोक्ष होनेके लिये शाप दिया कि जा तू शूद्र हो जा, यदि कोई पूछे कि शूद्र होनेका शाप क्यों दिया ? तो शूद्र होनेका कारण यह है कि शूद्र अभिमानरहित होते हैं और श्रीगंगाजीका भाई भी शूद्र है, क्योंकि यह सबको विदित है कि भगवान्के चरणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं और गंगाजी भी भगवान्के चरणोंसे निकली हैं, इसलिये दो गुण करके शूद्रकी मुक्ति शीघ्र होती है,इसीलिये वशिष्ठजीने पृषध्रको शूद्र होनेको कहा था ॥

जड़, अंध, अथवा बहरेके समान पृथ्वीपर घूमने लगा ॥१३॥ हे राजन् ! इस प्रकार आचार व्यवहार युक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर दिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ ॥१४॥ हे महाराज ! मनुका छोटा पुत्र कवि विषयका लालच छोड़ बंधु बांधवों सहित राज्यको छोड़नेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारणकरके किशोर अवस्थाके समयमें ही वनको चला गया, इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥१५॥ परन्तु मनुके करूष नामक जो पुत्र था, उससे कारूष नामसे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ, धर्मरक्षक और उत्तर मार्गके देशकी राजा हुई ॥१६॥इस प्रकार धृष्ट नामक मनुके पुत्रसे धाष्टर्च नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ॥ तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥ कविः कनीयान् विषयेषु निस्स्पृहो विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५ ॥ करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद् धाष्टर्चमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ॥ कन्या चौघवतीनाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यन्ताद् दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥

उत्पन्न हुई, वह इसपृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है। हे राजन ! नृगनामक जो मनुका पुत्र था, उसकापुत्र सुमति, उसका पुत्र भूतिज्योति और उसका संतान वसु हुआ॥१७॥वसुका पुत्र प्रतीक, उसका पुत्र ओघवान् हुआ, उस ओघवान्के औघवाननामक एक पुत्र और औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया ॥१८॥हे राजन् ! नरिष्यन्त नामक जो मनुका पुत्र था उसका पुत्र चित्रसेन, उस चित्रसेनका पुत्रदक्ष, उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से कूर्च उत्पन्न हुआ, उस कूर्चसे इन्द्रसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ इन्द्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहणकिया। इस सत्यश्रवाका पुत्र उरुश्रवा

और उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥२०॥ देवदत्तकेपुत्र अग्निवेश्य हुए। यह स्वयं भगवान् अग्निस्वरूपसे उत्पन्न हुए थे, यह अग्निवेश्य ही कानीन और जातूकर्ण नामसे विख्यात महान ऋषि हुए थे और उनसे ही अग्निवेश्यायन नामक प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है ॥२१॥ हे नृप! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हो गया। अब दिष्टवंशका वर्णनकरता हूँ। सो आप मन लगाकर एकाग्रचित्त हो सुनिये ॥२२॥ दिष्टका पुत्र नाभाग, पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह अन्य जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआ था; इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र और उससे चाक्षुषने जन्म

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१ ॥ ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात ॥२३॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः॥ खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्याविक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्त्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिरस्सुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥ अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥

ग्रहण किया, चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥ २४ ॥ उसका पुत्र रम्भ, रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जो कि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजा हुआ ॥२५॥ करन्धमके पुत्र अविक्षित, अविक्षितकेमरुत्त जो कि चक्रवर्ती हुए, जिनसे अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने यज्ञ कराया था ॥२६॥ इस मरुत्तके यज्ञके समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है। उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके बने हुए शोभायमान थे ॥ २७ ॥ जिनके यज्ञमें सोमपान करके सुरेन्द्र (बहुत) प्रसन्न हुए, अनेक प्रकारकी दक्षिणा पाकर ब्राह्मणोंको अत्यन्त हर्ष हुआ था। इस यज्ञमें मरुद्गण परोसनेवाले और विश्वेदेवागण सभासद् हुए थे ॥ २८ ॥

इन मरुत्तके पुत्र दम, उनके पुत्र राजवर्द्धन, उनके सुत सुधृति, सुधृतिका पुत्र नर ॥२९॥ उनका पुत्र केवल, उससे धुन्धुमान हुए। धुन्धुमानके पुत्र वेगवान, उनके पुत्र बुध, उनके पुत्र तृणविन्दु राजा हुए ॥३०॥ यह राजा अति उत्तमोत्तम गुणविभूषित था। श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उनके गुणोंपर मोहित हो उसके संग हुई, इस अलम्बुषा अप्सराके तृणविन्दुसे कई एक पुत्र और इलविला नाम एक कन्या उत्पन्न हुई ॥३१॥ हे राजन्! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पिताजीसे परम विद्याको प्राप्त होकर इस इलविलाके गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया ॥३२॥ अब तृणविन्दुके पुत्रोंका वृत्तान्त सुनो। विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु ये तीन तृण विन्दुके पुत्र हुए उनमें विशाल ही वंशकारी राजा हुआ

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान्वेगवांस्ततः ॥ बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥३०॥ तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥ वराऽप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥३२॥ विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ॥ तत्पुत्रात् संयमादासीत् कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥ कृशाश्वात् सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे कारूषकादिवंशानुकीर्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और उसने वैशाली नामक एक पुरी भी बनायी ॥३३॥ इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और धूम्राक्षका पुत्र संयम हुआ संयमके देवल और कृशाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥३४॥ उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ, कि जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परमपुरुषकी पूजा कर योगीश्वर लोगोंके समान उत्तम गति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र जन्मेजय हुआ। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्! विशालवंशमें यह राजा गण उत्पन्न हुए। ये सब राजा तृणविन्दुका यश धारण करनेवाले थे ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–मनुसुत नृप शर्य्यातिके, भई सुकन्या एक । तिसरेमें रेखन कथा, वरणौं सहित विवेक ॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! मनुका पुत्र शर्य्याति अति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ । उसने अंगिरागणोंके यज्ञमें दूसरे दिवसका कर्तव्य कर्म उपदेश किया ॥ १ ॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई । एक समय राजा उसको साथ ले वनमें गया, जहां कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥ २ ॥ उस वनमें यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूलपत्तोंको एकत्र करते करते एक स्थानमें गयी और उसने उसी वनके मध्य बँबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेके समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखीं ॥ ३ ॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अति कौतूहल उत्पन्न हुआ, उसने भाग्यप्रेरितके समान हो उसी समय एक कांटा ग्रहण कर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोड़ दिया। हे राजन् ! विद्ध

श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिमानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥१॥ सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ॥ तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥२॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यङ्घ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥ सा दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥४॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥६॥ सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित् कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्गतं शनैः ॥ ८ ॥

होते ही उस बँबईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥ ४ ॥ अतएव राजा शर्य्याति के साथ जो सेना थी, उन सब वीरोंका मल मूत्र रुक गया । यह देखकर राजा शर्य्याति विस्मित हुआ और अपने साथी पुरुषोंसे पूछने लगा ॥ ५ ॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है ? हमको भली भांति जान पड़ता है कि हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके आश्रमको दूषित किया होगा ॥६॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि हे पितः ! मुझसे कुछ अपराध हुआ है । मैंने न जानकर एक कांटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंको वेध डाला है ॥७॥ बेटीके यह वचन सुनकर राजा शर्य्यातिको बड़ा भय हुआ । बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं उनके

निकट जा विविध भांतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥८॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको दे दी। हे राजन्! इस प्रकार राजा शर्याति विपत्तिसे छूटकर मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे साव-धान चित्तसे अपने स्थानको लौट गया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवनऋषिके योग्य चित्तकी जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देकर उनकी सेवा करती थी ॥ १० ॥ कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममेंआये। मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भली भांति उनकी पूजा करके कहा कि आप दोनों बड़े वैद्य हैं, सो कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये ॥ ११ ॥ स्त्रियें जिस रूप और जिस वयसको चाहती हैं वही तुम हमको दे दो। तुम सोमपानरहित हो कभी सोमपान नहीं किया है सो हमसोम यज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः ॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥१२॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥१३॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ॥ ह्रदंप्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविग्रहः ॥१४॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपास्सुवाससः ॥ १५ ॥

पात्र देंगे ॥१२॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाश कर बोले कि अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥१३॥ हे राजन्! इस प्रकार कहनेसे जरासे ग्रस्त है देह जिनका, नसें दिखायी देती हैं, कुप्यारे पके हुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देववैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे ॥ १४ ॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले रमणीप्रियतीन पुरुष निकले। तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पड़ी हुई थीं, कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे, तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा

एक अपूर्व ही भावको धारण किये हुई थी॥१५॥ तीनों सूर्यके समान तेजस्वी, समान रूप और समान अवस्थावाले देख पतिव्रता सुकन्याको अति विस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं पहचान सकी कि हमारे पति कौनसे हैं ! इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरण गयी अर्थात् उसने यह प्रार्थना की कि आपलोग पृथक होकर हमारे पतिको हमें दिखादें * ॥१६॥ सुकन्याका पतिव्रतदेख अश्विनीकुमारोंको सन्तोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवनऋषिको दे दिया । इसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे संभाषण कर वह दोनों

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥

अश्विनीकुमार विमानपरबैठ स्वर्गको चले गये ॥१७॥ हे राजन् ! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि कन्याके निकट सूर्यके समान एक तेजस्वीपुरुष बैठे हुएहैं ॥ १८ ॥ सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठी और उनके चरण छुए । राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वे प्रसन्न न हुए कि हम जराजीर्णच्यवन ऋषिको अपनी कन्या दे गये थे, वे आश्रममें नहीं हैं बरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवा पुरुष बैठा हुआ है, यह सोचकर उनको बड़ी शंका हुई । तब वह

* शङ्का–सुकन्या अपने सम्मुख एक सरीखे ३ पुरुष देखके अश्विनीकुमारकी शरणमें कैसे गयीं ? क्योंकि वे तो तीनों एक ठौररहे थे, दीपक दीपकसे जलावे तो यह कैसे जान पड़ेगा कि यह तिलके तेलका है, यह अलसीके तेलका है, यह घीका दीपक है, ऐसे ही वे तीनों एक रूप थे फिर उसने अश्विनीकुमारको कैसे पहिचाना ?

उत्तर–सुकन्याने अपने मनमें अश्विनीकुमारका ध्यान किया था और उन दोनों देवताओंके सम्मुख वह नहीं गयी थी, उसने अश्विनीकुमारका ध्यान करके वारंवार उनकी ही प्रार्थना की कि हे महाराज ! हे दीनवत्सल !! हे कृपासिन्धो !! आप दोनों जन मेरे पिताके समान हो किसी प्रकार कृपा करके मेरे पतिको मुझे दिखा दो । जब अश्विनीकुमारकी इस प्रकार विनय की तो उसका पति उसको मिल गया ॥

अप्रसन्न होकर अपनी बेटीसे बोले ॥१९॥ कि यह क्या करनेकी वासना की है ? अरी असत्यन ! तेरे पति लोगोंके नमस्कार करने योग्य हैं, उनको तूने क्यों ठगा ? जराग्रस्त होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न नहीं हुई, इससे ही इस पथिकको उपपति बनाकर तू भजती है ? ॥२०॥ अरे कुलकलंकिनी ! तू अति उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है, ऐसी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया । हा ! हमारे कुलको दूषित किया । निर्लज्ज होकर उपपतिकी पूजा करती है । पिता और पतिके कुलको तूने एकवार ही डुबो दिया ॥२१॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी—हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं,यही भृगुनंदन च्यवनजी हैं ॥ २२ ॥ फिर जिस प्रकारसे

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदप त्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ॥ सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत् पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥

इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी, वह भी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया । यह सुन राजा शर्याति विस्मित और प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी सुकन्याको हृदयसे लगाया ॥२३॥ हे राजन् ! इसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजासे सोमयज्ञ कराके सोम पीनेके योग्य न होनेपर भी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्काल ही बोध हो जाता है, अतः उसने यह देख च्यवन ऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लिया था, परंतु भृगुनंदनने अपने ब्रह्मतेजसे वज्रसहित इन्द्रका हाथ स्तंभित कर दिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहर थे तथापि तबसे सब देवताओंने उनको

यज्ञसोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥ २६ ॥ इन शर्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिसेन । इन तीनोंमें आनर्तके रेवत नाम एक पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाकर उसमें विराजमान हो आनर्त्तादि देशोंका पालन करता था ॥ २८ ॥ उसके शत पुत्र जन्मे थे, उनमें ककुद्मी बड़ा और गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्याको साथ ले उसके लिये वर ढूँढनेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ २९ ॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना हो रहा था, इसलिये अवसर न पाकर ककुद्मी वहां क्षण कालतक ठहरा और फिर अवकाश पाकर प्रणाम

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन् पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोऽभियातस्त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ॥ भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याज नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥

करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि हे राजन् ! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, इन सबको कालने संहार कर डाला, इस समय उनके बेटे पोते और नातियोंका गोत्र व नाममात्र भी नहीं सुना जाता ॥ ३२ ॥ मूल बात यह है कि तुमको यहां सत्ताईस चौकड़ी युग बीत गये इसलिये जाओ देवदेवके अंशसे जो महाबलवान् बलदेव हैं, उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जिनके कहने सुननेसे पुण्य होता है वह भूतभावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले चुके हैं इस प्रकारसे आज्ञा पाकर ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

भ्राता लोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोड़कर सब दिशामें भाग गये थे इसके पीछे दूषणरहित अंगवालीअपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने दे दिया और आप तप करनेके लियेनारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चला गया ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीका नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा—चौथे मनुसुत नभगको, कहौं सहित विस्तार । अम्बरीष ताके तनय, भये भक्त—आधार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि नभगका पुत्र नाभाग हुआ । इस नाभागने जब बहुत कालतक गुरुकुलमें वास किया तब उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्रातालोगोंने बांट करनेके समय इसकेलिये पिताके धनका अंश नहीं रखा ॥ १ ॥ जब नाभाग ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताको ही उसके भागमें रखा; अर्थात् जब नाभागने आकर भाइयोंसे

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे शर्यात्यन्वयनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरःकविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां म आर्यास्तनाऽभाङ्क्षुर्मापुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥

पूछा कि तुमने हमारे लिये क्या रखा है ? तब भाइयोंने कहा कि हमने तुम्हारे अर्थ पिताको ही अंशस्वरूप कर रखा है इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो । यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जाकर कहा कि हे पितः हमारे बड़े भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है ? तब पिताजी बोले कि हे वत्स ! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो; क्योंकि हम भागके समान भोगने योग्य वस्तु नहीं हैं ॥ २ ॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देते हैं । हे विद्वन् ! अंगिरागोत्री मुनिलोग यज्ञ कर रहे हैं, वे लोग यद्यपि सुबुद्धिमान हैं, तो भी वे विहित षड्यज्ञ उपस्थित होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे अनुष्ठान करनेमें मोहित होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥जाकर उन महात्माओंको विश्वेदेव सम्बन्धी दो सूक्त पढ़ाओ ।

कर्मके समाप्त होनेपर जब वे स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका बचा हुआ धन अवश्य तुमको दे देंगे, जाओ विलम्ब न करो, इसी समय उनके निकट चले जाओ। हे राजन्! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुनातो उन्होंने ऐसा ही किया और वह सब अंगिरा भी अपने यज्ञका बचा हुआ धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥५॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करनेके लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेमें ही श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आकर कहा कि यज्ञभूमिमें रखा हुआ यह सब धन हमारा है ॥६॥ तब नाभाग बोले कि यह कैसे? यह धन तो हमको अभी ही ऋषिलोग दे गये हैं। नाभागके यह वचन सुन उस पुरुषने कहा "भाई! झगड़ा क्यों करते हो" तुम जाकर अपने पितासे तो पूछो। उस पुरुषके यह वचन सुनकरनाभागने अपने पिताके निकट जाकर यथाविधिसे पूछा

दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान् यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥६॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥ ७ ॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥

॥ ७ ॥ यह सुन उसके पिता नाभगने कहा कि वत्स! दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषि लोगोंने उन सबको भगवान् रुद्रकाभाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सब ही कुछ पाने योग्य हैं फिर यज्ञमें बचे हुएका तो बात ही क्या है? ॥८॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आकर शिर नवाकर बोले कि हे ईश्वर! यज्ञभूमिमें पड़े हुए सब धनके आप अधिकारी हैं, यह बात हमसे हमारे पिताने कही है, इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा—"तुम्हारे पिताने धर्मवाक्य कहा है और तुम भी धर्मवाक्य कहते हो, इसलिये तुम मन्त्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देते हैं ॥ १० ॥ और यज्ञका बचा हुआ जो धन है इसको भी तुम ग्रहण करो, क्योंकि हमने यह तुमको दिया"

हे राजन्! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥ जो पुरुष भलीभाँतिसे सावधान हो सन्ध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा वह इसके प्रभावसे विद्वान् और मन्त्रका जाननेवाला होकर यथेष्ट धन पावेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित! इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मशाप कहीं भी निष्फल नहीं होता, वह भी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा) की बनायी कृत्यारूप अग्नि भी जिनको स्पर्श न कर सकी, इसलिये वे परमभक्त और अतिशय बुद्धिमान हुए ॥ १३ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ब्रह्मनिर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वह भी राजा अम्बरीषको दण्ड देनेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥१४॥ श्रीशुकदेवजी बोले

य एतत् संस्मरेत् प्रातस्सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ट्रवत् स्मृतम् ॥ १७ ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥

कि हे महाभाग! राजा अम्बरीष सप्त द्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पद् और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्यको पाकर यद्यपि ये सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नके समान झूठे समझने लगा, क्योंकि विभवके नाशका न जाननेवाला पुरुष ही विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥१५॥१६॥ और यह राजा भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को प्राप्त हुआ था, जिससे यह विश्व अति तुच्छ जान पड़ता है ॥१७॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अर्पण कर दिया था और अपने वचनोंको वैकुण्ठनाथके गुणवर्णनमें लगाया था, अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगा दिये थे, अपने कानोंको अच्युत

सत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगा दिया था ॥१८॥ नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रक्खा था, अगसंगको भगवत्सेवकोंके शरीरस्पर्शमें,
नासिकाको भगवच्चरणकमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है इसके ग्रहणमें और रसनाको भगवान्के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद
चखनेमें तत्पर कर रक्खा था और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियत कर रक्खे थे। इनका मस्तक हृषीकेशके चरणोंमें प्रणाम करनेके
लिये ही झुकता था, चन्दनादिकी सेवा दासभावसे करता था, कुछ विषयकी इच्छासे नहीं। उत्तमश्लोक भगवान्के जन जिस प्रकार इन
वस्तुओंमें प्रीति रखते थे ॥ १९ ॥ २० ॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्को अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त
ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥ २१ ॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवानकी आराधनामें सदा

घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तद
मुकुन्दलिङ्गालय दर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
पिंते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ॥ सर्वात्मभावं
यथोत्तमश्लोकजनाश्रयाः रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ महाविभूत्योपचिताङ्ग
विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं सदस्या
दक्षिणैः तत्तैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः मनुजैरमरप्रियः ॥
ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥

लगा रहता था। इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगाया था और यह सब यज्ञ वसिष्ठ, असित, गौतमादि ऋषियोंके द्वारा ही विस्ता
रित होते थे। हे राजन्! धन्वदेश (मारवाड़) में जहाँ सरस्वतीजी बहती थीं वहाँपर राजा अम्बरीषने इन यज्ञोंको किया था ॥ २२ ॥ उनके
यज्ञमें सदस्य और ऋत्विगादि वसन भूषणादि द्वारा सज धजकर देवतालोगोंके समान रूपवाले दिखायी देते थे। आश्चर्य देखनेकी
उत्कंठासे उन सभासदोंके पलक तनक भी नहीं लगते थे, इसलिये वे सब प्रकारसे देवता लोगोंके समान हो जाते थे ॥ २३ ॥ और
राजा अम्बरीषकी प्रजा भी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखती थी, केवल भगवच्चरित्र श्रवण और कीर्तन करनेमें लगी रहती

थी, फिर इनसे उसके सम्बन्धमें क्या कहा जाय ? बस, जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखता है और स्वरूपसुखके द्वारा
जो अतिशय आनन्द पाता है इससे सिद्धलोगोंको भी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वे सब इस पुरुषको आनन्द (हर्ष) नहीं उपजा
सके ॥ २४ ॥ २५ ॥ अधिक करके इस प्रकारराजा अंबरीषने स्त्री. पुत्र, मित्र, हाथी, घोड़े, रथादि व अक्षय रत्न भूषणादि व अनंत कोषको
भी वृथा समझा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि राजा अंबरीष इस प्रकार विरागी हो गया था तो भी अपने शत्रुओंके जीतनेको
असमर्थ नहीं हुआ, भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्तिभावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय हो और भक्तोंकी रक्षा हो ऐसा

समर्द्धयन्ति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ॥ दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥ स इत्थं
भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपो
त्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं
प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्य
शीलया॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः
कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा ॥ अभिषिच्याम्बराकल्पैर्ग
न्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि
भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयश्शीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥

सुदर्शन चक्र उनको दे दिया था ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस राजा अंबरीषने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रजीकी पूजा करनेकी इच्छासे अपनी
भार्या जो कि शीलतामें अपने ही समान थी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण किया ॥ २९ ॥ एक
समयमथुरामें जाकर व्रतके अंतमें, जब कार्तिक महीनेमें तीन दिन उपवास किया था, कालिंदीमें स्नान कर मधुवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी
पूजा की ॥ ३० ॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी संपत्तिसे वस्त्र, आभूषण, गंध, फूल, मालाके द्वारा एकाग्र चित्तसे मुरली
मनोहरकी पूजा करने लगे। फिर बड़े भाग्यवाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ जिनके सींग और

खुर चांदीसे मढ़े थे, शरीरमें शोभायमान वस्त्र पहन रही थी दुधारी थीं, सुशीलता वयस, रूप और वत्सादि श्रेष्ठ सम्पत्तियोंसे भूषित थीं, ऐसी छःकरोड़ (६०००००००) गायें राजा अम्बरीषने साधु ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे दीं ॥ ३३ ॥ इसके पीछे ब्राह्मण लोगोंको षड्रस भोजन कराकर उनकी आज्ञा ले आप भी व्रतपारणा करनेको तत्पर हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा अम्बरीष व्रतपारणा करनेको जाता ही था कि इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भांति उन राजा अम्बरीषके स्थानमें आये ॥ ३५ ॥ दुर्वासा मुनिको देखते ही राजा अम्बरीषने व्रतपारणा नहीं की और उसी समय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भलीभांतिसे आदर सम्मान किया।

प्राहिणोत साधुविप्रेभ्यो गृहेषुन्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद् ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥

फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खड़ा होकर भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासा ऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करनेको यमुनाके तटपर गये। इसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्न कालकी क्रिया करने गये तो वह बहुत विलम्ब होनेपरभी वहां नहीं गये। इस ओर द्वादशीका केवल अर्द्ध मुहूर्त्त शेष रह गया

* शङ्का–राजा अम्बरीषने (६००००००००) साठ करोड़ गायका दान किया है, सो हमको बड़ा सन्देह है कि, साठ करोड़ गायें और साठ बछड़े और बछिया और साठ करोड़ दानके लेनेवाले ब्राह्मण क्योंकर इकट्ठे हो गये?

उत्तर–ज्योतिषशास्त्रमें अर्बुदकी पांच सहस्रकी संज्ञा लिखी है और एक अर्बुदको दश कोटि लिखा है "प्रायश्चित्तकदम्ब" तथा "विधानपरिजातक" जिनमें एक एक लाख श्लोक हैं इनके सिवाय और भी जो धर्मशास्त्रके ग्रन्थ हैं उनमें भी एक अर्बुद ५००० सहस्रकी ही संज्ञा है इस प्रमाणसे जाना जाता है कि, पांच हजार गाय राजा अम्बरीषने दान की थी ॥

और इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतका फल नष्ट हो जायगा, ऐसा समझकर धर्मज्ञ अम्बरीष राजा धर्म-संकटमें पड़ ब्राह्मणों सहित विचार करने लगे ॥३८॥ राजाने कहा कि जो दोषब्राह्मणके अतिक्रममें है, द्वादशी पारणा न करनेसे भी वही दोष है,अब क्या करें ? क्या करनेसे मेरा भला होगा ? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सके ? ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय किया कि केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जाय तो ठीक है, क्योंकि केवल जलपान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है ॥४०॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! राजा अम्बरीषने इस प्रकार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरण कर जैसे ही चरणामृत पिया वैसे ही द्विजागमन देखा ॥ ४१ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आ

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत ॥ ३९ ॥ अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणाम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाऽच्युतम् प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव स ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाऽभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥

पहुँचे । यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकाशित किया और हाथ जोड़ उनके सम्मुख खड़े हुए तो भी इस राजा अम्बरीषका आचरण दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जानलिया ॥ ४२ ॥ इसलिये क्रोधसे कम्पित [illegible] हो भौंहें टेढ़ी कर हाथ जोड़े खड़े हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगेकि ॥ ४३ ॥ अहो ! यह पुरुष कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्ति[illegible] मदमें [illegible] उन्मत्त हो रहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥ ४४ ॥ हम इसके आश्रममें [illegible] आये हैं [illegible] आप ही पहुनाई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया, परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथम ही यह [illegible] [illegible]

दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार कहते कहते क्रोधित हो मस्तकसे एक जटा उखाड़कर उस राजाके सामने कालाग्निके समान एक कृत्या बनायी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाशपूर्वक प्रकट हुई। राजा अम्बरीष उसको अपने सम्मुख आती हुई देखकर भी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥ ४७ ॥ राजा अम्बरीष विष्णु भगवान्के परमभक्त थे, अतः उन्होंने अपने भक्तपर यह विपत्ति पड़ी देख अपने चक्रको आज्ञा दी। परमपुरुष भगवान्की आज्ञा पाते ही वह अपने तेजसे इस प्रकार कृत्याको भस्म करने लगा, जिस प्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करे ॥ ४८ ॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारी ही ओरको चला आता है इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथाङ्गं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् ॥ तथाऽषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथस्स यदा कुतश्चित् सन्त्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिञ्चं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥

त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जैसे लपटयुक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौड़ती है, वैसे ही भगवान्का चक्र इन ऋषिके पीछे पीछे दौड़ा। दुर्वासा मुनि चक्रको इस प्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छा कर महावेगसे दौड़ने लगे ॥ ५० ॥ दौड़ते २ दिक्, आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपालसहित सब लोकोंमें और स्वर्गमें भी दुर्वासा गये परन्तु जहाँ वे जाते थे उस उस स्थानमें दुर्धर्ष चक्रभी उनके पीछे लगाही चला जाता था ॥ ५१ ॥ इस प्रकार शरण ढूंढते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहीं भी अपने किसी रक्षकको नहीं पा सके, तब त्रसित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकट गये और कातरता प्रकाश करके बोले

कि हे भगवन् ! हे आत्मयोने ! ! इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि परार्द्धनामक कालक्रीडाके अन्तमें
कालस्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वे जब सबके दग्ध करनेकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढ़ी हो जाती है, ब्रह्माण्ड समेत हमारा
यह स्थान भी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा,) शिव, दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति, सुरपति इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर
जिस प्रकारसे लोगोंका हित हो उसी प्रकार अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं, सो तुमने उनके ही भक्तसे द्रोह किया है इसलिये
तुम्हारी रक्षा करनेका सामर्थ्य हममें नहीं है॥५३॥ ॥५४॥ हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने भी शरण नहीं दी, तब दुर्वासा कैलासके शिखरपर गये
और विष्णुचक्रसे अतिसन्तापित होनेके कारण कातरता प्रकट कर भगवान् महादेवजीकी शरण हुए ॥५५॥ महादेवजी बोले कि हे तात ! उन

ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत् क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो
यस्य तिरोभविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्ष भृगुप्रधानाः प्रजेश भूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमप्रपन्ना
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥ प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलास
वासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ॥ भवन्ति काले न
भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपान्तरतमो
देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया
ऽऽवृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥

महान् परमेश्वरके सम्मुख हमारी प्रभुता कुछ नहीं चलेगी । उनसे ब्रह्मादिरूपका उपाधिभूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इस प्रकारसे
दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं, लोकपालाभिमानी हम हजार हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं । हे वत्स !
सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल (जिनके अंतःकरणका अन्धकार दूर होगया था) देवल, धर्म, आसुरि ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ और
मरीचि आदि और भी सिद्धगण सर्वज्ञ होकर भी जिनकी मायाको नहीं जान सकते, वरन् स्वयं उनकी मायासे घिरे हुए हैं, उन्हीं
विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है, सो हमलोग किसी भांति इसे नहीं सह सकते, इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्‌की शरण

जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीने भी शरणमें न रखा और कोरा जवाब दे दिया तब वह भगवान्के धाम वैकुण्ठको गये कि जहां भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे ॥ ६० ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्के चरणोंपर गिर पड़े और कहने लगे कि हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंके भय हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने बड़ा भारी अपराध किया है । हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आपके परमप्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रिय भक्तका अपराध किया है । सो हे प्रभो ! अब इस अपराधका आप प्रायश्चित बताइये कि जिससे मेरा छुटकारा हो । हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सकता यह बात ठीक नहीं, क्योंकि जिनका नाम लेते ही नरकमें

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ स दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाऽघ भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥६२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥ ६४ ॥ ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ॥ वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥

पड़ा हुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त हो जाता है, उसके लिये असाध्य क्या है ? ॥ ६२ ॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश हैं । भक्तजन हमारे प्रिय हैं इससे भक्त साधुगण हमारे हृदयको ग्रसे हुए हैं ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसे ही होती है उन सब साधुपुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और लक्ष्मीको भी अत्यन्त प्यार नहीं करते ॥६४॥ जो पुरुषगण स्त्री, पुत्र, गृह, तन, धन, प्राण और इस लोक व परलोक सबको छोड़कर हमारी शरणमें आयेहैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित हो सकते हैं ? ॥ ६५ ॥ हे मुनिमहाराज ! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने अपने हृदयको

बांध, हमको अपने वश किये हुए हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको अपने वश कर लेती है ॥६६॥ और वह भक्तगण साधुसेवाद्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सम्मुख आनेपर भी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, किन्तु वे साधुसेवासे ही परितृप्त हो जाते हैं, इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी क्या सम्भावना है ? ॥ ६७ ॥ और जिन जिन पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण कर दिया है, हम उनके हृदयको जानते हैं, वे हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते और हम भी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ६८ ॥ इसलिये हे मुने ! जिससे कि यह तुम्हें संकट उत्पन्न हुआ है उसके ही निकट तुम विना विलम्ब किये चले जाओ । हे मुने क्या तुम यह नहीं जानते हो कि साधु लोगोंके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करनेवालेका

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तम् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥६९॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥ त एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धे ऽम्बरीषोपाख्याने दुर्वासोऽनुतापशमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टो दुर्वासाश्च क्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

ही अमंगल करता है ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली ! तो हैं परन्तु दुर्विनीत स्वामीके लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली हैं परन्तु इस समय अपनी तपोविद्याको मनमें लाकर इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है ॥ ७० ॥ इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ जिससे तुम्हारा मंगल हो, उसी पृथ्वीपतिसे क्षमा मांगनेका यत्न करो तब इस उत्पातकी शांति होगी ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा-अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिरनाय । ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पञ्चम अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

कि हे कुरुकुलभूषण ! चक्रकी अग्निसे संतापित हुए दुर्वासा ऋषि विष्णु भगवानकी आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहां गये और दुःखित हो इस राजर्षिके चरण पकड़नेको झपटे * ॥ १ ॥ यह जब चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जित हुए और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देखकर स्वयं दुःखित होते हुए भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥२॥ राजा अम्बरीष बोले कि हे सुदर्शन ! तुम ही भगवान् सूर्य हो और तुम ही सब नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा हो, तुम ही जल, तुम ही भूमि, तुम ही आकाश, तुम ही पवन, तुम ही

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ॥ अस्तावीत् तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवन् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥

मात्रा और तुम ही सब इंद्रिय हो अर्थात् तुम्हारी ही शक्तिसे अग्नि आदि अपना अपना कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है । हे अच्युतप्रिय ! तुम्हारी हजार धार हैं । हे सर्वघातिन् ! हे पृथ्वीनाथ ! इस ब्राह्मणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन ! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है, क्योंकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक करके तुम ही लोकपाल और ईश्वरका परम सामर्थ्य हो । हे चक्र ! तुम्हारा नाम सुदर्शन है, इसका अर्थ भगवान्‌के शोभायमानका दर्शन, भग

* शङ्का–दुर्वासा मुनि भगवान्‌के चक्रके तेजसे भस्म होनेको प्रस्तुत थे, तो फिर उन्होंने अम्बरीषके चरण कैसे ग्रहण किये ? यह तो बड़ा अयोग्य कर्म है, दुर्वासाऋषि कुछ कलियुगी ब्राह्मण तो थे नहीं, जो कि देहके सुखके लिये नीच कर्म करने लगते, वह तो महाप्रतापी और परम तेजस्वी ब्राह्मण थे, फिर इन्होंने नीच कर्म क्यों किया ।

उत्तर–दशसहस्र (१००००) ब्राह्मणोंको साथ लिये दुर्वासाऋषि बड़े अभिमान सहित त्रिलोकीमें घूमते फिरा करते थे और त्रिलोकीके मनुष्योंको शाप देदेकर बहुत दुःखी कर दिया । जो कोई किंचिन्मात्र भी अपराध करता था उसको ऐसा भारीशाप देते थे कि वह बहुत कालतक कष्ट पाता था । तीनों लोकोंको कंपायमान देखकर भगवान् महादेवने दुर्वासा ऋषिका अभिमान भञ्जन करनेके लिये यह यत्न करके त्रिलोकीको सुखी किया, क्योंकि दुर्वासाऋषिके चित्तमें अम्बरीष का चरित्र खटकने लगा, यह विचारके क्रोध करने लगे, इसलिये मोहको प्राप्त हुए दुर्वासा ऋषिको अंबरीषके चरणोंको ग्रहण करना पड़ा ॥

वान्के दर्शनसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम ही सर्वात्मा हो ॥ ५ ॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो,क्योंकि अखिल धर्मके सेतु स्वरूप हो इसलिये तुम ही अधर्म करते हुए असुर लोगोंको धूमकेतु अर्थात दाहक हो तुम्हारा तेजसमूह अति उज्ज्वल है। तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनके समान वेगवान् हो, तुम्हारी स्तुति करनेका सामर्थ्य किसमें है। इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल 'नमः' शब्दका प्रयोग करता हूं ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होता है और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है। हे वाणीनाथ ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है। सत्, असत, पर, अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं, क्योंकि सूर्यादिका प्रकाश भी तुमसे ही होता है ॥ ७ ॥ हे अनंत अनञ्जन ! भगवानके करसे जब तुम छोड़े जाते हो; तब दैत्य दानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें;

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥ यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥११॥

पेट, जाँघें, चरण और कन्धोंको काटते हुए समरमें विराजमान होते हो ॥ ८ ॥ हे जगत्त्रातः ! तुम ऐसे गुणोंसे युक्त हो कि भगवान् गदाधरने खल पुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है, इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको तुम इस विपत्तिमें पड़े हुए ब्राह्मणका मंगल करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा बड़ा भारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि हमारे किसी दान करनेसे वा किसी यज्ञ करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो, यदि मैंने अपने धर्मका भलीभांतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों तो मेरी यही प्रार्थना है कि उस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कंटक हो जायँ ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु

सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र संतापरहित हो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब राजा अम्बरीषने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान्का सुदर्शन चक्र, जो ब्राह्मणश्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था, इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शांत हो गया ॥ १२ ॥ इसलिये दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापमे छुटाकारा पाकर कल्याणवान् हुए। फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाद दे अनेक अनेक प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥ दुर्वासाजी बोले अहो ! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी। हे राजन् ! यद्यपि हमने अपराध किया तो भी तुमने हमारी भलाई ही चाही ॥ १४ ॥ अथवा जिन पुरुषोंने सात्वतपति भगवान् को अपने वश किया है उन महात्माको

श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः संग्रहीतो भगवान् सात्त्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाऽऽदृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥

साधुपुरुषोंके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है ? ॥ १५ ॥ जिनका नाम श्रवण करते ही पुरुष निर्मल हो जाता है, तीर्थपद भगवान्के उन दासोंसे कौनसा कार्य बच रहा है ? ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम अतिकरुणात्मा हो, हमपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया, क्योंकि हमारे अपराधकी ओर न निहारकर हमारे प्राणोंकी रक्षाकी ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित ! अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था, । इस राजाने फिर भी इनके आनेको प्रार्थना की और वारंवार इनके चरणकमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ आदरसहित आये हुए सर्वाभिलाषकी पूर्ण करनेवाली पहुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अति सन्तोष उत्पन्न हुआ। दुर्वासाजी आहार

करनेके उपरांत राजासे बोले कि हे महाराज ! तुम भी भोजन करो ॥ १९ ॥ हे महीपाल ! तुम परमभागवत हो । हमारे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ, तुम्हारे दर्शन करने और तुम्हारे संभाषण करनेसे, जिससे आत्मामें बुद्धि होती है ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुतही प्रीति उत्पन्न हुई है ॥२०॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियें इस निर्मल कर्मको सदा गावेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परम पवित्र कीर्तिको गावेंगे ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! महर्षि दुर्वासाजी सन्तुष्ट मनसे इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्त्तालाप करके आकाशमार्गसे हो ब्रह्मलोकको चले गये ॥२२॥ परन्तु वह गमन करके जबतक न आये थे, तबतक एक वर्ष

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ॥ ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥२२॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षी राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४ ॥ एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिञ्च्यान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥

समयतकके बीतनेपर भी राजा अंबरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जल ही पीकर रहे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये तब राजा अंबरीषने ब्राह्मणभोजनसे जो पवित्र हुआ आहार सो भोजन किया और ऋषिकी विपत्तिसे उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादिरूप वीर्य और भगवान्के प्रभावको आधार मानने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन ! अंबरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण थे, वह अपने क्रियाकर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवके प्रति परमभक्ति दिखलाते थे, उसी भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके सम्मुख सदा प्राप्त रहते थे, परन्तु यह उनको नरकके समान जानते थे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत यह वीर अपने समान वीर्यवान् पुत्रको राजभार सौंप वनमें चला गया । जब कि इस राजर्षिने अपना मन व आत्मा भगवान्में लगा दिया था, इस

लिये उनका गुणप्रवाह विध्वंस हो गया, अर्थात् आवागमनसे इनका छुटकारा हो गया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! राजा अंबरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे और ध्यान करेंगे, सो भगवान्के भक्त होंगे और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन महाराज अंबरीषके चरित्रको गान करेंगे वे समस्त भगवान् विष्णुके प्रसादसे सरलतापूर्वक मुक्तिपदवीको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां मम्बरीषचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास । मान्धाता इक्ष्वाकुकुल, सौभरि—ऋषी विलास ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! राजा अंबरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें विरूपका पुत्र पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥ रथीतरके पुत्र व कन्या कुछ नहीं हुआ अर्थात वह निःसन्तान था । जब इसने सन्तानके लिये

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽम्बरीषोपाख्याने दुर्वासउपचरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमान् शंभुरम्बरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ॥ अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञ इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥

महर्षि अङ्गिराजीसे प्रार्थना की तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न करदिये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुए थे, तो भी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण आंगिरस नामसे विख्यात हुए । अधिक करके इनके क्षेत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सन्तानमें मुख्य थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे; इसलिये उनका वंश नहीं हुआ । करूषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है । इक्ष्वाकुका वंश बहुत बड़ा है इसलिये पहले नहीं कहा, अबकहते हैंः—छींकें लेते हुए मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए । इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥ इन शत पुत्रोंमें पचीस जन विन्ध्याचल और हिमालय पर्व-

तके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्तके सम्मुख समुद्रतक एक एक मण्डलके राजा हुए। इसी प्रकार पश्चिममें भी इनमेंसे पचीस पुत्र एक एक मण्डलके राजा हुए, परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठतीन पुत्र और दक्षिण उत्तरादि भागमें और पुत्रगण राजसिंहासनपर बैठे ॥५॥ एक दिनराजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलाकर कहा—हे वत्स! शीघ्र वनमेंजाकर श्राद्धके लिये पवित्र मांस लाओ॥ ६ ॥ विकुक्षि "बहुत अच्छा" कह वनमें चला गया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा। इसके उपरांत जब विकुक्षि थककर भूखा हो गया तब इसने भूलकर मारे हुए पशुओंमेंसे एक खरहे (खरगोश) का मांस भूनकर खा लिया॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट मांस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको दे दिया। इक्ष्वाकु राजाने उस मांसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया।

स एकदाऽष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत्॥मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम्॥६॥तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान्॥श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः॥७॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम्॥८॥ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः॥ देशान्निस्सारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा॥९॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन्॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम्॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम्॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः॥ ११ ॥

तब वसिष्ठजीने कहा कि यह मांस दूषित हो गया, इसलिये श्राद्धकर्मके योग्य नहीं है॥ ८ ॥ जब महर्षि वसिष्ठजीने सब व्योरा भलीभांति कह सुनाया तब राजाने अपने पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया. क्योंकि श्राद्धके योग्य मांसका प्रथम भाग ग्रहण कर लेनेसे उसका सदाचार छूट गया था ॥९॥ इसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्मज्ञानका विचार करने लगे। फिर राज्यभोगमे विरागी हो गये और योगके द्वारा शरीरको छोड़ परमतत्त्वको प्राप्त हुए॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये तब विकुक्षि अपने देशमें आकर शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहण कर उसको पालने लगा। इस शशादने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा

की। राजाने शशाका मांस जो खा लिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, यह इन्द्रवाहन नामसे भी विख्यात था और कोई कोई इसको ककुत्स्थ भी कहते हैं जिन कर्मोंके करनेसे इसके यह कई नाम हुए, हम उनको कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥१२॥ पहले समयमें जब दानवोंके साथ देवता लोगोंका विश्वविनाशन संग्राम हो रहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजित हो इस वीरको अपना सहायक बनाया ॥१३॥ इसने कहा कि जो इन्द्र हमारे वाहन बनें तो हम अवश्य दैत्योंका वध करेंगे, यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था। पहले तो इन्द्रने लाजके मारे इस बातको नहीं माना, फिर विश्वात्मा देव देव विष्णुके कहनेसे पुरंजयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए। जब "जब इस प्रकारसे इन्द्रवाहन हुए तब इन पुरंजयका नाम इंद्र

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुःककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोःपुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभूत प्रधनं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभि ययुर्मृधे ॥ १७ ॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥

वाह हुआ ॥ १४ ॥ इसके पीछे राजा पुरंजय बख्तर पहनकर दिव्य धनुष और बहुतसारे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठ पर जा बिराजे। यह देखकर देवतालोग उनकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ फिर महात्मा पुरंजयने परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढ़कर देवता लोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेर लिया ॥ १६ ॥ इसके उपरांत इन पुरंजयके साथ दैत्य लोगोंका घोर संग्राम हुआ। जो दैत्य संग्राममें इनके सम्मुख आया, सबको ही इस नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥ १७ ॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उल्बण बाणोंका उत्पात देख सब बचे बचाये दैत्य पातालको भाग गये ॥ १८ ॥

दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके सहित समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको दे दिया। इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका 'पुरंजय' नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित्! इस पुरञ्जयका पुत्र अनेना था, इसका पुत्र पृथु, उससे विश्वगंधिने जन्म ग्रहण किया उसका पुत्र चन्द्र और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥२०॥ युवनाश्वका पुत्र शावस्त हुआ जिसने शावस्तीपुरी बसायी। इस शावस्तका, पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥२१॥ इस महाबलवान् राजाने उतङ्कऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धुनामक असुरको मार डाला था ॥ २२ ॥ इससे इसका नाम धुन्धुमार हुआ, परन्तु इसके समस्त पुत्र

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदने नास्तत्सुतः पृथुः ॥ विश्वरन्धिस्ततश्चैन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शावस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥ यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥ २२ ॥ धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ॥ युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥२५॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥

धुन्धुकी मुखाग्निसे भस्म हो गये ॥२३॥ केवल तीन बचे थे अर्थात् दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ॥२४॥ इन तीनोंमें दृढाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ। निकुम्भका पुत्र बर्हणाश्व हुआ, उससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ। इस कृशाश्वका पुत्र सेनजित नामक हुआ ॥२५॥ उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। यह युवनाश्व सन्तानरहित था, इसलिये वनको चला गया। इसके सौ १०० स्त्रियां थीं, संतानके न होनेसे वनमें जाकर यह अपनी सब भार्याओंके साथ सदा शोकाकुल रहा करता था; यह देख वनवासी ऋषिलोगोंने राजापर दया

की और पुत्रके लिये सावधान हो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ कराने लगे ॥२६॥ हे राजन् ! अब आश्चर्यकी बात सुनोः—जब कि यज्ञ हो रहा ही था, तभी युवनाश्व एक दिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिये यज्ञशालामें गया। उस समय यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सो रहे थे, तब राजाने उस जलको उठाकर पी लिया कि जो राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मन्त्रसे पढ़कर रखा गया था ❀ ॥२७॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि कलशमें जल नहीं है, इसलिये विस्मित होकर पूछा कि "यह कर्म किसका है ? पुत्रके उत्पन्न करनेवाले जलको कौन पी गया" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञात हुआ कि ईश्वर प्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयं पान कर लिया है। तब "अहो !

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥ दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥ राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वर प्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरिन्तीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥

भाग्य बड़ा बली है, पुरुषका बल किसी कामका नहीं" वाक्य उच्चारण करते हुए ईश्वरको वारंवार नमस्कार करने लगे ॥२९॥ इसके पीछे जब समय पूर्ण हो गया, तब युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर चक्रवर्तिलक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि हा ! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रो रहा है, सो अब क्या पियेगा ? तब देवराज इन्द्र वत्स ! रोओ मत "मां धाता, अर्थात् मुझे पान कर" यह कहा और अपनी अंगुली पीनेको दी इसीलिये इनका नाम 'मान्धाता' हुआ॥३१॥

शङ्का—राजा युवनाश्वने आप उठकर चोरके तुल्य ब्राह्मणोको सोता देखकर यज्ञका जल पी लिया, अनुचरोंके होते हुए यह बालकोंके समान कर्म राजाने क्यों किया ?

उत्तर—पुष्करजीमें राजा युवनाश्व गंगाजीके राजा शन्तनुके वीर्यसे गर्भ देखकर बहुत हँसा, परन्तु गंगाजीने युवनाश्वके अपराधका कुछ ध्यान न किया, और क्षमा किया परन्तु राजाके अपराधको भगवान्ने क्षमा नहीं किया. इसलिये राजाओंमें श्रेष्ठ जो युवनाश्व राजा था उसको माया करके मूर्ख बना दिया और वह जल पिलाकर उसको गर्भ धारण करा दिया कि जैसे तू गर्भ देखकर हँसा था ऐसे ही तेरा गर्भ देखकर लोग हँसेंगे ॥

मान्धाताके पिता युवनाश्व देव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं, बरन् उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की ॥ ३२ ॥ रावणादि चोरगण इस मान्धाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रस्त होते थे, इसलिये इन्द्रने मांधाताका दूसरा नाम 'त्रसदस्यु' रखा था । इसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेला ही सप्तद्वीपोंको पालता था ॥३३॥३४॥ आत्मवान् होकर भी अनेक अनेक दक्षिणा दे अनेक यज्ञ करने लगा, उनसे यज्ञरूपी सर्व देवमय सर्वात्मक सब इंद्रियोंसे परे उन देवताकी पूजा करने लगा ॥३५॥ कि द्रव्य, मंत्र, बलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल ये सब जिसके स्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ हे महाराज

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्त्रसंन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥३४॥ ईजे च यज्ञक्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५ ॥ द्रव्य मन्त्रो विधियज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ॥ धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥३६॥ यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥३७॥ शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः॥पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ॥३८॥ येषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परं तपः ॥ ३९ ॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥ ४० ॥

परीक्षित ! जहांसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहां अस्त हुआ करते हैं, इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥ ३७ ॥ इस राजा मांधाताके शशबिन्दुकी पुत्री इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द ये तीन पुत्र हुए ॥३८॥ इन तीन पुत्रोंकी ५० पचास बहनें थीं, अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास ५० कन्या हुई थीं और वे सब सौभरि ऋषिको ब्याही गयीं ॥३९॥ हे राजन् ! सौभरि यमुनाके जलमें बैठे तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजके मैथुनका आनन्द देखा कि जिससे इनका भी

विवाह करनेमें बड़ा भारी अनुराग हुआ। इस लिये तप करना छोड़ मान्धाताके निकट जाकर अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या मांगी ॥४०॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि हमारी कन्याका स्वयंवर होगा सो जो कन्या तुम्हें वरे उसको तुम लेना यह सुनकर सौभरिने मनमें समझा कि हम जरा (बुढ़ापा) से जीर्ण ही गये हैं और हमारे केश श्वेत हो गये हैं, बड़ी अवस्था हो जानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, इसपर भी हम तपस्वी हैं यही सब जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुए। इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान छलसे हमको लौटा दिया। अच्छा अब हम अपनी चेष्टा ऐसी बनाते हैं कि जिससे मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या? सुरसुन्दरी भी देखकर चाहना कर बैठें। यह सोच विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया इसके उपरान्त तपः प्रभावसे इनका रूप वैसे ही हो गया जैसा

सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जठरोऽयमसंमतः ॥ ४१ ॥ वली पलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ साधयिष्ये तथाऽऽत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तः पुरमृद्धिमत् ॥ वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥ ४३ ॥ तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥ स बह्वृचस्ताभिरपारणीय तपः श्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलाम्भस्सरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महार्हशय्यासनवस्त्र भूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गबन्दिषु ॥ ४६ ॥

कि इन्होंने सोचा था। ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एक समय राजपुत्री प्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अन्तःपुरमें ले गयी। इससे पचासों कन्याओंने इनको अपना पति बनाया ॥ ४३ ॥ हे राजन्! मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बड़ा प्रेम था परन्तु सौभरि ऋषिसे व्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाकर सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि "यह हमारे योग्य वर हैं तुम्हारे योग्य नहीं हैं" बस, इन ऋषिके लिये उनमें बड़ा झगड़ा मचने लगा। तब सौभरि ऋषि बोले कि तुम सब ही हमसे विवाह कर लो ॥४४॥ सौभरि ऋषि तपःसाम र्थ्यसम्पन्न थे, उनके कठिन तपःप्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई और अनेक प्रकारसे वन, उपवन

शोभायमान होने लगे, सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कल्हारके वन फूल उठे। जितने गृह थे, सब दास दासियोंसे भलीभांति शोभायमान हो गये और सब कहीं भ्रमर गुंजार करने लगे, बन्दियोंने मधुर स्वरसे गाना आरंभ किया, वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, बसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोंसहित सदा विहार करने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे राजन्! सौभरिका गृहस्थाश्रम देखकर सात द्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अति विस्मित हो गये। उन्होंने अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोड़ दिया ॥ ४७ ॥ सौभरि ऋषि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रहकर भोग विलासके सुख भोगने लगे परन्तु तो भी उनको किसी प्रकार से तृप्ति नहीं हुई, क्योंकि जिस प्रकार घीकी बूंदें गिरनेसे अग्नि बढ़ती ही है, घटती नहीं ॥ ४८ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभरि

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः॥ विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियाऽन्वितम् ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ॥ अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात् प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥ सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥ ५१ ॥

ऋषि एकान्तमें बैठ अपने आपकी चिन्ता करने लगे। तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे, जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४९ ॥ इसलिये अछताय पछतायकर आप ही आप बोले कि हाय! हम साधुचरित्रव्रत और तपस्वी थे, हमारा यह नाश तो देखो कि हमने जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्यारत्न खो दिया ॥ ५० ॥ मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग करें और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना भी उनका आवश्यकीय कार्य है, अकेले निर्जन वनमें भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है। जो कहीं प्रसंग आ जाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये॥५१॥

हम अकेले जलमें तप कर रहे थे, वहां मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले (५०) पचास स्त्रियां मिलीं और एक एक स्त्रीके गर्भसे सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए, कि जिससे सब पांच हजार हुए तो भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अन्त नहीं पाते, क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गयी है, इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझता हूं ॥५२॥ हे राजन् ! जब सौभरि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रम में वास करते करते विरक्त हुए तब संग छोड़नेको वानप्रस्थ धर्म धारण कर वनको चले गये। उनकी पतिपरायणा सब स्त्रियें उनके संग संग चलीं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानके जाननेवाले यह मुनि जिससे परमात्मा मिलजाय ऐसी तीक्ष्ण तपस्या करके

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ॥ नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२ ॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते म० नवम० इक्ष्वाकुवंशवर्णने सौभर्याख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृत्तो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥ हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥ २ ॥

तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें मिला देते हुए ॥ ५४ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिक गति अर्थात् परब्रह्ममें लीन होते देख उनकी सब स्त्रिये सत्यके प्रभावसे उन्हींके संग गयीं, जैसे अग्निके शान्त हो जानेपर उसकी लपट उसके संग ही बुझ जाती है ॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः॥६॥

दोहा–सप्तम मान्धाता कुलहि, पुरुकुत्स हरिचन्द्र। भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया। अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ, वह मान्धाताके गोत्रमें श्रेष्ठ हुआ ॥ १ ॥ हे राजन् !

उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, ॥ २ ॥ शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गयी विष्णुशक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे अपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया; वह वर यह था कि नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करेंगे, उनको सर्पसे भय नहीं होगा पुरुकुत्सका पुत्र त्रसदस्यु, इनके अनरण्य, ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके हर्यश्व हुए, जिनसे वरुणजीने जन्म ग्रहण किया। वरुणका पुत्र त्रिबन्धन हुआ त्रिबन्धनका पुत्र सत्यव्रत,

तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥ ३ ॥ नागाल्लब्धवरः सर्पा दभयं स्मरतामिदम् ॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत ॥ ४ ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्माद्वरुणोऽथ निबन्धनः ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ॥ ५ ॥ प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥ पातितोऽवाक्छिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात ॥ त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥

जो कि दुःखके हेतु तीन दोषोंके रहनेसे त्रिशंकु नाम हुआ इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि तू चाण्डाल हो जा। इसलिये ये चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे। फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अबतक आकाशमें टिके हुए हैं। देवता लोगोंने अवाक्शिरा होकर स्वर्गसे गिराना चाहा था, परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चन्द्र हुए इन्हीं राजर्षिके निमित्त वसिष्ठ और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आड़ी और बक

* शङ्कु—हरिवंश यह तीन दोष प्रकट हैं " यथा पिताको असंतुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका वध करना, बिना पुरी वस्तुका सेवना " यहां पर इतिहास है कि विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ कराकर इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याका हरण कर लिया था।

(बगला) पक्षी हुए और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था ॥६॥७॥ इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था; इसलिये सदा अनमने रहते थे एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जाकर प्रार्थनाकी कि हे देव ! आप हमें यह वर दें कि हमारे एक पुत्र हो। हे प्रभो! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो हम उसी पुरुषपशुसे आपका यज्ञ करें वरुणजीने कहा कि ऐसा ही होगा ! तब राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन् !

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणंशरणंयातः पुत्रो मे जयतांप्रभो ॥८॥ यदि वीरोमहाराज तेनैवत्वां यजे इति॥तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥९॥ जातस्सुतो ह्यनेनाङ्गमां यजस्वेतिसोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोब्रवीत् ॥ दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति॥११॥जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्॥यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

तुम्हारे पुत्र हो गया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि जिसमें यह तुम्हारा पुत्र ही पशु बने। तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि हे देव ! दश दिन की आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता, इसलिये मैं दश दिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा * ॥१० ॥ हे राजा परीक्षित ! दश दिनके बीतते ही वरुणजी फिर आकर बोले कि अब यज्ञ करो। तब महाराज हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत निकलनेपर यज्ञ किया जायगा ॥११॥ दांत निकलनेपर वरुणजीने आकर कहा कि दांत भी निकल आये अब तो यज्ञ करो। तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि दांत

उत्तर—यहां पर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि "विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणामें सर्वस्व हरण कर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया। यह सुन महर्षि वशिष्ठजी क्रोधित हो विश्वामित्रके पास जाकर यह शाप दिया कि अन्यायाचरण करनेके हेतु "तुम आड़ी पक्षी हो जाओ" विश्वामित्रने बदलेमें यह शाप दिया कि 'तुम बगला हो जाओ' फिर इन दोनोंने परस्पर आड़ी और बगला हो घोर युद्ध किया था"

* शङ्का-राजा हरिश्चन्द्रने सब यज्ञको त्यागकर पुत्रके मांस द्वारा यज्ञ करनेको क्यों विचार किया और वरुण भी ऐसे उत्तम देव उससे बालहत्या ग्रहण करनेको क्यों अंगीकार किया ? इस बातसे जान पड़ता है कि हरिश्चन्द्र और वरुण महापापी हैं।

उत्तर—राजा हरिश्चन्द्र अपने आपको पुत्रहीन जानके मनमें राजनीति विचारकर पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया कि अभी मेरे पुत्र नहीं है, वरुणको लोभ देके जो पुत्र मुझको हो जावेगा तो नहीं मारूंगा पुत्रके लिये झूठ बोलनेका पाप भी नहीं होगा, इसलिये हरिश्चन्द्रने पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया ॥

गिरनेपर यह महापवित्र यज्ञ भलीभांति सम्पूर्ण होगा ॥ १२ ॥ कुछ दिन पीछे रोहितके दांत गिर गये । तब वरुणजी फिर राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन ! हमारे पशुके दांत गिर गये,अब तो यज्ञ अवश्य ही करना चाहिये । हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत गिरकर जबतक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नहीं होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चले गये ॥१३॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आकर बोले कि तुम्हारे पुत्रके दांत दूसरी बार उत्पन्न हो आये,अब तो यज्ञ करो । तब राजर्षि हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि हे वरुणदेव ! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होता है,तब वह पवित्र कहा जाता है सो हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं सो भला हम कैसे यज्ञ कर दें ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित् ! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश हो गया था, उन्होंने पुत्रानुरागके वश यज्ञ करनेके लिये वरुणजीको

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्॥यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ॥ कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाऽऽह वृत्रहा ॥ १९ ॥

जो जो समय बताये,वह वरुणजी उसी समयकी राह देखने लगे ॥१५॥ कि इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात अपनेको पशु बनाकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छा जान गया,इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहण कर वनको चला गया ॥१६॥ इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया, इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बड़ा होगया । इसके पीछे रोहितने सुना कि पिताजीको वरुण देवने पीड़ा दी है, इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परंतु देवराज इंद्रने वहां आकर रोहितको जानेमे रोका ॥ १७ ॥ और कहा कि तीर्थोंकी सेवा करते हुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है, सो तुम ऐसा ही करो । यहां रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास किया था ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दूसरे,तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षमें जब रोहितने फिर पिताजीके पासजानेकी इच्छा की,

उसी समय देवराज इंद्र ब्राह्मणरूपसे उसके निकट आकर इस प्रकारसे कहने लगे-"पुण्यतीर्थोंमें विचरण करो" ॥ १९ ॥ इसलिये रोहित राजकुमारने छः वर्षतक वनमें विचरण किया इस प्रकार जब रोहितको छटा वर्षवनमें रहते बीत गया और पुरीमें आने लगा, तब यह रोहित अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोल ले आये ॥ २० ॥ और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया इसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेधयज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया ॥ २१ ॥ तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदरपीड़ा शांत कर दी इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और आयास्य मुनि सामग हुए ॥ २२ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥ २० ॥ शुनश्शेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ॥ ततः पुरुषमेधेन हरिश्चंद्रो महायशाः ॥ २१ ॥ मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः ॥ विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥ जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ॥ तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रश्शातकौम्भमयं रथम् ॥ २३ ॥ शुनश्शेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽपोऽनिलेन तत् ॥ २५ ॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६ ॥

रथ दिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र उपाख्यानके प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे हे महाराज ! भार्यासहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य, सामर्थ्य और धैर्य देखकर महामुनि ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, इसलिये उन्होंने महाराज हरीश्चन्द्रको अविहत अर्थात् परमज्ञान दिया था तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्नशब्दवाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिलाकर फिर उसको जलके साथ मिलाया इसके उपरांत उस जलको तेजके साथ मिलाकर उस तेजको वायुके साथ मिलाया, फिर पवनको आकाशमें धारण कर उस आकाशमें अहंकारमें मिला दिया, फिर उस अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाकर विषयकी

ओरसे हटाकर ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें ध्यान कर उससे आत्माके आवरणभूत अज्ञानको भस्म कर डाला ॥२५॥२६॥ फिर निर्वाण सुख संपत्तिसे ज्ञानांशको छोड़ मुक्त हो अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ ॥२७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धेभाषाटीकायां हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोध्यायः ॥७॥ दोहा-अष्टम रोहितवंशमें, प्रगटे सगर भुवाल। तिनके सुत ऋषिशापसे, भस्म भये तत्काल ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! रोहितका पुत्र हरित हुआ। इस हरितसे चंपने जन्म लिया जिसने चंपापुरी बसायी। चंपका पुत्र वासुदेव और वासुदेवका पुत्र विजय हुआ ॥१॥ विजयका पुत्र भरुक, उसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया। जब शत्रुओंने

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥२७॥ इति श्रीभाग॰म॰ नवम॰ हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यति ॥ और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्य सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजङ्घान् यवनाञ्छकान् हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥

इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब यह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चला गया ॥२॥ उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ। उनकी स्त्री उनके साथ सती होनेको जाती थी कि महर्षि और्वने उसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया ॥ ३ ॥ रानीकी सौतोंने इसको गर्भवती जानकर हिंसाके वश हो उसके गर्भका नाश करनेको अन्नके सहित गरल (विष) मिलाकर उसे खानेको दे दिया, परंतु वह गर्भ विष देनेसे विनष्ट नहीं हुआ। तब इस गरके संग उत्पन्न होनेसे उस पुत्रका नाम सगर हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज परीक्षित ! यह

* शङ्का-और्वऋषिने राजाकी स्त्री भस्म होती हुई को क्यों रोका? अपने आपको पुत्रवान् क्यों माना कि यह स्त्री भस्म नहीं होगी तो हमारे पुत्र होगा, यह बड़ा सन्देह है। उत्तर-भूत, भविष्य वर्तमानकी बात जाननेवाले जो और्वऋषि थे वह ऐसा जानके कि राजा सगर बड़ा बलवान् होगा और हमारा शिष्य होगा, संसारमें हमारी कीर्ति होगी, लोकमें और शास्त्रमें ज्ञानी लोगोंका यह विचार है कि, पुत्रमें और शिष्यमें कुछ भेद नहीं समझना चाहिये. यह दोनों बराबर हैं ऐसा विचारके सगरको पुत्र मानकर अपने आपको पुत्रवान् मानने लगे ॥

सगर बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ । इस राजाने अपने गुरु औवर्ऋषीश्वरके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर ॥५॥ इन जातियोंको मारा नहीं, किन्तु राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् पृथक् प्रकारसे विकृत किया था अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूर्ण मुँडवा दिये, किसीके दाढ़ी मूछ रखवा दीं, किसी जातिको खुलेकेश किया और किसीको अर्धमुंडित ॥ ६ ॥ किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वासधारी किया और किसी जातिको बहिर्वासहीन करके केवल कौपीनधारी किया । हे राजन्! महाराज सगरने महर्षि और्वके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व वेद और सर्वदेवमय परमात्मा परमेश्वर भगवान् हरिकी पूजा की । जब उसने पृथ्वीपर भ्रमण करनेको घोड़ा छोड़ा तब उसको देवराज इन्द्रने हरण कर लिया ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे कुरुप्रवीर! सगर राजाके दो स्त्री सुमती और

नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुण्डान्श्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥ ६ ॥ अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन् महीम् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात् ॥ १२ ॥

केशिनी थीं । राजाने यज्ञका घोड़ा ढूँढ़नेके लिये सुमतिके साठ हजार ६०००० पुत्रोंको आज्ञा दी । तब आज्ञाको पाकर वे सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वीखोजने लगे ॥ ९ ॥ जब पृथ्वीपर घोड़ा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोदने लगे । कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तर पूर्वके कोनेमें जहां महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहां पहुँचे और वहांपर उस घोड़ेको बँधा हुआ देख "इसने हमारे घोड़ेको चुराया है, यही चोर है देखो कैसी आँखें बन्द कर ली हैं ! इस दुराचारी पापीको अभी मार डालो" इस प्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर भाई अस्त्र शस्त्र उठाकर महात्मा कपिलदेवजीको मारने दौड़े । भगवान् कपिलजी उस समय समाधिमें स्थित थे, उन्होंने कोलाहल सुनकर समाधि त्याग दी और नेत्र खोले ॥ १० ॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी

बुद्धि नाशको प्राप्त हो रही थी, इसलिये वे महर्षि कपिलदेवजीपर ऐसा अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुए, परन्तु इस महाकुकार्य करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि, जो कि महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलती थी उससे यह सबके सब क्षणमात्रमें भस्म हो गये ॥१२॥ हे परीक्षित् ! कोई कोई यह कहते हैं कि कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह साधुवाद नहीं, क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं, उनका भी आत्मा जगत्को पवित्र करनेवाला है सो आकाशमें पार्थिव धूरिके समान उन कपिलदेवमें किस प्रकारसे क्रोधरूपी तमोगुणका उदय हो सकता है ? ॥ १३ । और जिन कपिलदेवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति दृढ़ नौका चलायी है, जिस नौकापर चढ़कर मुमुक्षु लोग तुरंत मृत्युके पथरूप संसारके पार होते हैं, उन सर्वज्ञ सर्वात्मास्वरूप महामुनिमें शत्रु मित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे सम्भव

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १४ ॥ योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥ असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ॥ जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७ ॥

है ॥ १४ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजस था " केवल अज्ञानी लोग [illegible]
नम हीथे," जो केशिनी रानीके गर्भमे उत्पन्न हुए थे, उन असमंजसका पुत्र अंशुमान [illegible]
हे राजन् ! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था, संग करनेके हेतु योग भ्रष्ट हुआ, [illegible]
भी संगके छोड़नेको निन्दनीय कार्य करने वाला जातिकी भांति निन्दनीय [illegible]
आचार और अपने जातिके अर्थ विप्रिय कर्म करता हुआ खेल ही से [illegible] ॥ १७ ॥

इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड़कर त्याग दिया। तब इसने अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकों फिर जिलाकर सबको दिखाया और फिर उस पुरीसे निकलकर चले गये ॥ १८ ॥ हे राजन्! अयोध्यावासी प्रजाके लोग अपने अपने मारे हुए अपने अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुए और राजा सगरने फिर असमंजसके लिये महासन्ताप किया ॥१९॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि हे कुरुकुलभूषण! अब इधरकी कथा सुनिये कि जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये असमंजसके पुत्र अंशुमान्‌को भेज दिया, तब अंशुमान् उसी मार्गसे चले, जो कि उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर भस्मके ढेरके समीप ही घोड़ेको बँधा हुआ देखा ॥२०॥ हे राजन्! उस स्थानमें कपिलमुनि साक्षात्

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ते ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥२२॥ ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥

भगवान्‌रूप बैठे थे, उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान् सावधानचित्तसे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे हे देव! जो ब्रह्मा जन्मसे रहित हैं, उन्होंने भी अबतक आत्मासे परे जो परमेश्वर आप हैं; आपका समाधि लगा कर भी नहीं देख पाया, न वे युक्तिसे आपको जान सके फिर दूसरे अर्वाचीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं ? ब्रह्माजीके मन, शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तिर्यक् नर आदिकी सृष्टि होती है, वे लोग उसमें ही उत्पन्न हुए हैं फिर उसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं, इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है ॥ २२ ॥ हे देव! जो पुरुष देहधारी है, यद्यपि आप उनकी आत्मामें भलीभांति विराजमान हैं तो भी आपको वे नहीं जानते. केवल

सब गुणोंको देखते हैं अथवा गुण भी उनको दिखायी नहीं देते, केवल तमको ही देखते हैं, क्योंकि उनमें त्रिगुणात्मिका बुद्धि ही प्रधान है, अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं, इसलिये जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तम ही देखते हैं। आप निर्गुण हैं, इससे आपको किसी अवस्थामें नहीं देख पाते, क्योंकि उनका चित्त आपकी मायासे मोहित हो रहा है ॥२३॥ हे प्रभो! आप ज्ञानघनस्वभाव अर्थात् शुद्धसत्त्वमूर्ति हैं, इसलिये जिन पुरुषोंके माया गुण निमित्त भेद विध्वंसको प्राप्त हो गये हैं, ऐसे सनक सनन्दनादि मुनिजनोंके भी आप विचारने योग्य हैं, मैं मूढ़ विचार करके भी किस प्रकार आपको जान सकता हूँ? फलतः आप ज्ञानघनस्वरूप हैं, इसलिये ज्ञानगम्य नहीं हैं, यद्यपि आप विचारके विषय हों तो भी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा हुआ हूँ, इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥२४॥ हे प्रशान्त! मायाके

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं गीतनुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः ॥ अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८ ॥

गुणसे ही आपके विश्वसृष्ट्यादि कर्म हैं, आपका लिंग ब्रह्मादि रूप है, आप कार्यकारणसे परे हैं, आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्धसत्त्वमूर्तिको प्रकट किया है, इसलिये आप पुराण पुरुष हैं, सो मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ॥ २५ ॥ हे विभो! यह लोक आपकी मायासे बना हुआ है। इसमें वस्तु बुद्धि करके काम, लोभ, ईर्षा और मोहसे जिन मनुष्योंका चित्त भ्रान्त है, वे सब ही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु हे सर्वात्मन्! आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम कर्म और इंद्रियोंका आश्रयरूप अतिदृढ़ मोहपाश छिन्न हो गया अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ हो गये ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि हे महाराज! जब इस प्रकारसे स्तुति करके कपिलदेवजीका प्रभाव गाया, तब वे कपिलदेव भगवान् अनुग्रह कर सगरपुत्र अंशुमानसे यह वचन बोले ॥ २८ ॥

भगवान् कपिलदेवजी बोले कि हे वत्स! अपने दादाके यज्ञपशु इस घोड़ेको ले जाओ। जब अश्व पाकर भी अंशुमान् आकांक्षाके साथ खड़े रहे तब महर्षि कपिलदेवजी इनके मनका अभिप्राय जानकर बोले तुम्हारे चचा लोग, जो कि भस्म होगये हैं, गंगाजल पानेके योग्य हैं, और जलसे इनकी गति नहीं होगी ॥२९॥ यह सुनकर अंशुमान्ने मुनिको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके यज्ञका घोड़ा ले राजा सगरके पास आया, सगर राजाने उस घोड़ेको पाकर यज्ञका शेष कार्य समाप्त किया ॥ ३० ॥ फिर राजा सगर निस्पृह हो गये और अंशुमान्के हाथमें राज्यका भार सौंप बन्धनोंसे छूट और मुनिके बताये योगमार्गमें जाकर उत्तमगतिको प्राप्त हुए ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ॥ इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥२९॥ तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३० ॥ राज्यमंशुमति न्यस्य निस्पृहो मुक्तबन्धनः ॥ और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कन्धे सगरोपाख्याने अश्वमेधाश्वानयनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥ कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा—अंशुमान—कुलकी कहीं, नृप खट्वांग समेत। गंगा लाये नवममें, भागीरथ श्रुतिसेत ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! जिस प्रकार राजा सगर अपने पोतेको राज्यभार दे तपस्या करनेको चले गये, अंशुमान् भी उसी प्रकार अपने पुत्रको राज्य दे गंगाजीके लानेकी कामनामें बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, परन्तु उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। कुछ समय पीछे राजा अंशुमान् कालवश हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥१॥ अंशुमान्के दिलीप नाम पुत्र भी गङ्गाजीके लानेमें असमर्थ होकर कालके कवल हुए, इनके पुत्र भगीरथने गंगाके लानेके लिये बड़ी तपस्या की * ॥ २ ॥

* शङ्का राजा सगरके वंशवाले सब राजा तपस्या करतेकरते मर गये परन्तु संसारके पापनाश करनेवाली और अनेक विघ्नोंको हरनेवाली श्रीगंगा महारानी जगतसुखदायिनी वैकुण्ठकी निशानीको कोई भी भूपाल भूमिपर नहीं ला सका परन्तु राजा भगीरथने ऐसा क्या तप किया, जिस तपके करनेसे गंगाजीको पृथ्वीपर भगीरथजी ले आये।

तब गंगाजी इनको दर्शन देकर बोलीं कि हे वत्स ! हम तुमपर प्रसन्न हो वर देनेके लिये आयी हैं, यह सुनकर भगीरथजीने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥३॥ तब श्रीगंगाजीने कहा कि हे राजन् ! जब हम आकाशसे गिरेंगी तब किसी पुरुषको हमारा वेग अवश्य धारण करना पड़ेगा, नहीं तो हम पृथ्वीको फोड़कर पातालको चली जायँगी सो यह तो कहो कि हमारा वेग कौन धारण करेगा ? ॥४॥ और मुख्य बात तो यह है कि हम पृथ्वीपर नहीं जा सकेंगी, क्योंकि मनुष्य लोग हममें अपवित्र पदार्थ धोवेंगे, सो बताइये कि उस अपवित्रताको

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥ किंचाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥ हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥

हम कहां धोवेंगी ? ॥ ५ ॥ तब श्रीभगीरथजी बोले कि हे जननि ! संसारत्यागी ब्रह्मनिष्ठ साधुलोग अपने लोकपावन अंगोंसे आपकी अपवित्रता हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदयोंमें सर्व अघहारी भगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, इसलिये वे लोग पापके विनाश करनेको समर्थ हैं ॥ ६ ॥ और भगवान् रुद्र, जो कि सब शरीरधारियोंके आत्मा हैं और जिस प्रकार साड़ी सूतमें पोही हुई रहती है, वैसे ही वे शिवजी इस संसारमें ओतप्रोत हो रहे हैं, वे ही तुम्हारे इस प्रबल वेगको धारण करेंगे ॥७॥ हे राजा परीक्षित ! राजा भगीरथ

उत्तर—जब राजा भगीरथकी अवस्था पांच वर्षकी हुई तब अपने पितरोंका चरित्र सुना कि, गंगाके लानेके लिये हमारे कुलमें दादा परदादा आदिके अनन्त तप कर करके मर गये परन्तु गंगा पृथ्वीपर न आयीं. पांच वर्षकी अवस्थासे गंगासहस्रनामका पाठ करना आरम्भ किया, परन्तु जिस दिनसे पाठ करना आरम्भ किया उस दिनसे अब तक गंगाजी नहीं आयीं तब तक एक दिनका भी नहीं छोड़ा, राजा वृद्ध भी हो गये परन्तु तो भी अपना प्रण नहीं छोड़ा उनका प्रणामण देखकर थोड़े ही तप करनेसे श्रीगंगाजी बालकपनसे अपना भक्त समझकर अत्यन्त प्रसन्न हो भगीरथजीके संग भूमिपर चली आयीं ॥

गंगाजीसे इसप्रकार कहकर तपस्या करके देवदेव महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजर्षिपर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थना की उसको लोकहितैषी भगवान् महादेवजीने 'तथास्तु' कहा और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया। हे राजन्! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करें? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरणस्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥ ९ ॥ राजर्षि भगीरथजी भुवनपावनी गंगाजीको उस स्थानपर ले आये कि जहां उनके पितृलोगोंकी भस्मका ढेर पड़ा था। भगीरथजी पवनके समान वेगगामी रथपर सवार हो आगे आगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछे पीछे बहती हुई सब लोकोंको पवित्र कर भस्म हुए सगरके पुत्रोंपर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन्!

तथेति राज्ञाऽभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥९॥ भागीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥ रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ॥ देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥११॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥ ॥१३॥ न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥

सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जबकी उनकी राखके ऊपर गंगाजीका जल पड़ा और वे स्वर्गको चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा, जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत्सुखदायिनीकी सेवा करते हैं ॥ १२ ॥ सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पड़नेसे जब पवित्र हो गये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥१३॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यहांपर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि ये भगवान्के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारके नाश करनेवाली हैं, अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका

आना जाना छूट जाता है ॥१४॥ हे परीक्षित ! अमल मुनिलोग श्रद्धासहित जिनमें मन लगाकर छोड़नेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्र ही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त हो जाते हैं उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्य ही अनिर्वचनीय है ॥१५॥ राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, उनके पुत्र नाभ, उनके सिन्धुद्वीप उत्पन्न हुए और उनके अयुतायु जन्मे ॥१६॥ उन अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए, जो कि नलके सखा थे। ऋतुपर्णने राजा नलको चौपड़की विद्या सिखाकर उनसे अश्वविद्या सीखी थी। इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥१७॥ उसका पुत्र सुदास, उसका बेटा सौदास हुआ, जो मदयन्तीका पति था, जिसको कोई कोई मित्रसह और कोई कोई कल्माषपाद

संनिवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥१७॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप॥ आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ॥ वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यस्स्वकर्मणा ॥१८॥ राजोवाच ॥ किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥ स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥

कहते हैं, इनके कोई सन्तान नहीं हुई। यह अपने कर्मदोष और वसिष्ठजीके शापसे राक्षसयोनिको प्राप्त हुए ॥१८॥ राजा परिक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! महात्मा सौदासको वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया था ? इस कथाके श्रवण करनेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है, सो कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥१९॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित ! एक समय राजा सौदासने मृगयाके लिये वनमें जाकर घूमते घूमते एक राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा। यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाकर घरमें रहने लगा। एक दिन राजपुरोहित वसिष्ठजीने आकर भोजनकी इच्छा प्रकाश की, तब इसी

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा॥राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥२२॥ रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयन्त्याऽपो रुशतीः पादयो जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥२५॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्र तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवान्राक्षसस्साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥२६॥ मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥

कपटवेषधारी राक्षसने भोजन बनाया और उस भोजनमें मनुष्यका मांस भी मिला दिया ॥ २० ॥ २१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उस समय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलायी गयी है, इसलिये महाक्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षसयोनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परन्तु पीछे महर्षि वशिष्ठजीने जाना कि यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वसिष्ठजीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया ॥ २३ ॥ राजाभी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ, परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्र हो वह जल अपने पैरोंपर डाल लिया, इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि दिक्, आकाश, पृथ्वी यह सब ही जीवमय हैं ॥ २४ ॥ यह राजा कल्माषपाद राक्षसभावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरणकर रहा था । हे राजन् ! इस प्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा ॥ २५ ॥ उस समय इस राजाको बड़ी भारी भूख लगी थी, तब इसने क्षुधासे पीड़ित हो उनमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया । ब्राह्मणके पकड़ लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनु छीन मन मलीन होकर बोली कि ॥२६॥ हे राजन् ! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो । मदयन्तीके पति हो, आपको अधर्म करना उचित नहीं है । यह ब्राह्मण हमारा पति है, हम सन्तानकी इच्छा करके इनकी सेवा कर रही थीं, अभी इनकी रति समाप्त नहीं हुई है, इसलिये आप अनुग्रह करके हमारे पतिको छोड़ दीजिये ॥२७॥ हे राजन् ! इस मनुष्य देहसे अखिल पुरुषार्थ

होते हैं, इसलिये देहसे नाशको सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥ २८ ॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् तपःशील और गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले परब्रह्म जो गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अन्तर्हित हैं "सर्व भूतके आत्मा" इस प्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! हे धर्मज्ञ ! तुम राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रके समान तुम्हारे हाथमे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं है। हे राजन् ! कर्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके प्रति जो सुहृदाचरण करना है उसको ही विद्याविनय सम्पन्न पंडित लोग शीलवान् कहा करते हैं ॥३०॥ हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, सो आज आप किस प्रकार गोवधके समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध संमत समझते हैं ? ॥३१॥ हे राजन् ! हम इनके बिना एक क्षणको भी नहीं जी सकेंगी, ...

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपश्शीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्व न्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥३०॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत्॥ व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषु पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचन्त्यात्मान मुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसह शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥

इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्य ही अपना भोजन करना विचारा है, तो मृतकतुल्य हमको भी तुम पहिले भक्षण कर लो ॥ ३२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणकी भार्याने इस प्रकार अनाथके समान हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शापमोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण कर ही लिया, कि, जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण कर जाता है ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण कर ही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते करते क्रोधित हो इसने उस राजाको शाप दिया कि ॥ ३४ ॥ अरे पापात्मा ! तूने हमारे पतिको रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है,इसलिये तेरी मृत्यु भी रति ही करते होगी ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! पतिलोकपरायण

वह ब्राह्मणी इस प्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि जलती हुई अग्निमें डाल और स्वयं भी उसी चितामें बैठ स्वामीकी गतिको प्राप्त हो गयी और जब बारह वर्ष बीत गये तब राजा सौदास शापसे छूट गया इसके पीछे जब यह राजा एक दिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ, तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा। कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ परंतु वह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही, किसी प्रकारसे इसको प्रसव नहीं किया तब वसिष्ठने आकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा,इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम अश्मक हुआ॥३९॥ इस अश्मकसे मूलक

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥ ततऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥

राजाकी उत्पत्ति हुई। जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसकी स्त्रियोंने चारों ओरसे घेरकर परशुरामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब ही क्षत्रियवंशके मूल हुए थे, इससे मूलक भी कहलाते थे ।॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ, दशरथका पुत्र ऐडविडि उसका पुत्र राजा विश्वसह, उसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुए । यह राजा खट्वांग अति अजित थे । जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया, फिर जब प्रसन्न होकर देवतालोगोंने इनसे वरदान मांगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि प्रथम तो यह बताओ हमारी परमायु कितनी है तब देवतालोगोंने कहा कि आपकी परमायु दो घड़ी शेष है, यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दिये हुए विमानमें बैठकर अति

शीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥४१॥४२॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल हैं, उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, संपत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री भी प्यारी नहीं है ॥४३॥ और हमारी मति कदाचित् थोड़े अधर्ममें भी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्के अतिरिक्त और किसी वस्तुको हम नहीं देख सकें ॥ ४४ ॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवता लोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि अभिलषित वर मांगो परन्तु भूतभावन हरिमें अपनी भावना रहनेसे हम उनसे भी कुछ वर नहीं चाहते ॥४४॥ जिन पुरुषोंकी इंद्रियें चलायमान और बुद्धि विक्षित हैं वे देवता होकर भी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीके देखनेकी क्या संभावना है ? ॥ ४६ ॥ इसलिये गंधर्वपुरके समान ईश्वरकी मायासे रचे हुए जो गुण हैं, उनमें वह संग जो

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदेवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥ न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् न विदन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु सङ्गं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु॥रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वभर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये॥४७॥इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततस्स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यं कल्पितम्॥भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः॥४९॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने गङ्गावतरणादिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कि स्वभावसे ही आत्मामें आरूढ हो रहा है, विश्वकर्ताके भावसे छोड़कर हम केवल उनकी शरण जाते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायणसंबंधिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चय कर देहादिके अभिमानरूप अज्ञानको छोड़ फिर अपने भावमें स्थिर हुआ ॥४७॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं, इसलिये शून्यके समान कल्पित होते हैं और अशून्यस्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्म ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भक्ति प्रकाशित करके वासुदेव होते हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा—दसवेंमें खट्वांगकुल, लीन राम अवतार। रावणवध घर आवनो, राजकाज व्यवहार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् परी क्षित्! खट्वांग राजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, उससे रघुने जन्म लिया, रघुके पुत्र महायशस्वी अज हुए। हे महाराज परीक्षित्! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ हे राजन्! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषि लोगोंने इन्हीं सीतापति रामचंद्रजीका वर्णन किया है, यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं तुम सुनो ॥३॥ जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य छोड़ जो प्यारी सीताजीके करस्पर्श का भी नहीं सहन कर सकते थे, ऐसे कमलके समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वनवनमें

श्रीशुक उवाच ॥ खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ॥अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥ वैरू प्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥४॥ विश्वा मित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

घूमे थे, वानरेन्द्र हनुमान् अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे शूर्पणखाके नाक कान कटानेसे विरूप करनेके कारण उसने रावणके निकट जाकर उसको स्त्रीका लोभ दिखाया, तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरके लेगया था, प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीसे समुद्र त्रस्त होगया और उसी समुद्रके कहनेसे जो समुद्रपर सेतु बांध रावणादि खल गणरूप गहन वनका विध्वंस किया, वही कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ उन्हीं श्रीरामचंद्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मा रीचादि प्रधान प्रधान राक्षसोंको अकेलेही मार डाला था, समीप खड़े होकर देखते हुए लक्ष्मणकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥५॥

उन्होंने सीताजीके स्वयंवर गृहमें वीर पुरुष समूहके बीचमें महादेवजीके धनुषको गन्नेके समान उठा लिया था और ज्या चढ़ा लेनेके उपरान्त खींचकर बीचमेंसे तोड़ दिया। हे राजन्! वह धनुष अतिभारी था कि जिसे तीनसौ वाहक खींचकर लाये थे परंतु श्रीरामचंद्रजीकी लीला बालगजतुल्य अद्भुत है कि जिन्होंने एक खेलमें ही उस धनुषको तोड़ डाला॥ ६॥ इसके उपरांत जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गठन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीके ही समान थे, धनुष तोड़ उन सीताजीको ले जानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुए परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते करते ही उनका गर्वचूर्ण कर दिया। हे महाराज! आप तो परशुरामजीको जानते हैं? यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि जिनके

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम्॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥ ६॥ जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम्॥ ७॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः॥ ८॥ रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥ ९॥

बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन हो गयी थी॥ ७॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि जब कोई वरदान तुम मांगोगी, हम तुम्हें अवश्य देंगे। जब श्रीरामचन्द्रजीको अभिषेक होनेकी तैयारियां हुई, तब इस कैकेयीने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना ये दो वरदान मांगे। यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तो भी यह जानकर कि वचनभंग होनेसे इनको महापाप होगा, अतः श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ाकर ग्रहण किया। कहा भी है कि "रघुकुलरीति सदा चलि आई। प्राण जाहि बरु वचन न जाई" फिर जिस प्रकार योगी लोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोड़ देते हैं वैसे ही राज्य, श्री प्रणय, सुहृद् और रहनेका स्थान भी छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये॥ ८॥ वनके बीच कामातुरा शूर्पणखाके

नाक,कान काट, खरदूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बांधवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, फिर महाकठिन धनुष हाथमें लेकर बराबर ही विचरण करते हुए अतिकष्टसे वनमें रहने लगे। इसी बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि उबलने लगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नाम राक्षसको नियुक्त किया, तब मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूरतक भागता हुआ ले गया "प्रकटत दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी" जब श्रीरामचन्द्रजी उस कपटमृगके पीछे बहुत दूर तक चले गये, तब उन्होंने हरिणरूपी निशाचरको अतितीक्ष्ण बाण चलाकर इस प्रकार मारडाला जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौड़ते हुए ब्रह्माजीको बाण मारा था ॥ ९ ॥ १० ॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने भेड़िया जैसे चुपचाप भेड़को उठाकर ले जाता है, वैसे

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोऽधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्ध्वाऽथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥

ही श्रीरामचन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीका हरण कर लिया। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणप्यारीसे अलग हो स्त्री रखवालोंका परिणाम अतिदुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनके समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको संग लिये वन वनमें घूमने लगे ॥ ११ ॥ और घूमते घूमते देखा कि उनके ही लिये कर्म करके अर्थात् रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मर गया है, उसका देह पड़ा था और शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछ भी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जला दिया और आगे चले। फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाहें फैलाये मुख वाये हुए आ रहा था, उसका प्राणसंहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करके वालिनामक वानरका वध कर उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया। फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये, इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था, परन्तु महेश्वर और ब्रह्माजी भी उनके चरणोंकी वन्दना करते थे ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर जाकर तीन रात उपवास कर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपर भी समुद्र न आया तब श्रीराम
चन्द्रजी अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भ्रुकुटियें ऐसी टेढ़ी होरही थीं कि उनकी दृष्टि समुद्रमें पड़ते ही जलधिके
रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त व्याकुल होगये। तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धार और मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा
उपहार लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके निकट आकर कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भूमन्! हम मन्दमति हैं, इसलिये अबतक आपको
नहीं जान सके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगतके अधीश्वर हैं, अधिक करके जिनके वश हुए सत्त्व गुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजाप
तिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, सो आप ही गुणेश्वर हैं, ॥ १४ ॥ हे प्रभो! यदि आपकी इच्छा हो तो हमारे जलको लांघकर

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ॥ सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्द
मुपगम्य बभाष एतत् ॥१३॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन् कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः
सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलो
क्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥१५॥
बद्धोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां विभीषण
दृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥

चले जाओ, विश्रवाके विष्ठाके तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है, उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको
ग्रहण कीजिये हे प्रभो! यद्यपि हमारा जल आपके गमन करनेमें बाधा नहीं दे सकता, तो भी इसमें पुल बांध दीजिये। सेतुके बांधनेसे
सदा ही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी, क्योंकि इस सेतुके समीप आकर यह दुष्कर कार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गावेंगे ॥१५॥
हे राजन्! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भांतिके पर्वतशिखर और वृक्षोंसे उनके ऊपर सेतु बांधा, उन पर्वतोंके शिख
रोंपर बहुतसे पेड़ भी लगे हुए थे, उन वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं; जब सेतु बांध लिया गया, तब
विभीषणके परामर्शसे सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया; श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेमे प्रथम ही

हम मर मिटीं। हे रावण ! तुम लोकोंके रुलानेवाले थे, परंतु अब हमारी लंकापुरी तुमसे विहीन हो शत्रुसे पीड़ित हो रही है, सो इस समय हम किसकी शरण जायँ ? ॥२६॥ हे महाभाग ! तुम कामके वश हो एकबार ही बुद्धिहीन हो गये थे; जनकनंदिनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना, इससे ही तुम्हारी यह दशा हुई ॥ २७ ॥ हे रावण ! तुम्हारे मारे जानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुई।तुमने अपने ही दोषसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित ! इसके उपरान्त राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणके मृतककर्म किये ॥ २९ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनमें गये। वहीं शीशमके नीचे बैठी हुई अति क्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः ॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ॥ देहः कृतोऽन्न गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशुपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ॥ आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥

देखा ॥३०॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमल हृदयमें दया आ गयी परन्तु पतिके दर्शनसे आनन्द पाकर जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्द भी विकसित होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर बैठाकर फिर हनुमानजीके साथ आप भी उसपर बैठे इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वामी बनाया ॥३१॥ ॥३२॥ और एक कल्पभरकी आयु दे दी, फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले। मार्गमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर लोकपालगणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालाओंकी वर्षा होने लगी और

ब्रह्मा आदि परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें जाते हुए सुना कि भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भदर सामें आकर अपना डेरा किये हुये हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहनते हैं, प्राण धारण करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खाते हैं, यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रोवें खड़े हो गये और विलाप कलाप करते हुए विभीषणसे बोले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महात्मा रामचन्द्रजी इस प्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे, हे महाराज परीक्षित् ! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, तबसे भरतजी अयोध्यामें न रहकर नंदिग्राम (भदरसा) में ही रहते थे, अब भरतजीने सुना कि श्रीरघुनाथजी रणमें शत्रुको जीत, सीता और लक्ष्मणसहित कुशलपूर्वक आगये तब भरतजी मंत्री, पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवा लानेके लिये श्रीरामचन्द्रके निकट

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ ३५ ॥ नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३६॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ सदश्वैरुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ ३७ ॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥ पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ॥ ३९ ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ ४० ॥

चले ॥ ३५ ॥ उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई आये और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढ़नेका शब्द अति जोरसे होने लगा और सुवर्णमय अनेक पताकायें और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहिने हुई बहुतसी सेना और पदाति सेवक भी बहुत सारे संग गये ॥३६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार राजाके योग्य चवँर छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंपर गिर पड़े, तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये । तब हाथ जोड़, दोनों करोंसे खड़ाऊँ आगे रख दीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते कराते बहुत देरतक भुजाओंसे पकड़ श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे । इनके पीछे श्रीरामचन्द्रसे सीता और लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको

नमस्कार किया इसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और उत्तरकोशलाके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने अपने दुपट्टे कंपाते हुए हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षाकर नाचने लगे हे महाराज परीक्षित् ! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये उस समयमें भरतजीने उनकी खड़ाऊँ धारण करली थीं। विभीषण सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था। पवनकुमार हनुमान्जी श्वेत छत्र धारण किये हुए थे शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस लिया और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भरा हुआ कमण्डलु ग्रहण किया था और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान सुवर्णमय बख्तर ले आये पुष्पक विमानमें जब वीर्यवान श्रीरामचन्द्रजी

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ धुन्वन्तमुत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥४१॥ उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ॥ ४२ ॥ बिभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ॥ ४३ ॥ अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ॥ ४४ ॥ विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥४५॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७ ॥

विराजमान हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना, ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे कि जैसे तारागणोंके साथ निशा नाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है अपने भ्राताओंसे सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजीने राजभवनके भीतर जाकर कैकेयी इत्यादि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा की। फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सम्मान किया ॥४६॥ इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जाकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले प्राणोंको पाकर जिस प्रकार देह उठ खड़ा

होता है इसी प्रकार अपने पुत्रोंको पाकर सब मातायें सहसा उठ खड़ी हुई और उनको गोदीमें बिठाके नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोकसंताप दूर करने लगीं ॥ ४७ ॥ इनके ऊपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुड़वाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४८ ॥ हे महाराज परीक्षित ! श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार शिरसे स्नान कर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये, फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन भूषण पहन भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान हो विराजमान होने लगे ॥४९॥ इनके पीछे महात्मा भरतजीने प्रणाम कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया तब उन्होंने राज

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुस्सिन्धुजलादिभिः ॥४८॥ एवंकृतशिरस्स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः॥स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥४९॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः॥५०॥जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम ॥ त्रेतायांवर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ ५१ ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ॥ ५२ ॥ सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ ५३ ॥ मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ ५४ ॥

सिंहासन ग्रहण किया स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रमगुणोंसे युक्त प्रजापुञ्जको पिताके समान पालन करने लगे हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्त्तमान था, तोभी वह काल सत्ययुगके समान जान पड़ने लगा समुद्र,नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सब ही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा थकावट कुछभी न रही। ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक इच्छा न होती तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबा सकती थी *श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और

* शङ्का-रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था उसका मरण कभी नहीं होता था क्योंकि मृत्यु तो सब लोकमें है किसी लोकमें जल्दी किसी लोकमें देरसे. परन्तु ऐसा लोक कहीं भी नहीं है कि जिस लोकमें मृत्यु न हो?

एकपत्नी व्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंके अनुष्ठान किये हुए गृहमें धैर्य, एवं धर्मका उपदेश करके स्वयं उसका भी पालन करने लगे और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चित्तको हर लेती थीं ॥५४॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा—ग्यारहमें श्रीरामने, अवधपुरीमें आन। यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौं बखान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इसके पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्यलोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आप हैं, सो अपनी ही पूजा करने लगे ॥ १ ॥

स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥ प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कन्धे इक्ष्वा० सगरोपाख्याने श्रीरामचरितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निस्स्पृहः ॥ ३ ॥ इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४ ॥

यज्ञके अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने होताको पश्चिमदिशा और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा और सामगान करनेवालोंको उत्तरदिशा दे दी। इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मण ही पानेके योग्य हैं" यह विचार निस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको दे दी ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे दानिशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान कर दिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बच रहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषण ही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्र

उत्तर—"अनिच्छता" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होगा, इसका यह अर्थ है कि जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारविन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते थे अर्थात् दिनरात उन्हीं चरणोंमें उन्मत्त रहते थे, उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी ॥

जीने सब कुछ दान कर दिया ॥ ४ ॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी * और बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया, क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा विस्तारकर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आप ब्रह्मदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं । हे भगवन् ! आप उत्तमश्लोकोंमें आगे गिने जानेयोग्य हैं, मुनिलोग भी अपने अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिंता करते हैं ॥ ७ ॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी

ते तु ब्रह्मण्य देवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तं नस्त्वया किन्तु भगवन् भुवनेश्वर ॥ यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठ मेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन् वा चोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभीविभृयात सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥

गूढ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति, रात्रिकालमें गुप्तभावसे घूमने लगे, एक दिन अकेले घूम रहे थे कि एक पुरुषने अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहे कि जिनको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥ ८ ॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कह रहा था कि तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है मैं अब तुझे खाने पहरनेको नहीं दूँगा । रामचन्द्रजीका ही स्त्रियों पर अनुराग है कि पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर लाकर पालन करते है । मैं रामचन्द्र नहीं हूँ, चली जा, अब तेरा

* शंका–जो कुछ वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान करके दी थी, वह वस्तु ब्राह्मणोंने दान लेकर कुछ घड़ी अथवा कुछ दिन पीछे उसी दानवाली वस्तुको फिर पीछे प्रीति सहित रामचन्द्रजीको दे दी, तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ?

उत्तर ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल फूलआदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यन्त जब क्षत्रियोंका देते है तब उसी समय क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंका दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं। जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्रही ब्राह्मणलोग उस राजाको शाप देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचारकर अपनी [illegible] वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की [illegible] लोभ समझकर नहीं ली॥

दुःख नहीं देखूंगा ॥९॥ अज्ञानी, दुराराध्य, बहुमुख लोकके मुँहसे यह वचन सुनते ही रामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने स्थान पर आकर अपनी प्रियतमा जनकनंदिनी जानकीजीको त्याग दिया। गर्भावस्थामें पतिसे त्यागी हुई भीत जानकीजी महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें आयी ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुए। महर्षि वाल्मीकिजीने इन दोनों पुत्रोंका जातकर्म आदि संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुए और शत्रुघ्नजीके पुत्रका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये और करोड़ों गंधर्वोंका संहार किया और उनका सब

इति लोकाद्बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अन्तर्वत्न्यागतेकाले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रियामुनिः ॥ ११ ॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरांनाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥ ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ॥ ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान् नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७ ॥

धन लाकर राजाको दे दिया शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राण संहार करके मधु वनमें मथुरापुरी बसायी जनकनंदिनी जानकीजीका जब रामचन्द्रजीने त्याग कर दिया ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरणमें समा गयी यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी। यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया, तो भी प्राणप्यारीके गुणगण वारंवार याद आने लगे कि जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोक सके हे राजा परीक्षित्! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसी प्रकार भयका देनेवाला है। जब

कि यह अनुराग अवतारोंकोभी भयदायी हुआ तब गृह स्त्रीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? इसके उपरांत श्रीराम चंद्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे ॥१६॥१७॥१८॥ उसके पीछे दण्डकवनके कांटोंसे जिनके चरण कमल बिध गये थे उन्हीं चरणोंको स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥१९॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीराम चन्द्रजीका समुद्रमें पुल बांधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कविलोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका कुछ यश नहीं हो सकता, क्योंकि उनका यश बहुत है, सो साम्यसे छूटा है वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता कर सकते हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीलामात्र है, वैसा ही राक्षसोंका वधादि

अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ॥ कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥

कार्य भी लीला ही है हे महाराज ! आप ऐसा न समझ लेना कि हमारे यह वचन अयुक्त हैं । देवतालोगोंकी प्रार्थनासे लीला करनेके लिये ही भगवान्ने यह अवतार धारण किया था ॥ २० ॥ अहो ! जिनका निर्मल यश दिग दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादन पटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरंतर गान करते है और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं, हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जाते हैं । ॥ २१ ॥ अयोध्या निवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया वा दर्शन किया अथवा जिन्होंने उनको बैठाला किंवा जो लोग उनके अनुमत हुए थे, वे सब पुण्यात्मा

लोग उस स्थानमें जायँगे, जहां कि योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित् ! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्री रामचन्द्र... आख्यानको धारण करेंगे, वह उपशमनिष्ठ हो निःसन्देह कर्मबन्धनसे छूट जायँगे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत राजा परीक्षित श्रीशुक... कहने लगे कि हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीरामचंद्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे ? उन्होंने अपने भ्राताओंसे, जो कि उनके अंशरूपी थे कै... व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वरस्वरूप जो श्रीरामचंद्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजा लोग कैसा व्यवहार करते थे ? ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित ! त्रिभु... ईश्वर श्रीरामचंद्रजीने अयोध्यामें आकरराजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा दी, फि... अपना

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशन् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७ ॥ पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैः शुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥

जातिवाले लोगोंके साथ बंधुत्व प्रकाशित कर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करने लगे ॥ २५ ॥ जबसे श्रीरामचंद्रजीका अभि... षेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धका जल और हाथियोंके मदका जल छिड़का जाताथा, यह अयोध्यापुरी अपने स्वामीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धिसम्पन्न हुई थी ॥ २६ ॥ वहांके महल, पुरके द्वार पत्थरसे बने हुएथे और द्वारपर ... भरे हुए सुवर्ण कलश सदा रखे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदा ही पताका फहराती, भी गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला इत्यादिसे स्थान स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २७ ॥ २८ ॥

और जहां जहांपर श्रीरामचंद्रजी गमन करते थे उसी उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि हे देव! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥२९॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री पुरुष सब ही अपने अपने घर छोड़कर महलों की छत्तपर चढ़े हुए थे और अपरितृप्त लोचनसे राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षा रहे थे ॥ ३० ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचंद्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था। यद्यपि इस धनागारको पहिले श्रीरामचंद्रजीके सम्बन्धीलोग भोग कर चुके थे, तो भी

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ॥ अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥ धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ॥ स्त्रीपुम्भिः सुरसङ्काशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन् स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥

यह पूर्ण था ॥ ३१ ॥ यहांके द्वारोंकी देहलियें मूंगोंकी बनी हुई थीं, थम्भ वैदूर्यमणिके बने हुए थे, गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अतिस्वच्छ थे और स्फटिक मणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान हो रही थीं, ॥३२॥ विचित्र पुष्पोंके हारोंमें श्रेष्ठ पट्टिकाओंमें और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान् हो रहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोगसाधन द्रव्यसमूहोंसे यह भवन सब प्रकार सुसज्जित था। सुगंधित धूपसे सुगंधित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंके समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि आत्माराम मुनि लोगोंके अग्रगण्य थे, तो भी

उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे। इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलषित भोगोंका भोग किया था। उस समय सब मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे आत्माराम और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीड़ा दिये रमण किया था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–द्वादशमें कुरुवंशकी, कहुँ कथा समझाय। पुनि इक्ष्वाकुजवंशकी, कथा कहौं सब गाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके अतिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनसे निषध उत्पन्न हुए। निषधका पुत्र नभ, उसका पुत्र पुण्डरीक और उसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, उसका पुत्र अनीह, अनीहके

बुभुजे च यथा कामं कामान्धर्ममपीडयन्॥वर्षपूगान्बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥३६॥ इति श्रीभागवते महा० नवमस्कन्धे इक्ष्वा०सगरचरिते श्रीरामोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच॥कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ स्वगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥ शिष्यः कौशल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥

पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बलस्थल, उसका पुत्र वज्रनाभ हुआ ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा सगुण और उसका पुत्र विधृति हुआ विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। यह हिरण्यनाभ महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था, ॥ ३ ॥ इसके ही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा, जिससे महान् सिद्ध होकर हृदयकी गांठ खुल जाती है ॥४॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई। इसका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान है। जब ये कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशका नाश होता हुआ

देखेंगे तब ये अपने वंशको फिर उत्पन्न करेंगे ॥ ६ ॥ इनके पुत्रप्रसुश्रुत, उनका पुत्र संधि, उनका पुत्र अमर्षण अमर्षणका पुत्र महस्वान् और सहस्वानके विश्वबाहु हुआ विश्वबाहुके प्रसेनजित्, प्रसेनजित्से तक्षक, ॥७॥ तक्षकसे सुत, सुतके बृहद्बल उत्पन्न हुआ, कि जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था हे परीक्षित् ! ऊपर कहे हुए राजा इक्ष्वाकुवंशमें हो गये हैं अब उनका वृत्तान्त सुनो जो कि आनेको होंगे ॥ ८ ॥ इसके पीछे बृहद्बलसे बृहद्रणनामक पुत्र होगा, उसका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ ९ ॥ इस

तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः ॥७॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥८॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥ प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥ १० ॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥ तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥१२॥ रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥

वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, उसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकरका जन्म होगा। उसका सहदेव, उसका पुत्र वीर बृहदश्व और उसका पुत्र भानुमान् होगा ॥ १० ॥ इस भानुमानका पुत्र प्रतीकाश्व, उससे सुप्रतीक जन्म ग्रहण करेगा। उसके मरुदेव, उसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्करनामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ उसके अन्तरिक्ष, उसका पुत्र सुतपा, उसके पुत्र अमित्रजित्, उसका पुत्र बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १२ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और उससे संजयकी उत्पत्ति होगी। संजयका पुत्र शाक्य,

शंका-त्रिलोकीमें जो प्राणी जन्म लेता है उसको काल खा लेता है, परन्तु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया ? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा ? उत्तर-राजा मरु बाल्यावस्थासे ही परमेश्वरका भजन करने लगा था और भजन करते करते बड़ा योगी हो गया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सकता, क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर दूरसे डरता है, इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया ॥

शाक्यका पुत्र शुद्धोद और उसका पुत्र लांगल होगा ॥ १३ ॥ लांगलसे प्रसेनजित, उससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे रणक और कनकसे सुरथ जन्म लेगा ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित ! सुरथके यहां सुमित्र जन्म ग्रहण करेगा और ये सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे हे राजन् ! इक्ष्वाकुके वंश में सुमित्र तक ये सब राजा होंगे और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होने परकलियुगमें यह वंश ध्वंस हो जायगा ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा-तेरहमें इक्ष्वाकुसुत, निमिका वंश बखान। तिसमें प्रगटे जनकजी, ज्ञानी परम सुजान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरम्भ करके महर्षि वसिष्ठजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥

ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥१४॥ सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते कुशान्वयवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २॥ निमिश्चल मिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत् पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥

इस कारण विना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये हुए हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकते हैं, जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो। यह सुन कर महाराज निमि कुछ न बोले अर्थात चुपचाप रहे और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ कराने लगे ॥ २ ॥ वसिष्ठजीके जानेपर महाराज निमिने विचारा कि इस जीवनका क्या ठिकाना है, यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथम ही हमारी मृत्यु हो जाय, तो फिर यज्ञ न होगा. इसलिये जबतक कुलगुरु वशिष्ठजी न आवें तबतक किसी और ऋत्विजोंसे ही यज्ञ आरम्भ कराऊं। यह विचार निमिराजाने यज्ञारंभ कर दिया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराकर राजा निमिके स्थानपर आये; शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको

क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध करके यह शाप दिया कि पंडिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय * ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती होकर शाप दिया, तब राजा निमि भी उनको यह शाप देने लगा कि "तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देह भी छूट जाय" ॥ ५ ॥ यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़ दिया। उसी समय वसिष्ठ ऋत्विकका भी देह छूट गया परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया अर्थात् यज्ञ करते करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रखा था, उसमेंही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इधर

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥

जब यज्ञ करते करते राजा निमिका देह छूट गया, तब मुनिलोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तेलमें) उनके शरीरको रख दिया, इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त हो गया तो आये हुए देवता लोगोंसे बोले कि आप लोग यदि प्रसन्न हों और सामर्थ्य रखते हों तो राजाका यह देह सजीव हो उठे" देवता लोगोंने कहा ऐसा ही हो । तब राजा निमिका शरीर गन्धवस्तुमेंसे ही बोला कि हे प्रिय ! इसमें

* शङ्का—राजा निमि बड़ा ज्ञानी और ध्यानी था एवं वसिष्ठमुनि मुनियोंमें पूजन करने योग्य बड़े महात्मा पुरुष थे, उन दोनोंने फिर मूर्खोंके समान काम क्यों किया ? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शाप दिया, इसका क्या कारण ?

उत्तर—जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित हो गये और विवाह करनेकी इच्छा की तब राजा निमि और वसिष्ठ यह दोनों उनको देखकर बहुत हँसे दोनों जनोंका नारदमुनिने शाप दिया कि हे वसिष्ठमुनि ! हे राजा निमि ! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं, हमारे मनमें विवाह करनेकी इच्छा नहीं है परन्तु भगवान्‌की मायाने हमको मोहित कर दिया है, इसपर भी तुम दोनों जन हमारी हँसी करते हो, इसलिये, तुम दोनों जने बहुत शीघ्र मायाके फन्देमें फँसकर हमारे समान बड़ी दुर्गतिको प्राप्त होगे, इसलिये दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी ॥

कभी देहका बन्धन न हो ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते । वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्‌के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥१०॥ तब देवता लोगोंने कहा कि यह निमि विना ही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करे । इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा होनेसे मुनिलोग जिस लिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं, वह प्रार्थना सिद्ध हो जायगी और राजाको देहका सम्बन्ध भी नहीं होगा । हे राजन् ! इसी वाक्यके अनुसार निमि जिवित हुए थे । नेत्रोंपर पलकका उघड़ना और पड़ना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परन्तु इसके

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ॥ भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥ अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः॥ देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारस्समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यस्सुधृतिपता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥

पीछे महर्षियोंने बिचारा कि विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलानेवाला है इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा, मथन करनेसे राजा निमिके मृतक देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥१२॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एकनाम 'विदेह' हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिल हुआ । अथवा मिथिलापुरीके निर्माणकर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥१३॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए । नंदिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ ॥ १४ ॥ देवरातसे बृह

द्रथका जन्म हुआ, उसका पुत्र महावीर्य, महावीर्यका पुत्र सुधृति, उसका पुत्र धृष्टकेतु, उसका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वसे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रताप, उससे कृतरथने जन्म लिया, उसका पुत्र देवमीढ और उससे विधुत पुत्र उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥ १६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, उसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ तथा उससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥ १७ ॥ उसके सीरध्वज जन्मा। ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे, उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था ॥ १८ ॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज, उसका पुत्र धर्मध्वज, धर्मध्वजके कृतध्वज और मित्रध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ उनमें कृतध्वजसे केशिध्वजने जन्म लिया और

मरोः प्रदीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्तत स्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वज जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात ॥ कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥ खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत ॥ ऊर्ध्वकेतुस्सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ॥ ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमर्द्धिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥

मित्रध्वजसे खाण्डिक्य जन्मा ॥ २० ॥ हे राजन् ! कृतध्वजका पुत्र आत्मविद्यामें विशारद हुआ और कर्मोंका भलीभांति जाननेवाला था। एक समय यह किसी कारणवश केशिध्वजके डरसे भाग गया ॥ २१ ॥ इस केशिध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ, उसका पुत्र शतद्युम्न शतद्युम्नका पुत्र शुचि और इस शुचिसे सनद्वाज हुये ॥ २२ ॥ सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु, उसका पुत्र पुरुजित, पुरुजित्का पुत्र अरिष्टनेमि, उसका पुत्र श्रुतायु, उसका पुत्र सुपार्श्व सुपार्श्वसे चित्ररथ, उससे क्षेमाधि, ॥ २३ ॥ क्षेमाधिका पुत्र समरथ, उसका पुत्र सत्यरथ

उत्पन्न हुआ ॥२३॥ सत्यरथका पुत्र उपगुरु और उससे अग्निके अंशसे उपगुप्तने जन्म ग्रहण किया ॥२४॥ उपगुप्तका पुत्र वस्वनन्त, वस्वनन्तका पुत्र युयुधान और उससे सुभाषणने जन्म किया सुभाषणका बेटा सुत, उसका पुत्र जय, जयका पुत्र विजय और उसके ऋत उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ ऋतका पुत्र शुनक, उसके वीतहव्य, उसके धृति और धृतिकापुत्र बहुलाश्व और उस का पुत्र कृति हुआ। यह बड़ा ही जितेन्द्रिय था ॥ २६ ॥ हे राजा परीक्षित्! यह सब भूपाल मिथिलवंशके कहे गये। यह सब आत्मविद्यामें पंडित और याज्ञवल्क्यादि योगेश्वरोंकी कृपासे घरमें रहते हुए भी सुखदुःखादिके द्वंद्वसे छूटे हुए थे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ॥ श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीभा० म० नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥ सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां निमिवंशानुवर्णनं नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—चौदहमें गुरुनारिमे, चन्द्र प्रगट कियो बुद्ध ॥ छः सुत प्रगटे बुद्धसे, आयु आदि चित शुद्ध ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! अब अत्यन्तपावन सोमवंशका वर्णन करते हैं सो आप सचेत हो चित्त लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ इस वंशके ही पुण्यकीर्ति ऐलप्रभृति राजा विख्यात हैं। हे महाराज! सहस्रशीर्षा परमपुरुष भगवान्के नाभिकमलसे जगत्पिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उनके पुत्र अत्रि, यह अत्रिजी गुणोंमें अपने पिताके समान थे ॥ २ ॥ इन अत्रिजीके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) नामक पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् ब्रह्माजीने इन चन्द्रमाको विप्र, औषधि और सब नक्षत्रोंका अधिपति किया था ॥ ३ ॥

इन चन्द्रमाने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था;इन्हीं चन्द्रमाने गर्व करके बृहस्पतिजीकी स्त्री ताराको हर लिया था * ॥ ४ ॥ हे राजन् ! देवदानवोंके बीच संग्राम होनेके कारण तुम जानते हो, जब चन्द्रमाने ताराको हर लिया, तब देवगुरु बृहस्पतिजी अनेक वार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको माँगा, परंतु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा । बस, इसीलिये दैत्य व सुरोंमें महासंग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसी लिये उन्होंने अपने शिष्य असुरलोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥

ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर हुए ॥६॥ देवराज इन्द्र भी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये । इसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन् जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ, तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा । यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाटा और तारा

* शङ्का–गुरुकी स्त्री तारा, उसको चन्द्रमाने क्यों ग्रहण किया ! गुरुकी स्त्री तो माताके समान होती है, उसके संग कैसे रमण किया ? और भगवान्‌ने भी ऐसे दुष्टको दण्ड नहीं दिया, बड़े आश्चर्यकी बात है ॥

उत्तर–बृहस्पतिसंहिता आदि और भी धर्मशास्त्रके प्रमाणसे बृहस्पतिजीने चन्द्रमाको शिक्षा दी थी कि अपनी इच्छासे स्त्री पुरुषके संग भोग करनेके लिये चाहती हो अथवा पुरुष स्त्रीकी प्रार्थना कर उसके संग भोग करनेकी इच्छा करता हो तो पाप नहीं होता और जो प्रार्थना नहीं मानै तो पुरुषको महापाप लगता है और ताराको भी बृहस्पतिजीने यही सिखाया था कि जो पर पुरुषके संग स्त्री क्रीड़ा करेगी तो जबतक स्त्री मासिक धर्म न होगी तबतक तो अशुद्ध रहेगी और रजस्वला हुई तो उसी तीन दिनमें शुद्ध हो जायगी अर्थात् पाप किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहेगा । इस प्रकार बृहस्पतिजीने तारा और चन्द्रमाको उपदेश दिया था, इसीसे दोनों गुरु और पतिके वचनपर आरूढ़ रहे, अतः उनका कुछ दोष नहीं ।

बृहस्पतिजीको दिला दी ॥ ८ ॥ बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पाकर जान गये कि यह अवश्य अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है, इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकाश करके कहने लगे अरे दुर्मते ! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया । इसे शीघ्र गिरा दे अरे असति ! तू ऐसा समझकर न डरना कि गर्भ गिरानेके पीछे तुझे हम मार डालेंगे ? और हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्रीजातिको हम क्या भस्म करेंगे ? और अधिक करके हम संतानकी इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अति लज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्काल ही कनकप्रभ सुकुमारको त्याग दिया । हे राजन् ! उस कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥१०॥ और दोनों परस्पर कहने लगे कि यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है, इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगड़ा

गर्भं त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकोऽसति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुरृषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किन्नवोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥

हुआ । पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगड़ा होता हुआ देखकर ऋषि और देवतालोगोंने तारासे कहा कि यह वास्तवमें किसका पुत्र है ? परन्तु तारा लाजके मारे कुछ भी न कह सकी और चुप हो रही ॥ ११ ॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला—"अरी अशुभे ! बोलती क्यों नहीं ? शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर" ॥ १२ ॥ और फिर ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाकर समझाया बुझाया और कहा हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है ! तब तारा नीचेको शिर झुकाकर लाजसहित धीरेसे बोली कि—"पुत्र तो यह चन्द्रमाजीका है,, ताराके मुखसे यह वचन निकलते ही चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रखा । हे राजन् चन्द्रमा पुत्रको पाकर

परम हर्षित हुआ ॥ १४ ॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ। यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ था ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कर रहे थे । देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश हो गयी और राजाके निकट स्वयं ही आयी ॥ १६ ॥ हे परीक्षित ? तुम ऐसी शंका मत करना कि उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गयी ? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी, इस लिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवके समान स्वरूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी हो गयी ॥ १७ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके मारे खिल गये । राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरी ? हमारे साथ विहार

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ॥ तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥१६॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥ १७ ॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ स तां विलोक्य नृप तिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्य तां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ॥ यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥

करो । बहुत वर्षोंतक हम दोनोंका परम सुखसे रमण होगा और मैं यही चाहता हूँ कि मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसा ही बना रहे ॥१९॥ उर्वशी बोली कि हे सुन्दर ? तुम्हारे प्रति किसीके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे ? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शापके अन्तमें प्रतिज्ञा भंग करनेके छलसे जानेके लिये कहने लगी कि हे प्रियवर ! मैं प्रथम ही आपसे यह वचन मांगे लेती हूँ कि मेरे यह दोनों भेड़ोंके बच्चे तुमको धरोहरके समान रखने पड़ेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो, क्योंकि जो पुरुष बड़ाईके योग्य है उसको ही स्त्रियें वरण करती हैं, इसलिये विजातीय होनेपर भी तुम्हारे वरण

करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे वीर! परंतु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृत भक्षण करूँगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूँ, जब तक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न कर लेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूँगी! राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरतापर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार कर लीं ॥ २२ ॥ और कहा कि हे सुन्दरि! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखते ही मनुष्यका हृदय मोहित हो जाता है। तुम स्वर्गकी देवी अपने आप यहां आयी हो, अतः कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा? ॥ २३ ॥ हे राजन्! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहारस्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करने लगे और उर्वशी भी यथायोग्य उस नृपालको आनंद देने लगी ॥ २४ ॥ इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागके

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३ ॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषुकामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥

समान सुगंधि निकलती थी। उर्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगंधिसे बहुत दिनतक हर्ष पाते रहे ॥ २५ ॥ इस ओर पुरमें देवराज इन्द्रने उर्वशीका दर्शन न पाकर गन्धर्वोंको आज्ञा दी कि वह उर्वशी जहांपर हो वहांसे शीघ्र ले आओ, क्योंकि विना उर्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥ २६ ॥ आधी रातके समय जब महाअन्धकार हुआ, उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढ़ोंको हरण करके चल दिये जिनको धरोहरकी भांति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपा था ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढ़ोंको उर्वशी पुत्रके समान मानती थी, जब उन मेढोंको गन्धर्वगण हरण करके ले जाने लगे तब वह अति आर्त वाणीसे चिल्लाये। उस चिल्लानेके शब्दको सुन उर्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित

राजा पुरूरवासे कहने लगी—" हाय ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी गयी । इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है; वरन् यह अपने आपको वृथा ही वीर जानकर अभिमान करता है ॥ २८ ॥ इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश हो गया । हाय ! मेरे पुत्र समान मेंढोंको चोर हरण करके चले जाते हैं । अरे ! यह पुरुष कैसा है ? कि जो नारीके समान भीत रहकर दिनरात घरमें पड़ा रहता है" ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होता है उसी प्रकार उर्वशीके वचन बाणके समान राजाके हृदयमें विन्ध गये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके मारे वस्त्ररहित मेढ़ोंके हरनेवालोंपर झपटा ॥ ३० ॥ गंधर्वोंने देखा कि राजा हमारे पीछे आता है तब गंधर्वगणोंने मेंढोंको छोड़ दिया और द्युतिमान होकर वहां प्रकाश करने लगे । तब राजा उन मेंढोंके बच्चोंको लेकर वहां

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥ ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥

आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देख लिया । हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके अतिरिक्त नङ्गा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहांसे चली गयी । इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पाकर अत्यंत विमन हुआ और उसीमें चित्त लगाकर कातरता प्रगट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तीर वह अप्सरा पांच सखियोंके साथ राजा पुरूरवाको दिखायी दी, तब राजाने मिटपिटाकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥ ३३ ॥ हे प्यारी ! हे निर्दय बाले ! रहो रहो । हे सुमुखि ! मैं अबतक सावधान नहीं हूँ। प्राणेश्वरी ! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बात

चीत करें ॥३४॥ हे देवि ! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर किया हुआ जो यहां आया है अभी यहां गिरता है और देखो तुम्हारी प्रसन्नता केपात्र न होनेसे भेड़िये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३५ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि हे राजन् ! मरो नहीं, तुम पुरुष हो । धैर्य धारण करो, यह भेड़िये अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियें तुमको भक्षण न करें—अर्थात् तुम इन्द्रियोंके वश मत होओ । हे राजन् ! कहीं भी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती, क्योंकि इनका हृदय भेड़ियोंके समान होता है, ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको स्वभावसे ही करुणा नहीं होती । यह क्रूर और शांतिरहित कहलाती हैं, अपने प्रीतमके लिये साहस करती हैं, थोड़ीसी बातके लिये वह विश्वास

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥ संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥

घातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ अधिक करके जो पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं इच्छानुसार घूमती हैं, वह सौहार्दको एक साथ ही छोड़ देती हैं, वह तो अज्ञानी पुरुषके सामने बाहरी (अलीक) प्रेम प्रकट करती हैं ॥३८॥ जब राजाने बहुत विनती की तब उर्वशी बोली कि वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे और उससे ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया, परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहांपर गया, जहां कि पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी, वहां वीरप्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ और प्रमुदित

चित्तसे उर्वशीके पास एकरात वास किया । फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ ॥४०॥४१॥ उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली--हे राजन् ! हमारे लिये शोक क्यों करते हो ? गन्धर्वलोगोंकी विनय करो । वे गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें दे देंगे । हे परीक्षित ! उर्वशीके यह वचन सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बड़ी स्तुति की कि जिससे गन्धर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो गये । उन्होंने प्रसन्न होकर राजाको अग्निस्थाली (टोकनी) दी । उसके देनेका तात्पर्य यह था कि जब इससे अग्नि कर्म किया जायगा, तब ही उर्वशी प्राप्त हो जायगी, परन्तु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी समझा और उसको कांखमें दबाये वनमें घूमता फिरा परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया अर्थात् यह समझ लिया कि यह उर्वशी नहीं किंतु अग्निस्थाली है ॥४२॥ उसके उपरांत अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आकर नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगा । इससे त्रेतायुगके

गन्धर्वानुपधावेमां स्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ॥ तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थ शमीगर्भं विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत् प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥

आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ उसके पीछे राजा फिर वहीं पर गया कि जहां अग्निस्थाली पड़ी थी और देखा कि शमी वृक्षके गर्भमें अथवा शमी जिसके गर्भमें थी ऐसा एक पीपलका पेड़ जमा है, उसमें अग्निका होना भलीभांतिसे देख उर्वशीलोककी कामनासे राजाने उस पेड़से दो अरणी बनायी और उस अग्निको मथा । हे राजन् ! राजापुरूरवाने किस प्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली सो तुम सुनो । मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और उन दोनोंमें जो काठका टुकड़ा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥४४॥४५॥ जैसे ही वह अरणी मथी गयी कि उनमेंसे अग्नि निकली । यह अग्नि साधारण नहीं, इससे भोज्यपन जन्म लेता है । इसके पीछे वह अग्नित्रयी विद्याकी विधिके अनुसार कहे हुए संस्कारसे त्रिवृत अर्थात आहव

नीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना ॥ ४६ ॥ और इस राजाने उर्वशीलोककी कामना करके उस अग्निसे सर्व देवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया ॥४७॥ हे राजन् ! पहले सतयुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत ओंकार ही एकमात्र वेद था, नारायण ही अकेले देवता थे, वर्ण भी एक ही था और अग्नि भी एक ही था ॥४८॥ फिर त्रेतायुगके आरंभमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुए इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजा द्वारा गंधर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा। सत्ययुगमें सब ही पुरुष सत्त्वगुणप्रधान थे, इसलिये सब ही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे। उसके पीछे रजोगुणप्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्म

तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महा० नवमस्कन्धे सोमवंशचरिते ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥

मार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पुरूरवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर। ता दौहित्रके पुत्र भे, परशुराम रणधीर ॥ इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित ! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम यह हैं:—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥ इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ। जयकी सन्तान अमित और विजयका पुत्र भीम हुआ। भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा। इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ, कि जिन्होंने एक ही घूँटमें सब गंगाजीका जल

पान कर लिया है जह्नुके पुरूरवा जन्मा, उसका बलाक, उसका बेटा अजक ॥ २ ॥ ३ ॥ और अजकके यहां कुशने जन्म लिया। कुशके कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए उनमेंसे कुशाम्बुके महात्मा गाधिने जन्म ग्रहण किया * ॥ ४ ॥ इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको मांग लिया था। राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचार कर निवेदन किया ॥५॥ हे महाराज! जिनका एक ओरका (बांया अथवा दाहिना) कान श्यामवर्ण हो और जिनके

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वो भयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥

सब अंगोंमें चन्द्रमाके समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोड़े तुम हमें इस कन्याके शुल्क (भेंट) स्वरूप दो तब हम तुम्हें यह कन्या दें। कुछ इन हजार घोड़ोंको आप अधिक न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसी समय चले गये और वहांसे एक हजार घोड़ोंको लाकर उसे देकर श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया ॥७॥ कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना

* शंका—पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे परन्तु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया। क्योंकि राजा गाधिकी भार्याने पुत्र होनेके लिये अपने जामातासे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो।

उत्तर—राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे कि किसी समय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे यही विचार करते करते बहुत दिन बीत गये, तबतक ऋचीक नाम भगवान् तपस्वी थे, उनके संग राजा गाधिने जब अपनी सत्यवती कन्याका विवाह कर दिया, तब रानी अपने जामाता (जमाई) को सिद्ध समझकर पुत्रकी याचना करने लगी। रानीने अपने मनमें विचारा कि राजा यज्ञ करनेके लिये अभी विचार कर ही रहे हैं; परन्तु अभी यज्ञ करते नहीं। इसलिये रानीने जामातासे पुत्र होनेकी याचना की कि राजा यज्ञ करें या न करें।

की, तब यह ऋषि अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाकर स्नान करनेको चले गये ॥८॥ तब सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करता है अतः जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनाकर गये हैं वह अवश्य ही हमारे चरुसे श्रेष्ठ होगा। यह सोच विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु मांगा जो कि ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बना गये थे। सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्रयुक्त अपना चरु उसको दे दिया और आपने क्षत्रियमन्त्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षण किया ॥९॥ इसके उपरान्त जब मुनिने आकर यह बात जानली तब अपनी स्त्रीसे बोले—"बड़ा नीच कर्म किया, चरुका अदल बदल करने से तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा" ॥१०॥ यह सुन सत्यवती अत्यन्त भीत हो अनेक भांतिकी अनुनय

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदात्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥ तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥

विनय कर ऋषिसे बोली—"महाराज! ऐसा न हो" तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा। हे राजन्! इसके पीछे सत्यवतीके 'जमदग्नि' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११॥ हे राजन्! फिर वही सत्यवती अबला लोकपावनी महापुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही है हे परीक्षित्! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥१२॥ उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, उन सब पुत्रोंमें छोटे 'परशुराम' हुए ॥ १३ ॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाला कहते हैं। इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रिय जातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेदविरुद्धाचारी हुए इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाई होगये थे, यद्यपि अपराध इनका थोड़ा

था तो भी परशुरामजीने इनको मार ही डाला ॥१५॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रियजातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था, कि जिससे उनका क्रोधानल बारबार क्षत्रियकुलके ऊपर पड़ा था ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! हैहयोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी सेवा करके सहस्र भुजायें प्राप्त की और इनके ही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुआ था। दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल, ॥ १७ ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्व और जिसमें अणिमादि सिद्धि विराजमान रहें ऐसा ऐश्वर्य भी उसने पाया था इसलिये यह राजा पवनके समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोंमें विना बाधाके भ्रमण करने लगा

राजोवाच ॥ किं तदहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीस्तेजो वीर्य यशो बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः॥चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवाम्भसि मदोत्कटः॥ वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥ विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतस्सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत् तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥२२॥

॥१९॥ एक समय यह सहस्रार्ज्जुन वैजयन्ती माला धारण कर बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीके जलमें क्रीड़ा करने लगा। मदोन्मत्तताके कारण केलि करते करते इसकी हजार बाहोंसे अचानक नर्मदाकी धारा रुक गयी ॥२०॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मती पुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था, जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गयी तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटा। नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुनके वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सह सका तब रावणने विहार करते हुए सहस्रार्जुनको

पराजित करनेका उद्योग किया । राजन् ! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगरमें बांधकर ले आया और बंदरके समान कुछ दिन अपने घरमें बांधे रहा और फिर अवज्ञा कर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिस तरह कार्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे माग गया उसका भी वर्णन हम करते हैं, तुम सुनो—एक समय सहस्रार्जुन मृगयाके लिये विजय वनमें घूमता घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आ पहुँचा ॥ २३ ॥ मन्त्री सेना, सामन्त और अश्वादि वाहन सहित इस राजाको अपने आश्रममें आया हुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपने कामधेनु गायके द्वारा भलीभांति इनका अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुँनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ,

स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥ २५ ॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥ २६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥

अतः उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेका अभिलाप किया ॥२५॥ इसलिये दर्प करके अपने पुरुषोंको आज्ञा दी कि ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय ले लो । यह आज्ञा पाकर सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकराती हुई बच्चे सहित गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकड़कर माहिष्मती नगरीको ले गये ॥ २६ ॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये । वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खाये हुए सर्पके समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २७ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूण सहित धनुष बाण ले बख्तर पहनकर महाकोधित हो उस राजाके पीछे दौड़े, जैसे

सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करना ही चाहता था कि इतनेमें ही उसने देखा कि भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहने हुए बाणादि आयुध सहित धनुष धारण किये महावेगसे आ रहे हैं और सूर्यके समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर उधर छिटक रही है ॥ २९ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीत हो अपने बचनेके लिये हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) शतघ्नी और शक्ति सहित सहस्र अक्षौहिणी भयंकर सेना भेज दी, परन्तु परशुरामजीने अकेले ही उस सब सेनाका संहार कर डाला ॥ ३० ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और वेग व मन पवनके तुल्य था, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वे अग्निके समान थे। वे अपना परशा चलाते हुए जहां जहां गये

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ एणेयचर्माम्बरमर्कधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद् रुषा ॥ ३२ ॥ अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुष्षु बाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥

उसी उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और उनके अश्व सारथि सब ही मारे गये ॥ ३१ ॥ हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा, धनुष, बाण और शरीर छिन्न भिन्न होनेसे प्रायः सब ही सेना युद्धमें गिर पड़ी यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आप ही संग्राम करनेके लिये चला आया ॥ ३२ ॥ और परशुरामजीका संहारकरनेको अपनी सब भुजाओंमें एकबार ही पांच सौ (५००) धनुष ग्रहण कर उनपर पांच सौ तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर चलाने लगा। हे राजन् ! महा तेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं। यद्यपि वह एक

धनुष चढ़ा रहे थ तो भी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्जुनके पांच सौ धनुष काट डाले ॥ ३३ ॥
धनुषोंके कट जाने पर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर महावेगसे रणभूमिमें खड़े
हुए परशुरामजीके ऊपर दौड़ा ॥३४॥ यह देखकर परशुरामजीने अति पैनी धारवाले कुठारसे सर्पके फणोंके समान उसकी सब भुजायें
काट डालीं और पीछेसे पर्वतके शिखरके समान सहस्रबाहुका मस्तक भी काट दिया। हे राजन्! सहस्रबाहुके मारे जाने पर उसके
दश सहस्र पुत्र भयके मारे भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बच्चेसहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके

पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः
प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः श्रृङ्गमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥३५॥
अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः
पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ॥
अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयाऽर्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमे
ष्ठ्यामगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥४०॥

हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंप दिया ॥ ३६ ॥ परंतु जिस समय परशुरामजीने अपना किया हुआ
कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ, अतः विराग दिखाते हुए बोले ॥ ३७ ॥ हे राम!
हे महाबाहु! तुम महापाप कर आये । कैसी खेदकी बात है? नरदेव राजा सर्वदेवमयस्वरूप है, उसको तुमने वृथा ही मार डाला ॥३८॥
हे तात! हम ब्राह्मण क्षमागुणसे ही पूजित हुए हैं। यह गुण साधारण नहीं है। इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुए हैं
॥३९॥ हे महाराज! जमदग्नि फिर बोले कि वत्स! क्षमासे ही सूर्यसम्बंधिनी प्रभाके समान ब्रह्मसम्बन्धिनी श्री शोभायमान होती है और

क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥४०॥ हे अंग ! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है। इसलिये तुम भगवान् हरिमें मन लगाकर तीर्थसेवा और यमनियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचरिते हैहयार्जुनवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—सोलहमें जमदग्नि वध, पुन सुन कियो हजार । परशु राम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुवंशावतंस परीक्षित ! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युत चेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महा० नवमस्कन्धे सोमवंशचरिते कार्त्तवीर्यार्जुनवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥

अच्छा" कह वनको चले गये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ किसी समय [illegible] रेणुका [illegible] जीके निकट जाकर वहां पद्ममाली चित्ररथनाम गन्धर्वराज हो अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ [illegible] लिये गंगाजीपर गयी थीं, विहार करते हुए गंधर्वराजके देखनेमें रेणुकाने [illegible] भी रेणुकाने न जाना ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीता जाना हुआ देख मुनिसे [illegible]

* शंका—रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तो भी दूसरे पुरुषको रमणका आनन्द देखती थी, यह बड़े सन्देहकी बात है, वृद्धावस्थामें विषयरमणका भान क्यों हुआ ?

उत्तर—बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी और अपने पिताके भवनमें रहती थी तो भी प्रत्येक कार्य चंचलपनके साथ करती थी। एक दिन बहुतसी सखियोंके संग [illegible] करनेके लिये एक नदी पर गयी। एक वृद्ध चिड़िया अपने प्रिय पतिके संग विहार कर रही थी, उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी तब चिड़ियाने [illegible] कुपित होकर शाप दिया कि रे दुष्टबुद्धे ! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूं परन्तु तू वृद्धावस्थामें और दूसरे पुरुषके संग क्रीड़ा करेगी, अर्थात् सब क्रीड़ाओंका सुख आंखोंसे देखना है, वही क्रीड़ा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धावस्थामें पाप किया कुछ दूसरा कारण नहीं था ?

११४

हुई और शीघ्र आ जलकलशको मुनिके आगे रख खड़ी हो गयी ॥ ४ ॥ इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मार डालो, परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ और परशुराम अपने पिताकी समाधि, एवं तपस्याके प्रभावको जानते थे, अतः जब इनसे मुनिने कहा कि तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मार डालो तब उन्होंने विचारा जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप दे देंगे और जो हम इनको मार डालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये तो ये हमारी माता और भ्राताओंको जिला भी सकते हैं। इसलिये जैसे ही पिताने आज्ञा दी वैसे ही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥ ६ ॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमद

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते नचक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः संचोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥ वरेण च्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥७॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे न शर्म क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥

ग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और परशुरामजीसे बोले कि इच्छानुसार वर मांगो। तब परशुरामजीने यह वरदान चाहा कि हमारे भ्राता और माता फिर जी जायँ और यह इस बातको भी भूल जायँ कि हमने इनको मारा है ॥७॥ वैसे ही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि "ऐसा ही हो" तब उन मरे हुओंमें प्राण आ गया और जैसे सोया हुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है वैसे ही ये सब उठ बैठे। हे राजन्! यह शंका मत करना कि परशुरामने ऐसा निंदित कर्म क्यों किया? यह परशुरामजी अपने पिताकेतपोबलको भलीभांति जानते थे, इसीलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मार डाला था ॥ ८ ॥ हे महराज! इधर कार्त्तवीर्यार्जुनके दशहजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाकर अपने पिताके वधको याद करके कहीं भी सुख स्वच्छन्दता पानेके लिये समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥ एक समय परशुरा

परशुरामजीके आश्रममें

मजी भ्राताओंसहित वनको गये थे तब कार्तवीर्यार्जुनके यह सब पुत्र अवसर पाकर पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥ १० ॥ इन सबने वहां आकर देखा कि परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान्में चित्त लगाये हुए अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाकर इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मरा हुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी, परंतु तो भी इन निष्ठुर क्षत्रियोंको दया न आयी और बलपूर्वक रेणुकाके केश पक ड़कर ले गये ॥ १२ ॥ तब परशुरामजीकी माता पति शोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम!! हा राम!! हा तात,! हा तात!!" कह बड़े जोरसे रोने और विलाप करने लगी ॥ १३ ॥ दूरसे "हा राम!" की पुकार और आर्तवाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरा

पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः

दृष्ट्वाऽग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ॥ राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्या र्तवत् स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान् स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥१६॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥

मजी भ्राताओं सहित अतिशीघ्र अपने आश्रममें आये और वहां देखाकि पिता मृतक हुए पड़े हैं ॥ १४ ॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख, शोक, क्रोध, झुँझुलाहट और पीड़ा उत्पन्न हुई कि सबके सब मोहितसे हो गये ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी "हा तात! हा साधो! हा धार्मिक! हमको छोड़कर आप स्वर्गको चले गये" इस प्रकार विलाप करने लगे और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लेकर मनमें विचारने लगे कि अब हम (अवश्य) क्षत्रियोंके वंशका ध्वंस करेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! परशुरामजीने अति शीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाकर उसके बीचमें अर्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर प

वड़ा भारी पर्वत बना दिया । जब वह सहस्रार्ज्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे तब ही इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी। मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी और भी भयानक हो गयी । फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्यार्ज्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई॥ १७ ॥ १८॥ इसके उपरान्त क्षत्रियजातियोंको अन्यायके वश हुआ देख पिताके वधका स्मरण कर परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चक स्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भर दिये ॥ १९ ॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाकर कुशोंके ऊपर रख विविध यज्ञोंसे

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः पृथवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्त मुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥२३॥स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥

सर्वदेवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥२०॥ उस यज्ञमें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा दक्षिणामें दे दी ॥ २१ ॥ अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोगोंको दे दीं । मध्यस्थल कश्यपजीको दान कर दिया, फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंको भी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें दी ॥ २२ ॥ इसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्तका स्नान कर अनन्त पापोंको दूर कर आकाशमें बादल रहित सूर्यके समान विराजमान होनेलगे ॥ २३ ॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृति ही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्त होकर सप्तर्षिमण्डलमें जाकर सप्तऋषि हुए॥ २४ ॥

* प्रश्न—हे राजन ! परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंको क्यों मारा था,
उत्तर—रेणुकाने सहस्रार्ज्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस बार अपनी छातीको कूटा था, इसलिये परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥

हे राजन् ! कमललोचन जमदग्निके सुत भगवान् परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वह भी वेदका प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमेंसे एक होंगे ॥२५॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड़ शांत चित्तसे अबतक महेन्द्रपर्वतपर विराजमान हैं। सिद्ध, चारण और गंधर्व गण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृगुकुलमें अवतार ले अनेक वार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! अब आगे सुनो । गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए । हे राजन् ! यह तपके प्रभाव से क्षत्रियपन छोड़ ब्राह्मण हो गये

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः॥उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः॥२६॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान्॥२७॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥२९॥ पुत्रं कृत्वा शुनश्शेपं देवरातं च भार्गवम् ॥ अजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एव प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनश्शेपः सभार्गवः ॥ ३२ ॥

॥२८॥ हे महाराज ! इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तो भी सभी पुत्र मधुच्छन्द कहे जाते थे ॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्तके पुत्र शुनःशेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस शुनःशेपके पिता अजीगर्तने महाराज हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ ममता छोड़ बेंच दिया था परंतु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोंकी स्तुति करके पाशबन्धनसे छूट गया ॥३१॥ वह देवता लोगोंसे रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ,

परंतु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेप था ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बड़े थे, उन्होंने शुनःशेपको बड़ा मानने में अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यह शाप दिया कि तुम अति दुर्जन हो अतः आजसे म्लेच्छ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यम पुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास आकर कहा कि "आप हमारे पिता हैं" हमको बड़ाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ यह कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एक वचन होकर बोले कि "हम सब ही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए" यह सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ॥ यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥ ३५ ॥ एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥ प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे परशुरामकृतक्षत्त्रवधविश्वामित्रान्वययोर्वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हुआ और हम संतुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण ! ये देवरात भी तुम्हारा कौशिकगोत्री है, क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है, इसलिये तुम इसके अनुगामी होओ । हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय क्रतु, मानादि और भी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मान लेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका हो गया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरांतरको प्राप्त हुए । बस, देवरातको सबसे बड़ा माननेका ही यह कारण है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां

षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ दोहा—सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय । ताके पांचों सुतनको, वंश कहों सब गाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! पुरूरवाके * आयु नामक जो पुत्र हुआ था, उसके पांच पुत्र हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उनके क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तांत अब कहता हूँ तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ २ ॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए; इनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ शौनकमुनि हुए ॥ ३ ॥ काश्यका पुत्र काशी, उसका पुत्र राष्ट्र और उसका बेटा दीर्घतमा दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरि हुए कि जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया। यह धन्वंतरि यज्ञ भोक्ता

श्रीशुक उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥२॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ॥ शुनकश्शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥३॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता ॥ धन्वन्तरिर्दीर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशस्स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥

भगवान्के अंश स्मरण करते ही रोगक्लेशका भय नष्ट करते हैं इन धन्वंतरिजीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ ॥ ४ ॥ ५ ॥ और उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई। इनके पुत्र द्युमान जो कि प्रतर्दन भी कहे जाते थे और शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहाते थे इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उनमेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ (६६०००) सहस्रवर्षतक युवा अवस्था रखकर राज्य भोग किया था। हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं

* इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है। जिसके वंशमें स्वयं भगवान् अवतार लेंगे उस वंशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा। इसलिये पुरूरवाके पांच पुत्रोंमेंसे छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं।

किया ॥ ७ ॥ इस अलर्कके संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई । उसका पुत्र सुनीथ सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्म ग्रहण किया ॥८॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए । उनका पुत्र वीतिहोत्र, उनके सुत भर्ग और उनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यह सब नरेश काशिवंशीय हुए । यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे हे परीक्षित ! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं, आप सावधान हो चित्त लगाकर सुनिये । रम्भका पुत्र रभस, उसका पुत्र गम्भीर, उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई, ॥१०॥ अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ । अब अनेनाके वंशका वर्णन करते हैं अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ, उसके शुचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । शुचिसे धर्मके सारथि त्रिककुद पुत्र उत्पन्न हुए, त्रिककुदके पुत्र

अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रम्भस्य रभसः पुत्रो गभीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥ ततश्शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम् ॥ इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३ ॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः ॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४ ॥ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयात्रजेः ॥ १५ ॥

शांतरय हुए; जो कि बड़े जितेन्द्रिय और ज्ञानी थे, इसलिये उन्होंने कोई पुत्र भी उत्पन्न नहीं किया ॥११॥ हे महाराज ! रजिके अत्यन्त बलशाली पांचसौ ५०० पुत्र हुए । एक समय जब देवता लोगोंने प्रार्थना की तब इस रजिने दैत्योंका संहार करके इन्द्रपुरी देवता लोगोंको दी थी, परन्तु फिर इन्द्रने उन रजिके चरणोंकी वंदना करते हुए अपनी पुरी उन्हें दे दी ॥ १२ ॥ १३ ॥ राजा रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इंद्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी मांगी, तब उनके पुत्रोंने नहीं दी और आप ही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेने लगे॥१४॥ इसलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचार विधानसे अग्निमें होम किया । उससे शीघ्र ही रजिके

सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट हो गये और फिर देवराजइन्द्रने सरलतासे उन सबको मार डाला, कोई शेष नहीं रहा * ॥१५॥ हे राजन्! क्षत्रवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय, ॥१६॥ जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ॥१७॥जयसेनका पुत्र संस्कृति, उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ ये सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुए थे। अब आगे नहुषके वंशका वृत्तांत हम तुमसे वर्णन करते हैं, तुम सावधानतापूर्वक चित्त लगाकर श्रवण करो ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चंद्रवंशानुवर्णने

अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ कुशात्प्रतिः क्षात्त्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥ इति श्रीभा० म० नव० चन्द्रवं० क्षत्रवृद्धवंशा०सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥ १ ॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥

नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा—अष्टादशमें नहुषसुत, भयो ययाति जुझार ॥ पद्मिन सुत तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित! जैसे शरीरमें छः इंद्रियें होती हैं, इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृत नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राज्यका परिणाम अर्थात् राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था, इसलिये पिताके राज्य देनेपर इसने राज्य ग्रहण नहीं किया; क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपनी आत्माको नहीं जानता ॥ २ ॥ इसमे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यमपुत्र

*शंका—बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे? जिस चीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला?
उत्तर—रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, सो राजा रजिके पुत्रोंको तेजोनाशकारी मंत्रसे अग्निमें होम करते थे इसी कारण राजा [illegible] पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला ॥

करनेकी आज्ञा दे
ययाति ही राजा हुआ था ॥ ३ ॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा दे
दी। आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाहकर पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्!
भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था। सो यह ब्राह्मण--क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था? ॥ ५ ॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी नहीं है। एक समय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक
कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीप ही एक उद्यानमें विहार करनेको गयी। वह उपवन अत्यन्त मनोहर

चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः॥कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवा
न् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः॥राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेन्द्र
स्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥६॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥
व्यचरत् कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य
दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि
पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानी
दमब्रवीत ॥ १० ॥

गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥
था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुके हुए थे और वहां निकट ही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥
शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते घूमते बागमें एक सरोवर देखा। यह सब कन्यायें किनारेपर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उड़ाकर
एक दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करने लगीं ॥ ८ ॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर चढ़े
इस ओरको आये। इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहरने लगीं ॥ ९ ॥
घबड़ाहटके मारे भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहन लिये, यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली ॥१०॥

अरे ! इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो, जिस प्रकार कुतिया यज्ञके हविको खा जाती है वैसे ही इस दुष्टाने मेरे पहरनेके कपड़े पहन लिये ॥११॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगत्‌की उत्पत्ति की है, जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कि ब्रह्मको धारण किये हुए हैं, एवं जिन्होंने वेदका शुभ मार्ग बताया है और सब लोगोंके नाथ सुरेश्वर गण और भग वान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवास भी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसे ही माननीय है और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुई हैं। इस दासीका पिता जो असुर है, वह भी हमारे पिताका शिष्य है, इस असत्यनकी चाल तो देखो कि इसने हमारे पहरनेके वस्त्र पहन लिये हैं, जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब गुरुकन्या देवयानीने

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः॥१२॥यान् वदन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृत वती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥ एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥ रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छ दा॥१५॥आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः शप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम्॥शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥

इस प्रकार तिरस्कार किया, तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीके समान बारंबार लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी और क्रोधके मारे होठ चबा चबाकर कहने लगी कि ॥ १५ ॥ अरी भिखमंगी ! अपने आचरणको विना जाने ही कटु वचन कहने लगी ? काकके समान क्या तुम हमारे गृहका मुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकारके कठोर वचन भी गुरुकन्या देवयानीको कहकर शर्मि ष्ठाका क्रोध शांत नहीं हुआ, बरन इसके वस्त्र उतार नंगी कर धक्का दे एक कुएँमें ढकेल दिया ॥ १७ ॥ देवयानीको कुएँमें ढकेलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आयी। भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते घूमते राजा ययाति भी उस वनमें आ पहुँचे और प्यासके मारे जल

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एषईशकृतो वीर संबन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥२३॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥

भरनेके लिये जैसे ही इस कुएँके समीप गये कि वैसे ही उन्होंने देवयानीको कुएँमें देखा ॥ १८ ॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नंगी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आयी और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहरनेको दे दिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥ १९ ॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेमभरे वचन राजा ययातिसे बोली ॥२०॥ हे महाराज ! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकड़ा है, अब यही प्रार्थना है कि जिस हाथको एकबार आपने ग्रहण किया उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पावे ॥ २१ ॥ हे वीर ! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तो भी मैं कुएँमें डूबकर मरती थी इसी अवसरपर आपका दर्शन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है, यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं होगा क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था, तब उन्होंने भी हमको शाप दिया था ॥२२॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होनेपर भी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देख यह निश्चय करके, कि मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता । देवयानीके वाक्यको राजा ययातिने अंगीकार किया ॥२३॥ इसके उपरांत जब राजा ययाति चले गये तब देवयानी उस स्थानसे रोती रोती पिताके निकट गयी और सब वृत्तांत निवेदन कर दिया

* इसमें यह कथा है कि-"बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करते थे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानी उनके साथ विवाह करना चाहा था, तब कच बोले कि तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो, फिर हम किस प्रकारसे तुम्हारा पाणिग्रहण करें ? तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि "तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी" तब कचने भी यह शाप दिया कि "तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह ही नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह ही न कर सकेगा ॥

अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमङ्गी कहा था और कुएँमें डालकर जो कुकर्म किया था, यह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥२४॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बड़ा दुःख हुआ। पुरोहिताईकी निंदा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते हुए वे दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंको जीत करेंगे, इसलिये शीघ्र ही मार्गमें जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और शिर नवाकर प्रसन्न करने लगा ॥ २६ ॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शांत हो गया और वह शिष्यसे बोले कि हे राजन्! हमारी कन्या जो कुछ कहे सो इसकी अभिलाषाको तुम पूर्ण करो, क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सकते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहता हुआ राजा वृषपर्वा खड़ा

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥२८॥ स्वानां तत संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ॥ तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥

रहा। तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि हमारे पिता जहां हमारा विवाह करें, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जाकर हमारी दासी हो ॥ २८ ॥ वृषपर्वाने विचारा कि गुरुजीके चले जानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आ पड़ेगा और यहां रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे। यह सोच विचार राजा वृषपर्वा गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंप दिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको दे दिया तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी ॥२९॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह कर दिया और भलीभांतिसे कह दिया, कि यदि तुम अपनी कन्याके

साथ शर्मिष्ठाको भी तुम्हें देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥ ३० ॥ हे महाराज परीक्षित ! किसी समय शर्मिष्ठाने देखा कि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये ऋतुकाल आ पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाकर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे । ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानके लिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि इसकी कामना पूरी करनेसे धर्म है, इसलिये शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपर भी उन्होंने दैवप्राप्त पितृयज्ञसे शर्मिष्ठाके साथ विवाह किया । राजा ययातिने धर्म समझकर ही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्ण की थी, कुछ कामके वश होकर नहीं की । इसके उपरांत देवयानीने यदु और तुर्व्वसु दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु,

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच॥अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥३७॥

अनु और पूरु, इन तीनों पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाको गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगयी और क्रोधके मारे मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चली गयी ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति अत्यन्त कामी थे । वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते करते अपनी प्रिय भार्याके पीछे पीछे चले गये, परंतु अनेक प्रकारसे प्रार्थना करके भी वह देवयानीको प्रसन्न नहीं कर सके ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तांत जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महाक्रोधित हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको कहने लगे—तू कामी होकर अन्यायके कर्म करता है । अरे मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढ़ापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करे ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत

दुःखित हुआ और निवेदन किया; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं। तब शुक्राचार्यजी बोले कि हां यदि कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहण कर ले तो उसकी वयस (अवस्था) से तुम इच्छानुसार कामभोग कर सकोगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्। इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बड़े पुत्र यदुको बुलाकर बोले—हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो ॥३८॥ बेटा ! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जराग्रस्त किया है, परंतु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं, इसलिये यह जरा तुम लो और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षतक मैं विहार करूँगा ॥ ३९ ॥ यह सुन कर यदु बोले कि पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुए हैं। आपकी इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता, क्योंकि विना

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥ यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातु मन्तरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रज वहत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥

ग्राम्यसुखोंके भोगे कौन पुरुष उस (कामभोग) से तृष्णारहित हो सकता है ? ॥४०॥ हे भारत ! इसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी, परंतु उन्होंने भी कोरा जवाब देदिया हे राजन् इन लोगोंको धर्मज्ञान नहीं था। यह अनित्य पदार्थको ही नित्य मानते थे। फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥ ४१ ॥ परंतु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा था, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था, सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययाति जरा लेनेके लिये बोले कि हे वत्स ! तुम अपने बड़े भ्राताओंके समान हमसे "नहीं" कहने योग्य नहीं हो ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार राजा ययातिने कहा तब पूरुने कहा कि

हे मनुष्येंद्र ! इस लोकमें कोई पुरुष भी पिताका प्रत्युपकार नहीं कर सकता है। पिता क्या साधारण पुरुष हैं? क्योंकि उनसे देहका सम्बन्ध है और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परमगतिको प्राप्त होजाता है ॥ ४३॥ तो भी जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आप ही कर देता है, वह उत्तम कहलाता है और जो आज्ञा पाकर कार्य करता है वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकर भी उस कार्यको नहीं करता है, वह पुत्र नहीं किन्तु पिताका विष्ठामात्र है और नीच कहलाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकाश करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥

कर ली। राजा ययाति भी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भलीभांति सुख भोगने लगा ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था। वह भलीभांति पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा और इच्छानुसार विषयभोग भोगने लगा। पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इंद्रियें प्रबल और अनिवारित हो गयीं ❋ ॥४६॥ और देवयानी भी मन, वचन, कायसे व और भी सब भांति

❋ शङ्का-राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करता था, इस बातसे जान पड़ता है कि, पुत्रने ही अपनी माताके साथ रमण किया, क्योंकि राजामें रमण करनेका सामर्थ्य होता तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता? इसने यह महा पाप क्यों किया? जो कोई ऐसा कहे कि पुत्रको पिताकी आज्ञा करनी चाहिये, यह भगवान्की बनायी मर्यादा है और धर्मशास्त्रका भी यही वाक्य है, सो सत्य है। निःसन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये, परन्तु न्याय विचारकर कार्य करना चाहिये, क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन हो जाय और पिता आज्ञा करे कि मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी, अथवा बुरी वस्तुको ला दे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सित वस्तुपर दृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिये फिर पुत्रने ऐसे पिताके वचन क्यों माने?

उत्तर-शर्मिष्ठाके ओष्ठ पान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और वह दैत्यकी कन्याका पुत्र था, इसलिये दोनों पापी मिल गये इसीसे महापाप किया ॥

एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी ॥४७॥ हे राजन् ! राजा ययाति भी अनेक अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ कर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥ ४८ ॥ अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादलोंकी पंक्ति) के समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत विरचित होकर यावत् इंद्रियवृत्ति तावत विचित्र रूपसे प्रकाश पाती हैं और इसी इंद्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायारहित मनोरथ पाकर प्रकाशहीन होते हैं ॥ ४९ ॥ राजा ययातिने विरागी होकर उन्हीं अन्तर्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार सहस्र वर्षतक अपगाढ़ सुख पञ्च इंद्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करके भी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भांतिसे तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥५१॥ इति श्रीम

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः॥ सर्वदेवमयं देव सर्ववेदमयं हरिम् ॥४८॥ यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे ययातिचरितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोपह्नवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन् प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥

द्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा--नृप ययाति निजप्रियाको, अजसम चरित सुनाय । बहुरि मोक्षभागी भयो, उन्निसवें अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित ! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करते करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान वैराग्ययुक्त हो अपनी परम प्यारी देवयानीसे वर्णन करने लगे ॥ १ ॥ कि हे भार्गवि ! हमारे समान कोई कामी एक गांवमें रहता था । वनवासी धीरगण उसके आचरणोंपर अब तब कभी कभी शोक किया करते हैं । उस पुरुषकी अनुष्ठान की हुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥ २ ॥ " एक छाग (पुरुष)

ने वन (संसार) में अपने प्रिय विषयको ढूँढ़ते ढूँढ़ते अचानक एक छागीको कर्मके वश कुएँमें गिरी हुई देखा ॥ ३ ॥ इस अत्यन्त कामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएँके किनारे अपने सींगोंसे मट्टीखोदकर उसके निकालनेका मार्ग कर दिया ॥४॥ उस मार्गसे वह कांतियुक्त छागी कुँएसे निकल उसी छागका अभिलाष पूर्ण करने लगी। जब उस बकरीने इस बकरेको वरण कर लिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे ताजे, रति करनेमें समर्थ, वीर्यके सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर उस छागको चाहने लगीं ॥५॥ इसलिये वह एक ही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाता हुआ उनके साथ केलि करने लगा। वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँस गया कि अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएँमें गिरी थी, और छागियोंको अपने से अधिक

तस्या उद्धरणोपाय बस्तः कामी विचिन्तयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभ कोविदम्॥५॥स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यते॥६॥तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया॥विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद् बस्तकर्म तत् ॥७॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम्॥इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥८॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम्॥९॥तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा॥लम्बन्तं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित्॥१०॥

प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करता हुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई थी उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सह सकी ॥७॥ इसलिये वह सुहृदरूपी, वास्तवमें दुर्हृद, क्षणसौहृद, इंद्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़कर दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई ॥ ८ ॥ वह छाग तो बहुत ही स्त्रैण था, इस लिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये उसके पीछे पीछे जाने लगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न कर सका ॥ ९ ॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काट डाले अर्थात् उसको भोग करने योग्य न रखा, परंतु वह ब्राह्मण उपाय भी

जानता था, इस लिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेका सामर्थ्य दे दिया ॥ १० ॥ हे भद्रे ! इस प्रकारसे वह छाग सवृद्धवृषण अर्थात् गतिशक्तियुक्त हो कुएँमें निकाली हुई उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा, परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ" ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! इस छागके समान हम भी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्त दीन हो गये हैं। तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी भूल गये हैं ॥ १२ ॥ हे भद्रे ! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो जो वस्तु हैं वे सब भी कामसे हत हुए पुरुषके मनको संतुष्ट नहीं कर सकती हैं ॥ १३ ॥ भोग विलासके द्वारा कामकी किसी प्रकार शांति नहीं होती वरन् घृतद्वारा अग्निके समान विषयभोग

संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥११॥ तथाऽहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥

बढ़ता ही जाता है, जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंमें अमंगलभाव अर्थात रागद्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबसे समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशायें सुखदायिनी हो जाती हैं ॥ १५ ॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड़ सकते और प्राचीन पुरुषके पास भी जो पुरानी नहीं होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है, उस तृष्णाको सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि शीघ्र छोड़ दें ॥ १६ ॥ और स्त्रीका संग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यक है, अतः माता बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एक आसनपर बैठना ठीक नहीं, क्योंकि इंद्रियें अतिशय बलवान है, विद्वान पुरुषको भी

खैंच लेती हैं ॥१७॥ हे भद्रे ! विचार करके देखो बारम्बार विषयकी सेवा करते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष बीत गये तो भी दिन दिन तृष्णा बढ़ती ही जाती है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं पहिले तृष्णाको छोड़कर फिर ब्रह्ममें मन लगाऊंगा, फिर सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूंगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! जो पुरुष देखे सुने संसारको भी आत्मनाशक और असत् जानकर उसका अनुध्यान व भोग छोड़ देते हैं, वे ही देखे सुने विषयके अनुध्यानादिमें पंडित और आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! राजा ययातिने इस प्रकार अपनी स्त्रीको समझाकर छोटे पुत्र पुरुको उसकी युवा अवस्था लौटाकर उससे अपनी जरा अवस्था

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ॥ तथाऽपि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्रे उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥

ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥ २१ ॥ पूर्वदिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्व्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको राजा बनाया ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पुरुको ❀ देकर और बड़े बेटोंका इस पूरुकी आज्ञामें रखकर आप वनको चले गये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छः

❀ शङ्का—राजा ययाति बड़े बुद्धिमान् और गुणनिधान थे; तो भी ऐसा बड़ा अन्याय क्यों किया ? कि बड़े पुत्रोंको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य दिया क्या कारण ? उत्तर—कामी लोभी क्रोधी ऐसे ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं, परंतु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते, नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं, अर्थात् न्यायमें दुःख देखेंगे तब न्यायको त्याग देंगे अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे । जिसमें शरीरको सुख हो उसीको पुण्य जानते हैं और जिसमें शरीरको कष्ट हो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुछ नहीं देखते । इसीसे ययाति राजाने छोटे बड़ेका विचार नहीं किया, जिसकी देहसे सुख पाया उसीको राज्य दिया ॥

इंद्रियोंके द्वारा सुख भोगा था, परंतु उसने इस प्रकारसे स्पृहा छोड़ एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड़ दिया, जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़ देते हैं ॥२४॥ राजा ययाति संगको छोड़कर आत्मानुभवसे त्रिगुणात्मकरूप लिंग निरस्त कर और भली भांति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें शीघ्रही भगवद्गतिको प्राप्त हो गया ॥ २५ ॥ हे महाराज ! स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासके समान जो इतिहास कहा गया, देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात् निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और उस अबलाने प्याऊपर जानेवालोंके समान ईश्वरतंत्र सुहृद्गणोंका वास मायाविरथित समझा, स्वप्नके समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सबका संग छोड़कर भगवानमें मन लगाके अपने शरीरको भी छोड़ दिया ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि देवयानीने

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग आत्मानुभूत्याविधुतत्रिलिङ्गः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥२६॥ सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥ सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नव० ययातिविरक्तिवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥१॥ जन्मेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत्॥२॥

किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, सो तुम सुनो । भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिबृहत् हो, इसलिये मैं आपको नमस्कार करती हूँ । इस तरह परब्रह्म परमात्माको पुकारती हुई मुक्त हो गयी ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ययात्युपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–ययातिसुत पुरुवंशमें, भये नृपति दुष्यंत । भरत पुत्र तिनके भये, भक्तशिरोमणि संत ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरत ! अब पूरुके वंशका वर्णन करते हैं, सो तुम सुनो इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है । अनेक राजर्षि इस पूरुवंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुसे जनमेजय उत्पन्न हुए । जन्मेजय

का पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीणने जन्म ग्रहण किया, उसके पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, । चारुपदके यहाँ सुद्युने जन्म ग्रहण किया, उससे बहुगव उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके यहाँ रौद्राश्व जन्मा ॥ २ ॥ ३ ॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम यह हैं—ऋतेयु, कक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्नतेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु हुआ । हे राजन् ! जिस प्रकार इंद्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसे ही यह दश पुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन रौद्राश्वके दश पुत्रोंमेंसे ऋतेउके रंति भार नामक एक पुत्र हुआ । उसके तीन पुत्र हुए यथा—सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ । इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथके पुत्र कण्व हुए ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और उससे

तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥६॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥ दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥ ८ ॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ॥ ९ ॥

प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुए हे राजन् ! रतिभार नामका बड़ा बेटा सुमति और उसका पुत्र रैभ्य और इस रैभ्यके ही पुत्र राजा दुष्यंत हुए ॥७॥ एक समय, यह राजा दुष्यंत आखेट करते करते वनमें प्रवेश कर महर्षि कण्वके आश्रममें पहुँचे वहांपर एक स्त्री बैठी हुई लक्ष्मीके समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कर रही थी । देवमायाके समान उस तरुणीको देखते ही राजा दुष्यंत मोहित हो गया ॥८॥ इसके उपरांत कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाकर उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया । हे राजा परीक्षित् ! उस सुन्दरीको देखते ही राजा दुष्यन्तको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था और मानो उसको देखकर जङ्गलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी

पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥ किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ ११ ॥ शकुन्तलोवाच ॥ विश्वमित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १२ ॥ आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १३ ॥ दुष्यन्त उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ॥ गान्धर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥

वह सब जाती रही ॥ ९ ॥ कामपीड़ित हो हँसते हँसते मधुर वचनसे राजाने पूछा कि हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥ १० ॥ और इस निर्जनवनमें क्या करनेकी वासना किये हुए हो ? हे सुमध्यमे ! पूरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है इसलिये स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम किसी क्षत्रियवंशकी बेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूँ, मेनका नामक अप्सरा मेरी माता है स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोड़कर चली गयी, इसलिये वास्तवमें क्षत्रियकी कन्या हूँ, इस बातको भगवान् कण्व ऋषि भलीभांति जानते हैं। हे वीर ! हम आपका कौनसा कार्य करें ! सो आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी पूजा भी आप अंगीकार करें, यहां नीवारोंके चावल हैं, भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको यहां ही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि हे सुन्दरी ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है, वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है; क्योंकि राजकन्यायें समान वरको स्वयं वरण कर लेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी यह बात सुनकर कहा कि 'हां' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलामें गन्धर्व विवाह किया ॥ १५ ॥ हे भारत ! अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरे दिन अपने नगरको चले गये। तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥

महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमें ही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया कर दी। हे राजन्! यह कुमार बालकपनसे ही अपने बलसे सिंह पकड़ करके उनके साथ खेला करता था ॥ १७ ॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुन्तला भगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गयी ॥१८॥ परंतु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया परन्तु जिस समय राजा दुष्यंतने शकुन्तलाका निरादर किया तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रकट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥१९॥ हे राजा दुष्यन्त ! माता भस्त्रा अर्थात् चर्मपात्रवत् आधारमात्र पिताका ही पुत्र है, क्योंकि आत्मा

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १७ ॥ तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १८ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ १९ ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ २० ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २२ ॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ॥ २३ ॥

ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुन्तलाका अपमान न करो * ॥ २० ॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है पुत्र उसका ही यमालयसे निस्तार करता है और शकुन्तला यह सत्य कहती है, तुमने ही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥ २१ ॥ हे भारत ! आकाश वाणीको सुनते ही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्त स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी पुत्र यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे। महाराज भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गायी जाती है ॥ २२ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र

* शंका—थोड़े ही दिनमें राजा दुष्यन्तने अपने चरित्रको भूलकर शकुन्तला और अपने पुत्रको क्यों नहीं ग्रहण किया?
उत्तर—बड़ा बुद्धिमान राजा दुष्यन्त था और यह भले प्रकार जानता था कि यह हमारा ही पुत्र है और शकुन्तला हमारी स्त्री है, परंतु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था. आकाशवाणीसे सबको विदित हो गया तो राजाने ग्रहणकिया ॥

और दोनों चरणोंमें पद्मकोशका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराकर राजाधिराज हो गंगाजीके किनारेपर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की थी इस राजा भरतने ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तीरपर अश्वमेध यज्ञके अठत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोडे) यथाक्रमसे बाँधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन्! श्रेष्ठगुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी। उस अग्निप्रचयनकालमें हजारों ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई गायोंको एक एक बद्वमें भाग करके ले गये थे. (एक बद्व तेरह सहस्र चौरासी १३०८४ का होता है) ॥२५॥ और महाराज भरतजीने एकबारमें ही एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोड़े बांध राजा लोगोंके विभवको भी विस्मित

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु ॥ २४ ॥ भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२५॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ॥ दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २६ ॥ मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २८ ॥ किरात हूणान्यवनानन्ध्रान् कङ्कान् खशाञ्छकान् ॥ अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥ जित्वा पुराऽसुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥

हर देवताओंपर आक्रमण किया था। उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्य [illegible]
॥ २६ ॥ इन महाराज भरतने [illegible] कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण [illegible]
॥२७॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, इन कर्मोंको पहिले हुए नृपतिगण भी प्रा[illegible]
[illegible] नहीं कर सके जैसे [illegible] स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता ॥२८॥ [illegible]
हूण, यवन, पौंड्र, कंक, खश, शक, और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंको और सब म्लेच्छोंको [illegible]

वोंने देवता लोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें ले गये थे। महात्मा भरतजीने उन सब देवांगनाओंका उद्धार किया था ॥ ३० ॥ हे महाराज! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीमें प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार राज्यभोग करके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव, अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्म प्राणादि मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोड़ लिया ॥३२॥ इन भरतजीके, विदर्भदेशके राजाकी तीन बेटियाँ सुसम्मत स्त्रियें थीं। एक समय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं कि वारंवार अनुहारका विचार

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३१ ॥ स सम्राट् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥ तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥ जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते ॥ ३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥

कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्याग दे, इसलिये अपनी अपनी सन्तानको मार डाला ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। उस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके हाथमें भरद्वाज नामक एक पुत्र समर्पण किया ॥३५॥ हे परीक्षित्! अब भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं। अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था। परन्तु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो? इसलिये गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परन्तु बृहस्पतिजी कामान्ध हो रहे थे। उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि "तू अंधा हो जा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाल

दिया ॥ ३५ ॥ बृहस्पतिजीके शापसे उतथ्यतनय दीर्घतमा हुए थे, परंतु उन्होंने अपनी एडी प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया, परंतु उस भूमिपर गिरे हुए वीर्यसे उसी समय एक कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे हमको व्यभिचारिणी जानकर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवता लोगोंने बृहस्पति और ममताके विवादरूप इस कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ पुत्रको त्याग करके वीर्यसे हुई देख देवताओंने ममतासे कहा अरी मूढ स्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र है। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं, तुम इस बालकको पालो और बृहस्पतिने भी कहा कि तुम भी इसका पालन पोषण करो, क्योंकि तुम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है। पर पिता माता द्वाज अर्थात् बृहस्पति और ममता झगड़ा करते करते इस बाल

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्किताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥ मूढे भरद्वाज मिमं भर द्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥ चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथ मात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे शकुन्तलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गस्संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

कको छोड़कर चले गये, इसलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ, क्योंकि भर (पोषण) और (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेमें 'भरद्वाज' नाम हुआ ॥ ३७ ॥ हे राजा परीक्षित ! देवता लोगोंके इस प्रकार कहते रहनेपर भी व्यभिचारमें उत्पन्न हुए उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने इस बालकको त्याग दिया। तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था। जब भरतवंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ, तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको दे दिया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—भरतवंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ। तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे महाराज परीक्षित ! वंशके वितथ होनेपर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया, इसलिये इन

भरद्वाजका नाम वितथ हुआ। इन वितथका पुत्र मन्यु, उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ ॥ १ ॥ उसका पुत्र गुरु और रंतिदेव हुआ । हे राजन् ! इन रंतिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोंमें गायी जाती है ॥२॥ इस राजाका चित्त निरन्तर व्ययमें नियुक्त था। वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता था उसे तत्काल दान कर देता था। वह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ ३ ॥ और विना जलपान किये राजाको अड़तालीस दिन व्यतीत हो गये। सब परिवार विना आहारके कष्ट पा रहा था और आप भी भूख प्यासके मारे कम्पायमान हो रहे थे। उसी समय घृत, खीर और हलुआ भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ उसको पाकर राजा प्रातःकाल

गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पाण्डुनन्दन ॥ १ ॥ रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयाव तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥ तस्मै सव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयाऽन्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षिते ॥ ८ ॥

भोजन करनेको चले जाते थे उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आ गया ॥५॥ तो राजाने श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरि को देखते हुए आदरपूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके दिया और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ इसके पीछे उस बचे हुए अन्नादिकोअपने सब परिवारको बांटचूंट आप स्वयं भोजन करने जा रहे थे कि उस अवसरपर एक और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो इन रंतिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचे हुए अन्नमेंसे उस शूद्रको भी भाग दिया ॥ ७ ॥ एक शूद्र अतिथि आकर विदा हो चला गया कि इतनेमें ही और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहां आया और आकर

बोला—"मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुत ही भूंखा हूँ" सो इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो ॥ ८ ॥ राजाने उसका बहुत ही आदर किया और सम्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामीको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहां बचा था, उसके ही पीनेका राजाने उद्योग किया कि इतनेमें ही एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणासहित यह वचन बोला कि हे महाराज ! मैं बहुत थक गया हूँ, सो मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रंतिदेवको अत्यन्त दया हुई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्ट सिद्धि युक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं करते । हमारी प्रार्थना है कि हम

स आहृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों और इमसे सब प्राणियोंका दुःख दूर हो जावे ॥ १२ ॥ यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना करता है, इसके जीवनके लिये जल अर्पण करते ही हमारी क्षुधा, तृष्णा, थकावट, अंगोंका घूमना, कातरता, क्लांति, खेद विषाद, मोह सब ही निवृत्त हो गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर स्वभावसे ही दयालु महाराज रंतिदेवने स्वयं प्याससे मारे म्रियमाण होनेपर भी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल, दे दिया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फलदान किया करते हैं यह सब महाराज रंतिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनायी हुई मायाने अपने

अपने स्वरूपको दिखाते हैं ॥ १५ ॥ परंतु महाराज रंतिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया और निःसंग व स्पृहारहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछ भी नहीं चाहा ॥ १६ ॥ हे राजन् ! रंतिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नके समान आत्मामें ही विलीन हुई थी ॥ १७ ॥ उसके अनुगामी जनगण इन राजा रंतिदेवके संसर्गप्रभावसे सब ही नारायणपरायण योगी हुए थे ॥१८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया, अब गर्गके वंशका वृत्तान्त कहते हैं सो तुम सुनो । गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए, शिनिसे गार्ग्य, ये

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निस्सङ्गो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ॥ माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥

ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो महावीर्यसे दुरितक्षय उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र त्रय्यारुणि, कवि और पुष्कराणि ये तीनों जने क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे। अब मन्युके पांच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़ेका वंश सुनो । बृहत्क्षत्रका पुत्र हस्ती×हुआ, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥१९॥२०॥ इस हस्तीके अजमीढ * द्विमीढ और पुरुमीढ यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें अजमीढके वंशसे प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥२१॥ और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु

× इसी राजा हस्तीने "हस्तिनापुर" बसाया था जो अब तक गंगा भागीरथीके किनारेपर उपस्थित है ।

* इसी अजमीढ़ने 'अजमेड़' नामक नगर बसाया था जो आजकल पुष्करजीके निकट 'अजमेर' नामसे विख्यात है ।

हुआ। बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय, इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥२२॥ जयद्रथका पुत्र विपद, उसका पुत्र सेनजित्, सेनजित्के पुत्र रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स ये चार पुत्र हुए ॥ २३ ॥ उनमें रुचिराश्वके पार नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। हे राजन्! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ (१००) पुत्र हुए ॥२४॥ और इसी नीपने शुककी कन्या + कृत्वीके गर्भमें ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया, योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ जिसने जैगीषव्यके उप

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात सुतम् ॥ २५ ॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ॥ कृती हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥

देशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था। इस विष्वक्सेनसे उदक्सेनने जन्म लिया, जिसके भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित्! ये सब महीपाल बृहदिषुके वंशमें उत्पन्न हुये थे ॥ २६ ॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान, उसके यहाँ सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा। सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया, उसका पुत्र सन्नति, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्यनाभसे योगविद्या सीखकर प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढ़ाया ॥ २८ ॥

+ शङ्का–राजा नीपने क्षत्रिय होकर शुकदेवजी ब्राह्मणकी कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया? [illegible] ब्राह्मण [illegible] का विवाह हमने आज ही सुना है, कभी देवयानीकी बात तो शापसे हो गयी, परन्तु यह कैसे हुआ?

उत्तर–तीन लोकमें शुकदेवजीकी कन्या सब ब्रह्मज्ञानियोंमें परम ब्रह्मज्ञानी थी और ब्रह्मज्ञानी ही पुरुषको अपना पति करना चाहती थी, और [illegible] राजा नीप बड़ा ब्रह्मज्ञानी था, ऐसा विचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति बनाया, कुछ संसारकी रीतिसे यह विवाह नहीं हुआ था ॥

कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी उत्पत्ति हुई। उग्रायुधके क्षेमा, उसका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय, ॥२८॥२९॥ उसका पुत्र बहुरथ हुआ हे राजन् ! हस्तीके पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा। अजमीढकी नलिनी नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र पुरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया, अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥३१॥ अर्थात् मुद्गल, यवीनर, बृहदश्व, काम्पिल्य और संजय

संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिस्सुतस्ततः ॥ ३० ॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः सञ्जयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पाञ्चालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशी दर्शनात्किल ॥ ३५ ॥

ये पाँच पुत्र जन्मे। भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि हमारे यह पाँच पुत्र पांच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ये पांच देशका पालन कर सकते हैं। इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई और पाञ्चाल देश इनके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभ नर-मिथुनने जन्म लिया। इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी हुई थी, उसी समय अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥३४॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ, यह धनुर्वेदको

भलीभाँतिसे जानता था उसका पुत्र शरद्वान् हुआ कि जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डेके समूहमें गिरा था। और फिर इसी वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआ जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया [illegible] इस जोड़ेको देखा और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया, उस नर-मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका [illegible] हुआ जो कि द्रोणाचार्यकी स्त्री हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सोमवंशानुवर्णने [illegible] ॥ २१ ॥ दोहा-दिवोदासको वंश [illegible] बाईस। जरासन्ध औ धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥ श्रीशुकदेवजी राजा [illegible] कि नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, [illegible] पुत्र च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सहदेव और उसका [illegible] हुआ। इस सोमकके सौ १०० पुत्र थे, उनमें जन्तु

शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद् दृष्ट्वा कृपया[illegible] चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे [illegible] भरतवंशेऽजमीढादिचरितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रायुश्च दिवोदासाच्[illegible]सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥ धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पाञ्चालका इमे ॥ योऽजमीढसुतो [illegible] ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोस्सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥

बड़ा था ॥ १ ॥ और पृषत छोटा हुआ। इस पृषतसे सर्व सम्पद् युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्हीं राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ ॥२॥ और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए, धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब भर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमें हुए और पञ्चालके राजा थे ॥ ३ ॥ हे राजा परीक्षित! अब अजमीढके वंशका वृत्तांत कहते हैं सो [illegible] अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ, इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, जह्नु और निषधाश्व यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ, कृतीका पुत्र उपरि

चर नामक वसु हुआ, उससे बृहद्रथ प्रभृति उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं, यथा-कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि। यह सब ही चेदिप अर्थात् चन्देलीके राजा थे ॥६॥ बृहद्रथसे कुशाग्रका जन्म हुआ, उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत सत्यहित, सत्यहितका पुत्र पुण्यवान् और उसका बेटा जह्नु हुआ। हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्माथा ॥ ७ ॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवा दिया। फिर जराराक्षसीने उसको देख "जीवित हो जीवित हो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीड़ा करते उन दोनों खण्डोंको जोड़ दिया था उससे ही यह बालक सर्वावयवसम्पन्न हो जरासन्ध नामक हुआ ॥ ८ ॥ इस जरा

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथाद् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥६॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जह्नुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ॥ जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ॥९॥ ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥ देवापिश्शन्तनुस्तस्या बाह्लीक इति चात्मजाः॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः॥ १२ ॥ अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥

सन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उससे श्रुतश्रवाको उत्पत्ति हुई। हे राजन्! कुरुपुत्र परीक्षितके सन्तान नहीं थी। जह्नुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इस सुरथसे विदूरथका जन्म हुआ। उसका पुत्र सार्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक, राधिकसे अयुतायुने जन्म लिया ॥ १० ॥ अयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि, उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया और दिलीपके प्रतीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११॥ इन प्रतीपके देवापि, शन्तनु और बाल्हीक नामक तीन पुत्र हुए। उनमें बड़ा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोड़कर वनमें चला गया था ॥ १२ ॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए। पूर्वजन्ममें इनका नाम महाभिष था, यह शन्तनु अपने

हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते थे वही युवा हो जाता था ॥ १३ ॥ और शांति प्राप्त कर लेता था, इस कर्मके ही करनेसे
इनका नाम शन्तनु हुआ इन शंतनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने बारह वर्षतक पानी नहीं वर्षाया ॥ १४ ॥ तब राजाने उद्विग्न होकर
ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूछा, ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतना ही कहा कि महाराज ! बड़े भाईके रहते हुए जो पुरुष राज-सिंहासन
पर बैठता है वह अपने समान पुरुष होनेपर भी परिवेत्ता ही हो जाता है आप परिवेदन दोषसे दूषित हुए हैं। सो इस दोषको दूर करनेके
लिये शीघ्र अपने बड़े भाईको बुलाकर उनको राज्यभार दे दो। तब देवता जल वर्षावेंगे और राष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके
यह वचन सुनकर राजा शंतनु उसी समय वनको चले गये और "प्रजापालन करना ही राजाका परमधर्म है, अतः आप राज्यको स्वीकार

शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥१४॥ शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः
परिवेत्ता त्वमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत ॥
तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्षह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलाप
ग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥ सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥१८॥ शलश्च शन्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥१९॥ शस्त्रभृताग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञेचित्राङ्गदः सुतः ॥ २० ॥

कीजिये" यह कहकर अपने बड़े भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे। परंतु इनसे पहले शंतनुके मन्त्री अश्वशारने देवापिको
पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था। ब्राह्मणोंका पाखण्डमतानुयायी कथा-
द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे परिभ्रष्ट हुए तब उन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेदशास्त्रकी निंदा करने लगे, तब वेदोंकी निंदा
करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे, फिर उसके उपरांत शंतनुके राज्य ग्रहण करनेमें और कोई दोष नहीं रहा
फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी। तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बन कर कलाप ग्राममें रहते हैं ॥१६॥१७॥ जब कलियुगमें चन्द्र
वंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके पहिले वह देवापि फिर चन्द्रवंशको स्थापित करेंगे शंतनुके पुत्र राजा हुये भागवतकी उत्पत्ति [illegible]

इस सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। हे परीक्षित्! इन शंतनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुआ था। यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत विद्वान् और वीर जनोंमें अग्रगण्य थे। इन्होंने संग्राममें * परशुरामजीको भी प्रसन्न किया था। हे राजन्! इन शंतनुसे दाश (धीवर) कन्यामें चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र जन्मे * ॥१८॥१९॥२०॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ और बड़ा पुत्र चित्रांगद, जिसको किसी गन्धर्वने मार डाला था, शंतनु राजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दाशकन्या (सत्यवती) में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ॥२१॥

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥ वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥२२॥ मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्य मिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे ॥ तयो रासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥

हे परीक्षित! उनके जन्म होनेसे पहले समस्त वेद गुप्त हो गये थे और उनसे ही हमने श्रीमद्भागवत शास्त्र पढ़ा था, जो कि इस समय आप को सुना रहे हैं॥ इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे, परंतु वह सब शिष्योंको छोड़कर हमको, जो उनके स्वभावसे जानकार थे परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या सुनाते थे, क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्र था इन विचित्रवीर्यने काशिराजकी दो कन्या अंबिका, अम्बालिकासे विवाह किया, इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लड़कर छीन लाये थे, इन दोनों स्त्रियोंमें विचि

* शङ्का-रामचन्द्रके सामने त्रेतायुगमें परशुरामजी अपना धनुषबाण रखके उत्तर दिशामें तप करने चले गये थे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापरयुगमें भीष्मजीके संग युद्ध कैसे किया, उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहांसे आया?

उत्तर-जब परशुरामजीने रामचन्द्रके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उस समय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं की थी कि आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करेंगे, इसलिये अम्बिकाको अत्यन्त दुःखी देखकर और अपने शरण आयी जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके संग युद्ध करने लगे॥

* उपरिचरवसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण किया था! इसलिये यह दाशकन्याके नामसे विख्यात हुई, वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था।

त्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करते थे, इसलिये अल्पकालमें ही यक्ष्मारोगसे ग्रस्त हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥२२॥२३॥२४॥ इनके कोई संतान नहीं हुई, तब इनके सहोदर भगवान् वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र, पांडु विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये इनमें धृतराष्ट्रकी ॥ २५ ॥ स्त्री गांधारी हुई, इस धृतराष्ट्रके गांधारीसे सौ (१००) पुत्र जन्मे, उन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बड़ा था, और दुःशला नामक एक कन्या हुई ॥२६॥ हे राजन्! पांडुराजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे, वहां उन्होंने मैथुन करते हुए एक मृगका वध किया, तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तब तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इन राजा पांडुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इंद्रके वीर्य द्वारा क्रमसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए और इन्हीं

क्षेत्रेऽप्रजस्य व भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥ गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥२६॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोःकुन्त्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥ नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्त्रयोः ॥ द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥२८॥ युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथाऽपर ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥

राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ इन पांचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पांच पाण्डवोंसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए जो कि तुम्हारे पितृव्य थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ अर्थात युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ। हे राजन्! इन पांच पाण्डवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुए थे युधिष्ठिरकी पौरवी नामक जो दूसरी भार्या थी, उसमें देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भीमसेनके हिडम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म ग्रहण किया। भीमसेनके काली नामक एक

और भी भार्या थी जिससे सर्वगत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ सहदेवकी दूसरी भार्या विजया नामक पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नामक एक पुत्र उत्पन्न किया॥ २९॥॥३०॥३१॥ नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निर्मित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे राजन्! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न किया और मणिपुराधीशकी बेटीमें अर्जुनने बभ्रुवाहन नाम पुत्र उत्पन्न किया था, वह पुत्र यद्यपि अर्जुनका बेटा था, तो भी नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहाया था ॥ ३२ ॥ और इनकी सुभद्रा नामक और एक भार्या थी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया। यह अभिमन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और महावीर थे। हे महाराज परीक्षित्। उनके ही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥३३॥ हे राजन्! अश्वत्थामाके

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथाऽर्जुनः॥इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपुरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥ परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रश्शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥

छोड़े ब्रह्मास्त्रके तेजसे जब कुरुवंशका नाश हो रहा था, तब तुम भी उससे नष्ट होते थे, परंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरली मनोहरके प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये थे ॥ ३४ ॥ हे तात! तुम्हारे इस समय जन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन यह चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित्! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके मारे सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंका होम कर देगा ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे यह पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेय वंशके "तुर" नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित्!

तुम्हारे पुत्र जनमेजयके शतानीक नामक एक पुत्र होगा। यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढ़ेगा और शौनक मुनिसे
ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्व
ध्वजकी उत्पत्ति होगी। उसका पुत्र असीमकृष्ण और उसका पुत्र नेमिचक्र होगा ॥ ३९ ॥ इस नेमिचक्रके राजकालमें हस्ति
नापुर गंगाजीमें डूबेगा तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा। इस नेमिचक्रके उक्त नामक सन्तान होगी।
उसका पुत्र चित्ररथ और उससे कविरथ जन्मेगा ॥ ४० ॥ कविरथका पुत्र वृष्णिमान और उसका पुत्र सुषेण नामक राजा
होगा। सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा, उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥ ४१ ॥ सुखीनलका

सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या
कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ
महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ पारिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृप
ञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ४२ ॥ शतानीकाद् दुर्दमन
स्तस्यापत्यं वहीनरः ॥ दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिस
त्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥
भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥

पुत्र पारिप्लव होगा, उससे सुनय जन्म धारण करेगा, उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उसके दूर्व नामक
पुत्र होगा और उसका पुत्र तिमि होगा तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी। उसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म
धारण करेगा ॥ ४२ ॥ शतानीकका पुत्र दुर्दमन, इनका वहीनर, वहीनरका पुत्र दण्डपाणि दण्डपाणिका पुत्र नेमि और
नेमिसे क्षेमक नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ हे महाराज परीक्षित! देवर्षिसत्कृत ब्रह्मक्षत्रियवंश इन क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें
समाप्तिको प्राप्त हो जायगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनीकथा सुनाकर नृपश्रेष्ठ परीक्षितसे बोले कि हे कुरुवंशावतंस! अब मगधवंशमें जो

राजा होंगे उनका वृत्तांत कहता हूँ आप सचेत हो मन लगाकरके सुनिये—बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा। सहदेवके मार्जारि और इस मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ इसका पुत्र अयुतायु, उसकी सन्तान निरमित्र, इसका पुत्र, सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी। इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित्, उसके सुतञ्जय, उससे विप्र नाम एक नरेश उत्पन्न होगा। पुसका पुत्र शुचि, शुचिका पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और धर्म सूत्रके शम नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४६॥४७ ॥ इस शमसे द्युमत्सेनकी उत्पत्ति होगी, द्युमत्सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा, सुबलका सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्य जित्, सत्यजितका पुत्र विश्वजित और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा ॥४८॥ हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह सब राजा

नतोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ॥ ४६ ॥ ततः सुतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥४७॥ द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुञ्जयः ॥४८॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः ॥ सभानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥ जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥

उत्पन्न होंगे और इनके उपरांत जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धे) कहे जायँगे ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा—ययातिसुत अनु द्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश। पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदु कुल कहौं प्रशंस ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! पूरुका वंश तो कह चुके, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं। अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र सृञ्जय ॥१॥ और उसका पुत्र जन्मेजय हुआ। जन्मेजयका पुत्र महाशाल और महाशालका पुत्र महामना हुआ महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न

हुए । इन दोनोंमें उशीनरके शिवि, बल, शम और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमें शिविसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकेय यह चार पुत्र जन्मे तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ, उसका पुत्र होम, उसका पुत्र सुतप और सुतपसे बलि नाम पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिंगादि और सुह्म, पुंड और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए यह सब अपने अपने नाममे छः जनपद और छः प्राच्य देशोंमें अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि बसाये ॥ ५ ॥ अंगसे खलपान नामक जो पुत्र जन्मा था उसका पुत्र दिविरथ, उसकी संतान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा, चित्ररथके कोई संतान नहीं हुई ॥ ६ ॥ रोमपाद नाम करके यह राजा

वृषादर्भः सुवीरश्च भद्रः कैकय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥३॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिःसुतपसोऽभवत् ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुंहपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥ ५ ॥ खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजः ॥ ६ ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ॥ १० ॥

विख्यात था, उसके सखा दशरथराजाने उसको पुत्रार्थ शांतानामक अपनी कन्या दान कर दी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यशृङ्ग मुनिने किया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता लोगोंने जल नहीं वर्षाया । तब राजाकी अनुमतिसे वरांगनागण तपोवनमें जाय गीत गाय बाजे बजाय बजाय नाचने लगीं और हाव भाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्यशृङ्गको ले आयीं ॥ ८ ॥ ऋष्यशृङ्गके आते ही जल वर्षा, इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसंतान देख यज्ञ कराय पुत्रका मुख दिखलाया ॥ ९ ॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ । उसकी संतान पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे बृहद्रथ बृहत्कर्मा और बृहद्भानु ये तीन

पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति नामक भार्यासे धृतिने जन्म ग्रहण किया ॥ ११ ॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ। इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुए कुन्तीजीके बहाये संदूकमें एक बालक पाया और यह अधिरथ सन्तानहीन था, इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुए बालकको अपना पुत्र बना लिया। हे राजन्! बालकका नाम कर्ण था और इससे ही वृषसेनकी उत्पत्ति हुई ॥१२॥१३॥ ययातिसुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ, बभ्रुका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरब्ध, उसका पुत्र गान्धार, उसका बेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥१४॥ धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचेताके सौ पुत्र १०० हुए, जो कि उत्तर दिशामें विराजमान होकर म्लेच्छा

आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११ ॥ ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुन्त्याऽपविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥१३॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ॥ १६ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः ॥ १९ ॥

धिपति हुए हैं ॥ १५ ॥ तुर्वसुका पुत्र वह्नि, उसका सुत भर्व, उससे भानुमान्का जन्म हुआ। भानुमान्का त्रिभानु, उसका पुत्र उदारमति करंधम हुआ ॥ १६ ॥ करन्धम पुत्र मरुत्त, इन्होंने पुत्ररहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया। यह दुष्यन्त राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुए थे ॥ १७ ॥ हे नरश्रेष्ठ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अति पवित्र वंश मानवमण्डलीके अनन्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १८ ॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र पापोंसे छुट

कारा पाते हैं, क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण थे ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित, क्रोष्टा, नल, रिपु ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित हुआ ॥२०॥ इसके महाहय, वेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए उनमें हैहयका पुत्र धर्म उसका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुंति हुआ। कुंतिसे सोहञ्जि जन्मा और उसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मानका पुत्र भद्रसेन हुआ ॥२१॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए। इनमें धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ये चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ, जो कि सप्तद्वीपका अधीश्वर था और जिसने श्रीभगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योगगुणप्राप्त किया था ॥२३॥

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥ २० ॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ॥ सोहञ्जिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्नि कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः ॥२३॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २४ ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समा ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥ जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत् तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥

ऐसा जान पड़ता है कि कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता, व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २४ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी हजार ८५००० वर्षतक अक्षय छः इंद्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥ २५ ॥ इस अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पांच परशुरामके संग्राममें मरनेसे शेष बचे थे। जिनके नाम ये हैं—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित ॥ २६ ॥ इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके तालजंघ नामवाले शत पुत्र हुए। इन सबको क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥ २७ ॥

जो कुछ भी हो, तालजंघके उन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन्! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत १०० पुत्र उत्पन्न हुए थे, यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुछ माधव, वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था, परन्तु तो भी वृष्णि ही इस कुलमें श्रेष्ठ था ॥ २८ ॥ २९ ॥ यदुका पुत्र क्रोष्टु, इसका पुत्र वृजिनवान्, वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ और उससे महायोगी महाभाग शशबिन्दुकी उत्पत्ति हुई ॥३०॥ यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, माल्य, मणि, छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था ॥२८॥ हे परीक्षित्!

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोःपुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥२९॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां तु षट् प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजाः ॥ ३२ ॥ धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविन्दच्छत्रुभवनाद् भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥ ३४ ॥

इसके दश हजार १०००० स्त्रियें थीं ॥३१॥ इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्ष लक्ष १००००० पुत्र उत्पन्न हुए, जिससे सब मिलकर दशलाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्व १००००००००० इन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुए थे ॥३२॥ पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ, कि जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये उशनाका पुत्र रुचक हुआ। इस रुचकके पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु पृथु और ज्यामघ यह पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥३३॥ इनमें ज्यामघकी भार्या शैब्या थी। इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी परंतु भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया। यह एक समय इंद्रभवनसे भोजा नामक कन्याको हरण करके ला रहा था ॥ ३४ ॥

कि उस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैब्या अत्यन्त क्रोधित हुई और अपने पतिसे बोली कि कौन है ? जिसको मेरे बैठनेके रथ पर चढ़ाकर ला रहे हो ॥ ३५ ॥ तब ज्यामघने भयके मारे उत्तर दिया कि यह तेरी पतोहू है। शैब्या विस्मित होकर बोली कि मैं तो बांझ हूँ और मेरे कोई सौत भी नहीं कि यह कन्या जिसके बेटेकी बहु हो, फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ? ॥ ३६ ॥ ज्यामघने कहा कि प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही बहू होगी। हे राजन् ! विश्वेदेव और पितृलोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकाश किया, क्योंकि ज्यामघने पहले उनकी बहुत दिनोंतक पूजा की थी, अतः उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त शैब्याको गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया। इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ, फिर कुमार

रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥ जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदन्त तद् विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽनुद्रुह्युतुर्वसुयदुवंशानुवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ कुशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चैदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः॥ ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत तस्य व्योमः सुतस्ततः॥३॥

विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया, कि जिसको पिता हरण कर लाये थे और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश बसाया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—चौविस माहिं विदर्भके, भये तीन सुत वीर। रामकृष्ण तक वंश सब, कहौं सुनो मतिधीर ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, इसका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥ १ ॥ इस रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदि और चेदिसे दमघोष राजाकी उत्पत्ति हुई॥२॥ हे राजन ! विदर्भ

त्मज क्रथका पुत्र कुन्त हुआ, उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निवृत्त, उसके दशार्हनाम पुत्र हुआ, दशार्हके व्योम ॥३॥ व्योमका पुत्र जीमूत, जीमूतके भीमरथ और उससे नवरथने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र दशरथ हुआ॥४॥ उससे शकुनि, शकुनिके करंभि, करंभिके देवरात, देवरातके देवक्षेत्र, उसके मधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ, कुरुवंशका पुत्र अनु ॥५॥ उसका पुत्र पुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य! सात्वतके भजमान १, भजिक २, दिव्य ३, वृष्णि ४, देवावृध ५, अन्ध ६ और महाभोज ७, ये सात पुत्र उत्पन्न हुए इनमें भजमानके दो स्त्रियें हुईं। एक स्त्रीसे निम्लोचि, किंकिण, वृष्णि यह तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित् सहस्राजित् और

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षेत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥ भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥ भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो वृष्णिरेव च ॥ ७ ॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथाऽन्तिकात् ॥ ॥ ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥

अयुताजित् ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥८॥ हे राजन्! देवावृधकी संतान बभ्रु हुआ। इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कवि लोग श्लोक * गाया करते हैं। उस श्लोकका अर्थ यह है। हम दूरसे जैसा सुनते हैं, निकटसे वैसा देखते भी हैं ॥ ९ ॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताके समान है, इस वंशमें पंचषष्टि षट् सहस्र और आठ जो यह ६०७३ पुरुष हुए, ये सब बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुए थे सात्वतके महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥१०॥११॥

* "बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू। तथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथान्तिकात ॥ १ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ २ ॥

हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजितनामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। युधाजितके पुत्र शिनि और अनमित्र हुए । उनमें
अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥१२॥ इस निम्नके सत्राजित और प्रसेन दो पुत्र हुए। हे राजन् । अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो
था उसके यहां सत्यक जन्मा ॥१३॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि और इस कुणिसे युगंधरका
जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे ॥१४॥ श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिया। श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें
अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे, जो कि बड़े विख्यात हुए ॥१५॥ यथा—आसंग १,सारमेय २, मृदुर ३,मृदुवित ४, गिरि ५, धर्म

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥१२॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च
वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप ॥ युयुधानः सात्याकिर्वै जयस्तस्य
सत्यकः ॥ १३ ॥ शिनिस्तस्याथ अनमित्रसुतो योऽन्यः निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥
श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः॥ पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ कुणिस्ततः ॥ युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः
धर्मवृद्धः सुकर्मा च अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥
तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥
कुकुरो भजमानश्च ॥१७॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥
कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च शुचिः कम्बलबर्हिषः॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥
तुम्बुरुः ॥ अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥

वृद्ध ६, सुकर्मा ७, क्षेत्रोपेक्ष ८, अरिमर्दन ९ ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न १०, गन्धमाद ११ और प्रतिबाहु १२ बारह ये अक्रूरको लेकर तेरह
पुत्र हुए और इनके सुचीरा नामक एक बहन भी हुई थी। अक्रूरजीके देववान और उपदेव दो पुत्र हुए। चित्ररथका पुत्र पृथु, इसके अतिरिक्त
विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुए ॥ १७ ॥१८॥ दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष यह चार अंधकके पुत्र हुए, उनमें कुकुरका
पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा ॥ १९ ॥ उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र अनु हुआ, जिसका मित्र तुम्बुरु गन्धर्व था। इस अनुका

पुत्र अन्धक उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र अद्योत और उसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए देवकके देववान् १, उपदेव २, सुदेव ३, देववर्द्धन ४ यह चार पुत्र उत्पन्न हुए। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा १ शांतिदेवा २, उपदेवा ३, श्रीदेवा ४, देवरक्षिता ५, सहदेवा ६ और देवकी ७ इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह किया ॥ २३ ॥ हे परीक्षित्! उग्रसेनका पुत्र कंस १, सुनामा २, न्यग्रोध ३, कंक ४, शंकु ५, सुहु ६, राष्ट्रपाल ७ धृष्टि ८ और तुष्टिमान् ये नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ और कंसा १,

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप ॥२२॥ शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कङ्का शरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात् स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥२७॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥२८॥ सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥

कंसवती २, कंका ३, शरभू ४, राष्ट्रपालिका ५ यह पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुई ॥ २५ ॥ हे राजन्! पहले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उस विदूरथके सूर उत्पन्न हुए, उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, शिनिका पुत्र भोज और उससे हृदीक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवमीढ, शतधनु और कृतवर्मा, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ। उसकी मारिषा नामक एक पत्नी थी, उसके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम यह हैं, यथा वसुदेव १, देवभाग २, देवश्रवस ३, आनक ४ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृञ्जय ५, श्यामक ६, कंक ७, शमीक ८,